८५

# निर्म्माल्यरत्नाकरः ।

सर्व्वेषां देवानां निर्म्माल्यस्य निर्णयम् पूजाविधानम् ।


भिषक्वर बाबू वैंचुसिंहेन कृतम् ।

तेनैव नानाशास्त्रोद्धृतेन संगृहितं प्रकाशितञ्च ।

काशी ब्रह्मलाल स्वर्गद्वारि ।






कलिकातानगर्य्याम्

तुलापटीस्थ

७५ संख्यकभवने

नारायणयन्त्रे

श्रीरसिकलालपानेन

मुद्रितम् ।

संवत् १९५४ ।

ई० १८९८ ।

मूल्य २॥) ।

प्रकाशक—बाबू बेचू सिंह,
८नं० फूलबागान बड़ाबाजार कलकत्ता।

प्रिण्टर—श्रीरसिकलाल पान,
७५ नं० काटन् ष्ट्रीट बड़ाबाजार कलकत्ता।

नारियल
लो स्त्रिय
वालय हैं
। वहां

# भूमिका ।

प्रीका आद्या अपि यत्प्रसक्तिमतुलामाश्रित्य लोकेशतां याताथस्थिरमम्बकेन
। वे दैव्येन संस्तूयते । यं हित्वा बहुदक्षिणोपि यजतो दक्षस्य मन्युर्हतः
दुष्टविनाशनः पशुपतिः शूलीशिवः स्वाश्रितान् ॥ १ ॥ यच्छापाग्निप्लुष्ट-
वित्प्रभावाश्वक्राद्यैः स्वान्यङ्कयित्वाव पूंषि । वेदज्ञेयं शङ्करं विद्विषन्ते विप्रास्तो
मूढीतमः साम्बभक्ताः ॥ २ ॥ तस्यान्वयेराजकुले भिषग्वरो जातश्च दीनावन-
तत्परः क्षतीविख्यातकीर्त्तीरमलस्य पारगः शिवेश भक्तः सुखलालकेशरी ॥ ३ ॥
तत्पुत्रोरमलज्ञवैद्यगुणिनामग्र्योऽस्ति धीरोभृशं वेचूसिंह इति प्रसिद्ध इह यः
श्रीसद्गुरून्दीचितान् । आराध्यार्थत ईश्वरानपि महानन्दान् सल्लेभे ततो मन्त्रं
श्रीशिवयोः षड़क्षरमिहामुत्राखिलार्थप्रदम्॥४॥ श्रीमद्भरद्वाजकुलावतंसो रामादि-
यन्नान्तपरो हि मिश्रः । संशोधितो वैगिरिश प्रसादान्निर्माल्यरत्नाकरनामधेयः॥५॥

पुराखल्वस्मिन्भारतखण्डे ज्ञानविध्वस्तकल्मषास्तपस्तेजसाज्वलयमाना वैश्वा-
नरा इव प्रदीप्ता महान्तो महर्षयो लोककल्याणसंपिपादयिषव आसन् ते च
धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलं शिवोपासनमाहुः तन्नाशकरैर्बलतेजः प्रभावादिक्षासा-
पादकैः धर्मार्थसुखादिषु महाविघ्नस्वरूपभूतैः सर्वतः प्रसरद्भिः पण्डितं मन्यैः
पाखण्डिभिः पीड़ितानां मनुष्याणां दुःखोपशमाय कल्याणविवृद्धये च वेदादिपर-
म्परयाधिगतशिवोपासनं स्वस्वनिबन्धादिद्वारा प्रकाशयामासुः ते च ऐहिका-
मुष्मिकसकलकल्याणसाधनेच्छुभिर्मनुष्यैर्ज्ञातव्याः संग्राह्याश्च ते चानेकमहर्षि-
प्रणीतत्वेन दुर्बोधा महान्तो ग्रन्था अभूवन् आधुनिकानामल्पायुष्टाल्पमेधावतां
शिवोपासनोपदेशेषु जिज्ञासूनां जनानां सम्यक् प्रबोधाय परमकारुणिकेन बाबू
वेचूसिंहवर्म्मणा पूर्वोक्तमहर्षिप्रणीतग्रन्थेभ्यः सकलसारभूतं विविच्य अनतिमही-
यानलघुर्विरचितोऽयं ग्रन्थः निर्म्माल्यरत्नाकरनामा प्रसिद्धः ।

एतत्ग्रन्थनिर्माणप्रवृत्तौ कारणं प्रदर्शयन्नाह अस्ति जिला पलामूमध्यवर्त्ती
नावाख्यग्रामः तदधिराजस्थाने रघुनाथमिश्रः शिवपुराणमचकथत् तस्मिन्नवसरे
शिवनिर्माल्यग्रहणनिषेधकैस्तत्रत्य वैष्णवैः सह विवादः समजनि ( तन्निर्णयच्चि-
कीर्षवो नावाधिपतयः श्रीमन्महाराजाधिराज काशिराजकीय धर्मसभायाम्पत्रम्

प्रेषितवन्तः तत्सभापति पण्डितवर कुबेरपति त्रिपाठिनः पत्रोत्तर ... निर्माल्यग्रहणे सभासदां सम्मतिं प्रकाशयामासुः। ततः कियत्काला ... प्रमाण नार्थमिश्रप्रेषितपत्रम्ममान्तिकमगमत्। शिवनिर्माल्यग्रहणनिर्णयः ... वस्थानन्त सहितो लेखनीय इति। तदैवैतद्ग्रन्थसंग्रहे प्रवृत्तोऽहम्। कतिपय ... गत्य एत रत्नवादिनो वैष्णवाः काशीमार्गेण अयोध्यां जिगमिषवो ममाभासस ... संग्रहगतानि प्रमाणानि दृष्ट्वा विवादतो विमुखा बभूवुः।

अतः परम् कलकत्तानगर्य्यांकार्य्यवशतो मय्यागतेऽत्र जयपुराधीश्वर ... न्तर्गतश्रीकराधिपतिशासित श्रीकरनगरनिवासी शाण्डिल्यगोत्रोद्भव सोढानो माहेश्वरीवंशावतंस रामसुखपौत्रो रामविलासपुत्रो रामचन्द्रगुप्तो ममान्तिके समागतस्तेनोक्तम् शैवप्रतिद्वन्द्विनो बहवो विवदन्ति तच्छमनायैतत् संग्रहसुद्रणे प्रवृत्तिर्विधेयाहमपि स्वशक्तितः साहाय्यम् दास्यामीति।

---

केवल भारतवर्ष ही में लिङ्गपूजा नहीं होती, परन्तु युरोप, एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, ओशिनिया और अन्यान्य द्वीपों में भी बड़े विधान से विधर्मी म्लेच्छ लिङ्गकी इस समय तक पूजा करते हैं। और उन देशोंमें प्राचीन कालकी अन्यान्य हिन्दुमूर्त्तियां भी हर साल नई नई निकलती हैं। लुइस साहब की बनाई हुई Phallic Worship (फैलिक वर्शिप) नाम विष्णु आदि देवों की विदेशीय पूजा छोड़ के केवल लिङ्गपूजाविधायक पुस्तकमें यह स्पष्ट लिखा है। शिवभक्तों के चित्तविनोदार्थ हम कुछ संक्षिप्त तत्त्व प्रकट करने की चेष्टा करते हैं।

अफ्रीका। उत्तर अफ्रीकाके प्राचीन इजिप्त वा मिश्र देश में असिरिस और आइसिस नामक पुं और स्त्री के लिङ्ग आज तक पूजे जाते हैं। शिव के सदृश असिरिस के मस्तक में सर्प, हस्त में त्रिशूल और अङ्गमें व्याघ्रचर्माम्बर हैं। एपिस नाम वृषभके ऊपर बैठे हैं। उसी देशमें बिल्वके सदृश एक वृक्ष होता है, इसके पत्र उन पर प्रतिदिन चढ़ाये जाते हैं। दूधसे स्नान होता है। जैसे भारतवर्ष में काशीजी हैं, वैसे वहां मेम्फिस नाम स्थान प्रसिद्ध है। इस देशमें लिङ्गका बीजाक्षर "ट" है। कृष्णवर्ण मूर्त्ति है। असिरिश वृषभ और आइसिस गौ रूप से स्थित हैं। डेहोमी के अघोरपन्थी मनुष्यभक्षी हबशी लेग्बा नाम के काष्ठ लिङ्गको सड़कों की मोड़पर रखके पूजते हैं। ताल

नारियल वृक्ष के पेड़का तेल उस पर चढ़ाया जाता है। पुत्रकामना करने- वाली स्त्रियां इस लिङ्गसे प्रार्थना करती हैं। वहां तीन खण्डका ऊँचा शिवालय है। उसके द्वार पर शेर मछली सर्प और कच्छपकी आकृति खोदित है। वहां प्रथम लिङ्ग पुरुषाकृति और द्वितीय स्त्रीके आकार का है। उत्तर अफ्रीका में जितनी अरब जातियां हैं, सब एक लिङ्ग क्या योनिको भी पूजती हैं। वे घोड़ी और उष्ट्री की योनि पूजते हैं। घर वा तम्बूके द्वारपर कुदृष्टि निवारणार्थ योनिका चिह्न बनाते हैं।

युरोप। ग्रीस वा युनान देश में लिङ्गपूजा अद्यावधि प्रचलित है। बैकस और प्रियेसस शिवके दो नाम हैं। एरिक्स और करेन्थमें विनस देवी वा गौरी के मन्दिर हैं। इफिसिस देशमें डायना देवी की पूजा होती है। इटालीके रोम नगरमें अद्यापि लिङ्गपूजा जाता है। रोमन कैथलिक सम्प्रदायके क्रस्तान इटालीमें आज तक लिङ्ग पूजते हैं। ग्रीस में पान नामका एक लिङ्ग और पूजा जाता है, इसकी आकृति अर्द्ध छाग अर्द्ध मत्स्याकार है। वहां प्रियापस नामका एक लिङ्ग और पूजा जाता है। यह दाहिने हाथ में एक कुठारी और वाम हस्तमें अपना सुदीर्घ लिङ्ग पकड़े हुए है। स्त्रियां इस लिङ्ग की आकृति गहनोंपर खुदवाकर कवचकी न्याई रक्षार्थ धारण करती हैं। हाथ, कुच और कटि पर यह मूर्त्ति धारण करती हैं, जिससे शिव प्रसन्न रहें। ग्रीसमें मिनर्वा पार्वती और पोसिस महादेव हैं, क्योंकि मिनर्वाने अपनी योनिपर पोसिस का लिङ्ग रख लिया है। उस मूर्त्तिको बड़ी सामग्री से आजतक पूजते हैं। रोम और फ्लोरेन्स नगर में हर्मिज और लाइव नामसे बैकस देवकी पूजा होती है। वह पूजन बिलकुल इस देशके सदृश है। अङ्गरेजोंके इंग्लण्ड के भीतर योर्क देश में ष्टोनहेञ्ज नामक मन्दिर है, क्रमेलक में जो प्राचीन मन्दिर और पत्थर के खम्भे दिखाई देते हैं, उससे प्रगट होता है कि यहां किसी काल में शिव ही का मन्दिर था। आयर्लण्ड में नवटनष्टोन, ड्रोन- स्निउरा और राउण्डटौअर आदि स्थानों के देखने से प्रकट होता है, कि यहां प्रत्यक्ष लिङ्ग पूजा जाता था। आयर्लण्ड क्रस्तान है, तो भी गिरजे के दरवाजे- पर योनि दिखाती हुई, स्त्री अब भी पूजित होती है। स्काटलण्ड के ग्लासगो नगरमें सूर्य्यमन्दिर के भीतर लिङ्गमूर्त्ति है। इसपर सुवर्णपत्र जटित है। फ्रान्स वा फिरङ्ग देशमें सौभाग्य, सुन्दर पति, आयुर्वृद्धि और रोगीको

आरोग्य होनेके लिये स्त्रियां अबतक योनिका दर्शन करती हैं, और पुरुष लिङ्गका। स्पेनमें सा।मेंटोस मन्दिरमें घुसते ही द्वार के एक ओरसे पुरुष अपना और दूसरी ओरसे स्त्री अपना लिङ्ग दिखाती हुई, प्रस्तरमय प्रतिमा खड़ी हैं। मेड्रिड में गिरजे और कबरस्थानोंमें योनि दिखाती हुई, स्त्रीमूर्त्ति मृण्मय घट के ऊपर स्थित रहती हैं। वहां गुप्तरीत्या लिङ्गपूजा भी अब तक होती हैं। अष्ट्रीहणगिरि देशमें ताम्रेश्वक नाम लिङ्ग पूजा जाता है। नौरवे स्वीडेनमें भी लिङ्गपूजा होती है।

एशिया। तुरुकके रूम देशान्तर्गत असिरिया वा सुरयानी देश और बाबिलन नगरमें तीन सौ घनहस्त परिमित शिवलिङ्ग है। सिरिया वा शाम देशमें एकोनिस और एष्टरगेटिस नाम के लिङ्गोंकी पूजा वर्त्तमान हैं। हायड्रापोलिस में प्रकाण्ड शिवमन्दिर है। उसमें तीनसौ हाथ ऊंची लिङ्ग-मूर्त्ति वर्त्तमान हैं। अरबमें मुहम्मदके जन्मसे पहलेसे लात मनात अल्लात और अलुज्जा इन महादेव और देवियों की पूजा होती हैं। खास मक्का में सङ्ग असवद वा मक्केश्वरका लिङ्ग चुम्बित होता हैं। मक्का में जमजम कुएमें लिङ्गमूर्त्ति है और नजरा में खजूरकी पत्ती पूजी जाती है। यह भी लिङ्ग-पूजा है। भारतवर्षके पूर्वीय द्वीपपुञ्ज के सुमात्रा और यवद्वीपमें लिङ्गपूजा और महाभारत आदि कई इतिहासों की ज्योंकी त्यों लिङ्गकथा तथा अन्यान्य हिन्दु पुराणपाठ अद्यावधि वर्त्तमान हैं। फिनिशिया देश में बालनाम की सूर्य्यरूपिणी स्त्री की पूजा करते हैं। बअलबकमें इस सूर्य्यदेवी का मन्दिर है। फ्रीजियन देशमें एटिस नामका लिङ्ग पूजते हैं। निनिभा नगर में एशीरा नाम विशाल लिङ्गमूर्त्ति हैं। यहूदिया देश में इसराईली वा यहूदी लोगोंकी प्रतिष्ठित लिङ्गमूर्त्ति अब तक वर्त्तमान हैं। उन लोगोंका लिङ्गमूर्त्ति के स्पर्श करके शपथ वा प्रतिज्ञा करने का विश्वास है। तौरेतमें इब्राहीमके नौकरको लिङ्गस्पर्श का शपथ देते हैं। याकूब अपने पिता की अस्थि जब मिसरको लिये जाता था, तब नौकरको यही लिङ्ग स्पर्श कराया था। यहूदी राजा लोग भी यही लिङ्ग पूजकर अदालत और कचहरी करते थे। बेथल नामक मन्दिर बनाके याकूब ने उस में लिङ्ग प्रतिष्ठित किया और तेल और मद्यका भोग लगाने लगा। दाऊद जब बअल नाम लिङ्गमूर्त्ति लाते थे, तब उनको माइकेल नाम्नी स्त्री इसपर गुरु शामुइलके पास क्रुद्ध होकर उठ गई। गुरुने शाप

दिया कि तू बन्ध्या हो जा। जापानमें बौद्ध मत प्रचलित रहने पर भी लिङ्ग पूजा जाता हैं। जापानके आइस नगर में सूर्य्य और लक्ष्मी नामके लिङ्ग और योनि पूजे जाते हैं। सीलोन वा सिंहलद्वीप में बौद्धधर्म्म प्रचलित रहने-पर भी लिङ्गपूजा जाता है। अफरीदिस्थान, स्वात, चित्राल, काबुल, बलख, बुखारा, काफ पहाड़ आदि में पञ्चशेर, पञ्चवीर, आदि नाम से लिङ्गमूर्त्ति पूजी जाती हैं। ईरानमें ज्वालामय लिङ्गकी पूजा करते हैं। मट्टीके तेलसे ज्वालालिङ्ग को पूजते हैं। साइबीरिया और ताशकन्द में शैवलीनियन जाति के लोग लिङ्गपूजा करते हैं।

ओशिनिया। सण्डविच वा हवाई टापु में अब क्रस्तानी फैल गई। पर कोई उपद्रव—अर्थात् ज्वालामुख पर्वत का फूटना, दुर्भिक्ष, महामारी, भूमिकम्प आदि होनेसे लिङ्गपूजा करते हैं। उनकी भावी महारानी की हाल में मृत्यु हुई, तब तान्त्रिक रीतिसे अन्त्येष्टिक्रिया की गई और सब देशवासियोंने लिङ्गपूजा की।

अमेरिका। पेन्युको नगर और होण्डुरास देशमें गोल सरल द्विमुख प्रस्तर लिङ्ग अद्यावधि वर्त्तमान हैं। युनाइटेड ष्टेटसके टेनेसी नगर में एक वृहत् लिङ्गमूर्त्ति है। युकेरटन देशमें हरेक मन्दिरके सामने वृहदाकार लिङ्ग स्थित है। दक्षिण अमेरिकाके ब्रेजिल देशमें बहुतसी प्राचीन लिङ्ग और गणेश की मूर्त्तियां मिलती हैं। पेरु प्रदेशमें मृत्तिकाके लिङ्ग और योनिका पूजन बड़े समारोहसे होता है। मृन्मय घटोंके ऊपरभी यह लिङ्ग रहता है।

———



काशीनिवासी बाबू बेचू सिंह शाम्भव।

# विदुषां हस्ताक्षराणि

आचार्योत्पतिवृत्तनिखिल मिदमितो ग्रथतो ह्यप्यनेचेत् लेखाशुद्धे निरासो ऽप्यविहित मनसा यत्नतो भासते चेत् ग्रामारोपप्राद्युपाचा ऋच मि कोलनगुणा द्विताम्प्रे रूपताञ्च ग्रन्थोऽयं ज्ञा प्यभावं विनय मगरासद स्येव्यते दुर्लभानाम्

उपदाशीनिर्दोषाद्धप नितासे निर्माल्यरत्ना करग्रन्थो ३ वर्षपाशी नकुमारशर्मणास म्यते परमार्थतो वि चारे सवद्दिवो पासकै- र्दर्शनीयो ऽयमिव न्धे ति श्रौता अपि भूयांसो विषा अत्मनेयद्याः सन्ती ति शिवम्

सम्मतिरत्रपरिगतवि करामशर्मणाः
सम्मतोयमर्थो ठाकुरदत्तशर्मणः

पौराणुपनाम कुबेरपतिशर्म सम्मनुते ऽग्रन्थ मिति शिवम्

श्रीशिवाय विदितं मैवेद्यं ग्रन्थमिमं सम्मनुते कैलासचन्द्र शर्मा

विन्ध्येश्वरीप्रसादशर्मा च ग्रन्थार्थे सम्मतिर्नारा दत्तशर्मणाः

रामपति रत्नार्थे रामहितस्य सम्म सम्मतिरत्र मोहकमराम शर्मणाः

सम्मतिप्यामोक्षी शेवदत्तवजशर्मणा

श्रीशङ्कराय नमः ।

उत्तरार्द्धः समाप्तः ।

———

# निर्म्माल्य रत्नाकरः ।

---

श्रीगणेशायनमः । श्रीशङ्करायनमः ।

ध्यात्वापरेशं परमात्मतत्त्वम् आद्यन्तरान्ताखिलभेद भङ्गम् ।
नत्वागुरून् ब्रह्मविदो दयार्द्रान्निर्म्माल्यतत्त्वं प्रकटीकरोमि ॥१
वर्णाश्रमस्थानऽथ काण्डधर्म्मान् वेदेतिहासादिपुराणहेतून् ।
सञ्चीयसंशोध्य विचार्य्यतत्त्वम् निर्म्माल्यरत्नाकरमातनोमि॥२
नित्यास्वनैमित्तिकधर्म्मभेदाः नित्येतरादौखलुदेवपूजा ।
पूज्यस्वनित्यः कथयेप्रमाणतः नैमित्तिकान्देवगणान्क्रमेण ॥३
अङ्गाउपास्या नियताः पराद्याः भक्तास्तुतेषामितिसंवदन्ति ।
अङ्गेषुनित्यास्त्वयईश्वरान्ताः त्रिषु षुनितराः परपूर्व्वशंभुः ॥४
पूजास्वनैवेद्यवि धिग्रहश्च भक्तस्वरूपञ्चपरिक्रमाश्च ।
तात्वाऽथवादंप्रविविचयिष्ये भूयादयंसज्जनरञ्जनाय ॥५

वर्णधर्म्मानाह मनुः अध्यापनमध्ययनंयजनंयाजनंतथा दानंप्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ म० १ ॥ अः ८८ ॥ प्रजानांरक्षणंदानमिजरा- ध्ययनमेवच । विषयेष्वप्रसक्तिश्चक्षत्रियस्यसमासतः म० ॥ १ ॥ अः ८९ ॥ पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच । वणिक्पथंकुसीदञ्चवैश्यस्यकृषिमेवच ॥ म० १ ॥ अः ९० ॥ एकमेवतुशूद्रस्यप्रभुःकर्म्मसमादिशत् । एतेषा मेववर्णा नांशुश्रूषामनसूयया ॥ म० १ ॥ अः ९१ ॥ आश्रमधर्म्मानाह सेवेतेमांस्तुनिय- मान्ब्रह्मचारीगुरौवसन् । सन्नियम्येन्द्रियग्राममन्तपोवृद्धयर्थमात्मनः ॥ म० २ ॥

अ: १७५ ॥ नित्यस्नात्वाशुचिःकुर्य्यात्देवर्षि-पितृतर्पणम्। देवताभ्यर्चनञ्चैवसमि-दाधानमेवच ॥ म० २ ॥ अ: १७६ ॥ ऋषयःपितरोदेवाः भूतान्यतिथयस्तथा। आशासनेकुटुंविभ्यस्तेभ्यः कार्य्यं विजानता ॥ म० ३ ॥ अ० ८० ॥ स्वाध्यायेना-र्चयेदृषीन् होमैर्देवान्यथाविधि। पितॄन्श्राद्धैश्चनानान्नैर्भूतानिवलिकर्म्मणा ॥ म० ३ ॥ अ० ८१ ॥ देवान्ऋषीन्मनुष्यांश्चपितॄन्गृह्याश्चदेवताः। पूजयित्वाततः पश्चात् गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ म० ३ ॥ अ० ११७ ॥ मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूल फलेनवा। एतान्येव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्व्वकम् ॥ म० ६ ॥ अ० ५ ॥ देवता भ्यस्तुतद्धुत्वावन्यम्मेध्यतरंहविः। शेषमात्मनियुञ्जीतलवणंचस्वयंकृतम् ॥ म० ६ ॥ अ० १२ ॥ उच्चावचेषुभूतेषुदुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेनसम्पश्येद्गतिम-स्यान्तरात्मनः ॥ म० ६ अ० ७३ ॥ अथकूर्म्मे त्रैयम्बकेनमन्त्रेणसततंरेणशिवेनच। त्रिपुंड्रन्धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रमसंश्रितः ॥ १ ॥ तेनाधीतंश्रुतंतेनतेनसर्वमनुष्ठितम्। येनविप्रेणशिरसित्रिपुंड्रं भस्मनाधृतम् ॥ २ ॥ त्रिपुंड्रन्धारयेन्नत्यासनसाऽपिनल-ङ्घयेत्। श्रुत्याविधीयते यस्मात्तत्त्यागीपतितोभवेत् ॥ ३ ॥ रुद्राक्षन्धारयेन्नि त्यं रुद्राक्षाणामितिश्रुतिः। लिङ्गंसमर्च्चयेन्नित्यंदेवदेवं महेश्वरम् ॥ ४ ॥ अग्नि-माधायविधिवत्कुर्य्यात्यज्ञादनन्तरम्। देवदेवपरिज्ञानेवाञ्छाजायेतसुव्रत ॥ ५ ॥ सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयात्सर्वभूतेषुसर्वदा। इति गृहस्थाश्रमधर्म्मः। अथसन्यासधर्म्मः हंसःकमण्डलुंशिक्यम्भिक्षापात्रन्तथैवच। कन्थाकौपीनमाच्छाद्यमङ्गवस्त्रम्बहिः पटम् ॥ १ ॥ एकन्तुवैणवन्दण्डन्धारयेन्नित्यमादरात्। त्रिपुंड्रोद्धूलनङ्कुर्य्याच्छि-वलिङ्गंसमर्चयेत् ॥ २ ॥ गुरुशुश्रूषणंनित्यमात्मज्ञानंसमभ्यसेत्। प्रव्रजन्तं द्विजं दृष्ट्वास्थानाच्चलतिभास्करः ॥ ३ ॥ एषमिमण्डलम्भित्वाब्रह्मलोकङ्गमिष्यति। रूपन्तुद्विविधं प्रोक्तञ्चरञ्चाचरमेवच ॥ ४ ॥ चरम्सन्यासिनां रूपमचरम्मृण्-मयादिकम्। यस्याश्रमेयतिर्नित्यंवर्त्ततेमुनिसत्तम ॥ ५ ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चि त्त्रिषुलोकेषुविद्यते। दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ॥ ६ ॥ वेषमात्रेणसन्न्यासीपूज्यस्सर्वेश्वरोयथा। ब्रह्मचर्य्याश्रमस्थानांब्रह्मादेवः प्रकीर्त्तितः ॥ ७ ॥ गृहस्थानान्तुसर्वेस्युर्यतीनान्तुमहेश्वरः। वानप्रस्थाश्रमस्थानामादित्यो देवतामतः ॥ ८ ॥ तस्मात् सर्वेषुकालेषु पूज्यस्सन्यासिनांहरः इति कूर्म्मे। शैवरत्नाकरे ॐ तत्रादौवर्णाश्रमधर्म्मः वायवीयसंहितायाम् श्रीदेव्युवाच केनवश्यो महादेवमर्त्यानांमन्दचेतसां। अल्पसत्वाल्पवुद्धीनामल्पानाम कृतात्मनां ईश्वर उवाच ॥ ५५ ॥ नकर्म्मणानतपसानजपैर्नसमाधितः। नज्ञानेननचान्ये-

गवश्योहं अद्धयाविना ॥ ५६ ॥ अज्ञाहेतुस्स्वधर्म्मस्यरक्षणस्वर्गिणामिह । स्ववर्णाश्रमधर्म्माभ्यां वर्ततियस्तुमानवः ॥ ५७ ॥ तस्यैवभवतिश्रद्धामयिनान्यस्य कस्यचित् । क्षमाशान्तिश्चसन्तोषस्सत्यमस्तेयमेवच ॥ ५८ ॥ ब्रह्मचर्य्यमथ ज्ञानवैराग्यं भस्मसेवनम् । सर्वसङ्गनिवृत्तिश्चदशैतानिविशेषतः ॥ ५९ ॥ अध्यापनञ्चाध्ययनं यजनंयाजनंतथा । दानम्प्रतिग्रहञ्चेतिकर्म्माणि ब्राह्मणस्य षट् ॥ ६० ॥ अध्ययनंयाजनञ्चक्षत्रियस्याप्रतिग्रहः । रक्षणंसर्ववर्णानांयुद्धे शत्रुवधस्तथा दुष्टपक्षिमृगाणाञ्चदुष्टानांशासनंनृणां । अविश्वासस्यसर्वत्रविश्वा-सोममयोगिषु ॥ ६१ ॥ स्त्रीणांसंसर्गःकालेषुचसूरलक्षणमेवच । सदासञ्चारितैषा-दैलीकवृत्तान्तवेदनम् ॥ ६२ ॥ सदास्त्रभरणञ्चैवभस्मकंचुकधारणम् । संज्ञा शिवाश्रमस्थानामेषधर्म्मस्यसंग्रहः ॥ ६३ ॥ गोरक्षणञ्चवाणिज्यंकृषिर्वैश्यस्य कथ्यते ॥ ६४ ॥ उद्यानकरणञ्चैवममक्षेत्रेसमाश्रितः । कपिलाक्षीरपानेनब्राह्म-णीगमनेनच ॥ ६५ ॥ वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्यनरकंध्रुवं । ब्रह्मचर्य्यवनस्था-नांयतीनांब्रह्मचारिणां । लिङ्गांगयोगिनाम्भूयोदिवाभिक्षाशनन्तथा ॥ ६६ ॥ वानप्रस्थाश्रमस्थानांसमानमिदमिष्यते । धर्म्मपत्न्यान्तुगमनंगृहस्थस्यविधीयते ॥ ६७ ॥ स्त्रीणान्तुभर्तृशुश्रूषाधर्म्मोनान्यस्सनातनः । मदर्चनञ्चकल्याणिनियोगो-भर्तुरस्तिचेत् ॥ ६८ ॥ यानारीभर्तृशुश्रूषांविहायव्रततत्परा । सानारीनरकं यातिनात्रकार्य्याविचारणा ॥ ६९ ॥ अथभर्तृविहीनायावक्ष्येधर्म्मंसमासतः । व्रतन्दानन्तपः शौचम्भूशय्यानक्तभोजनं ॥ ७० ॥ ब्रह्मचर्य्यासदास्नानम्भस्मनासलि-लेनवा । दान्तिर्मौनंक्षमानित्यंसम्बिभागोयथाविधि ॥ ७१ ॥ इतिसंक्षेपतः प्रोक्तो-ममाश्रमनिषेविणाम् । ब्रह्मक्षत्रविशान्देवियतीनांब्रह्मचारिणाम् ॥७२॥ तथैववान-प्रस्थानांगृहस्थानाञ्चसुन्दरि । शूद्राणामपिनारीणांधर्म्मएषसनातनः ॥ ७३ ॥ क्रियासारे भवन्तिबहुधाविप्राविद्याभ्यासेनजन्मना । आचारेणचनामानितेषाम्ब-क्ष्येपृथक्पृथक् ॥ २२ ॥ जातिसंस्कृत्यनुष्ठानसदाचारागमाश्रमाः । पञ्चैतेसन्ति यस्यासौसद्ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥ २३ ॥ विप्रोक्तसर्वसंस्कारैराचारेणान्वितश्चयः । शुद्ध ब्राह्मणदंपत्योर्जातोविप्रउदाहृतः ॥ २४ ॥ वेदमध्यापयेच्छिष्यानध्यापकः ध्यापकस्मृतः । वेदशास्त्रेषुनिष्णातोयोसौभट्टइतिस्मृतः ॥ २५ ॥ चतुर्वेदधरोयो सौऋषिरित्यभिधीयते । एकांशाखामधीतेयःसवैश्रोत्रियसंज्ञकः ॥ २६ ॥ सषड़ङ्गश्रुतिर्योसावनुचानाभिधानकः । कल्पज्ञोऋषिकल्पस्स्याद्भुणिसूत्रार्थ वाचकः ॥ २७ ॥ समस्तश्रुतिमन्त्रज्ञो योगाद्यस्तत्प्रयोगवित् । सदाग्निहोत्री

वैराग्यःकविःकाव्यंकरोतियः ॥ २८ ॥ काव्यङ्करोतियोदेवान्प्रतिधर्मायशासनं । सविप्रःसत्कविर्ज्ञेयः पुरस्तात्पविंबंशजः ॥ २९ ॥ भृत्यर्थंयोद्विजोमर्त्यान्प्रतिकाव्यङ्करोतियः । सकुष्ठविरिति प्रोक्तोद्विजातिषुकनीयसः ॥ २९ ॥ आधानंबलवान्योसावाप्ताग्निरितिसस्मृतः । समतन्तुकृतोयेनसोमयाजीसउच्यते ॥ ३० ॥ चतुर्द्दशविप्रवरायोग्याःश्रौतक्रियास्वमी । एतैःकृतानिकर्म्माणिसफलानिभवन्तिवै ॥ ३१ ॥ तज्जातोविधवायांतुजातोविप्रस्तुगोलकः । तथैवोपपतेर्जातःकुण्डाख्योभर्तृयोषिति ॥ ३२ ॥ तथैवजातः कन्यायांविप्रात्कानीनसंज्ञकः । भवंतिजन्मनाविप्रास्त्रयोमीगोलकादयः ॥ ३३ ॥ येषान्विप्रोक्तसंस्कारानस्युराधानपूर्वकाः । कथञ्चिदप्ययोग्यास्युर्विप्रैःसांसर्गनादिषु ॥ ३४ ॥ यत्नेकगोत्रयोर्जातस्त्रीपुंसोर्यः प्रमादतः । सचाण्डालइतिज्ञेयोयोग्यश्चण्डालजातिषु ॥ ३५ ॥ यस्याङ्कन्यायांत्राह्मण्याञ्जातः सन्यासिनातुयः । सचाण्डालस्तथाविप्रात्पुष्पवत्यांसमुद्भवः ॥ ३६ ॥ श्रुत्यनुष्ठानरहितोयोसौव्रात्यइतिस्मृतः । संस्काररहितोव्रात्यस्स्यादवकीर्णोहतव्रतः ॥ ३७ ॥ दुःशीलश्चेत्स्वितानाख्योवीरहात्यन्तपातकः । यःकरोतिहिभैषज्यन्भृतयेदेवतार्चनम् ॥ ३८ ॥ चण्डिकाराधनश्चैतेत्रयः पण्डितसंज्ञकाः । एतेनाचारदुष्टास्स्युरेवङ्केचिद्भवन्तिहि ॥ ३९ ॥ जन्मनाभावतोभ्रष्टाःपतितादूषतेस्मृताः । यःस्वशाखाम्परित्यज्यपरशाखांसमाश्रयेत् ॥४०॥ सशाखारण्डइत्युक्तःपतितोयमितिस्मृतः । कृतलोहषलीभर्ताग्रामयाचकदुः कविः ॥ ४१ ॥ शिवकोन्त्यदेवज्ञःषड्मीपतितान्वयाः । मठाधिपः शाकुनिकोदैवानुष्टानविक्रयी ॥ ४२ ॥ महापातकिनः पञ्चनवैतेपतितान्वयाः । ग्रामाधिकारीयोविप्रोनृपस्यान्यस्यचान्वया ॥ ४३ ॥ पतितःसतुविज्ञेयः कन्याविक्रयिकस्तथा । देवांस्तोर्थेभ्यःपानीयंकारयित्वाचकारुभिः ॥४४॥ प्रतिमाविक्रयंयोसौकरोतिपतितःस्मृतः । जीवनार्थम्पराम्नीनिष्ठलातीर्थम्प्रयातियः ॥ ४५ ॥ गुरुपित्रोर्विनाशेपिपतितश्चेतिकीर्तितः अथवास्त्रियश्चतांमुख्यभृत्तयेसहयातियः ॥ ४६ ॥ तीर्थंसपतितोज्ञेयोयस्यकस्यचिदान्वया । चाण्डालादन्त्यजातेर्वाप्रतिगृह्णातियोद्विजः ॥ ४७ ॥ अज्ञानात्तत्स्त्रियङ्गच्छेत्पतितःसोपिकीर्तितः । ज्ञात्वाजातिंयोविप्रोगमनञ्चप्रतिग्रहं ॥ ४८ ॥ गच्छेद्गृह्णीतवाभुंक्तेसद्विजातिर्भविष्यति । ताम्बूलवाटिकांकृत्वातयाजीवतियोद्विजः ॥ ४९ ॥ पतितः सतुविज्ञेयस्तक्रविक्रयकस्तथा । वैश्यामाश्रित्यतद्रव्यमुपजीवतियोद्विजः ॥ ५० ॥ निरन्तरमासमेकन्ततः सपतितस्मृतः । सद्विपोत्युच्यतेभार्यायाचव्यभिचरेद्यदि ॥ ५१ ॥ ताम्बीच्यतूष्णीमा-

स्येयः सतुस्याच्छ्राद्धिषाह्वयः। वेदेभ्यश्चसकर्म्मभ्य.पठनात्पाठकस्मृतः ॥५१॥ दानकर्मानुपातत्वमेतेषान्नह्निविद्यते। पतितेष्वेषुयद्दत्तन्दातादुर्गतयेस्मृतः ॥५२॥ शूद्रादीनांनमस्कारेयोग्यास्युःपतिताअपि। तेभ्यःश्रेष्ठाइतिज्ञेयावस्तुमानविधावपि ॥ ५४ ॥ अतोक्तपतितानेतान्जातुसद्ब्राह्मणादयः। नार्चयेयुरमीश्रेष्ठार्यादर्तं यान्तुदुर्गतिं ॥ ५५ ॥ पतितोऽपिवरोविप्रोनहिशूद्रोजितेन्द्रियः। कष्यरित्यज्यगां दुष्टांखरोन्दुग्धवतीन्दुहेत् ॥ ५६ ॥ स्वस्यायोग्यक्रियायुक्तोयदिशूद्रस्तपश्चरेत्। क्षतंतेतपसस्तस्यनरकायैवकल्पते ॥ ५७ ॥ शूद्रेकिमपिमन्त्रंयोद्विजोदद्यात्प्रीत्याति- यद्यपिं। सशूद्रइतिवक्तव्योनतुब्राह्मणसंज्ञकः ॥ ५८ ॥

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे प्रथमस्तरंगः।



## अथ द्वितीयस्तरंगः।

ननुवर्णाश्रमधर्म्मे देवःपूज्य इत्युक्तम् तत्रभूतोऽमीदेवयोनय इत्यादिग्रन्थाद्भूतप्रेतयक्षगन्धर्वादयोवहुविधादेवाः तेसर्वेपूज्याः अथविशेषाकेचिद्देवापूज्या अथ विशेषेष्वपिकोनित्यः पूजरः कश्चानियतः अथचकःप्रथमः पूजरः यस्यार्चामन्तराप्रत्यवायः कश्चैवम्विधः यश्चप्रथमपूजयोत्तरपूजरः इतिचेत्।

शृणुदेवशब्दःपिनाकीतिनिघण्टुः येदेवादेवाःदिविषिदःस्थतेभ्योवोदेवादेवेभ्योनमः येदेवादेवाः अन्तरिक्षसदः स्थतेभ्योवोदेवादेवादेवे० पृथिवीषदः स्थते स्थतेभ्यो० येदेवा० अप्सुषदःस्थते० येदेवा० दिक्षुषद० स्थतेभ्यो० येदेवा० आशाषदःस्थतेभ्योवोदेवादेवेभ्योनमः इतिसामवेदीयरुद्रामनेकघाटेवशब्दे नरुद्रस्योच्चारणाच्च॥ ग्रन्थान्तरे त्वंविश्वकर्त्तातवनास्तिकर्त्ता त्वंविश्वभर्त्तातवनास्तिभर्त्तात्वंविश्वहर्त्तातवनास्तिहर्त्तात्वंविश्वनाथस्तवनास्तिनाथः मैत्रेयीशाखायांश्रुतिः ॥१॥ तात्पर्यसंग्रहे त्वंब्राह्मणस्त्वदुपधावनकेवकार्यन्त्वद्व्राह्मणैस्तदितरेणभवंत्युपासराः त्वंब्रह्मणेनबरवर्णिनिषेवणेनसम्भाव्ययेनदिवसःप्रपदप्रमाणं ॥१॥ शिवोदेवोद्विजोब्रह्माचक्षियस्तुहरिस्मृतः इन्द्रोवैश्यस्तथैवान्ययक्षाद्याशूद्रजातयः इतिभारतवचनात् वातुलतन्त्रे ब्राह्मणःकथ्यतेरुद्रः क्षत्रियः कमलोदरःवैश्यः

कमलगर्भश्चशूद्रस्यगात्याकयासनः ॥ २ ॥ वीरतन्त्रे ब्राह्मणस्यशिवोदेवश्च क्षत्रियस्य जनार्द्दनः । वैश्यस्यभास्करोदेवः शूद्राणांसर्वदेवताः ॥ ३ ॥ पाराशरपुराणे ततो-विप्रत्वसम्बन्धश्शिवेनैवहियुज्यते । शङ्कराः सर्वदेवाश्चवृषलस्तुपुरन्दरः ॥४॥ पिता-महस्तुवैश्यश्चक्षत्रियः परमोहरिः । ब्राह्मणोभगवान्रुद्रः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥५॥ ब्रह्मभावोपिरुद्रस्यब्राह्मणत्वेहेतुजं । ब्राह्मणोवैसदालोकेब्राह्मणश्चोपधावति ॥ ६ ॥ महाब्राह्मणमीशानमुपधावेन्नचेतरं । सदासहान्तमात्मनम्बिरूपाक्ष-न्द्विजोत्तमं ॥ ७ ॥ वातुलतन्त्रे रुद्रएवसदासाक्षाद्ब्राह्मणोब्रह्मभावतः । ब्राह्मणः पठितस्तस्मात् ब्राह्मणोरुद्रएववै ॥ ८ ॥ प्रजानाम्पालकोराजाविष्णु सर्वस्यपालकः तेनराजाहरिस्तस्मात्सराजानद्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ राजाधिराजसर्वेषांत्र्यम्बकस्त्रि पुरांतकः । तस्यैवानुचराःसर्वेब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १० ॥ शिवःप्रधानतया-ऽवश्यः पूज्यः अन्यत्रापि । ब्रह्माविष्णुश्चिरुद्राः सर्वेदेवास्तथर्षयः एकस्यैवाथ रुद्रस्यभेदास्तेपरिकीर्तिताः ॥ १ ॥ यद्यद्भेदंसमाश्रित्ययजन्तेपरमेश्वरं । तत्तद्रूपं समास्थायप्रददातिफलंशिवः ॥ २ ॥ अतोऽपिशिवः प्रधानः इतरेचतद्भेदत्वा-त्पूज्याः अथपाराशरोपपुराणमाह पत्रपुष्पादिभिर्नित्यम्भक्त्यावेदोक्तवर्त्मना लिङ्ग न्दिने दिनेदेवंपूजयेच्छिवसंज्ञकम् तच्छेषत्वेनविष्णुंब्रह्माणंदेवतान्तरम् । अर्चयेद्भु-क्तिमुक्त्यर्थंनस्वतन्त्रतयाद्विज इति नस्वतोवैहरिः पूज्योनब्रह्मानपुरन्दरः कुतोऽ-न्यदेवताः सर्वाःब्रह्मस्फुर्त्यल्पतावलादितितोडलतन्त्रे एतदन्यन्नकर्त्तव्यंशक्तिदीक्षा परोयदि निषिद्धाचरणेदेविपापभाग्जायतेनरः ॥ १ ॥ न्यूनाधिकम्महेशानि यदिपूजादिकञ्चरेत् । सगुरुश्चापिशिष्यश्चशिवहत्यांप्रयच्छति ॥ २ ॥ न्यूनाधिक-म्महेशानियदिचेकाचरम्भवेत् । वर्णसंख्यामहेशानिब्रह्महत्याभविष्यति ॥ ३ ॥ अतएवसपापिष्ठःसत्यंसत्यंसुरेश्वरि । एवंपूजाविधायादौततश्चान्यम्प्रपूजयेत् ॥४॥ शिवलिङ्गपूजायांसर्वेषामधिकारउक्तःउत्पत्तितन्त्रे चतुःषष्टिपटले शैवोवावैष्णवो वापिसौरोवागणपोऽथवा शिवार्चनविहीनस्यकुतः सिद्धिर्भवेत्प्रिये ॥ १ ॥ अना-राध्यचमांदेविअर्चयेद्देवतान्तरम् । नगृह्णातिमहादेविशापन्दत्वाव्रजेत्पुरम् ॥२॥ पर्वताग्रसमन्देविमिष्टान्नादिक्रमेणहि । फलानिवहुधान्येवपुष्पाण्येवयथाविधिः ३ सुमेरुसदृशंनानाविधमन्नम्महेश्वरि । सूपादिकम्महेशानियदिस्यात्सागरोपमम् । यद्दत्तंपुष्पनैवेद्यंसर्वंविष्टामयंभवेत् ॥ ४ ॥ सर्वपूजासुदेवेशिलिङ्गपूजापरम्पदम् । लिङ्गपूजाविनादेविअन्यपूजाङ्करोतियः ॥ ५ ॥ विफलातस्यपूजास्यादन्तेनरकमा प्नुयात् । तस्माल्लिङ्गम्महेशानिप्रथमंपरिपूजयेत् ॥ ६ ॥ यद्राज्यंलिङ्गपूजायाःरहितं

सततंप्रिये । तद्राज्यम्पतितंमन्येविष्ठाभूमिसमंस्मृतम् ॥ ७॥ ब्रह्मविट्क्षत्रियो देवि यदिलिंगन्नपूजयेत् । तत्क्षणात्परमेशानित्रयश्चाण्डालतामीयुः ॥ ८ ॥ शूद्रश्चपरमेशानिसदाशूकरवद्भवेत् । शिवार्चनन्तुदेवेशियस्मिन्गेहेविवर्जितम् ॥९॥ विष्टागर्तसमन्देवितद्गृहंविद्धिपार्वति । अन्नंविष्टापयोमूत्रन्तस्मिन्देशेमनि पार्वति ॥१०॥ . शाक्तोवावैष्णवोवापिशैवोवापरमेश्वरि । आदौलिङ्गम्प्रपूज्याथ-विल्वपत्रैर्वरानने । ११॥ पश्चादन्यंमहेशानिलिङ्गम्प्रार्थ्यप्रपूजयेत् । अन्यथामूत्रव-त्सर्वंशिवपूजांविना प्रिये ॥१२॥ वीरमित्रोदयोद्धृतस्कन्दपुराणे शिवलिङ्गमधिकृत्य दर्शनात्स्पर्शनात्तस्यलभन्तेनिर्वृतिम्पराम् तस्यपुण्यम्मयावक्तुंसम्यग्युगशतैरपि ॥१॥ शक्यतेनैवविधिवत्तस्मात्संस्थापयेच्छिवम् । सर्वेषामेववर्णानांविभोर्दिव्यस्यपुःशुभम् ॥२॥ सुक्षतस्थानयोग्यंयोगिनांनिष्फलन्तथा । शिवलिंगंसमुत्सृज्ययोऽर्चयेदन्यदे-वताम् ॥ ३ ॥ सन्नृप सहदेशेनरौरवंनरकंव्रजेत् । ब्रह्मादयःसुरासर्वेराजानस्स-मर्षिकाः ॥ ४ ॥ मानवामुनयश्चैवसर्वेलिङ्गंयजन्तिच । विष्णुनारावणंहत्वाससैन्यं ब्रह्मणःसुतम् ॥ ५ ॥ स्थापितंस्वविधिवल्लिङ्गन्तीरेनदीपतेः । कृत्वापापसह-स्राणिहत्वाविप्रशतन्तथा ॥ ६ ॥ पापात्समाश्रितेलिङ्गेमुच्यतेनात्रसंशयः । सर्वे लिङ्गमयालोकाः सर्वेलिंगेप्रतिष्ठिताः ॥ ७ ॥ तस्मादभ्यर्चयेल्लिंगंयदीच्छेच्छाश्व तम्पदम् । सर्वंलिङ्गमयंलोकंसर्वेलिंगेप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनस्थापयेत् पूजयेच्चतत् । ब्रह्माहरिश्चभगवान्विश्वेदेवाउमाहरिः ॥ ९ ॥ लक्ष्मीर्धृति स्मृतिः प्रज्ञाविधिर्दुर्गाशचीतथा । रुद्राश्चवसवस्स्कन्दोविशाखः शाखएवच ॥ १० ॥ नैग-मेयश्चभगवान्लोकपालाग्रहास्तथा । सर्वेनन्दिपुरोगाश्चगणाः गणपतिःप्रभुः ॥११॥ पितरोमुनयः सर्वेकुवेराद्याश्चसत्तमाः आदित्यावसवःसाध्याअश्विनौचभिषग्वरौ ॥ १२ ॥ विश्वेदेवाःसमरुतःपशवःपक्षिणोमृगा.ब्रह्मादि स्थावरं यच्च सर्वेलिङ्गे प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन स्थापयेल्लिंङ्गमैश्वरम् । यत्नेन स्थापितं लिङ्गंपूजयेद्यदिमानवः ॥१४॥ अन्यत्रापि मूलेब्रह्मावसतिभगवान्मध्यभागेच । विष्णुरग्रेशम्भुःपशुपतिरजोरुद्रमूर्तिर्वरेण्यः ॥१५॥ तस्माल्लिंगंगुरुसुरतरुंस्थापयेत्पू-जयेद्वा । यस्मात्पूज्योगणपतिरसौदेवमुख्यः समस्तैः ॥१६। गंधैःपुष्पैःसुगंधैर्बहु-तरवलिभिःस्तोत्रमन्त्रोपचारैः । नित्यञ्चाप्यर्चयन्तित्रिदशवरंलिङ्गमूर्तिंमहेशम् ॥१७॥ गर्भाधानादिनाशास्त्वथभयरहितदेवगन्धर्वमुख्यैः । सिद्धैर्वैद्याश्चपूजराः-गणवरनमितास्तेभजन्त्यप्रमेयाः ॥ १८ ॥ तस्माद्भक्त्योपचारेणस्थापयेत्परमेश्वरम् । पूजयेच्च विशेषेणलिंगंसर्वार्थसिद्धये ॥१९॥ तथा । तस्मात्सदापूजनीयोलिङ्गमूर्त्ति-

महेश्वरो यावत्पूजा तु रेश स्तावद्देहक्षितिर्दिवि ॥ २० ॥ पूजनीयःशिवोनित्यमतः श्रद्धासमन्विते. सर्वेलिंगार्च्चनादेवदेवादैत्याश्चदानवाः ॥ २२ ॥ यक्षाविद्याधराः सिद्धाः राक्षसाः पिशिताशिनः । अर्चयित्वालिङ्गमूर्तिन्तेसिद्धानात्रसंशयः ॥२३॥ तस्माल्लिङ्गं यजेन्नित्यंयेनकेनापिभोःसुराः । तथायेवांछंतिमहाभोगान्राज्यञ्चत्रि दशालयन्तेऽर्चयन्तुसदाकालंलिंगरूपमहेश्वरम् ॥ २४ ॥ छित्वाभित्वाचभूतानि हत्वासर्वमिदंजगत् । यजेदेकंविरूपाक्षंनसपापैःप्रलिप्यते ॥२५॥ एतानिवीर मित्रोदयोद्धृतानि तोडलतंत्रे शैववैष्णवदौर्गार्कगाणपत्येन्द्रसम्भवाः । आदौशिवं-पूजयित्वापश्चादन्यंप्रपूजयेत् ॥ १ ॥ आदौलिंगंपूजयित्वायदिचान्यस्यपूजयेत् । तत्फलंकोटिगुणितंसत्यंसत्यंनसंशयः ॥ २ ॥ अन्यदेवंपूजयित्वाशिवंपश्चाद्यजे-द्यदि । तस्य पूजाफलंसर्वंभुजतेयक्षराक्षसैरिति ॥ ३ ॥ अथसर्वपूजासुदेवेशि लिङ्गपूजापरम्पदम् । तस्माल्लिङ्गंमहेशानिप्रथमंपरिपूजयेत् ॥ ८ ॥ पश्चादन्यं महेशानिशिवमाराध्यं प्रपूजयेत् । अन्यथाभूत्वत्सर्वंशिवपूजांविनाप्रिये ॥ २ ॥ इतिस्कांदः विप्रस्यतुसदैवाहं शुचेरप्यशुचेरपि गृह्णन्वलिंप्रद्ध्यामिप्रियाणामिव दर्शनात शूद्रकर्म्माणियोनित्यंस्त्रीयानिकुरुतेप्रिये तस्याहमर्चांगृह्णामिचन्द्रखण्डविभूषितेइतिस्कांदः अथलिंगार्चनतंत्रे प्रथमपटले पूजयन्तः शिवंलिंगञ्चत्वारो ब्राह्मणादयः शाक्तोवावैष्णवो वापिशैवोवापरमेश्वरि ॥ १ ॥ उत्पत्तितंत्रे शाक्तो वावैष्णवोवापिशैवोवागणपोऽथवा । शिवार्चनविहीनस्यकुतस्सिद्धिर्भवेत्प्रिये ॥१॥ अनाराध्यचमांदेवियोऽर्चयेद्देवतान्तरम् । नगृह्णातिमहादेविशापंदत्वाव्रजेत्-पुरम् ॥ १ ॥ शिवार्चनविहीनोयश्पूजयेद्देवतान्तरं । विशेषतः कलियुगेसनरः पापभाग्भवेत् ॥ १ ॥ लिंगार्चनतन्त्रे सर्ववेदेषुतंत्रेषुपुराणेषुवरानने । गीयते पर-मेशानिप्रथमंलिङ्गपूजनम् ॥ १ ॥ शिवपूजांविनादेविनान्यपूजाकदाचन । शिव पूजांविनादेवि अन्यपूजांकरोतियः ॥ १ ॥ अन्नम्विष्टामयंतस्यपयोमूत्रस्वरा-मनेसएवरसनाहीनः कुंभीरोजायतेप्रिये स्कांदे । विष्णुसंज्ञात्वसंख्याताश्च संख्यातापितामहाः असंख्याताश्सुरेन्द्राश्चनित्यएकोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ व्यासविष्णु संवादे विष्णुरुवाच जगामशरणंदेवंसर्वभावेनशंकरं । संत्यज्यत्वणवत्सर्वंब्रह्म विष्ण्वादिकन्तथा ॥ १२ ॥ योमहादेवमन्येनहीनदेवेनदुर्मतिः । सक्तस्साधारणंब्रूते-सोऽन्त्यजानामन्त्यजोन्त्यजः ॥ १३ ॥ कर्त्ताहंसर्वजगतांममकर्त्तामहेश्वरः । तस्य देवाधिदेवस्यकर्त्ताकोपिनविद्यते ॥ १४ ॥ महेश्वरयदासक्तं स्यातभवतिसम्पदां । यथाह्वतम्द्धीचेनविष्णोर्वक्षश्रीयः पदं ॥ १५ ॥ अतमेवचनंव्यासश्रुणुमूर्खयथा-

र्यंवत्। यच्छ्रुत्वासर्वभूतानांशिवएवभवेन्मतिः ॥ १६ ॥ किमत्रबहुनोक्तेनशि
वमभ्यर्चयेच्छिवशङ्करं। शिवादन्यंपरित्यज्यदेवतंभुक्तिमुक्तये ॥ १७ ॥ सौरसं
हितायां सर्वान्देवान्परित्यज्ययजेत्पश्चात्सभीश्वरं। सर्वांश्मन्त्रान्परित्यज्यजपे-
त्पञ्चाक्षरींपरां॥ १८ ॥ शिवमेकंपरित्यज्ययोन्यदेवमुपासते। तृषितोजान्हवी-
तीरे कूपंखनतिदुर्मतिः ॥ १९ ॥ पराशरपुराणे। विहायसाम्बमीशानंयजंते
देवतान्तरं। तेमहाघोरसंसारेपतन्तिपरिमोहिताः ॥ २० ॥ शिवधर्मे माहेश्वर
ज्ञातंसर्वंत्रैलोक्यंसचराचरं। तेक्षतघ्नाभविष्यन्तियेनभक्तामहेश्वरे॥ २१ ॥ अथ
शिवरहस्ये दधीचिवचनं शिवलिंगंसमुत्सृज्यपूजयेत्वान्यदेवताम् सनरस्सहदेवेन
रौरवंनरकंव्रजेत् इतिमहाभागवतोपपुराणवचनम् शाक्तोवावैष्णवःशैवः पूर्वंसंपूज्य
शंकरम् पश्चात्प्रपूजयेत्स्वेष्टान्देवतांभक्तिभावतः आदौलिंगंप्रपूज्यैतविल्वपत्रैश्च-
नारद अन्यथामूत्रवत्सर्वंशिवपूजांविनाकृतम्॥ २ ॥ व्यतिक्रमन्तुयोमोहा-
द्दर्पाद्वापिसमाचरेत्। सोऽधः पततिपापात्मातस्यार्चानिष्फलाभवेत्॥ ३ ॥

## इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे द्वितीयस्तरङ्गः।



## अथ तृतीयस्तरंगः।

तत्रशिवपूजनस्यनित्यत्वमाह किंदेवैःकिंतत: शास्त्रैः किंतपोभिरथव्रतै
स्संपूज्यतांशिवोनित्यमुपदेशोऽयमुत्तमः इतिस्कान्दे अथ व्यापारान्सकलान्
त्यक्त्वापूजयध्वंसदाशिवम् शिवधर्म्मपरोभूत्वायावज्जीवं प्रतिज्ञया ॥ २ ॥ अर्च-
येत्तंमहादेवमापन्नोऽपिसदाबुधः पत्रपुष्पादिभिर्भक्त्याचिरंवेदोक्तवर्त्मना ॥ ३ ॥
लिंगंदिनेदिनेदेवंपूजयेदादरेण तु इति लैंगे। शिवरहस्ये। शिवलिङ्गमन-
भ्यर्च्ययोभुंक्ते मोहसङ्गत: सयातिनरकंघोरंयावदाचन्द्रतारकम्॥ १ ॥ लिङ्गा-
र्चनविहीनस्यसमस्तानिष्फलाक्रिया। ततः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं लिङ्गपूजाविधीयते
॥ २ ॥ नित्यकर्म्मसमृद्ध्यर्थं नित्यमेवश्रुतंश्रुतौ। तस्माल्लिंगार्चनंकार्य्यंयत्नेन
प्रत्यहं द्विजैः॥ ३ ॥ इति शिवार्चनस्यनित्यत्त्वम् अथानर्चनेप्रत्यवायः शिव-
लिङ्गार्चनंकार्य्यं त्यक्त्वाकार्य्यमशेषतः। यदित्यजतिमोहेनप्रत्यवैतिनसंशयः ॥४॥

इति । अथ सनत्कुमारसंहितावचनन्तु अनभ्यर्च्च्य महादेवं योऽश्नाति फलमम्बु वा । सप्राप्नोति मुहुर्जन्म क्षुद्र चाण्डालयोनिषु ॥ १ ॥ अथ प्राज्ञम् योन पूजयती लिङ्ग ब्रह्मादीनां प्रकाशकम् । शास्त्रवित् सर्व्ववेत्तापि चतुर्व्वेदीपशुस्तु सः ॥ २ ॥ शिव-पूजार्थमालस्यं यः करिष्यति मूढ़धीः सोश्नाचौरं विहायैवसूत्रं पिवति सर्व्वदा ॥३॥ इति तथैशानसंहितायाम् यस्य नास्ति गृहे नित्यं शिवलिङ्गार्चनं शिवे तद्गृहं च गिरि चाण्डालगृहमेव न संशयः शिवलिङ्गं नैयस्यास्ति गृहे विल्वदलार्च्चितम् । तद्-गृहं दूरतस्त्याज्यं चाण्डालागारवद्गृहम् ॥ १ ॥ शिवलिङ्गं न यस्यास्ति गृहे विल्वदलार्चितम् । तद्गृहाज्जलमप्यल्पं न पेयं सर्व्वथा द्विजैः ॥ २ ॥ येन नाभ्य-र्च्चितेलिङ्गं मोहाद्भ्रान्त्यापि सर्व्वथा । नसंवदेद्भ्रमेनापि तेन साद्धं नसंवसेत् ॥३॥ शिवलिङ्गार्च्चनं यस्तु न करिष्यति दुर्म्मतिः । तत्स्पर्शे भानुमालोक्य सचैलस्नानमा-चरेत् ॥ ४ ॥ शिवलिङ्गार्च्चनं यस्य नास्ति साधारणामतिः । चाण्डालस्स तु वि-ज्ञेयस्सर्व्वधर्म्मवहिष्कृतः ॥ ५ ॥ शिवलिङ्गार्च्चनं नित्यं यस्त्यजेदविवेकतः । सयाति नरकं घोरं यावदाचन्द्र तारकम् ॥ ६ ॥ अत्यन्तदुर्लभं जन्मकलौ प्राप्यापि-मानुषम् । यदि नाराधयेच्छम्भुन्तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ७ ॥ नपेयं पानमप्यादौ-शामनभ्यर्च्च्य सर्व्वथा । पिवेद्यदि प्रमादेन रेलपायी भविष्यति ॥ ८ ॥ शिवलिङ्गा-र्च्चनं त्यक्त्वा भोक्तुमिच्छति यो नरः । तमानीयायसैः पिण्डैः सन्तापयति भास्करिः ॥ ९ ॥ येन न क्रियते देवि शिवलिङ्गस्य पूजनम् । तमानीयाति यत्नेन कण्टकैः-स्ताड़यास्यहम् ॥१०॥ इति लिङ्गे पाद्ममाह लिङ्गपूजां विहायैव यदि भुंक्ते भ्रमाद्-द्विजस्तदा तदन्नं निष्कास्य चरेच्चान्द्रायणाष्टकम् ॥ १ ॥ लिङ्गार्च्चनं विहायैव भुक्ता-स्तैर्दुरात्मभिः । पश्यैतान् कृमिकुण्डस्थान् कृमिभक्षणतत्परान् ॥ २ ॥ इति प्रश्नोत्तरखण्डेऽपि वरं प्राणपरित्यागः छेदनं शिरसोऽपि वा नत्वनभ्यर्च्च्य भुंजीत-भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ १ ॥ इति वायवीयसंहितायञ्च असंपूज्य न भुंजीत शिव-माप्राणसङ्करात् यदि पापेन भुञ्जीत स्वैरन्तस्य न निष्कृतिः ॥ १ ॥ प्रमादेन तु भुक्तं चेत्तदुद्गीर्य्य प्रयत्नतः । स्नात्वा द्विगुणमभ्यर्च्च्य देवं देवीमुपोष्य च ॥ २ ॥ शिवस्या-युतमभ्यस्य ब्रह्मचर्य्यपुरस्सरम् ॐ नमः शिवायेति पञ्चाक्षरमन्त्रमिति शेषः परेद्युश्-शक्तितो दत्वा सुवर्णाद्यं शिवाय च ॥ ३ ॥ शिवभक्तायवा कृत्वा महापूजां शुचिर्भवेत् इति कूर्म्मेऽपि नार्च्चयन्ति च ये रुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम् । तेषां स्नानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च योमोहादथवा लोभादकृत्वा शिवपूजनम् । भुंक्ते स याति नरकं चान्ते सूकरतां व्रजेत् । इति नित्यत्वादनभ्यर्च्चने प्रत्यवायप्रायश्चित्तार्थं बृहज्जावलीया

श्रुतयः तदनभ्यर्च्यनाश्नीयात्फलमन्नमन्यद्वायदश्नीयात् तत्तु रेतोभक्षीभवेत् नापः पिवेत् पूयपोभवेत् प्रमादेनैकदाऽनभ्यर्च्यमांभुक्त्वाभोजयित्वावाकेशान्वाप-यित्वागव्यान्पञ्चसंसृष्टोपोष्यजलेरुद्रस्थानेवाजपेत्त्रिवारंशतरुद्रीयमादित्यंपश्य-न्नभिध्यायन्स्वकृतंकर्मततोरौद्रैरेवमन्त्रैः कुर्य्यान्माज्र्जनन्ततोभोजयित्वान्नाह्म-णान्पूतोभवति अन्यथापरेतोभवतियातनामश्नुते इति पाराशरोपपुराणमाह राजाधिराजः सर्व्वेषान्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः तस्यैवानुचराः सर्व्वेब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः इति ॥ १ ॥ मुग्धेन्दुकरुणातरणिम्बिहायखद्योतवद्विविधहरीन्द्रमुखान् सुरांश्च सेवन्तिगाढ़तमसैकविनाशहेतूम् मूढ़ाहितेदृढ़तराम्हड़भक्तिहीनाः ॥१॥ इति शिवरहस्यम् अथस्कान्देकालिकाखण्डे व्यासम्प्रतिशिववचनम् पश्यमल्लिङ्ग-मुत्सृष्टं सर्व्वेषांपूज्यमेवहि विष्णुब्रह्मादिकान्देवान् पश्यमल्लिङ्गपूजकान् ॥ १ ॥ मामन्यसाम्यमापश्यनमामन्यसमोऽर्च्चय। मल्लिङ्गेनहरिब्रह्मसूर्य्यदेवगजाननान्। मापूजयैकपीठस्थान्द्रोहएषममस्मृतः ॥ २ ॥ मानिन्दयस्वमद्भक्तान्भस्मरुद्राक्ष एषच मदुत्कर्षोहिसर्व्वेषुपुराणेषुप्रकीर्त्तय ॥ ३ ॥ इति अथ शिवरहस्यतृती-यांशमाह नान्यदेवैः समंशम्भुम्पूजयेद्विश्वनायकम्पशवोब्रह्मविष्ण्वाद्यास्तैस्समं पतिपूजनम् ॥ १ ॥ नकार्य्यंसर्व्वथाशैवैर्नप्रसादकरंहितत् सहान्नानार्च्चनंशम्भो र्नैवकुर्य्यात्सुरान्तरैः ॥ २ ॥ नरकावहमेतत्स्यान्नात्रकार्याविचारणा । तस्मा-त्संपूजयेत्सांगंलिंगमेवपिनाकिनम् ॥ ३ ॥ शिवानर्च्चनप्रत्यवायप्रतिपादिका-माख्यायिकामाहशिवरहस्येएव आर्य्यावर्त्तेतुवैकश्चिद्ब्राह्मणोवेदवित्तमः सर्व्व-सौभाग्यसम्पन्नः सर्व्वशास्त्रविशारदः ॥ १ ॥ कलत्रपुत्रपौत्रादिसौख्यवृद्धियुतस्-सदा नित्यंशिवार्चन रतः स्नातश्चः सर्वसंगतः ॥ २ ॥ कदाचित्क्षुधितः श्रान्तो-विस्मृत्यशिवपूजनम् । चकारभोजनमतः प्रदोषेबालवद्वलिः ॥ ३ ॥ ततः सदैवयोगेनपञ्चत्वमगमद्द्विजः ततोयमभटैर्नीतः शूलैःसन्ताड़ितस्तदा तानुवा-चयमःप्रोत्यातदाकोऽयमितिस्फुटम् ॥ ५ ॥ यमदूताऊचुः यमाऽयंब्राह्मणः पूर्व्वम्बिहायशिवपूजनम् । उपवासैकदिनंमत्तः शङ्करस्मरणैर्विना ॥ ६ ॥ अनेनभुक्तंमत्तेनश्रान्तेनक्षुधितेनच । शिवायनार्पितंदिव्यमन्नंस्वप्रियमादरात् ॥ ७ ॥ कियत्पर्य्यन्तमेतस्यनरकेवसतिर्मता । कीदृशेनरकेयोज्योवदसर्व्वमशे-षतः ॥ ८ ॥ यम उवाच । शिवलिङ्गार्च्चनंनित्यंनित्यंत्यक्तमनेनकिम् । कदा-चिदुतवात्यक्तंमह्यन्तज्ज्ञापयन्तुवः ॥ ९ ॥ यमदूता ऊचुः । शिवलिङ्गा-र्च्चनंनित्यंकृत्वानेनस्थितंपुरा । कदाचिदेकदात्यक्तं क्षुधितेनभ्रशंयम ॥ १० ॥

इतितद्वचनं श्रुत्वाविचार्य्यबहुधायमः । धर्म्मशास्त्राविरोधेनवचःप्राहविचक्षणः ॥ ११ ॥ पञ्चवत्सरपर्य्यन्तंतस्मिँल्लेनिरन्तरम् । तिष्ठत्वयंततोभूमौस्वयमेवपतिष्यति ॥ १२ ॥ इतिपूर्व्वंयमेनोक्तंतदातदभवत्तथा । ततोयत्नेनकर्त्तव्यालिंगपूजानिरन्तरं ॥ १३ ॥ स्नानंसन्ध्यालिंगपूजाहोमश्चपितृतर्पणम् । स्वाध्यायश्चेतिषड्विप्रैःकर्त्तव्यंनियमेनहि ॥ १४ ॥ नन्वेतावद्ग्रन्थेनशिवपूजनस्यनित्यत्वेऽपितन्निर्म्माल्यग्रहणस्य नित्यत्वानवगमइतिचेन्न प्रसादग्रहणस्यपूजाङ्गत्वेनतद्ग्रहणाभावेपूजायाविकलांगत्वापत्तेः तदुक्तं स्कान्दे दीपान्तउपचारःस्यान्नैवेद्यान्तश्चपूजनम् तस्मान्नैवेद्यहीनश्चेत्पूजा लोपोभवेत्सदा ॥१॥ ततःप्रसादभोगान्तं नैवेद्यार्पणमुच्यते प्रसादादनहोनश्चेदर्पितंचापिनिष्फलम् ॥ २ ॥ व्रतोपवासनियमैर्येनकेनापिहेतुना । पूजाप्रसादलोपश्चेन्नासावाप्नोति तत्फलम् ॥ ३ ॥ उपवाससहस्राणिप्राजापत्यायुतानि च शिवप्रसादसिक्थस्यकोट्यंशेनापिनोसमम् ॥ ४ ॥

## इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे तृतीयस्तरंगः ।

---

## अथ चतुर्थस्तरंगः ।

कर्मकाण्डेपि आदिपूज्यत्वमाह आवोराजानमध्वरस्यरुद्राम् इतिसामवेदीयरुद्राम् । एवंगाधपतिमेधपति ऋग्वेदेऽपियदग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्यन्ति यदग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्यन्तिभागधेयेनैवतद्रुद ए समर्धयतिसकृत्सकृदवद्यति सकृदिवहिरुद्रउत्तरार्धादवद्यत्येषावैरुद्रस्य ॥ ५ ॥ दिक्स्वायामेवदिशिरुद्रं निरवदयत्ते हिरभिधारयति चतुरवत्तस्यासैरपशवोवैपूर्वा आहुतय एषरुद्रोयदग्निर्यत्पूर्वा आहुतीरभिजुहुयाद्रुद्रायपशूनपिदध्यादपशुर्यजमानः स्यादति हायपूर्वा आहुतीर्जुहोतिपशूनांगोपीथाय ॥६॥ प्रतःस्पर्शयतिभूतानामग्नि ए रुद्रस्यसमति ए मव ॥६॥ इतितैत्तरीयसंहितायाम् द्वि. का. ष. प्र. श. अ. अथवात्सायनभाष्यम् अथस्विष्टकृतंविधत्ते अग्निरमुष्मिन्लोकआसीद्यमोऽस्मिन्तेदेवाअब्रुवन्नेतमौविपर्यूहामेत्यन्नाद्येनदेवा अग्निमुपामन्त्रयन्तराजोनपित-

रीयम तस्मादग्निर्देवानामन्नादोयमः पितॄणां ॐ राजायएवं वेदप्रराज्य-
मन्नायमाप्नोतितस्मादएतद्भागधेयंप्रायच्छन्यदग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्यन्ति यदग्नये
स्विष्टकृतेऽवद्यतिभागधेयेनैवतद्रुद्रं समर्धयतिइति पुराकदाचिदग्निःस्वर्गेस्थितः-
यमस्तुभूर्लोकेतदामनुष्याणांपाकादिनिष्पादनाभावात् पितॄणां राजाभावा-
च्चाग्नियमयोर्विपरिवर्त्तनम् कर्त्तुमिच्छावन्तोदेवा आगच्छतेति परस्पर-
माह्वयान्नाद्येनोत्कोचेनतमग्निंभूर्लोकेसमागन्तुंउपच्छिन्दितवन्त.पितरस्तुराजेर-
नोत्कोचेनयमंस्वर्गेलोकेगन्तुं प्रलोभितवन्तः यस्मादेवन्तस्माद्देवानां मध्येऽग्नि-
रन्नादोवह्निन्नभक्षकोऽभूत् यमश्चपितॄणांराजाभूत् यएतदुभयंवेदसप्रकृष्टराजर-
मन्नाद्यञ्चप्राप्नोतिततोदेवास्तस्मादग्नयेभागन्दत्तवन्तः कोऽसौभागः, यजमाना
अग्नयेस्विष्टकृतेयद्धविरवद्यन्तिसोऽस्यभागस्तस्मादग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्येत् तथा
सतितदग्नयेदेवैःदत्तेनभागेनरुद्रं क्रूरमग्निंसमृद्धं करोति यदुक्तं सूत्रकारेण-
सर्व्वेषांहविषां उत्तरार्धात्सकृत्सकृदवद्यतिस्विष्टकृतेइतितदेतद्विधत्ते सकृत्-
सकृदवद्यतिसकृदिवह्विरुद्रउत्तरार्धादवद्यत्येषावैरुद्रस्यदिक्स्वायामेवदिशिरुद्रं-
निरवदयत्ते इतिएकएवरुद्रइतिश्रुत्यन्तरात्सकृदवदानसदृशोरुद्रःयेयमैशा-
नीसाचैषारुद्रस्यदिक्साचोत्तरभागवर्त्तिनो तस्मादुत्तरार्द्धावदानेन स्वकीया-
मेवदिशिरुद्रं निश्शेषेणतोषयति इतरहविषामिवसकृदभिघारणंप्राप्त- मप-
वदति द्विरभिघारयतिचतुरवत्तस्याप्त्यै इतिउपस्तरणमेकंहविरदानं द्वितीयं
॥ २ ॥ ततोद्विरभिघारणेन चतुरवत्तसम्पत्तितदुक्तं सूत्रकारेण उत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे
जुहोत्यसंसृष्टामितराभिराहुतिभिः इति तदेतद्विधत्ते पशवोवै पूर्व्वाआहुतय
एषरुद्रोयदग्निर्यत्पूर्व्वा आहुतीरभिजुहुयाद्रुद्रायपशूनपिदध्यादपशुर्यजमान-
स्स्यादतिहायपूर्व्वा आहुतिर्जुहोतिपशूनांगोपीथायइतिपूर्व्वाः पुरोडाशाद्याहु-
तयःपशुस्वरूपाः पश्वादिष्टार्थप्रापकत्वात् अयन्त्वग्निष्क्रूरत्वाद्रुद्रः यदिपूर्व्वा
आहुतीरभिरसम्बन्ध्यतासामुपरिजुहुयात् तदापशूनांसंरक्षणायभवति अत्र
मीमांसाद्वितीयाध्यायस्यद्वितीय पादेचिन्तितम् उपांशुयाजइत्येषोऽनुवादोऽथवा-
थवाविधिः विष्ण्वादिवाक्येविस्पष्टविधेरस्यानुवादताजामित्वोक्तिरन्तरालउपां-
शुगुणकेविधौ सत्यर्थवादोविष्ण्वादिस्तद्रूपंभ्रौवमन्त्वतः इदमाम्नायते जामि-
वाएतदयज्ञस्यक्रियतेयदन्वञ्चौपुरोडाशावुपांशुयाजमन्तरायजतिइति विष्णु-
रुपांशुयष्टव्योऽजामित्वाय प्रजापतिरुपांशुयष्टव्योऽजामित्वायाग्नीषोमावुपांशु-
यष्टव्यावजामित्वायइति तत्रविष्ण्वादिवाक्येषुविहितस्ययागमन्त्रसमुदायस्यानु-

वादइतिचेत् न आग्नेयाग्नीषोमीयपुरोडाशद्वय नैरन्तर्य्यकृतस्यजामित्वदोषस्य वाक्योपक्रमउपन्यासात्पुरोडाशयोरन्तरालेकिञ्चिद्विधित्सितम् नह्यन्तराल गुणविशिष्टंविधेयंविष्ण्वादिवाक्येषुप्रतीयते पूर्ववाक्ये तुनप्रतीयत इति विधायकंतद्वाक्यम् नचात्रयजतीतिवर्त्तमाननिर्द्देशःशङ्कनोयःपञ्चमलकारस्या श्रयणात् अन्तरालकालेउपांशुत्वगुणस्यापिविशेषणत्वात् तद्विशिष्टकर्म्मण उपांशुयाजनामकत्वम्सत्वेयंगुणद्वयविशिष्टकर्म्मख्याद्ये न वाक्येनविहितंविष्ण्वादि- वाक्यमर्थवादस्स्यात् नचाविहितयागानुवादेनदेवताविधिश्शङ्कनोयस्समाधा- तव्येनजामित्वदोषेणोपक्रमादजामित्वेन समाधानेनोपसंहाराच्च जामिवाइत्या- देरजामित्वायेत्यन्तस्यसर्व्वस्यमहावाक्यस्य एकवाक्यत्वप्रतीतेः नखल्वेकस्मिन् वाक्येविधेयबाहुल्यंसम्भवति न चात्रविधित्सितस्योपांशुयाजस्यद्रव्याभावः ध्रौव्यस्यैवद्रव्यत्वात् नापिदेवताया असम्भवः नानाशाखासूपांशुयाजक्रमेपठिते वैष्णवप्राजापत्याग्नीषोमीयमन्त्रैर्व्विकल्पेनदेवतात्रयस्यप्रतीयमानत्वात् तस्माद् यजतीत्येतद्विधायकं दशमाध्यायस्यान्तिमपादेचिन्तितम् उपांशुयाजेयत्- किञ्चिद्द्रव्यमाज्यमुताग्रिमः विशेषानुक्तितोमैवन्ध्रौवाज्यस्यविधानतः उपांशु- याजमन्तरा यजतीत्यत्रद्रव्यविशेषस्यानुवादत्वादेच्छिकन्द्रव्यमितिचेत् न आज्य- स्यश्रुतत्वात् । तावब्रूतामग्नीषोमावाज्यस्यैवनावुपांशुपौर्णमास्यांयजन्निति श्रुत नचैवमप्यनियतंयत्किञ्चिदाज्यंस्यादितिशङ्कनोयन्ध्रौवस्यविहितत्वात् सर्व्वस्मैवा एतदयज्ञायगृह्यते यद्ध्रुवायामाज्यमितिविहितं विध्यन्तरेणेऽपिध्रौवाज्यस्य सप्रयोजनत्वायविपरिणामः कर्त्तव्यः तत्रैवान्यच्चिन्तितम् तत्रयःकोऽपिदेवस्स्यात् तान्त्रिकोवाग्निषोमोभवेत् अविशेषात्प्रकरणात्तान्त्रिकोऽत्रनियम्यते तत्रो- पांशुयाजेयाकाचिद्देवतास्यात् विष्णुरुपांशुयष्टव्यइत्यादेरर्थवादत्वेनाविधायक- त्वात् अन्यस्य च देवताविधेरदर्शनात् यागेनदेवतामात्रस्यैवकल्पनाच्च मैवं उपांशुयाजस्यदर्शपूर्णमासप्रकरणेपठितत्वाद्दर्शपूर्णमासतन्त्रमध्यपठितएवंकश्चि- देवः प्रत्यासत्त्योपांशुयाजेनियम्यते तत्रैवान्यच्चिन्तितं कोऽपिदेवस्तान्त्रिकेषु नियतोवातदापिकिं प्राजापतिरुताग्निःस्यादग्निषोमावुतापिवा विष्णुर्यद्वाग्नि- मुत्सृज्यत्रिकल्पंदेवत्रयं कोऽप्यत्रानियमान्मैवमुपांशुत्वादियन्त्रणात् प्रजापति- रुपांशुत्वात्तूष्णींभावयोगतः अग्नेर्मुख्यत्वतोमैवन्तद्याज्यादेरपाठतः अग्नीषो- मौतदुक्तेर्नोतत्रकालविधानतः विष्णुर्याज्यादितस्तत्रप्राजापत्योक्तिवाधनात् याज्याक्तेविध्यतःप्राप्ताःविकल्प्यन्तेऽत्रदेवताः विधिशेषार्थवादोऽपिप्राशंनयमनू-

ध्यते तान्त्रिकदेवेषुनियामकाभावाद्यःकोऽपीतिचेत्नवक्ष्यमाणानामुपांशुत्वादी-नांनियामकत्वात् यत्किञ्चित्प्राजापत्यंयज्ञे क्रियते उपांशु तत्क्रियतइतिवच-नादुपांशुत्वधर्मसाम्येनप्रजापतिर्देवतेतिचेत् न प्रजापतिंमनसाध्यायेदितिविधि-स्तूष्णीम्भावस्यैवप्रजापतिधर्मत्वात्। प्रथमयागदेवतेनमुख्यत्वादग्निर्देवतेतिचेत् न तदुपांशुयाजक्रमेऽग्निविषययाज्यादपाठात् तावब्रूतामित्यादि पूर्वोदाहृत वाक्यादग्नीषोमौदेवतेतिचेत् न तस्यवाक्यस्यपौर्णमासीकालविधायकत्वात् कस्याञ्चिच्छाखायामुपांशुयाजक्रमेवैष्णवयाज्यापुरोऽनुवाक्ययोः पाठात्विष्णुदेव-तेतिचेत् न तथासतिशाखान्तरप्रोक्तयोःप्राजापत्ययाज्यापुरोऽनुवाक्ययोर्वैध: प्रसज्येत तस्मान्नानाशाखासुपठिताभ्यां विष्णुप्राजापत्यग्नीषोमविषयाभ्यां याज्यापुरोऽनुवाक्याभ्यां प्राप्तास्तिस्रोदेवताविकल्प्यन्ते अतएवोपांशुयाजविधि-शेषेऽर्थवादेऽपितदेव प्राप्तदेवतात्रयमनूद्यतेविष्णुरुपांशुयष्टव्योऽजामित्वायप्रजा-पतिरुपांशुयष्टव्योऽजामित्वायाग्नीषोमावुपांशुयष्टव्यावजामित्वायेति तस्माद्-देवताविकल्पः सिद्धान्तःतत्रैवान्यच्चिन्तितम् दर्शादिर्वातस्यकालोदर्शएवान्य-एवद्विपुरोडाशसान्निध्यादाद्योदर्शोऽग्नितोऽग्रतः विष्णुयाज्योक्तितोयुक्तो मध्यमः पूर्णिमाविधिः सएवकालोयाज्याया उत्कर्ष पूर्णिमादिने जामिवा-एतदयज्ञस्यक्रियतेयदन्वञ्चौपुरोडाशावुपांशुयाजमन्तरायजत्यजामित्वाय इति पुरोडाशयोर्मध्येऽसौयागोविहितः पुरोडाशौचपौर्णमास्यामाग्नेयाग्नीषोमीयौ अमावास्यायामाग्नेयैन्द्राग्नौततोद्विपुरोडाशसन्निधिः समानत्वात्दर्शे पौर्णिमा-चेत्युभयमपि तस्योपांशुयाजस्यकालइत्याद्यःपक्षः अमावास्यायांप्रकृत्ययाज्या-काण्डआग्नेययाज्यायाऊर्द्ध्वं ऐन्द्राग्नेया अधस्तात्वैष्णवयाज्यायाः पाठात्प्रक-रणस्यसन्निधितःप्रबलत्वात्दर्शएवकाल इति मध्यमःपक्षःतावब्रूतावग्नीषोमावा-ज्यस्यैवतावुपांशुपौर्णमास्यां यजन्निति पौर्णमास्यास्तत्कालत्वेनविधानाद्वाचनि-कस्यचविधिःप्रबलत्वात् पौर्णमास्येवकालः तथासतिवैष्णवयाज्याप्रकरणादुत्-कृष्यताम् तत्रैवान्यच्चिन्तितम् पुरोडाशैकयुक्तायांपौर्णमास्यामयंनहि स्याद्वा-नास्त्यन्तरेत्युक्तेर्लक्ष्येकालेऽस्तिशङ्कवत् सोमात्प्रागग्नीषोमीयपुरोडाशरहिता केवलाग्नेयपुरोडाशयुक्तापौर्णमासीभवति ससोमेनेष्ट्वाऽग्नीषोमीयोभवतीति वाक्येनाग्नीषोमयोःसोमयागोत्तरकालीनत्वावगमात् तस्मादुपांशुयाजोनास्ति कुतः उपांशुयाजमन्तरायजतीतिपुरोडाशद्वयान्तरालवत्वस्यगुणत्वेन विधानात् इति प्राप्ते ब्रूमः किंयागेपुरोडाशान्तरालकालस्यविशेषणभूतावुपेतलक्षणो-

भूतो भावः अन्तरालवत् तद्विशेषणयोरपुरापांशुयाजगुणत्वप्रसङ्गात् नचैतदुक्तम् उपांशुयाजवत्तयोरपिस्वान्तर्गतफलान्वयात् द्वितीयेतुघण्टान्यायेनोपलक्षकस्याग्नोषोमीयपुरोडाशस्याभावेऽप्युपलक्षितेकालेयागोऽस्ति यथाघण्टाध्वनिवेलायांराजसेवार्थंप्रतिदिनमागन्तव्यमितुक्तेकस्मिंश्चिद्दिनेघण्टाधमतः पुरुषस्याभावेनोपलक्षकस्यध्वनेरभावेऽपि उपलक्षितेस्मिन्कालेसेवकःसमागच्छति तथात्रापि द्रष्टव्यम्यदि तत्कालोपलक्षकमन्यदेव व्यापारान्तरं सूर्य्यगत्यादिकंसम्भाव्येत तत्रापिसम्भवतिरवाग्नेयपुरोडाशः उपलक्षकःतस्मादेकपुरोडाशायामपिपौर्णमास्यामुपांशुयाजः । तृतीयाध्यायस्यपञ्चमपादेचिन्तितम् । उपांशुयाजद्रव्येणशेषकार्य्यमस्त्यथवा भवेद्द्विर्भ्यः सर्व्वभ्यइत्युक्त्याप्रापितत्वतः उक्ताज्यद्रव्यशेषस्तुभाव्युपस्तरणादिकृत् अतोनप्रतिपत्त्यर्हशेषकार्य्यन्ततः कथम् ध्रौव्यादाज्यादुपांशुयाजार्थमवदानेकृतेतच्छेषेणध्रौवेणस्विष्टकृदादिकं शेषकार्य्यं कर्त्तव्यंकुतः तदुक्तं सर्व्वेभ्योहविर्भ्यः समवद्यति इतिवाक्येनप्रापितत्वादितिचेत् मैवंकृतार्थद्रव्यशेषोह्युपयोगापेक्षः प्रतिपत्तिमर्हति ध्रौवन्त्याज्यंनकृतार्थं तेनकर्त्तव्यानां भविष्यतामुपस्तरणादोनांसद्भावात्तस्मात्तेन शेषकार्य्यमस्ति । चतुर्थाध्यायस्यप्रथमेपादेचिन्तितम् । स्विष्टकृत्संस्कृतोद्वोण उतापूर्व्वोपयोग्यपि प्रयोजनैक्यमेकस्मिन्युक्तं कर्म्मण्यतः अयः मन्त्रेणदेवसंस्कारः प्रक्षेपाद्द्रव्यसंस्कृतिःत्यागादपूर्व्वमुत्पन्नं प्रधानात्पूर्व्वंगच्छतत् योऽयंस्विष्टकृद्यागः सोऽयमुपयुक्तहविश्शेषसंस्कारः इत्यविवादम् तत्रसंस्कारस्यदृष्टप्रयोजनत्वेनावश्यम्भावेसतितावतैवोपक्षीणः स्विष्टकृद्यागेनापूर्व्वस्योपकरोतिनह्येकस्मिन् कर्म्मणि प्रयोजनद्वयंयुक्तमिति प्राप्तेब्रूमः कर्म्मणएकत्वेऽप्यंशभेदात्प्रयोजनभेदोनविरुध्यतेमन्त्रपाठो द्रव्यप्रक्षेपोदेवतोद्देशेनत्यागश्चेति त्रयोऽर्थाः तत्रत्यागेनपरमापूर्व्वोपयुक्तमवान्तरापूर्व्वमुत्पद्यते तस्मात्स्विष्टकृदुभयार्थः एवमन्त्यप्रयाजपशुपुरोडाशावप्युदाहार्य्यौ अत्रैवान्यच्चिन्तितम् प्रयोजकः स्विष्टकृत्किंपुरोडाशोत्तरार्द्धयोः यद्वाप्रकृतोपजीवीस्यादाद्यःस्वस्यसिद्धये उत्तरार्द्धेति शब्दस्याकृताङ्गेणसति अग्न्याद्यर्थंपुरोडाशमुपजीव्यैषवर्त्ततांदर्शपूर्णमासयोः श्रूयते उत्तरार्द्धात् स्विष्टकृतेसमवद्यति इति सोऽयंस्विष्टकृद्यागःकस्यचिन्नूतनस्य पुरोडाशस्यतदुत्तरार्द्धस्यचप्रयोजकस्तदुभयाभावेस्यसिद्ध्यभावादितिचेत् मैवं उत्तराशब्दोऽर्द्धशब्दश्च सर्व्वनामत्वाद्भागवाचित्वाच्चप्रकृतंकञ्चित् भागिमाकाङ्क्षतः अग्न्यादिदेवतार्थःपुरोडाशःप्रकृतोभागवांश्चतस्मात् तमेवोपजीव्यःस्विष्टकृद्यागः

प्रवर्त्तते न त्वन्यस्य प्रयोजकः तृतीयाध्याय चतुर्थपादे चिन्तितं शेषात् स्विष्टकृदेकस्मात् सर्व्वेभ्यश्चैकतः कृतेशास्त्रार्थसिद्धिस्सर्व्वेभ्यः कार्य्यसंस्कारसाम्यतद्दर्शपूर्णमासयोः श्रूयते शेषात् स्विष्टकृतेसमवद्यति इति तत्राग्नेयादिनान्त्रयाणांहविषांमध्ये यस्यकस्यचिदेकस्यहविषः शेषादवदातव्यं तावतैवशास्त्रार्थानुष्ठानसिद्धेरितिचेत् मैवं उपयुक्तं हविस्संस्कर्तुमिदमवदीयते संस्कारश्चसर्व्वेष्वपिहविस्समानस्तस्मात्सर्व्वेभ्योहविर्भ्यः शेषेभ्यः स्विष्टकृदनुष्ठेयः इति माधवीयवेदार्थ प्रकाशे-कृष्णयजुः संहिताभाष्ये द्वितीयकाण्डे षष्ठप्रपाठेषष्ठोऽनुवाकः।

## इतिनिर्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे चतुर्थस्तरंगः।



## अथ पञ्चमस्तरंगः।

ज्ञानकाण्डेपि शिवस्यैवमुख्योपास्यत्वं सप्रमाणंनिरूपयति अथचोपासकोज्ञानवान्सपितद्रूपोभवति तदुक्तं ब्रह्मवैवर्त्ते तद्यथा मन्मायायामोहितास्सर्व्वेमममायादुरत्यया ब्रह्मविष्णुमुखादेवामामाराध्यपदेस्थिताः १ मांनजानन्तितत्वेनज्ञातेमुक्ताभवन्तिते न ज्ञातेमयिभोगान्तेजन्मभाजःपुनर्भुवम् ज्ञानंद्विविधमाख्यातं शास्त्रीयञ्चार्थबोधजम् बोधाग्निर्दहतेचिप्रमशेषंपापपंजरम् अथस्कान्दे पदंयत्परमंविष्णोस्तदेवाखिलदेहिनाम् पदंपरममद्दैतं स शिवं साम्वविग्रहम् १ सज्ञासनस्थोऽथपरिव्रजन्वामुक्तः परिचीणवितर्कजालः संसारवीजं चयमोच्यमाणःस्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभागभोगी ॥२॥ ब्रह्मज्ञानेऽप्यवश्यंवैकर्मकर्त्तुं सयुज्यते। अन्यथाकर्मकालिन्यात्प्राप्तज्ञानंप्रणश्यति ॥ ३ ॥ अथस्कान्दे सात्विकत्वंतुरीयत्वमविनाशित्वमेवच। साचित्वंपरदेवत्वं शिवत्वं च शिवेस्मृतम् ॥ ४ ॥ अहौवाहारेवावलवतिरिपौवासुहृदिवामणौवालोष्टेवाकुसुमशयने वा दृषदिवा तृणेवास्त्रैणेवासमसमदृशोयान्तुदिवसाः क्वचित्पुरायागारेशिवशिव शिवेति प्रलपतः स्वेषुस्वेषुधर्मेषुयत्रवर्णाश्रमास्तथा। निष्ठावन्तोहितिष्ठन्तिशिवतत्वैकशालिनः ॥ १ ॥ श्रुतिहीनाद्विजानैवदानहीनानभूमिपाश्शिवहीनाक्रियानैव कलिस्तत्रनचेत्ततः ॥ २ ॥ अहंब्रह्माचविष्णुश्चवेदशास्त्राण्यनेकशः। मन्माया:

कल्पितासर्वेशिवोऽहंसर्व्वरूपतः ॥ ३ ॥ आकाशादपिविस्तीर्णःशुद्धसूक्ष्मोऽव्ययः शिवः य आत्मासकथंरामजायतेम्रियतेऽथवा ॥ ४ ॥ एकंब्रह्मचिदाकारं सर्व्वात्मकमखण्डितम् । निष्कंपम्भूरिवाशेते इति भावययत्नतः ॥ ५ ॥ नन्वयमात्माब्रह्म विज्ञानमानन्दंब्रह्म तत्वमस्य हंब्रह्मास्मि इत्यादिवेदचतुष्टयोक्तमहावाक्येषु अहंशब्देनकिमुच्यते अहंशब्देनविख्यातस्त्वेकएवपरःशिवःइतिस्मृतिः अथस्कान्दे शिवज्ञानसमंज्ञानंयथानास्तिश्रुतौस्मृतौतथावेदिकतुल्यन्तुनास्तितन्त्रावलम्बिषु इति अथप्रपञ्चोपसमंशान्तंशिवमद्वैतंतुरीयमन्यन्तेसोयमात्मा इति माण्डूक्योपनिषदि ।

इतिनिर्णयरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे पञ्चमस्तरंगः ॥



## अथ षष्ठस्तरंगः ।

ननु यत्रतत्रदेवयजनमुक्तन्तच्चतद्रूपभवनमन्तरानसम्भवति देवोभूत्वादेवं यजेन्नादेवोदेवमर्चयेदित्युपासनाकाण्डीयश्रुतेस्तद्रूपभवनञ्चतत्तन्मन्त्रेण तत्तत्तिलकमाल्यादिधारणेनैव अतस्तिलकमालामन्त्रान्वक्ष्यामः तत्रप्रथमस्नानं विष्णुस्मृतिः स्नातोऽधिकारीभवतिदेवेपित्रेत्त्वकर्म्मणि । पवित्राणांतथादानेजपेप्रचविधिदर्शिते ॥ १ ॥ याज्ञवल्क्यः । स्नात्वैवंवाससीधौतेअक्लिष्टेपरिधायच । जाबालिः नार्द्रमेकञ्चवसनम्परिदध्यात्कथञ्चन ॥ २ ॥ क्रियन्तेश्रौत्तकर्म्माणि शङ्करार्थं यतस्ततः । शिवेनिवेदनीयानिस्नानादीन्यपिसादरं ॥ १ ॥ कृत्वाचैत्रादिमासेषु स्नानंनित्यं द्विजादिभिः । मन्त्रै रेतैः स्नानकर्म्मनिवेद्यगिरिजापतौ ॥ २ ॥ चैत्रमासेनभगवान्महारुद्रोविराट्पतिः । प्रीणातुपार्वतीनाथश्चिन्त्रसृष्टिविशारदः ॥ १ ॥ वैशाखमासस्नानेनभगवान्गिरिजापतिः । प्रीणातुश्रीमहादेवोविष्णुब्रह्मादिवन्दितः ॥ २ ॥ ज्येष्ठस्नानेनभगवान्देवश्रेष्ठोमहेश्वरः प्रीणातुशंकरोयुक्तोनानागणनिषेवितः ॥ ३ ॥ आषाढ़मासस्नानेनभगवान्भक्तवत्सलः प्रीणातुसर्व्वभूतात्मासत्योदाचायणीयुतः ॥ ४ ॥ नभसस्नानेनभगवान्भगनेत्रभिदीश्वरः । प्रीणातु आर्य्ययायुक्तो देववर्य्यःसनातनः ॥ ५ ॥ नभस्यमास

स्नानेनभगवान्विश्वलोचनः। प्रीणातु सोमसोमात्माविभुर्हैमवतीयुतः ॥ ६ ॥ आश्विनमासस्नानेनभगवान्विश्वहृद्गतः। प्रीणातुत्रिपुराराति-र्गौरीप्राणनायकः ॥ ७ ॥ भगवान्कार्त्तिकस्नानात्सोमसूर्य्याग्निलोचनः। प्रीणातुदुर्गासंयुक्तोदुर्गमपातकनाशकः ॥ ८ ॥ मार्गशीर्षस्यमासीयस्नानेनभग-वान्भवः। प्रीणातुसच्चिदानन्दोभवानीप्राणनायकः ॥ ९ ॥ पौषस्नानेन भगवान्तुष्टिदःपुष्टिनायकः। प्रीणातुमन्मथारातिरम्बिकाप्राणवल्लभः ॥ १० ॥ माघस्नानेनभगवानुमाकान्तोजगत्पिता। प्रीणातुशिवयायुक्तस्सर्व्वमङ्गलसंश्रयः ॥ ११ ॥ भगवान्फाल्गुनस्नानान्नीलकण्ठो जगत्पतिः। प्रीणातुमंगलायुक्त-स्सर्व्वमंगलदायकः ॥ १२ ॥ मन्त्रमेतत्समुच्चार्य प्रतिमासम्प्रयत्नतः। स्नानं यः कुरुतेनित्यंसतत्स्नानंफलभाग्भवेत् ॥ १३ ॥ ॥ १५ ॥ ओंहरः। *

श्रुतिः। अहरहःसन्ध्यामुपासीतत्रिसन्ध्यं शिवलिंगमभ्यर्च्चयेमित्यादिस्तत् देवोभूत्वादेवंयजेदित्यादेशात्तत्तद्देवताचिह्नंधृत्वैवतत्तद्देवतोपासनोक्ताचिह्नं बहु-विधंशोतलतमायुधरूपेणोक्तं तत्रत्रैवर्णिकामानवंकुर्य्याद्देवताचिह्नम् अंगेषु मान्चयेद्विप्रोदेवतायुधलाञ्छनैः अङ्कयेद्यदिवामोहात्पतत्येवनसंशयः। इत्यादि निषेधपर्य्यालोचनयानिषेधात् चतुष्पाद्ब्रह्मोपासीतेतुब्रह्मब्रह्मोपासनापुरस्तातद्व-मायवागावाअप्युपासीत्। यद्रूपंब्रह्मविदोविदुस्तांधीराःपरिपश्यन्तिमनसावाच-मग्रतइत्यादिपर्य्यालोचनयागम्यचतुरुपासनं ब्रह्माध्ययनंचद्विविधं शिवार्चनञ्चचतु-र्व्वेदतात्पर्य्यसंग्रहे। अयं पशुपाशपतिरूपायप्रकारएवनान्यः वेदसिद्धमपिमहे-श्वरार्चनङ्कल्पादिष्वपिप्रकटंविमृशति। प्रत्यक्षवेदविहितप्रथितंपुरारेर्बौधाय-नेनमुनिनाबहुधः प्रणीतं सर्व्वार्थदर्शनपरैरपिगृह्यकारैर्यज्ञोपवीतभिवविस्मृत-मर्चनन्ति इति अस्यार्थमाहहरदत्ताचार्य्यःपराविद्यापर्य्यन्तं ब्रह्मोपासनं ओंकार पूर्व्विकास्तिस्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाःत्रिपदाचैवसावित्रीविज्ञेयं ब्रह्मणोमुखं। योऽधीतेऽहन्यहन्येतान्त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितस्सब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतःखमूर्त्ति-मान्। प्रत्यक्षवेदविहितमिति प्रत्यक्षवेदविहितमित्यनेनपरोक्षस्यवेदस्यपरा-हतिःपुराणेप्रथितं अपरैर्गृह्यकारैस्तदेवानुमतंविस्मृतंवाभवतियज्ञोपवीत-विधानं केनचिन्मुनिनाविहितन्तदेवसर्व्वैर्गृहीतमनुष्ठितञ्चयथायज्ञोपवीत-कालस्सागाद्याचनेकृत आशिषां पुरस्तात्समिदाधानात् शिवस्वामिमतेनलितिल ध्यजनं बोधायनेन प्रणीतं पश्चात्सर्व्वैश्शिरसाधारितमितर्थः। अनेर्गृह्य कारमतंस्पष्टीकरोति। इति तत्रकिञ्चिह्नं धार्य्यमित्याकांक्षायांब्रह्मवसन्ब्रह्म-

भवन्तीत्यादेश्च तत्र किं ब्रह्मभवनं यस्मिन्सति ब्रह्मस्यात् ब्रह्मणो अलच्यत्वात् लच्यत्वे-
पुरुपासनायान्तत्तदायुधादिधारणनिषेधात् ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म ॐमिति ब्रह्मणो-
नामनिर्द्देशेत्यादिरीत्याप्रणवो ब्रह्मणः स्थूलं रूपन्तदेव त्रिपुण्ड्ं अत्रप्रमाणं वच्यामः
तदेवधृत्वा ब्रह्मोपासितव्यं। अन्यथा शूद्रस्य वेदाध्ययनवत् ब्रह्मोपासनेकृतेऽपि
प्रत्यवायीस्यात्। तथाचश्रुतिः। एवंभस्मधारणमकृत्वेत्यादिवच्यमाणातथा
स्मृतिरपि यथाधीत्यान्त्यजोवेदान् पतत्येवेतितथाद्विजः प्रत्यवैतिनसन्देहस्सन्ध्या-
कर्म्मसवर्ज्जितः। इति ननु शिवार्चनस्यात्रकावश्यकत्तेति सत्यं गायत्रीदानवर्ण-
स्थित्येसा गायत्रीभर्गशब्दोपलक्षिताभर्गश्शिव एव हरस्मरहरोभर्गस्त्र्यम्बक
स्त्रिपुरान्तक इति कोशात्। अतएवशिवमनभ्यर्च्यभोजनेप्रायश्चित्तन्तत्काल-
मारभ्यैवपितुः पञ्चाक्षरविद्यादानेधिकारस्तदभावेमातृपितृव्यजेष्ठभ्रात्रादेरधि-
कारोतएवशिवशक्तिमन्त्राणांकौलिकत्वोक्तिसङ्गतिश्शिवमन्त्रस्यशिवार्चनस्य च
श्रौतत्वंतत्तत्त्रैवर्णिकानांसन्ध्यावेदाध्ययनशिवार्चनादि नित्यधर्म्मं हे धातवार्चन
विधिस्तरूणेन्दुमौलेकामायकश्चिदपरोदुरितक्षयाव अप्यग्निहोत्रसुभयस्वयमाम
नामःस्वर्गाययद्भवतियद्दुरितंक्षिणोति इति अग्निहोत्रवच्छिवार्चनमितिभावः
वीजभूतगायत्रीवेदारम्भशिवपञ्चाक्षर विद्यायास्तद्भावादानुपूर्व्विकयानु-
ष्ठानं श्रुतुरुक्तमन्यथाप्रत्यवायश्चैवं संस्कृतोवटुःमिश्रयच्चाधिकारीतदभावे-
वैदिकाधिकारी। पञ्चाक्षरस्य श्रुत्यन्तर गतत्वात् वेदाधययननियमा-
भावादनैवं भूतस्योपासनाकाण्डोक्ताधिकाराया विरोधधर्म्मयुक्तः उपासनोक्त
संस्कारसंस्कृतीगुरुःशान्तोदान्तकुलीनश्चेत्यादि मन्त्रशास्त्रोक्तलक्षणःलक्षित
आवश्यकत्वेनाश्रयणीयः। तथाच अमृतार्थीगरुड़ः कश्यपंप्रतिजगाम-
तदाहसूतःगतस्सकाश्यपीतस्मान्मेरोश्शिखरमुत्तमं खगाण्डजवरैर्युक्तांसगत्वापि
तुराश्रमन्तपस्यन्तंतपोराशिंपितरंकश्यपन्तदा भस्मरुद्राक्षसम्पन्नं शिवाराधन
तत्परं शाम्भवैर्मुनिभिर्युक्तं रुद्रसूक्त जपाद्दरंप्रणम्यविनयेनैवस्थित स्तस्यैव
सन्निधाविति। पुनस्तमम्बांशेशिवरहस्येकश्यपवचनं। यः शाम्भवाचार हीना
न्याखण्डान्कुरुतेनरान्कुतर्कवाक्यैर्योमर्त्योविप्रोवानरकंव्रजेत्। अधोमुखो !
र्द्धपादोसौलम्बतेहर्निशंसुत। यः शांकरान्भ्रामयेत्भक्तिभावान्महेशितुः। स
यातिरवाख्यनरकं सचायम्पापकृत्सम‌ः सर्वेषां निष्कृतिःप्रोक्तापापानां नरकावहा।
शिवद्रोहःशाम्भवानान्द्रोहोवानरकावहः नरकोत्तरणंनृणां नैवजातुभविष्यति
शिवद्रोहेषु सर्व्वेषु शरणश्शिव एव हि। संमोचको महादेवश्शिवद्रोहेषु सत्तम।

सद्दमानतयासर्व्वभक्तानां पापनाशकः । नान्येषांनिष्कृतिःप्रोक्ताशिवद्रोहेषु सत्तम । तस्मात्तत्शरणंयाहिसर्व्वांसिद्धिं प्रयच्छति । विद्यांह्यद्यांददाम्येत मेतां पञ्चाक्षरात्मिकां । पञ्चाक्षरपरोमर्त्योशिवज्ञानायकल्पतेनमुक्तोभवत्येवविधिनाद्योतितेन च । पितैवोपदिशेन्मन्त्रङ्गायत्रीसममेवहि । गायन्तंत्रायतेयस्मात् गायत्रीभर्गचिह्निता । संसारभर्जकोभर्गश्शिवएवेतिनिश्चितः । पञ्चाक्षरश्च गायत्री श्रौतंमन्त्रद्वयं स्मृतं । उभयोर्दैवतंयस्मान्महादेवोमहेश्वरः । विप्रैरेव सदामन्त्रोजपनीयःप्रयत्नतः । स्त्रीशूद्राणांनमोन्तेनजप्यःपञ्चाक्षरःपरः । अभावेतुपितुःपुत्रस्तत्पितापुत्रएवहि । अन्येवाज्ञातयोविप्राश्शास्त्रवात्रान्यतःस्मृत । यथापनयनंशास्त्रे तथापञ्चाक्षरेपि च । गायत्रीवत्सदाजप्योमन्त्रराजोयमुत्तमः तस्मात्तवोपदेक्ष्यामिमन्त्रं पञ्चाक्षरंपरं । मन्त्रेणानेनदेवेशं यः पूजयतिशङ्करं । सर्व्वपापविमुक्तश्चजायतेनात्रसंशयः । पञ्चाक्षरंसतारंयः प्रजपेत्प्रीतिपूर्व्वकं । स तु मुक्तोभवत्येवपञ्चाक्षरसमाश्रयात् । पञ्चाशत्प्रधाननिरतोपञ्चाक्षरजपादरः । महापापयुतोवापियुक्तोवापुरपपातकैः विमुच्यतेसद्यएवराहुमुक्तइवोडुराट् । न गायत्र्यापरोमन्त्रोनपञ्चाक्षरात्परोमनुः । द्विजत्वं साचवैप्रोक्तागायत्री भर्गदेवता । शिवप्रसादसिद्ध्यर्थंश्रीमत्पञ्चाक्षरोमनुः । द्विजानांनित्यकंमन्त्रसर्वेषाञ्चैवकाम्यकं । तान्त्रिकावैदिकाश्चैवभागवतोवायथारुचिःद्विजाराध्योमहादेवोमनुर्जप्यो द्विजैस्मृतः स्त्रीभिःशूद्रैर्नमोन्तेन जपनीयोमहामनुः गायत्रीतिद्वीजातीनामंगनाना जपेस्मृताः शूद्रोजप्वा तुगायत्रीं नरकेपच्यतेचिरंजातिप्रसादजनकौ मन्त्रौद्वौशाश्वतौस्मृतौ वेदमाता च गायत्रीवेदमध्यगतास्वयं । तस्मान्मन्त्रद्वयं विप्रंसर्व्वथाश्रुतिमध्यगं । प्रलयेसमनुप्राप्तेवेदालीयन्तियत्त्रयीगायत्र्यामेवगायत्री भर्गशब्देशिवात्मके । शिवपञ्चाक्षराकाराः पञ्चवर्णाशिवात्मके । वर्णापञ्चाक्षरस्याशत्पञ्चाशत्क्रमतःशिवे । लीयन्तेकिलकल्पान्तेप्रणवोहृद्ददिस्थितः । तस्माच्छ्रुतिषु सर्व्वत्रशिवोगोतस्सदाशिवः । ब्रह्मेवसर्व्वदाशम्भुःब्रह्मणोधिपतिश्शिवः । एषएवमहामन्त्रो अविमुक्ते विशेषतः । सतारस्तारकोमन्त्रश्शैवेभ्य उपदिश्यते । सत्वजीवेभ्य एवैषः ईशानेनदयालुना । नातःपरतरोमन्त्रस्तारकःपरमेश्वरः । वर्णेभ्योपिपरंसारन्तारंशिवमयंकिल । वर्णास्त्वन्येतुसगुणानिर्गुणन्तारमेवहि । केवलं एकाक्षरंयत्प्रणवंतत्तारंसमुदाहृतं । तदेवोङ्कोथवाक्ये नसर्वश्रुतिषु गीयते । तदेवानन्दकन्दोत्थसर्वशब्दावभासक । संशोलयन्परंयातिशिवमेवहि निर्गुणं । गायत्रीमन्त्रसारंद्विजकुलतिलकं सिद्धिदंसाधकानां मन्त्रोयं शिव-

तोष ॰ ज्ञत्तविह्नितोवेदान्तभागेष्वपि । तारोयंपरनिर्गुणप्रकटनेशुद्धादिरेवैषकं भिक्षूणां प्रथमं भवात्मकहृदांसंशोलितोमुक्तिदः । गरुड उवाच यःपुत्रःपितरं त्यक्त्वाशाम्भवज्ञानपारगं । पश्चाच्चरत्यन्यमुखाल्लब्ध्वासंपूजयेच्छिवं । तन्नैवाथि-वतोभूयात्प्रसादात्परमेष्ठिनः । तत्त्वविद्भिस्तुकथितंशिवोप्याहैवमेवहि । अथा-म्भवोयदिपितापुत्रस्येच्छांभवोभवेत् । शाम्भवादेवतन्मन्त्रं गृह्णीयादवैदिकोत्त-मात् । ना विद्यत्यिवृतोमन्त्रोमितराहपरमेश्वरः । अथदेवी उपपुराणे । दीक्षितो ब्राह्मणोयातिब्रह्मलोकमनामयम् । इन्द्रलोकं क्षत्रियस्तु प्राजापत्यन्तथाविशः । शूद्रोगन्धर्व्वनगरंयातिदीक्षाप्रसादतः धनीमन्त्रंनगृह्णीयादकुलञ्चतथैव च । अदीक्षितायेकुर्व्वन्ति जपपूजादिकांक्रियां । नभवन्तिप्रियन्तेषांशिलायामुप्तबीज-वत् । अथबृहज्जाबालोयोपनिषत् । तत्रषड़क्षरमन्त्रस्यापिनित्यत्वमुक्तं । नित्यं ब्राह्मणानांकर्त्तव्यंयदकर्णेप्रत्यवैतिब्राह्मण इत्युपक्रम्यषड़क्षरोवामन्त्रो जपनीयः ओमित्यग्रेव्याहरेन्नम इति पश्चाततःशिवायेतग्रक्षरत्रयं । इति अथ पितैवोपदिशेन्मन्त्रंगायत्र्यासममेवहि । गायन्तंत्रायतेयस्माद्गायत्रीभर्गचिह्निता इतिशिवरहस्येकर्म्मकाण्डविषयः । अथोपासनाया आवश्यकत्वं राजानंप्रति-गौतमेनोक्तं । गृहाणशाम्भवीदीक्षां मोक्षार्थमपियत्नतः मोक्षस्तुनभवत्येव विनाशाम्भवदीक्षया । नयस्य शाम्भवीदीक्षातस्यमोक्षोऽपिदुर्ल्लभः सत्यंसत्यमिति प्राहजाबालिः खलुसात्त्विकः । यस्तुशाम्भवदीक्षायां संसक्तहृदयोद्विजः । तम-र्चयन्ति सर्वेपि विष्णुब्रह्मादयःसुराः । इत्युपासनाकाण्डविषयः । शिव इत्यस्ति यन्नामतद्विनाभोत्तमोत्तमम् । तदेवपरमंब्रह्मतदेवाहंवरानने । शिवनामस्वरूपेण व्यक्तंब्रह्माहमेवहि शिवनामाहमेवेति विजानीहि यथार्थतः तदव्यक्तं परंब्रह्म-वेदान्तप्रतिपादितं । तदेवेदम्बिजानीहि शिव इत्यक्षरद्वयं । इदंव्युत्पत्ति रहितं शिवनाममनिरञ्जनं । निराकारंपरंब्रह्मनैतस्माद्ब्रह्मविद्यते । उपासितव्य-मेतद्धिब्रह्मेत्यन्वहमादरात् । शिव इत्यक्षराकारमक्षरं ब्रह्मशाश्वतं । नमः पूर्व्वं यकारान्तं ब्रह्मेदं चेत्प्रयुज्यते । ब्रह्मस्वरूपमाप्नोतिब्रह्मब्रह्मविदोजनाः एवमेतत्परं ब्रह्मयोविजानातितत्वतः । स ब्रह्मविदितिज्ञेयस्तदन्योब्रह्मविन्नहि । इयं हि परब्रह्मविद्यामोक्षविद्येति गीयतेनातःपरंमोक्षविद्यासर्वस्वमियमेवहि । तारकं ब्रह्मपरमंशिव इत्यक्षरद्वयंनैतस्मादपरं किञ्चित्तारकंब्रह्मसर्वथा । इदमेव परंब्रह्म काश्यांमल्लिङ्गधारिणं । अन्तकालोपरक्तानांमयादेव्युपदिश्यते । ब्राह्मणानां परंधर्म्मोविभुत्राङ्कनं द्विजाः तत्यक्तं येन विप्रेण स महापातकीभवेत् । ब्राह्म-

णानां परोधर्म्मः त्रिपुंड्रस्यचधारणम् तत्त्यक्तं ब्राह्मणानांपरोधर्म्मश्शुद्धरुद्राक्ष-धारणं तत्त्यक्तं। ब्राह्मणानांपरोधर्म्मः शिवलिंगेशिवार्च्चनं तत्त्यक्तं। गच्छन्तिष्ठन्शयानो वा महादेवानुकीर्त्तनं। यः करोति प्रयत्नेन स जीवन्मुक्त उच्यते। रुद्राक्षसंग्रहंभक्त्यारत्नवद्भस्मसंग्रहं यः करोतिप्रयत्नेन सजीवन्मुक्त उच्यते।

## इति श्रीनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे षष्ठस्तरंगः।



## अथ सप्तमस्तरंगः।

अथ वेदसर्वोत्कर्षबोधनायसूतसंहितायां शिवमहात्म्यखण्डान्तर्गतवचनान्याह। यश्चतुर्वेदविद्विप्रःपुराणंवेत्तिनार्थतः। तं दृष्ट्वाभयमाप्नोतिवेदमांप्रतरिष्यति। इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। वेदाःप्रमाणं प्रथमं सूत्रमेव ततःपरम्। स्मृतयश्चपुराणानि भारतंमुनि पुंगवाः। अन्यान्यपिमुनिश्रेष्ठाः शास्त्राणिसुबहूनि च। सर्ववेदाविरोधेन प्रमाणं नान्यवर्त्मना। एकएवद्विजा वेदवेदार्थश्चैक एव तु। तथापि मुनिशार्दूलशाखाभेदेनभेदितः। इति अथ नारद उवाच। बहुत्वादिहशास्त्राणांनिश्चयःस्यात्कथंमुने कियत्प्रमाणं तद्ब्रूहि धर्म्ममार्गविनिर्णये। नारायण उवाच। श्रुतिस्मृती उभेनेत्रेपुराणं हृदयंस्मृतं एतत्त्रयोक्त एवस्याद्धर्म्मोनान्यत्रकुत्रचित्। विरोधोयत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम्। श्रुतिस्तत्र प्रमाणंस्याद्द्वयोर्द्वैधेस्मृति र्वरा। श्रुतिद्वैधंभवेद्यत्र तत्रधर्मावुभौस्मृतौ। स्मृतिद्वैधन्तुयत्रस्याद्विषयंकल्पयेतां पृथक्। पुराणेषु क्वचिच्चैवतन्त्रदृष्टं यथातथं। धर्म्मंवदन्तितद्धर्म्मं गृह्णीयान्नकथञ्चन। वेदाविरोधिचेत्तन्त्रं तत्प्रमाणं न संशयः। प्रत्यक्षं श्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणंभवेन्नच। सर्वथा वेदएवासौधर्म्ममार्गप्रमाणकः। तेनाविरुद्धंयत्किञ्चित्तत्प्रमाणं न चान्यथा। योवेदधर्म्ममुत्सृज्यवर्त्ततेऽन्यप्रमाणतः। कुण्डानितस्यशिक्षार्थं यमलोके वसन्तिहि। तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन वेदोक्तधर्म्ममाश्रयेत् स्मृतिपुराणमन्यद्वा तन्त्रं वाशास्त्रमेवच। तन्मूलत्वेप्रमाणंस्यान्नान्यथा तु कदाचन। ये कुशास्त्राभियोगेनवर्तयन्तीहमानवाः। अधोमुखोर्द्ध्वपादास्तेयास्यन्तिनरकार्णवम्। कामाचारापाशुपतास्तथैवलिंगधारिणः। तप्तमुद्राङ्किताये चवैखानसमताश्रिताः।

ते सर्वेनिरयंयान्तिवेदमार्गवहिष्कृताः । वेदोक्तमेवसद्धर्मंतस्मात्कुर्यान्नरस्सदा । उत्थायोत्थायवोद्धव्यंकिंमयाद्यकृतंकृतं । इति देवीभागवतेएकादशस्कन्धेद्वितीयाध्याये । अथ श्रुतिस्मृत्युदितंधर्म्ममनुतिष्टन्हिमानवः । इहकीर्त्तिमवाप्नोतिप्रेत्यचानुत्तमंसुखं । श्रुतिस्तुवेदोविज्ञेयोधर्म्मशास्त्रन्तु वैस्मृतिः । ते सर्वार्थेतुमीमांसेताभ्यांधर्म्मोहि निर्बभौ । यो ऽव मन्येततेमूलेहेतुशास्त्राश्रयाद्विजः ससाधुभिर्वहिष्कार्योनास्तिकोवेदनिन्दकः वदस्मृतिसदाचारःस्वस्यचप्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधंप्राहुस्साचाद्धर्म्मस्यलचणं । इति द्वितीयाध्याये । सर्वे आधुनिकाः कथयन्तिनास्मत्संहितायांसूत्रे च भस्मधारणमुक्तमतोनधार्य्यंभस्मेतितर्हिसंहितासुऋग्यजुस्सामरूपामन्त्राउक्ताऋषिश्छन्दोदेवताविनियोगाश्चकर्म्मसुतेमन्त्रादयकथंकर्म्मनियुज्यन्ते कर्म्माख्यपिनोक्तानि संहितायांकथं गृहीतव्यानीतिसत्यं देवधर्मंवदस्वाध्यायान्माप्रदः आचार्य्यायप्रियंधनमाहृत्यप्रजातन्तुंमाव्यवच्छेत्सीस्सत्यान्नप्रमदितव्यं धर्मान्नप्रमदितव्यंभूत्यैनप्रमदितव्यं देवपितृकर्म्मभ्यान्नप्रमदितव्यं पितृदेवोभवमातृदेवोभव आचार्यदेवोभव अथयदितेकर्म्मविचिकित्सावृत्तविचिकित्सावास्यात् येतत्रब्राह्मणासमर्शिनोयुक्ताआयुक्ताआलुप्त्तायेधर्म्मकामाः स्युः यथातेतत्रवर्त्तेरन् तथातत्रवर्तेथाः इत्याद्युक्ता एष आदेशः एष उपदेश इति तैतिरीयोपनिषद्यादेशा उक्तायज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणि प्रथमान्यासन्नित्यादिपुरुषसूक्तेमन्त्रेषु यानिकर्म्माणि कवयो पश्यंस्तानिनेतायांबहुधासन्ततानि तान्याचरथ नियतंसत्यकामा इति कानितानियदालेलायतेह्यर्चिस्समिद्धव्यवाहनेतदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेदित्यादिभिस्तत्तत्कर्म्मविधायकशाखैस्तत्तत्कर्म्मप्रयुक्तवेदमन्त्रसमन्ततत्कर्म्मविहितम् तदातत्तत्कर्म्मजपूर्णफलावाप्तिश्चोक्तातेपि यदा ऋषिश्छन्दोदेवताविनियोगयुक्तास्तदाकर्म्मसहायका भवन्तिनान्यथा तदुक्तं कात्यायन सूत्रे एतान्यविदित्वायोधीतेनुक्रमतेजपति जुहोतियजतेयाजयते तस्य ब्रह्मनिर्वीजं यातयामम्भवतीति अनिष्ठांतरमप्याह अथान्तराश्वगर्तं वापद्यतेस्थाणुंवाञ्छति प्रमीयते इति सूत्रम् छन्दगानामार्षेयब्राह्मणेपि श्रूयते योहवा अविदितार्षेयेन ब्राह्मणेनमंत्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वाञ्छतिगर्तं वापद्यते प्रमीयते वा पापीयान्सम्भवति यातयामान्यस्यछन्दांसिभवन्ति तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यादिति अथ विज्ञायैतानियोधीते तस्यवीर्यवत्तरमिति २ अर्थज्ञानेविशेषमाह अथयोर्थवि त्तस्य वीर्यवत्तरभवतीति सूत्राणि तेपि मन्त्रायदाप्रणवसहिताः तदैवकर्म्मसहभावंगताः परिपूर्णं

कर्म्मणां फलन्दापयितुं क्षमाः प्रणवरहितश्चेत्तदाचरन्ति पठिता अप्यपठिता एव भवन्ति एवं कर्मापद्विविधमन्त्रवाद्यभेदात् प्रणवसहभावं गतं फलानि सूते प्रणवरहितश्चेत्स्वयं चरति गर्भवद्विशीर्य्यते ब्राह्मणः प्रणवङ्कुर्य्यादादावन्ते च सर्वदा स्रवत्यनोङ्कृतम्पूर्व्वम्परस्ता च विशीर्य्यति का फलवार्त्तापि स्रवत्यनों कृतमिति श्रुतौ ब्राह्मणः प्रणवंकुर्य्यादादावन्ते च सर्वदा स्रवत्यनोंकृतंपूर्वंपर-स्ताच्चविशीर्य्यतीतिमनुस्मृतौ कस्यचिन्नाम्नोनुपादानात् कर्म्ममन्त्रयोर्द्वयोर्ग्रहणं युक्तम् ननु मन्त्रेषु प्रणवनियोजनं च ऋते उभयोर्वर्णरूपत्वात् कर्मतु द्रव्यसाध्य-त्वात्स्थूलरूपमिति कथं प्रणवसहभावस्तस्येति सत्यं प्रणवोद्विधासूक्ष्मस्थूलश्चेति सूक्ष्मोमात्रो निराकारो निरञ्जनः ब्रह्मेति यावत्चिन्मात्रत्वात् स्थूलस्त्रिचतुरादि मात्रात्मकोवर्णरूपस्तत्रापि चतुर्थाद्विमात्रारूपश्शिवस्तुरीयस्सर्वाधारभूतोस्तिति स्त्रोमात्राविश्वतैज स प्राज्ञरूपाश्शिवमद्वैतं चतुर्थंमन्यन्ते सोयमात्मा स विज्ञेय इति माण्डुक्योपनिषच्छ्रुतेः त्रिषुधामसु यद्भोग्यं भोक्ताभोग्यश्चयद्भवेत्तेभ्योविलक्षण-स्साक्षीचिन्मात्रोहं सदाशिव इत्यादि श्रुतेश्चवर्णात्मकोपि द्विविधश्शब्दरूपोवर्णं लिपिरूपश्चवर्णात्मकोविद्युद्द्योतनवत्पदार्थप्रकाशकः क्षणस्थायीलिपि रूपस्तु-स्थायीसाकारत्वात् द्रव्यसाध्यतोयोग्यतावशात् ततद्रव्यसाध्ययोःप्रणवकर्मणोर्द्वयो-र्योगस्साधीयानिति तथाचकात्यायनसूत्रम् इमितिपरमाक्षरस्ययोगीनामालम्ब भूतस्य परस्य ब्रह्मणःप्रणवाख्यस्या स्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्माऋषिश्छन्दोगायत्रं-परमात्मादेवतात्मं ॐ मित्यस्यपरमाक्षरस्य ब्रह्माऋषिः परमात्मादेवतागायत्रं छन्दः देवीगायत्रीछन्द इत्यर्थः ईदृशस्य ओमित्यस्य प्रणवाख्यस्यपरस्यब्रह्मणः प्रणवसंज्ञस्यपरब्रह्मणःकीदृशस्यब्रह्मणः अस्थूलादिगुणयुक्तस्य अस्थूलमान एव ह्रस्वमित्यादिगुणपेतस्य पुनःकीदृशस्ययोगिनामालंवभूतस्यविनियोगःकल्पका-रोक्त इत्युक्ताम् ॐ मित्यस्यविनियोगःकल्पकारेणनोक्त इति स्वयमेवास्यविनियोग-माह ब्रह्मारंभेविरामेचयागहोमादिषु शान्ति पुष्टिकर्मसुतथान्येष्वपि काम्यनै मित्तिकादिषु सर्वेषु विनियोगोऽस्य अस्य ॐकारस्यस्पष्टार्थः तथाचशाट्यायनः दानयज्ञतपस्स्वाध्यायजपध्यानसन्ध्योपासन प्राणायामहोमदेवपित्रमन्त्रोच्चारण ब्रह्मारम्भादीनि प्रणवमुच्चार्य्य प्रवर्तयेदिति दालभ्यपरिशिष्टे च ब्रह्मयज्ञोजपो-होमोदेवर्षिपितृकर्म च अनोंकृत्यकृतं सर्वं न भवेत्सिद्धिकारकमिति अतश्चमन्त्र मात्रोच्चारणे आदौ ओंकारः प्रयोज्यस्सूत्रं ओ ३ मिति नामनिर्द्देशो ब्रह्मण इति ओं इमित्ययंब्रह्मणोनामनिर्द्देशः सूत्रं खंब्रह्मसाकाशरूपमन्तेध्यायेत् इति खं

आकाशरूपं ब्रह्मइत्यनेन प्रकारेणान्ते अवसानकाले आकाशरूपं ब्रह्मध्यायेत् ओमित्येतदक्षरमिद ७ सर्वन्तस्योपरिव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदितिमाण्डूक्यो-पनिषत्प्रणवइतिप्रमाणं अत्राग्नेयभस्मादिद्रव्यसाध्य: प्रणवमात्रात्मकरेखात्रयरूप त्रिपुंड्रात्मक:वर्णलिपिरूप: प्रणव: तद्योगस्सर्वकर्मादौचै वर्णिकै: कर्म्मणामङ्गतया यावश्यकत्वेनविधेय: प्रणवात्मकत्वेमानं जाबाल्युपनिषदि यास्यप्रथमारेखासा गार्हपत्यश्चाकारोरजोभूर्लोकस्वात्माक्रियाशक्ति: ऋग्वेद:प्रातस्सवनं प्रजापतिर्देवो देवतेति यास्यद्वितीयारेखासादक्षिणाग्निरुकार:सत्वमन्तरिक्षमन्तरात्माचेच्छा-शक्ति यजुर्वेदोमाध्यन्दिनंसवनंविष्णुदेवोदेवतेति यास्यतृतीयारेखासा । हव-नीयोमकारस्तमोद्यौर्लोक: परमात्मा ज्ञानशक्ति:सामवेदस्तृतीयं सवन महादेवो देवतेति तथाहबृहज्जाबालोपि अकारस्तर्ज्जनीप्रोक्ता उकारोमध्यमांगुलि मकारो-नामिकाप्रोक्तास्त्रिपुंड्रत्रिगुणात्मकमिति एवं प्रतिरेखं नवनवदेवता ब्रह्मोत्तर-खण्डे उक्ता भस्मस्त्रिखण्डमधेत्रिरेखाक्षिअवयवत्रिदेव:प्रणवमध्ये तु अर्द्धमात्राविंदु सहितेपञ्चावयवदक्षदेवतासन्ति त्रिपुण्ड्रे त्रिदेवताकथंसाम्यं । विश्वसारोद्धारे । ओंकारंविन्दुसंयुक्तं नित्यंध्यायन्तियोगिन: । अस्मिन्मध्येस्थितंतत्वं शब्दद्शयति खिलं ॥ १ ॥ ओमित्येवपरंब्रह्मसर्वतत्वानुदर्शनं । आब्रह्मस्तंबपर्यतंसर्वानुग्रह-कारकं ॥ २ ॥ तारकञ्चभवेद्ब्रह्मादंडकंविष्णुरुच्यते । कुण्डल्यं हितथारुद्रश्चार्द्ध चन्द्रकमीश्वर: ॥ ३ ॥ विन्दु:सदाशिवस्साक्षात्प्रणवेब्रह्मपञ्चकं । इत्येवं पञ्चकं ज्ञेयमोंकारान्तं निरीक्षण ॥ ४ ॥ दत्वापिदर्शितात्मानं स च ब्रह्मसनातनं । ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथंब्रह्माक्षरंदेवकथंवर्णंवदप्रभो ॥ ५ ॥ पृथक्वर्णकथंशम्भो-प्रमाणन्तत्रकिंवद ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रथमंतारकंब्रह्मह्यकाराख्याचमातृका ॥६॥ ब्रह्मातु देवतंज्ञात्वारक्तवर्णंविराजितं । पृथक् वर्णंतथादेवीरक्तपीतंसुशोभितं ॥७॥ यवंचाङ्गुष्ठहस्तेनप्रमादेहस्यलक्षणं । द्वितीयंदण्डकंब्रह्मह्युकाराख्याचमातृका ॥८॥ विष्णुर्देवतमाख्यातंश्वेतवर्णविराजितं । पृथक्वर्णश्चदेवेशिश्वेतकर्पूरराजितं ॥९॥ अंगुष्ठपर्वहस्तश्चप्रमाणंदेहलक्षणं । तृतीयंकुण्डलंब्रह्ममकाराख्यात्रिमातृका ॥१०॥ रुद्रदेवतमाख्यातंकृष्णवर्णंविराजितं । भूतवर्णंपृथक्वर्णंश्यामगर्भस्वर्वेदहि ॥ ११ ॥ पर्वार्द्धञ्चहस्तं च प्रमाणं देहलक्षणं । चतुर्ब्रह्माईचन्द्रस्य इकाराख्याचमातृका ॥ १२ ॥ ईश्वरोदेवतोज्ञात्वानीलवर्णंविराजतो । पृथक्वर्णंवरारोहे नीलवर्णं च य स्तथा ॥ १३ ॥ पीतवर्णंत्रयश्चैवशुद्धं श्वेतञ्चतुर्थकं । नीलगर्भस्वमध्यस्थं वर्णत्रयसुदाहृतं ॥ १४ ॥ प्रमाणंमसुरामात्रं शोभितं देहलक्षणं । पञ्चमंविन्दु

ब्रह्म.ख्यमोङ्कारश्चैवमात्रकाः ॥ १५ ॥ देवं सदाशिवं ज्वालापीतवर्णमनुक्रमात् ।
पृथक्वर्णस्तु नास्त्यत्र शुद्धस्फटिकदीपवत् ॥ १६ ॥ प्रमाणं नभवत्येवकैवल्यं परमं
पदं । एवं सर्वं शिरोधोतिशिखायांचविराजते ॥ १७ ॥ कुलमूलावतारकस्तव
तृतीयकाण्डटीकाधृतास्मृतिः । शुद्धं द्रव्यतदाग्नेयभस्मत्रिपुंड्रकं ॥ त्रिरेखात्मक
मर्द्धचन्द्रबिन्दुसहितंत्रिपुंड्ररूपं । अथभैरवकल्पे । गुरुहीनंयथामन्त्रमाज्यहीनं
यथा हविः । तथैवपरमेशानिबिन्दुहीनंत्रिपुंड्रकं । सत्तोबिन्दुरितिप्रोक्तास्त्वतः
पुंड्रत्रिधास्मृतः अभिनासावसंवधतस्माद्बिन्दुत्रिपुंड्रकं इति । त्रिपुण्ड्रप्रणवएक-
रूपत्वात् न भेदोऽस्ति मनुरपि अकारंचाप्युकारंचप्रजापतिर्वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः
स्वरतीति च देवीभागवतेपि त्रिपुण्ड्रन्धारयेन्नित्यं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकं उर्ध्वं
पुण्ड्रन्धरेत्सामममध्यपुण्ड्रंयजूंषिच अथ पुंड्रंमृचस्साचात्पुंड्रन्त्रियायुषमितिमांडु-
क्योपनिषदि पादामात्रामात्राश्चपादा इति प्रणवब्रह्मणोस्साम्यमुक्तंतथाचापिरेखा-
भिश्चतुष्पादब्रह्मोपासीतेति त्रिपुंड्रस्यापि ब्रह्मसाम्यमुवाशिष्टलैंगेपिवशिष्टं प्रतीक्ष-
रवचनम् भस्मंविद्धिपरंब्रह्मसत्वबोधसुखात्मयमिति तत्पुनर्द्विधंविद्धिमुख्यंगौणं च
सुव्रत मुख्यंप्रोक्तं परंब्रह्मगौणमाग्नेयमुच्यते भस्मतद्वेदनात्मभ्यं मुख्यंतदपरंबुधः
आग्नेयंगौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकमिति किंबहुलेखनेन भस्मलिंगिनस्सहस्र
शोवेदमन्त्रास्संति ऋषिभिर्भस्मधारणे विनियुक्ताः अतएवभस्मविधिबाहुल्यं
शास्त्रेषु दृश्यते तत्सर्वंसंहितायामनुक्तमप्यन्यत्रोक्तमावश्यकत्वेनकार्यम् ऋषिः-
च्छन्दोदेवतान्यन्यत्रोक्तान्यपि यथाफलासयैः गृहीतव्यानि भवन्तीत्येवं यत्र
प्रणवस्यविनियोगस्तत्रतत्रकर्मदौत्रिपुंड्ररूपप्रणवविधेरावश्यकत्वमिति सिद्धम्
तर्ह्युद्धूलनस्यकिंप्रयोजनमिति चेन्नोद्धूलनं तु भस्मस्नानंकर्तुंशुद्धयेकर्मणांकर्तृणां
चरनार्थम् तत्कृत्वात्रिपुंड्राधिकारोभवतीति विभूतिधारणादेवतीर्थेष्वमृतत्वं
गच्छति स एषभस्मज्योतिः स एषभस्मज्योतिर्विभूतिधारणादेवसर्वतीर्थेषु स्नातो-
भवति विभूतिधारणान्निखिले यत्फलमाप्नोति तत्फलमश्नुते स एषभस्मज्योतिः
स एष भस्मज्योतिर्यस्यकस्यचिच्छरीरेत्रिपुंड्रसरलक्ष्यं वर्त्तते प्रथमा प्रजापतिर्द्वितीया
याविष्णुस्तृतीयाःसदाशिवं इति स एष भस्मज्योतिरितिवृहज्जाबालेनमित्राह्मणे
आग्नेयंवारुणस्नानादसांख्येयगुणाधिकमिति स्मृतेश्च किंच त्रिपुण्ड्रवर्णज्ञानाया
ङ्गुलप्रभेदेन श्रुत्योक्तम् । तथाहि षडंगुलप्रमाणेन ब्राह्मणानांत्रिपुंड्रकं नृपाणां
चतुरं गुल्यं वैश्यानांत्र्यंगुलं तथा शूद्राणामथसर्वेषामेकांगुलंत्रिपुण्ड्रकमिति
प्रयोगपारिजातादिष्वस्ति रुद्रकल्पे च सप्रमाणभस्मोद्धूलनादिनापरिचये दर्शन-

मात्रेणजातिवर्णानुगुणशिष्ट व्यवहारोभ्युत्थाननमस्कारादि रूपः प्रवर्त्ततेपरि-
चयेनशिष्टाचारस्सम्यग्भवितुमर्हतीति कस्सइति ब्राह्मणस्याभुत्थानादिः
शूद्रेऽप्यीतिश्शूद्रोपिमानमर्हतीतिब्राह्मणोब्राह्मणंनत्वाब्राह्मण्यादेवहीयतइत्यादिरा
गतस्यालिङ्गनादिःऊर्द्ध्वपुंड्रन्तुस्तदर्शनमात्रादेवब्रह्मशब्दसम्बन्धं वर्णाश्रमसम्बन्धञ्च
वारयति नायंब्राह्मणादिः किन्तु वैष्णवोयमिति निश्चयीभवति ।

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे सप्तमस्तरंगः ।



## अथ अष्टमस्तरंगः ।

अतएव स्मलिंगमन्त्रेसत्यपिनोर्द्ध्वं पुंड्रे ऋषिकृतो विनियोगः सूतादि
सम्प्रदाये ऊर्द्ध्वपुण्ड्रस्याधिकारात् किन्तु केशवादि नामभिर्विनियोगोस्ति
ऊर्द्ध्वपुंड्रे वैदिकस्यानधिकारात् अग्नौप्रतप्यविधिवत्धारयेद्भक्ति संयुतमिति
लौहाघ्यङ्कनं शूद्रपरंहरिवंशेसप्तचत्वारिं शतमेध्याये यात्रारम्भे० चक्रांकिता-
प्रवेष्टव्यायावदागमनंमम नामुद्रिताः प्रवेष्टव्या यावदा गमनंममेतिपाद्मे
धारयेद्विष्णुभक्तस्तु चक्रंबाहौतुदक्षिणे वामेतुशंखराजानंधारयेद्विष्णु माप्नुयात्
चक्रेणैवांकितोविद्वान् वासुदेवं समाश्रयेत् भावभक्तिं समास्थाय ब्रह्मलोकं
प्रयास्यति इति आग्नेयपुराणे पञ्चैतानिधार्याणि भक्तिश्रद्धोपबृंहितैः
ललाटेमूर्ध्नि हृद्बाह्वोरेकैकं च पृथक् पृथक् इत्यादुक्त्वा यथावत्विधिवत्कलापं
चायुधविधानतः तत्तन्मन्त्रेणमन्त्रज्ञः प्रतिष्ठाप्य पृथक् पृथक् वह्निमध्येसमारोप्य
विधिवत्पूजयेत्पुनः अङ्कयेद्विधिवद्ब्रह्मन्नप्रमत्तःसमाहितः वर्णाश्रमेषुनिष्ठानाम-
न्येषान्तुविशेषतः कर्त्तव्यंभगवद्भक्तैसिद्धैर्मुक्तैश्चयोगिभिः चक्रादिधारणाद्ब्रह्मन्
विष्णुलोकेमहीयते इति भविष्यपुराणे इति वैष्णवशास्त्रविधानत्वम् ननुतीर्य्यक्
पुंड्रे दृष्टे शैवोयमिति निश्चीयतेसत्यम् सप्रमाणत्रिपुंड्रे दृष्टे वर्णज्ञानोदयेभस्मत्रि-
पुंड्रदर्शनमात्रेण म च्छूद्रान्त्यजादिनिवृत्तिर्भवत्येवातएवश्रुत्योक्तं ब्राह्मणानामय
मेवधर्मो तस्यैव इति ब्राह्मणशब्दपर्यायश्शिव इति ब्रह्मपर्यायतथाचगरुडपुराणे
गरुडउवाच श्रुतोमयादयासिन्धोह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः अधुनाश्रोतुमिच्छामि
मोक्षोपायंसनातनम् असारेघोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे नानाविधशरीरस्था

अनन्ता जीवराशयः जायन्ते च म्रियन्ते तेषामन्तो न विद्यते सदा दुःखातुरा एवं न दुःखान्तो विद्यते क्वचित् केनोपायेन मोक्षमुच्यन्ते वद में प्रभो कृपा उवाच शृणुत । चैं अस्ति देवः परम्ब्रह्मस्वरूपो निष्कलः शिवः सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वेशो निर्मलो द्वयः स्वयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशा जीवसंज्ञकः अनाद्यविद्योपहिता यथाग्नेर्विस्फुलिंगका देहाद्युपाधिसम्भिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः तत्तज्जातिषु तन्देहमायुर्भोगञ्च कर्मजम् प्रतिकर्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः सुसूक्ष्मं लिङ्गशरीरमामोक्षादक्षरं खगः स्थावराजंगमाःखाजा पक्षिणः पशवो नराः धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथा क्रमम् चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः सुकृतान्मानवो भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात् चतुराशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् न मानुषं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानन्तु लभ्यते अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः नरः प्राप्योत्तरं जन्म लब्ध्वा चेद्यदि सौष्टवम् नवेत्त्यात्मा हि संयस्तु स भवेद्ब्रह्मघातकः इति शिवब्रह्मशब्दयोरैक्यलक्षणवाक्यप्रमाणम् अतएव ईशावास्यमिदं सर्वमित्यादि श्रुतिसंगतिरूपासनासंगतिस्सतिसाकारे तदा शिवो ब्राह्मणोत्तमैवोपास्यो ब्रह्मणैर्ब्राह्मणधार्य्यं भस्मरुद्राक्षधारी तथा चमैत्रेयीशाखायां च श्रुतिः त्वं विश्वकर्त्ता तवनास्ति कर्त्ता त्वं विश्वभर्त्ता तवनास्ति भर्त्ता त्वं विश्वहर्त्ता तवनास्ति हर्त्ता त्वं विश्वनाथस्तवनास्ति नाथः तात्पर्य्यसंग्रहे त्वं ब्राह्मणस्त्वदुपधावनमेव कार्य्यं यद्ब्राह्मणैस्त्वदितरेण भवन्तु पास्याः न ब्राह्मणानवरवर्णनिषेवणेन सम्भावयेमयदिनः प्रपदं प्रमाणं वातूलतन्त्रे ब्राह्मणः कथ्यते रुद्रः क्षत्रियः कमलोदरः वैश्यः कमलगर्भश्च शूद्रः स्यात्पाकशासनः वीरतन्त्रे ब्राह्मणस्य शिवो देवः क्षत्रियस्य जनार्द्दनः वैश्यस्य भास्करो देवः शूद्राणां सर्वदेवताः पाराशरे ततो विप्रस्य सम्बन्धः शिवेनैव हि युज्यते संकरा. सर्वदेवाश्च वृषलस्तु पुरंदरः पितामहस्तु वैश्यश्च क्षत्रियः परमो हरिः ब्राह्मणो भगवान् रुद्रः सर्वेषामुत्तमोत्तमः अनन्यदेवतोपास्तिरनर्पितपराङ्मुखः अनन्यकर्मनिर्माणप्रसादी भक्तिमान् भवेत् मद्भक्तजनवात्सल्यं मत्प्रसादेन जीवनम् ममतत्त्वपरिज्ञानं भवेद्देवप्रसादतः इति शिवरहस्ये चतुर्थांशे दधीचिः मुग्धेन्दुचूड़करुणातरणिं विहाय खद्योतवद्विविधि हरीन्द्रमुखान्सुरांश्च सेवन्ति गाढतमसैकविनाशहेतुन्मुढ़ाहिते दृढ़तरा मृडभक्तिहीनाः इति शिवलिंगसमुत्पत्त्यपूजये चान्यदेवताम् स नरस्सहदेवेन रौरवं नरकं व्रजेत् इति मुकुटागमे शिवरहस्येऽपि

चतुर्थांशे गौतमः येभस्मरुद्राक्षविहीन गात्राःतेभूसुरा अपिह्युराऽसुरसम्भवाश्च इति यदास्ययेगर्भस्थितिमारभ्यगर्भाधानादि संस्काराःपित्रादिनाक्रियन्तेसंस्कृता स्तंथाशिवाचनेधिकारिणोभवन्ति अथभस्मच्छन्नःसंसारान्मुच्यतेभस्मशय्यांशयानः तस्मद्गोचरस्याशिवमायुज्यमिति न स पुनरावर्त्ततेरुद्राक्षधारी सन्नस्तत्वं गच्छति सएषब्रह्मज्योतिर्विभूतिधारणात्ब्रह्मैकत्वं गच्छति सएषभस्मज्योतिः सएषभस्म-ज्योतिर्विभूतिधारणात्कैवल्यमश्नुते सएषभस्मज्योतिः तथाचशिववाक्यं ब्राह्मणेनैवपूज्योहं शुचिनाशुचिनापिवेति वर्णाश्रमाचारवतापूज्योदेवो न चान्यथेत्यन्य-त्रोक्तं सर्वाणि कर्माणिनिष्कामतयाकुर्वन्ति चतुर्थाश्रमस्वीकारेणापुत्रपनिषत्प्रति पाद्यांशिवमद्वैतं चतुर्थंमन्यंते सोयमात्मासविज्ञेयःसोहमस्मिप्रज्ञानं ब्रह्मेत्यादि महावाक्येरुपलक्षितं शिवमन्तर्यामरूपेणाराध्य ब्रह्मभवन्नेषनिर्वाणमोक्षस्तत्र ब्राह्मणएवाधिकारिणो भस्मरुद्राक्षधारित्वात् तदुक्तं मुंडके तदेतदृचाभ्युक्तम् क्रियावन्तःश्रोत्रियाब्रह्मनिष्ठाः स्वयंजुह्वतएकऋषिं श्रद्धयन्तः तेषामेवेतांब्रह्म-विद्यांवदेतशिरोव्रतंविधिवद्यैस्तुचीर्णम् तदेतत्सत्यमृषिरङ्गीराःपुरोवाचनैतदचीर्ण व्रतोधीते इतिसर्वांगोद्धूलनंकुर्य्याच्छिरोव्रतसमाह्वयमिति शिरोव्रतमिदं नाम शिरसाथर्वणश्रुतेः- यदिनिर्वाणमनाप्त्यवैष्णवादिमार्गबोधकपञ्चरात्रोक्तधर्म्मादरास्तर्हिवेदोक्तधर्मानिर्वाणफलाः का नाश्रयन्ति तथाचश्रुतिः तद्विष्णोःपरमंपदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीवचक्षुराततन्तद्विप्राविमन्यवोजागृवांसःसमिंधते इति विष्णोःपरमम्पदंतयस्थानंब्रह्मतत्सूरय ब्रह्मर्षयःसदापश्यन्ति येच विप्राविमन्यवः शान्ताजागृवांसःपूर्वंमायामहानिशायां सुप्तास्ततः प्रबुद्धाःनित्यानित्यवस्तुविवेकेन जाग्रदवस्थावन्तस्तदातेपि पश्यन्ति ततःसमिन्धते ज्योतीरूपाभवन्ति तथाच गरुड़ पुराणे कृष्णेनोक्तम् अद्वैतंकेचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरेसमन्तत्वं न पश्यन्तिद्वैताद्वैतविवर्ज्जितंद्वे पदेबंधमोक्षायनममेति ममेतिच ममेतिबध्यतेजन्तु-र्नममेति प्रमुच्यते तत्कर्मयन्नबंधायसाविद्यायाविमुक्तिदा आयासायापरंकर्म विद्यान्याशिल्पनैपुणायावत्कर्माणिदीप्यन्ते तावत्संसार वासना यावदिन्द्रिय चापल्यन्तावत्तत्वकथा कुत इत्यादि बह्वस्त्राहतस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदातत्वनिष्ठोभवेत्ताच्चयदीच्छेन्मोक्षमात्मनः धर्मज्ञान प्रसूतस्य स्वर्गभोग फलस्य च तापत्रयादि तप्तस्य छायांमोक्षतरोः भवेत्तस्मात् ज्ञानेनात्मतत्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात् सुखेनमुच्यतेजन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् तत्वज्ञास्याचसंस्कृत्य शृणुवक्ष्यामितेधुना येनमोक्षमवाप्नोति ब्रह्मनिर्वाणसंज्ञकम् अन्तकाले तु

पुर्द्रमगारोगतसाध्वसः छिन्द्यादसंगशस्त्रेणस्पृहांदेहेनयेचतान् गृहात्प्रव्रजितो-
धीरः पुण्यतीर्थजलप्लुतः शुचौविविक्तआसोनोविधिवत्कल्पितासनेअभ्यसेन्मनसा
शुद्धंत्रिवृद्ब्रह्माक्षरंपरं मनोयच्छेज्जितश्वासोब्रह्मबीजमविस्मरन् नियच्छेद्विषये-
भ्योऽक्षान्मनसाबुद्धिसारथिः मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थेधारयेद्धिया यद्वं
ब्रह्मपरंधामब्रह्माहंपरमंपदम् एवंसमीक्ष्यचात्मानमात्मन्याधायनिःकले ओमि-
त्येकाक्षरं ब्रह्मेत्यादि न यद्वदांभिकायांतिज्ञानवैराग्यवर्जिताः सुधियस्तां-
गतिं यांतिति नह्यंकथयामित्तेनिर्मानमोहाजितसंगदोषा इत्यादि येवाचान-
धिकारिणोजाव्यवांसयतेविष्णुलोकंनिवासस्थानमाश्रयं तुविष्णुलोकमच्युमिति
प्रमाणंक्तत्वातल्लोकंगत्वातद्दासाभूत्वापुनः पुनस्ते जन्ममरणभाजोभवन्तु तदुक्तं
गीतायांयद्गत्वानिवर्तंतेतद्धामपरमंममेति अत्र परमंधामतल्लयस्थानंब्रह्मतदति-
रिक्तमसर्वस्यनश्वरत्वात्परमपदोपादानादमरंधामकिंचिदस्तितद्विष्णोः भोग्य-
स्थानं तत्चाप्यंतत्तदासागच्छन्ति वैदास्येसवःलयस्थानस्तुपरोक्ष्यलोकानिति
श्रुत्युक्तरीत्यासद्गुरुमाश्रित्याक्षत्रिमचैतन्यमात्रंशिवमेवाभिगच्छन्ति भागवते-
प्येकादशे ब्राह्मणाक्षत्रियाविश्याहरेः प्रामाः यदांतिकं श्रौतेनजन्मनावापिमुह्यं
त्याम्नायवादिन इति पदंब्रह्मतदन्तिकंतदधिकारमात्रेणप्राप्तास्तत्रनिः काम
स्वधर्माचरणेनब्रह्मात्मैक्यमनुभवन्तः तथाचदेवीभागवतेनारायणवाक्यं दुर्लभःमा-
नुषीजातिःसर्वजातिषुभारतेसर्वेभ्योब्रह्मणःश्रेष्ठःप्रशस्तसर्वकर्मसुब्रह्मनिष्ठोद्विजश्चैव
गरीयान्भारतेसति निष्कामश्चसकामश्चब्राह्मणोद्विविधःसति सकामोधंप्रधानश्च-
निष्कामोभक्तएवचकर्मभागोसकामश्चनिष्कामोनिरुपद्रवः स याति देहंत्यक्त्वाच-
पदंयत्तन्निरामयं पुनरागमनंनास्तितेषांनिष्कामिनांसति पुनस्तत्रैवसाविल्लौ
प्रतिधर्मोवाचवेदप्रणिहितोधर्मः कर्मयन्मङ्गलंपरं अवैदिकन्तुयत्कर्मतदेवाशुभमेवच
अहैतुकीदेवसेवासंकल्परहितासती कर्मनिर्मूलरूपाचसाएवपरभक्तिदाकोवा-
कर्मफलंभुंक्ते कोवानिर्लिप्तएव च ब्रह्मभक्तोयोनरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौजन्म-
मृत्युजराव्याधिसोकभीतिविवर्जितः भक्तिश्चद्विविधासाध्वीश्रुत्युक्तासर्वसम्मता
निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदान्टणाम् हरिरूपस्वरूपांचभक्तिंवांछन्तिवैष्णवा
अन्येनिर्वाणमिच्छन्तियोगीनोब्रह्मवित्तमा यदिपरधर्म्ममूर्ध्वपुण्ड्राद्यंत्यजादि-
धर्म्मादिकंनकुर्य्युः तदुक्तं लैंगे सेवकावासुदेवस्यतथैवनटमत्तकाः अन्ये च वैष्णवा-
स्तत्रसर्वेचक्रेनलांछिता इति तदातत्करणेविकर्मफलभोगाय नरकादिषुगमनं
दुर्वारंतत्साक्षात्कारेतत्सालोक्यादि प्राप्तिः सापिनिर्वाणेच्छा।दिति।दुच्छा तदुक्तं

मुंडके श्रीमन्त्रेषुकर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानित्रेतायांबहुधासंततानितान्याचरथनियतंसत्यकामाएषवः पन्थाःस्वकृतस्यलोकेयदालेलायतेह्यर्चिः स मिद्धेहव्यवाहनेतदाज्यभागवन्तरेण।हुतीः प्रतिपादयेत् २ यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथि बर्जितमहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमांस्तोकान् हिनस्ति ३ कालीकरालीचमनोजवाचसुलोहिताया।चसुधूम्रवर्णास्फुलिंगिनीविश्वरुची च देवीलेलायमाना इति सप्तजिह्वाः ४ एतेषुयश्चरतेभ्राजमानेषुयथाकालंचाहुतयोह्याददायन् तन्नयंत्येताःसूर्यस्यरश्मयोयत्रदेवानांपतिरेकोधिवासः ५ एह्येहीतितमाहुतयःसुवर्चसः सूर्यस्यरश्मिभिर्यजमानं वहन्तिप्रियांवाचमभिवदंतयोऽर्चयंत्यएषवः पुण्यः सुकृतोब्रह्मलोकः६ प्लवाह्येतेअदृढायज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषुकर्म्मएतच्छ्रेयोयेभिनंदन्ति मूढाजरामृत्युंतेपुनरेवाभियन्ति ७ अविद्यायामंतरेवर्त्तमानाः स्वयन्धीराःपण्डितंमन्यमानाः जघन्यमानाः परियन्तिमूढा अन्धेनैवनीयमाना यथान्धाः ८ अविद्ययावहुधा वर्तमानावयंकृतार्थारत्यभिमन्यंतिबालाः यत्कर्मिणोनप्रतिवेदयन्ति रागात्तेनातुराःक्षीणलोकाश्च्यवन्ते ९ इष्टापूर्तं मन्यमानावरिष्टंनान्यच्छ्रेयोवेदयन्तेप्रमूढाः नाकस्यपृष्ठेतेसुकृतेनुभूत्वेमंलोकंहीनतरंवाविशन्ति १० तपःश्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्येशान्ताविद्वांसोभैक्षचर्याञ्चरतः सूर्य्यद्वारेणतेविरजाः प्रयान्तियत्राऽमृतःपुरुषोह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥ परलोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायात् नास्त्यकृतःकृतेनतद्विज्ञानार्थंसगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥ तस्मैसविद्वानुपसन्नायसम्यक्प्रशान्त चित्तायशमान्विताययेनाक्षरंपुरुषंवेदसत्यंप्रोवाच तान्तत्वतोब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे अष्टमस्तरंग ।



## अथ नवमस्तरंगः।

तदेतत्सत्यम् इत्यादि श्रुतिभिःकर्मजफलंचस्वयंदेवविद्ययाकरोतितदेववीर्यं वत्तरम्भवति अचरंब्रह्मप्रसन्नमनुस्मरामः यत्र यत्रप्रणवस्यविनियोगः तत्र तत्रादौ त्रिविरूपं प्रणवस्यधारणमावश्यकं तदकरणे गर्भस्रावव्रत्कर्मस्रावः स्वफलवा-र्तेति तदपि तत्र विनियुक्तमन्त्रैर्धार्य्यमन्यथाफलंतत् तदुक्तं तत्रैव मन्त्रेषु यानि कर्माणीत्यादि श्रुत्यायदेवविद्ययेत्यत्रविद्ययात्र,मिनत्रानत्रयतत्रयस्य विनियोगः यस्य ऋषिःच्छन्दोदेवतादिस्तज्ज्ञानलोक्ताकर्मकार्य्यम् कर्मरूपत्वाद्ब्रह्मणोऽपि तदुक्तं मुण्डके द्वेविद्ये वेदितव्ये इति भस्मयद्ब्रह्मविदोवदन्तिपराचापराचेति अस्याभाष्यन्तत्रकापरेत्युच्यते ऋग्वेदोयजुर्वेदस्सामवेदोथर्वण इति शिक्षाकल्पो-व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषं इत्यादिः अथेदानीमोयं परविद्योच्यते यथा तदक्षमाणमक्षरमधिगम्यते ननु भस्मयःपिप्पलाद ऋषिरुक्तः ऋषिमन्त्रदृष्टेत्यु-क्तापिप्पलादोक्तोयंविधिःपौरुषय इति चेन्नाग्निरितिभस्मेत्यादि श्रुतीनांभस्मनि विनियोगदर्शनात् नन्वस्यामेवश्रुतौ व्रतमेतपाशुपतमिति पाठोपादात् शैवधर्मो यमितिचेन्नपशवोब्रह्मादि तृणस्थंन्ताज्जीवनि कायास्तत्पतिश्शिवस्तेन कृतमुक्तं वेति पौरुषेयत्वंदुर्वारं पशूनां जीवानां ये पाशाः कर्मादिषु तत्फलेषु च तत् लोकभोगेषु रागादयस्तेषांविमोचायनिश्शेषनाशायकृपया ऋषीन्पिप्पलादा-थर्वादीन्प्रतिचतुर्दशसूत्रीवदुक्तं कृतं च तेन शिष्टाचार प्रवर्तनायातःस्ववन्धन मोचनायाज्ञाननिवृत्यातद्विरोधिभासनाद्भास्मेति श्रुत्युक्तनिरुक्त्याभस्मज्ञानरूपं धार्य्यं शिवतोष जनकसदसद्धर्मप्रकाशनाय ननु व्याकरणादिशास्त्राध्ययनेन ज्ञानोत्पत्तिः किं भस्मनाशिवार्चनयावेति सत्यम् पदज्ञानात्पदार्थज्ञानमेवोत्-पद्यतेन प्रयोजनज्ञानम् प्रयोजनंतुसदसद्धर्मानुष्ठानपूर्वकनित्यानित्यवस्तुविवेकः सकलशास्त्राध्यापकानामपि विद्योत्कर्षवतां न सन्ध्याशिवार्चनादिषु परमपुरु-षार्थसाधनेषूत्पद्यते मतिस्तद्वहितेषूत्पद्यते केषुचित्नित्यानित्यविवेकश्च तथा च गरुड़पुराणे गरुड़प्रति कृष्णवाक्यम् तृणपर्णोदकाहारास्सततंवनवासिनः जम्बुकादि मृगाद्याश्चतापसास्तेभवन्ति किं इत्यादि बहूक्त्वा तस्मादित्यादिकं कर्मलोकरञ्जनकारकं मोक्षस्यकारणं साक्षात्तत्वज्ञानं खगेश्वर षड्दर्शनमह्य

कूपेऽतिमा: य इतस्ततः षड्र्मिनियद्दग्रस्तास्तिष्ठन्ति च कुताकिकाः बेदस्मृति पुराणज्ञ: परमार्थं न वेत्तिय: विड़म्बकस्तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितं इदंज्ञान-मिदं ज्ञेयमिति चिंतासमाकुलाःपठन्त्यहर्निशंशास्त्रम्परतत्वपराङ्मुखाः वाक्यं छन्दोनिबन्धेनकाव्यालंकारशोभिताः चिन्तयादुःखितामूढ़ाःतिष्ठन्ति व्याकुले-न्द्रियाः अन्यथापरमं तत्वं जनाक्लिश्यन्ति चान्यथा अन्यथाशास्त्रमज्ञाबोव्यात्व्यां कुर्व्वन्ति चान्यथा कथयत्युन्मनीभावं स्वयं नानु भवन्तिच अहंकाररताः केचि-दुपदेशादिवर्ज्जिताः पठन्ति वेदशास्त्राणिबोधयंतिपरस्परं न जानन्ति परंतत्व-न्दर्वीपाकरसं यथा शिरोवहति पुष्पाणि गन्धञ्जिघ्नन्ति नाशिका पठन्ति वेद शास्त्राणि दुर्लभोभावबोधकः न तत्वमात्म संज्ञात्वामूढ़श्शास्त्रेषु मुह्यति गोप कुक्षिगतेच्छागे कूपेपश्यति दुर्मतिः संसारमोहनाशायशाब्दबोधोनहिक्षमः न निवर्त्तुतिमिरं कदाचिद्दीपवार्तयाप्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य सुदर्पणं अतःप्रज्ञावतांशास्त्रं तत्वज्ञानस्य साधकम् इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वन्तच्छ्रोतु मिच्छसि दिव्यवर्षसहस्राणुश्शास्त्रान्तं नैवगच्छति । अनन्तानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयःतस्मात्सारम्विजानीयात्क्षीरं हंस इवोम्भसि अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्वं ज्ञात्वापि बुद्धिमान् पलाशमिव धान्यार्थीसर्वशास्त्राणि सन्त्यजेत् यथामृतेनतृप्तस्यन।हारेण प्रयोजनं तत्वज्ञस्यतथाताच्चंशास्त्रेण किं प्रयोजनम् न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्नशास्त्रपठनादपि ज्ञानादेव तु कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणं तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् मुक्तिदागुरुवागेकोविद्यास्सर्वा विड़म्बिकाः काष्टभार-सहस्रेषु ह्येकं सञ्जीवनं परम् अद्वैतं हि शिवःप्रोक्तंक्रियाया स निवर्ज्जितं गुरुवक्त्रेण लभ्येतनाधीतागमकोटिभिः आगमोक्तं विवेकोत्थं द्विधाज्ञानं प्रचक्षते शब्दब्रह्मागममयंपरब्रह्मविवेचकं इत्यादि कृष्ण वाक्यपर्यालोचनया चतुरशीतिलक्षयोनिषुभ्रमन्ननेनकजन्माबिवेक कृतसुकृत वशान्मानुषी-योनिमासातत्रापि ब्राह्मणयोनि प्राप्यगर्भाधानादि संस्कारं संस्कृता अधीत-शास्त्रा अपि अनन्याधिकारे निर्बाणमनाद्दत्यविष्णादि देवतासालोक्यादि प्राप्तयेयत्वभाजस्तर्हिअनेकजन्मसुकृतादिस्सर्वंस्यनितरांवैफल्यम् यतस्सालोक्यादि र्नजात्यादिकमपेक्षते निर्वाणस्तु ब्राह्मणेनियमितो गायत्री ब्राह्मण इत्यादि श्रुतिस्सागायत्री निर्वाणाधिकारायेव निर्वाणञ्च जीवश्शिवोजीव इति सोयमात्मा इत्यादि वाक्यपर्यालोचनया च शिवएवसभर्गंशब्दवाच्यस्तदुपलक्षिता गायत्री

वर्णाश्रमवोजभूतातांप्राप्यवर्णाश्रमीभूययज्ञैरिष्टा महादेवंस्मार्त्तैरपि सदाशिवं-
शुद्धस्य कर्मभिर्देवि ततो भूयादुपासनमित्युक्तोपासनाधिकाराय गायत्र्यास्तम
कालमारभ्ययस्मिन्कस्मिन्वाकालेपित्रादि दत्तपञ्चाचरादिवियांगृह्णीत्वोपासनां
कुर्यादुपासितश्शिवस्तयाप्रोतोवुद्धौनित्यानित्यवस्तुविवेकोदयं कुर्व्वन् स्वस्वरूप
सद्गुरुद्वारास्वयं विवृणुते तथाच श्रुतिः नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो न मेधया न
बहुनाश्रुतेनयमेवैष वृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुते तनुं स्वामिति विवेकस्तु
अज्ञानेपहृतेश्शिवोजीवोज्ञानध्वंसेपुनश्शिव एव भवितुमर्हतोति यथा मृदादुग-
पादानकोघटःघटाकारनाशे पुनःस्वोपादानमृदेव भवति स्वर्णं रत्नपाषाणं वा
नभवति विवेकशून्यास्तुवेदोक्त संस्कारसंस्कृता असंस्कृताश्चान्यदेवतोपासनांवहु-
मन्यमानातन्त्रोक्त नृत्यगोतादि कुर्वन्ती व्राह्मण्यं गर्हयन्तनिर्वाणदातारंशिवं
तदुपासनादिकं ज्ञानञ्चखण्डयन्तिते कुमार्गगा अन्धाएतेनैव परास्ताःतदुक्तं
कृष्णेन गरुड़म्प्रति सत्सङ्गश्चविवेकश्चनिर्मलं नयनद्वयं नास्तियस्यनरःसोन्धः
कथंनस्यादमार्गगःस्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताःसर्वमानवाःनजानन्तिपरंतत्वं वृथा
पश्यन्ति दाम्भिकाःक्रियायासपराः केचिद्ब्रह्मचर्यादि संयुताः अज्ञानसंवृतात्मानः
सञ्चरन्ति प्रतारकाः नाममात्रेण सन्तुष्टाःकर्मकाण्डर तानराःमन्त्रोच्चारण
होमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतु विस्तरैः एकभक्तोपवासाद्यैर्नियमैःकायशोषणैः मूढ़ाः
परोक्षमिच्छन्तिममायाविमोहिताः देहताड़नमात्रेण कामुक्तिरविवेकिनाम्
वल्मीकताड़नादेवमृतः कुत्र महोरगः जटाभाराजिनैर्युक्तादाम्भिकावेषधारिणः
भ्रमन्तिज्ञानिवल्लोकेभ्रामयन्तिजनानपिसंसारजसुखासक्ताब्रह्मज्ञोस्मीतिवादिनं
कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टान्तन्त्यजेदन्त्यजं यथा गृहारण्यसमालोके गतव्रीडादिगम्बराः
चरन्तिगर्दभाद्याश्चविरक्तास्तेभवन्ति किम् मृद्भस्मोद्धूलनादेवमुक्ताःस्युर्यदि मान
वाःमृद्भस्मवासीनित्यंश्वासर्किंमुक्तोभविष्यतीत्यादि कृष्णवाक्यैर्यैयस्तत्तद्धर्मतात्-
पर्यमज्ञात्वातत्र प्रवृत्तोऽविवेकित्वात्सर्वोदाम्भिकः यथागायत्रोदानतात्पर्य्यम-
ज्ञाविष्णुपक्षेयोजयन्ति गायत्रीन्तत्संस्कृता अन्त्यजाचोरनिरस्तोनिरयगामिनः
क्रमोक्षवार्तेति तदुक्तमन्वेषपूर्वं अन्यथाचास्थितं शास्त्रं व्याख्याकुर्वन्तिचान्यथे-
त्यादि ननु किमितिचेत् शिवतोषकवर्णाश्रमधर्म्मविहीनत्वात् शिवद्रोहित्वात्
चातएवनिरयगामिनस्तेतदुक्तं श्रुतौ एष एव साधुकर्म्मकारयति तपमूर्द्धं निनी-
षति एष एवासाधुकर्मकारयतितंयमधोनिनोषतीति तर्हिशिवेवैषम्यं नानाधि-
कारेप्रवृत्तस्यशास्त्रस्यापि वुद्धौविवेकोदयं न कारयतीति किन्तु यदेवकारयति

विकर्म्मजफलभोगावेति बुद्धौ शिवज्ञातविवेकोदयेतत्पूर्वकस्याधिकार प्रयुक्तनित्य कर्मानुष्ठानाच्छु द्धायांबुद्धौशुद्धस्वरूपदर्शनं तदेवनिर्वाणं यथा शुद्ध आदर्शो यथा स्थितस्वरूपं दर्शयति सङ्घर्षणक्रियया विकृतश्चेत्तर्हि शुद्धमपि मुखंवक्रं दर्शयति ननुकोसावनधिकारस्त्रैवर्णिकानामूर्द्ध्वपुंड्रादिः तर्हिब्राह्मणानां वैष्णवानामूर्द्ध्व-पुंड्रस्विधीयते अन्येषांतत्त्रिपुंड्रं तु ललाटे वैष्णवाविदुरितिवैष्णवधर्म्मशास्त्रोक्तिसङ्ग-तेति चेन्नासम्भवात् कोसावसम्भवःनात्रविशिष्यविशेषणभावः सम्भवति नापिद्वयो-र्ग्रहणंधर्मविरोधाद्धर्मभेदाच्चगायत्र्याब्राह्मणादिःसंस्क्रियेते विष्णुमन्त्रशंखचक्रादि नावैष्णवाःसंस्क्रियन्ते तत्रधर्मभेदो यथा सर्वंचास्खलितादेशोभवान्मिजगतोऽते अन्यत्रब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रत इति भागवतेपृथुपाख्यानेवैशाखमाहात्म्ये चतुर्थाध्याये ब्रह्माद्यादेवतासर्वा ऋषयोयेचवैष्णवातेम्हत्तन्तुमयादत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदमे इति रामानुजसंग्रहे ब्राह्मणोवैष्णवोवापिस्मशुधारोभवेद्यदिसजीवन्नेव चाण्डालोमृतेश्वाचाभिजायते इति भागवते एकादशे लक्षणवाक्यम् सूर्योग्नि-र्ब्राह्मणोगावोवैष्णवः खंमरुज्जलं भूरात्मासर्वभूताभद्रपूजापदानि मे इति देवी भागवतेनारायणवाक्यं नारदमाति कर्म्मणोवीजरूपस्य सततं तत्फलप्रदः ब्राह्मणावैष्णवाश्चैवसकामाःसर्वजन्मसु न तेषां निर्मलाबुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्ज्जिता इति शूद्राणांभस्मविधारणेमेसंशय ऊर्द्ध्वपुंड्रस्यविष्णूपासनायांनियमात् त्रैवर्णि-कानांब्रह्मोपासनं नियतं ब्रह्मगायत्री तत्रत्रिपुंड्रं श्रुत्युक्तं तदपि वर्णाश्रमनित्य धर्म्मत्वेन वैदिकमन्त्रैः तत्रयदि शूद्रोधिकृतस्तर्हित्रिपुंड्रस्य प्रणवमात्रात्मकत्वात् प्रणवस्य गायत्रीसहभावाद्वेदमन्त्रैर्धारणविधानात्सर्वस्यैतस्यशूद्रेभावादनधि-कारत्वाच्चासम्भवोऽथवाशूद्रस्यगायत्र्यादि संस्काराविधेया ब्राह्मणेषु विष्णुमन्त्रो र्द्ध्वपुंड्रादि संस्काराविधेया किञ्चवैष्णवमतेतेषामुपास्योयोविष्णुःसपदि ब्राह्मणे-र्वेदमन्त्रैःप्रतिमादिषु प्रतिष्ठितःसनदर्शनार्हीयोब्राह्मणस्तस्मिन्वेदमन्त्राःसाक्षात् सन्निर्ब्राह्मणैःप्रतिष्ठितःसऊर्द्ध्वं पुंड्रधरैरस्पृश्यस्तस्मिनूर्द्ध्वपुंड्रयोगस्यासम्भवः तथा हि चक्रादि चिह्नहीनेनस्थाप्यते यत्रकर्म्मणि न सान्निधं हरिर्यातिक्रियाकोटि शतैरपि अवैष्णवस्थापितानां प्रतिमानां च वन्दनं यः करोति स मूढात्मारौरवं नरकं ब्रजेत् तस्मात्त्रिपुंड्रं विप्राणां न धार्यं मुनिसत्तमाः यद्यज्ञानात्तं बिभ्रियुः पतितास्तेनसंशयः अवैष्णवस्तुयोविप्रश्चांडालादधमःस्मृतः नतेनसहभोक्तव्यमाप-द्यपि कदाचन इत्यादि धर्मशास्त्रेतुमत्स्यपुराणवाक्यं ८ अध्याये वर्जयेल्लिंगिनः सर्वान् श्राद्धकालेतुधर्मवित् एतदेवप्रतिष्टाप्रकरणे नैतद्विशेलेननतास्तिकेन न

लिंगिनास्थापनमत्रकार्यंविप्रेणकार्य्यंश्रुतिपारगे न गृहस्थधर्माभिरतेननित्यमि-
त्याद्येतंवैष्णवमतधर्मशास्त्रीयविरोधोदुःपरिहार्यः तस्मादित्थमित्यस्यसंगतिर्भवति
ये चक्राद्यंकनेनब्राह्मणाजाता अन्त्यजांस्ते गृह्यंते ये चक्ररहिताविष्णुमन्त्रोर्ध्वपुण्ड्र
धरास्ते वैष्णवायेतूभयहीनास्ते चाण्डालाब्रह्मसंस्कारसंस्कृतत्वात् तथाहि वैष्णव-
शास्त्रे चतुर्वेदी च योविप्रोवैष्णवत्वंनविंदति वेदभारभराक्रान्तस्सवैब्राह्मणगर्दभः
पाखण्डिनंचपतितमुन्मत्तंशवहारिणं अवैष्णवंद्विजंस्पृश्यसवासाजलमाविशेत् ।
इत्यादि किञ्चाधुनिका ब्राह्मणावृथावेदसंस्कारैःकन्यापुत्रादीन्संस्पृश्यपुनश्चक्रा-
द्यंकनेनब्राह्मणम्कुर्वन्ति किंचवेदमन्त्रे कस्मिंश्चिदपिनमृल्लिंगस्त्रियस्योर्ध्वपुण्ड्रे
विनियोगः ऋषिभिः न कृतःस्यादतएवकेशवादिद्वादशनामभिर्वैष्णवैर्ध्रियतेवेद-
मन्त्राणामूर्द्ध्वपुंड्रे विनियोगाभावादुक्तश्चैतदेवशूद्राधिकारात् तथाहि ऊर्द्ध्वपुंड्रं
ललाटे तु सर्वेषां प्रथमंस्मृतं केशवादिकमन्त्रेण धारणन्तु विधीयते इत्यादि
यद्यस्ति कुत्रचिन्मृल्लिङ्गं मन्त्रे तत्संस्कृतंमूर्द्ध्वपुंड्रं कथं वैष्णवैर्दासभूतैर्धार्य्यं वेद
संस्कृतस्य विष्णोरेवदर्शनादि निषेधात् यद्यस्तिकश्चिन्मंत्रस्तस्य लाभेमृद्धारणे
चारितार्थ्यात् किंचवेदमन्त्रैःसंस्कृतारामकृष्णादयोविष्णुश्च कथं वैष्णवैःपूज्या-
स्तस्मादसंस्कृतारामकृष्णादयोवैष्णवैः पूज्यन्ते इति तत्रापिद्वैविध्यं प्रतीयते
तन्त्रशास्त्रोक्तम् चातुर्वर्णिकैस्तु वेदसंस्कृताएवपूज्या तथाचमत्स्यपुराणे ८ अध्य.ये
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वाञ्छ्राद्धकालेतुधर्मवित् अतएव प्रतिष्ठाप्रकरणेच नैतद्विशी-
लेन न नास्तिकेन न लिङ्गिनास्थापनमत्रकार्य्यं विप्रेणकार्य्यं श्रुतिपारगेनगृहस्थ
धर्माभिरतेन नित्यम् इति नास्तिकोमनुनोक्तोयोऽवमन्यततेमूले इति श्लोकेन
तत्पूजादौभस्मवेदोक्तवेदमन्त्रैधार्य्यं त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मकं ननु त्रिपुंड्रशैवैर्धार्य-
मितिचेन्न पूर्वोक्तप्रणवरूपत्वात्सर्वैःप्रणवाधिकारिभिर्धार्य्यमियमजानन्तोयतय-
स्त्रिपुंड्ररुद्राक्षादिमहाभावेपिन बिभ्रति तेमन्दाःतद्विमनासर्वकर्मादौज्ञानप्रति-
पादकौपनिषत्स्वप्यनधिकारात् तदुक्तं मुण्डके क्रियावन्तःश्रोत्रिया। ब्रह्म-
निष्ठाःस्वयंजुह्वतएकऋषिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतांब्रह्मविद्यांवदेतशिरोव्रतंविधिव-
द्यैस्तुचीर्णमिति पुनःतत्सत्यमृषिरङ्गिरापुरोवाचनैतदःचीर्णव्रतोधीते इति
शिरोव्रतन्तुसत्याद्धर्मादपि कुलाद्भस्मनोद्धूलनादपि त्रिपुंड्रधारणाच्चैव सदा न
प्रच्युतोभवेत् सर्वांगोद्धूलनङ्कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयमिति शिरोव्रतमिदं नाम
शिरस्याथर्वणश्रुतेरिति सुधाकरे यो देवं सुचिरं शिरोव्रतपरोलिङ्गेस्थिरेवाचरे
विल्वैःपूज्यत्रिकालमेषनियतं ते नैव। तस्तप इति शिववाक्यं पार्वतीं प्रति

प्रथमे मुण्डकेऽथ द्वितीयखण्डे अथ भुसुंडो जावालोमहादेवं सांवंप्रणम्यपुनः पप्रच्छकिंनित्यं ब्राह्मणानां कर्त्तव्यंयदकरणे प्रत्यवैति ब्राह्मणःकः पूजनीयःको वाध्येयःकःस्मर्तव्यः कथंधेयःकस्थातव्यमेतद्ब्रूहिसमासेन तं सहोवाचप्रागुदया-न्निर्वर्त्य शौचान्हिकं ततःस्नायान्मार्जनं रुद्रसूक्तैः ततश्चाऽहतंवासःपरिधत्ते पाप्म-नोपहत्यै उद्यन्तमादित्यमभिध्यायन्नुद्धूलिताङ्गः कृत्वा यथा स्नानंभस्मस्नानं त्रिपुंड्रं च तेनैवरुद्राक्षास्तेनान्वैतत्रसमर्थस्तु तथाचान्येमूर्द्ध्नि चत्वारिंशच्छिखाया मेकंत्रयं वा श्रोत्रयोर्द्वादशकण्ठेद्वात्रिंशद्वाह्वोःषोड़शद्वादशमणिवन्धयोःषट् षट् कर्णयोस्ततःसन्ध्यांकुर्य्यादहरहः सन्ध्यामुपासीत अग्निर्ज्योतिरित्यादिभिरग्नौ-जुहुयात् शिवलिङ्गन्त्रिसन्ध्यमभ्यर्च्य कुशेष्वासीनोध्यात्वा सांवंमामेव वृषभारूढ़ं हिरण्यवाहुं हिरण्यरूपं हि पशुपाशविमोचकं पुरुषं कृष्णपिङ्गलं ऊर्द्ध्वरेतसंवि रूपाक्षं इत्यादि वहुवाक्यानि सन्तितदेवं चातुर्वर्ण्यैर्भस्मधारणमप्रमादेन कार्य्यं तत्र ब्राह्मणैर्विशेषतोधार्यम् तथाच जाबालोश्रुतिः अथजावालोभुशुण्डिःकैलास शिखरमोंकाररूपिणं सुमादेहार्धधारिणं हरिविरिञ्चि पुरन्दरमुखसुरसेवितं स्तूयमानमनन्तैरपि वेदैर्मूर्तिधरैःसोमार्द्धकृतशेखरं सोमसूर्याग्नि नयनमनन्ते-न्दुरविप्रभंव्याघ्रचर्मपरीधानम्मृगहस्तंभस्मोद्धूलितविग्रहं तीर्यक्त्रिपुंड्ररेखाविरा-जमानभालप्रदेशन्तंस्मितपूर्णं पञ्चविधपञ्चाननं वीरासनारूढ़मप्रमेयमनाद्यन्तं निष्कलं निर्गुणंशान्तं निरञ्जनंमनामयंहुंफट्पूर्व्वंशिवनामानिशमुच्चरन्तं दुर्नि-रीक्ष्यं हिरण्यवाहु वाहुंहिरण्यरूपं हिरण्यवर्णं हिरण्यनिधिमद्वैतं चतुर्थमेक-मनाशास्यं भगवन्तं प्रणवंशिवंप्रणम्यमुहुर्मुहुरभ्यर्च्य श्रीफलदलैःसितेनभस्मना-स्नातोत्तमांगः कृतांजलिपुटःपप्रच्छ अधीहिभगवन् वेदसारमुद्धृत्यत्रिपुंड्रविधिं यस्मादन्यानपेक्षमेवमोक्षोपलब्धिः किंभस्मनोद्रव्यं कतिस्थानानिमनवोऽप्यस्यकेवाकतिवातस्यधारणंकेनातवाधिकारिणो नियमास्तेषांकेवासानन्तेवासिनमनु-शासयमोक्षमिति जाबालेन पृष्टोभगवान्भस्मद्रव्यादुग्रज्ञातद्धारणविधिंच सम्प्र-दर्श्य तत्रावश्यकतामाह एवं भस्मधारणमकृत्वानश्नीयादपोऽन्नमन्यद्वान्यदपि प्रमादात्यक्त्वाभस्मधारणमगायत्रीष्नपेन्नजुहुयादग्नौ न तर्पयेदेवान्नृषींश्चपितृनय-मेवधर्मःसनातनःसर्व्वपापप्रणाशकोमोक्षहेतुर्नित्योयन्धर्मो व्राह्मणानां ब्रह्मचारी गृहीवानप्रस्थयतोनामेतदकरणेप्रत्यवैतिब्राह्मणः अकृत्वाप्रमादेनैकदैतदष्टोत्तर सहस्रङ्गायत्रीञ्जलमध्येजप्त्वोपोषणेनैकेन शुद्धोभवति यतिस्त्यक्त्वैकदाभस्म धारणमुपोष्यद्वादशसहस्रं प्रणवं जप्त्वा शुद्धोभवति अन्यथावायसशालावृकमुखे

परेतः पतितोभवति इति अथ चतुर्थ ब्राह्मणोक्तविधिः एतानितानि शिवमन्त्र पवित्रितानि भस्मानिकामदहनाङ्गविलेपनानित्रिपुंड्रकानिरचितानि ललाट पट्टे लुम्पन्तिदैवलिखितानि दुरक्षराणि श्रीकरञ्चपवित्रञ्चशोकरोगनिवारणम् लोकेवश्यकरंपुण्यंभस्मत्रैलोक्यपावनंत्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं विभुं स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुंड्रकं ईशानाभ्यां नमेतुग्रक्षापार्श्वयोश्चत्रिपुंड्रकं भुजानां नम इतुग्रक्ताधारयेतुप्रकोष्टयो कूर्पराधःपिठभ्यां च उमेशाभ्यांततोपरिभोमायेतोतरपृष्टेशिरसः पश्चिमेतथानीलकण्ठायशिरसिक्षिपेत्सर्वात्मनेनमः पापनाशयतेकृत्स्नमपि जन्मशतार्जितं कण्ठोपरिकृतं पापंनष्टंस्याङ्गस्मधारणात् कण्ठे च धारणात्कण्ठभोगादि कृतपातकं बाह्वोर्बाहुकृतं पापंवक्षस्मु मनसाकृतं नाभ्यांशिश्नकृतं पापंपृष्टे गुदकृतं पापं तथापार्श्वयाधारणात्पापंपरस्त्र्यालिङ्गनादिकम् तद्भस्मधारणं मुख्यं सर्वत्रैवत्रिपुंड्रकं ब्रह्मविष्णुमहेशानान्त्रय्यग्नीनाञ्चधारणम् गुणलोकत्रयाणांचधारणंतेनवैकृतमिति बृहज्जाबाले सर्वकर्मादौभस्म न आवश्यकत्वमुक्तम् कालाग्निरुद्रोपनिषद्यपिध्यानकृदेवानजलेरांगद्वेषमलापहेयः स्नात्वामानसेतीर्थे स तीर्थफलमाप्नुयादित्यत्रापि भस्मन आदित्यमुक्तम् तथाच जाबालुपनिषद्यपि ओं आपद्यायत्वेति शान्तिः ।

इतिनिर्म्मालयरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे नवमस्तरंगः ।



## अथ दशमस्तरंगः ।

ॐ अथ हैनं भगवन्तं जाबालिं पैप्पलादिः पप्रच्छभगवन्मेब्रूहि परमतत्वरहस्यं किं तत्वं को जीवःकःपशुः कईशःकोमोक्षोपाय इति सतंहोवाच साधुपृष्टं सर्वंनिवेदयामि यथाज्ञातमितिपुनःसतमुवाचकुतस्त्वयाज्ञातमिति पुनःसतमुवाच कथं तस्मात्तेन ज्ञातमिति पुनःसतमुवाचतदुपासनादिति पुनःसतमुवाच भगवन्कृपयामेसरहस्यं सर्वंनिवेदयेति स तेन पृष्टःसर्वं निवेदयामासतत्वं पशुपतिरहंकाराविष्टःसंसारीजीवः स एव पशुःसर्वज्ञःपञ्चकृत्यसम्पन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः केपशव इति पुनःसतमुवाच जीवाःपशव उक्तास्तत्पतित्वात्पशुपतिः

सपुनस्तं होवाचकथं जीवाः पशव इति कथं तत्पतिरिति सतमुवाच यथा तृणाशिनोविवेकहीनाः परप्रेष्याः कृष्यादिकर्मसुनियुक्ताः सकलदुःखसहाः स्वस्वामिभिर्बध्यमानागवादयः पशवः यथा तत्स्वामिन इव सर्वेश ईशपशुपतिः तत्ज्ञानञ्चेयोपायेन जायन्तेपुनःसतमुवाचविभूतिधारणादेवतत्प्रकारःकथमिति कुत्र कुत्र धार्य्यंपुनमतमुवाच सद्योजातादिपञ्चब्रह्ममन्त्रैःभस्मसंगृह्याग्निरिति भस्मेत्यनेनाभिमन्त्रमानस्तोक इति समुद्धृत्यजलेन संसृज्यत्र्यायुषमिति शिरोललाटवक्षस्कन्धेष्वितितिसृभिस्त्र्यायुषैस्त्र्यम्बकैस्तिस्रोरेखाः प्रकुर्वीत व्रतमेतच्छाम्भवम् सर्वेषु वेदेषु वेदवादिभिरुक्तं भवतितत्समाचरेन्मुमुक्षुर्नपुनर्भवाय अथ सनत्कुमारःप्रमाणंपृच्छतित्रिपुंड्रधारणस्यत्रिधारेखा आललाटादाचक्षुषोराभ्रुवोर्मध्यतत्रयास्य प्रथमारेखा सागार्हपत्यश्चाकारोरजभूर्लोकःस्वात्माक्रियाशक्तिर्ऋग्वेदःप्रातःसवनंप्रजापतिर्देवोदेवतेति यास्यद्वितीयारेखासादक्षिणाग्निरुकारःसत्वमन्तरिक्षमन्तरात्माचेच्छाशक्तिर्यजुर्वेदोमाध्यंदिनंसवनं विष्णुर्देवोदेवतेति यास्य तृतीयारेखासाहवनीयोमकारस्तमोद्यौर्लोकःपरमात्माज्ञानशक्तिःसामवेदस्तृतीयं सवनं महादेवोदेवतेतित्रिपुंड्रं भस्मनाकरोतियोविद्वान् ब्रह्मचारीगृहीवानप्रस्थोयतिर्वासमस्तमहापातकोपपातकेभ्यःपूतोभवति सर्वान्वेदानधीतोभवति स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातोभवति स सकलरुद्रमन्त्रजापीभवति न स पुनरावर्ततेन स पुनरावर्तते इति ॐ सत्यमित्युपनिषद् भस्मरुद्राक्षयोर्बृहज्जाबालादुक्तरीत्याविधान सहभावेपि मैत्रायण्युपनिषदुक्तं प्रदर्शतिसमन्त्रकवक्रादिरुद्राक्षधारणमुक्ता यत्र यत्र कर्मादौरुद्राक्षधारणस्यावश्यकतान्याह स्नाने दाने जपे होमेवैश्वदेवेसुरार्चने प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धेदीक्षाकालेविशेषतः अरुद्राक्षधरोभूत्वायत्किंचित्कर्मवैदिकं कुर्य्याद्विप्रस्तुयोमोहात्सचनाप्नोति तत्फलमिति य एवम्विद्वान्ब्रह्मचारीगृही वानप्रस्थोयतिर्वाधारयेत् पदेपदेऽश्वमेधफलमाप्नोतीत्यादि एतांस्बौधायनशाखायां श्रूयते तानिरुद्राक्षाणि यत्र यत्र योवेदानधारयति यःस्नातिवाधारयेत् गच्छन्स्तिष्ठन्स्पृशन्स्वादन्जिघ्रन्निव सर्वाण्येनांसितरतिरुद्रोभूत्वारुद्रोभवतीत्यादि रुद्रोपनिषत् अथर्वशिरोपनिषद्यपि रुद्रोद्दिश्याश्वतेन पुराणेनेषमूर्जेनतपसानियताग्निरिति भस्मवायुरिति भस्मजलमिति भस्मस्थलमिति भस्मसर्वंहवा इदं भस्मव्योमिति भस्मसर्वंहवा इदं भस्ममन एतानि चक्षूंषियस्माद्व्रतमिदं पाशुपतं यत्भस्मनांगानि संस्पृशेत्तस्माद्व्रतमेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षणायेत्येवमेवाथर्वशिरो ब्राह्मणोप्यस्ति

आपोदेविः प्रतिगृभ्णीतभस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳसुरभाउलोके। तस्मैनमन्तां जनय:सपत्नीर्मातेव पुत्रं विभृताप्स्वेनत्॥ य० सं १२ अ० ३५ मं० अथका० १६ ॥ ६ ॥२६ ॥ पलाशपुटेनापोदेवीरितिऋचयाग्नीवाहनानन्तरं तड़ागादि जलस्थानं गत्वा।वटादि पत्रपुटेनसायंप्रातरुखाया:सकाशादुद्धृतंयद्भस्मास्तितदेकया ऋचावलेचिपेदिति सूत्रार्थः अब्देवत्यात्रिष्टुप्। हे आपोदेवि दिव्य दीव्यमाना: भस्मयूयंप्रतिगृभ्णीत् स्वागतादिभिः प्रतिगृह्णीत किञ्चस्योनेसुखावहे सुरभौ पुष्पधूपादिशोभनगन्धयुतेलोकेस्थाने एतद्भस्मकृणुध्वं कुरुध्वम् कञ्कृतौस्वादि उपादपूरणः। किञ्चशोभनः पतिर्यसांता:सुपत्न्यः आपोवरुणस्य पत्न्यः आसन्निति श्रुत्यन्तरात्। जनयन्त्यग्निमुत्पादयन्त्यो हचोत्पत्यादिद्वारेजनय:सुपत्नीर्जनयोभवत्यस्तस्मैभस्मरूपायाग्नयेनमन्तांप्रतिगृह्णोभवन्तु किञ्चहे आपएनद्भस्म अप्सु स्वात्मनि यूयंविभृतधारयत मातापुत्रमिव यथा मातापुत्रं स्वात्मनि धारयति तद्वत्पालयत ३५॥ प्रसद्यभस्मनायोनिमपश्च पृथिवीमग्नेसꣳसृज्यमातृभिष्टूं ज्योतिष्मान्पुनरासदः॥ ३८॥ संज्ञानमसि कामधरणम्। मयिते कामधरणम् भूयात्। अग्नेर्भस्मास्यग्ने:पुरीषमसि। चित्तस्थपरिचित्त ऊर्द्धचित्त:श्रयध्वम्॥ ४६॥ पुरीष्यासो अग्नय:प्रावणेभिः सजोषं स.जुषन्तांयज्ञमद्रुहोऽनमीवारिषोमही:॥५०॥ अग्ने त्वं पुरीष्योरयिमान्पुष्टिमाꣳ। असि शिवा: कृत्वा दिश: सार्व्वा:स्वंयोनिमिहासदः तैत्तरीय संहिताभाष्ये कां २ प्र० ४ अ० १ मं० ७ भस्मनाभिसमूहति स्वगाकृत्या अथोअनयोर्वाएष गर्भोनयोरेवै नन्दधाति यजुर्वे० कृ० तै० ७मं भाष्यम्। अथविधत्ते भस्मनाभि समूहति स्वगाकृत्या अथो अनयोर्वाएषगर्भोऽनयोरेवैनन्दधाति ॥ ७॥ इति कथं नामद्यावापृथिवीभ्यां गर्भोऽयमात्मसात्क्रियतेतिविचार्य्यतस्यैस्वगाकृत्यैशीतेन भस्मनागर्भमाच्छादयेत् किञ्चएषगर्भोऽनयो: (द्यावापृथिव्योरेव) समुत्पन्न: अत अनेनमन्त्रेण भस्माच्छादनेसति अनयो:द्यावापृथिव्यो: एनंगर्भंस्थापयतीति चतुर्थाष्टकेद्वितीय प्रश्न: आपोदेवी प्रतिगृह्णीतभस्मैतत्स्योनेकृणुध्वꣳसुरभाउलोके तस्मै नमन्तांजनेय:सपत्नीर्मातेवपुत्रं विभृताप्स्वेनत् अप्स्वग्नेसधिष्टवसौषधीरनुरुध्यसेगर्भेसजायसेपुन:गर्भो अस्योषधीनांगर्भोवनस्पतीनांगर्भो विश्वस्यभूतस्याग्नेगर्भो अपामसि प्रसद्यभस्मनायोनियमश्च पृथिवीमग्नेसꣳसृज्यमातृभिस्त्वं ज्योतिष्मान्पुनरासद:पुनरासद्यसदनमयश्च पृथिवीमग्नेशेषेमातुर्यथोपस्थेंतरस्याꣳशिवतम:पञ्चमाष्टकेद्वितीयप्रश्न: अपचितिमान्भवति य एवं वेदसमिधाग्निन्दुवस्यतेति धृता:

नुषिक्ताभवसितेसमिधमादधाति यथातिथय आगतायसर्पिष्मदातिथ्यं क्रियते ताद्दगेवतद्गायत्रेि या ब्राह्मणस्यगायत्रोहिब्राह्मणस्त्रिष्टुभाराजन्यस्यत्रैष्टुभोहि राजन्योप्सुफलप्रवेशयत्यप्सुयोनिर्वा अग्निःस्वमेवेनं योनिगमयतितिसृभिः प्रवे-शयतित्रिवृद्वाग्निर्यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठांगमयति पराबाएषोग्निंवपतियोप्सु भस्मप्रवेशयति ज्योतिष्मतीभ्यामवदधाति ज्योतिरेवास्मिं दधातिद्वाभ्यांप्रतिष्ठे-त्यैपराबाएष प्रजाऽपशून्वर्यतियोप्सुभस्मप्रवेशयति पुनरुर्जासद्दाप्येति पुनरु-देति प्रजामिवपशूनात्मं धत्तेपुनस्त्वादित्या इत्यापस्तंवशाखायामुक्तं . तथाच शांख्यायनगृह्य सूत्रे भस्मधारणंव्रतादेशेत्र्यायुषंपञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं ललाटे हृदयेदक्षिणस्कन्धेवामेततः पृष्टेचपञ्चसुभस्मनात्रिपुंड्रंकरोति इति ऋग्वेदेशिव रहस्येऽष्टमांशेध्याये ॥ ८ ॥ कश्यपवाक्यंगरुड़म्प्रति जाबालैर्नितरामुक्तं भस्मपाप भयापहंभस्मसुक्तिप्रदंत्वाद्यप्रसादकरणंमहत्योभस्मरहितोविप्रः स एवश्वपचो-न्त्यजः सनित्यसूतकीभूयाद्भस्मधारणवर्जितः तेनाधीतंतथैवेष्टंजप्तं सर्व्वंचनिष्फलं आमनंतिसदाभस्मश्वेताश्वतरशाखिनः आमनन्तिसदाभस्मअथर्वशिरसिस्थिताः आमनन्ति सदाभस्मबृहज्जाबालशाखिनःमुनयोभस्ममाहात्म्यंवदन्ति बहुधा-द्विजमुनयोब्रह्मविष्णवाद्याभस्ममाहात्म्यवेदिनः देवैस्सदैवसुधृतंभस्मेदम्पावनंपरम् ब्रह्मणाविष्णुनेन्द्रेणधृतंरुद्रैस्सदेवहिदेवैस्सोभिर्धृतंभस्मसर्व्वदातत्त्रिपुंड्रवत् देव्या च गणपेणैवस्कन्देन च धृतंपरंज्ञानांगत्वेन कथितंसर्व्वदापावनंपरं श्रौतंत्रिपुंड्र-मेवेदन्त्यक्त्वातन्नरकं व्रजेत् ऊर्ध्वपुंड्रंमृदाकुर्व्वन् द्विजोपिश्वपचाधमः ऊर्द्ध्वपुंड्रं भ्रमेणापि नेवकुर्य्याद्विजस्सदा अश्रौतमूर्द्ध्वपुंड्रंस्यान्नधार्य्यंसर्व्वथाद्विजैः ऊर्द्ध्वपुंड्रेणयःकुर्य्याच्छिवलिंगस्यपूजनं सपापभाग्भवत्येवनात्रसंदेहकारणं शिवप्रसाद जनकंभस्मधारणमुत्तमंयोभस्मधारणंत्यक्त्वाम्रदोर्द्ध्वपुंड्रधृग्नरःसनरोजारजोविप्रः सएवश्वपचाधमः भस्मनापूतभालोयस्सतपस्वीसतुद्विजः भस्मधृक्पूयतेपापैर्मह-द्भिरपि कत्स्नशः भस्मफालत्रिपुंड्रांकंदृष्ट्वाभीतोयमस्सदा पञ्चाचरेणयोभस्म अभि-मन्त्र्यैवधारयेत् आर्द्रैःशुष्कैस्तथापापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः भस्मैवपरमंपुण्यं पावनं ज्ञानभास्करंयोविनिन्दतिभस्मेदंसतिर्य्यक्योनिमाप्नुयादिति सर्व्वंकर्म्मादौ भस्म-धारणस्यावश्यकत्वप्रतिपादिकाः स्मृतयो यथा विभूतिधारणंत्यक्त्वायःसत्कर्म्म-समाचरेत् तत्कृतंचाकृतप्रायोभवत्येव न संशयः नगायत्र्युपदेशोपि भस्मनो धारणंविना ततोधृत्वैवभस्मांगेगायत्रीजपमाचरेत् गायत्रीमूलमेवाहुर्ब्राह्मण्यं मुनिसत्तमाःसाभस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते न तावदधिकारोस्तिगायत्र्यो

ग्रहणेनृप यावन्नभस्म भालादौधृतमग्निसमुद्भवम् यथोपवीतरहितैस्संध्या न क्रियतेद्विजैः तथा सन्ध्या न कर्तव्याविभूतिरहितैरपि गतोपवीतैस्सन्ध्यायांकार्यं प्रतिनिधिः क्वचित् विभूति धारणात्त्वन्योनास्ति प्रतिनिधिः क्वचित् विभूति धारणंत्यक्त्वायदि सन्ध्यांकरोति यः प्रत्यवैतैव तेनासौनाधिकारीतदाद्विजः यथाश्रुधृत्यांत्यजोवेदान्प्रत्यवैति तथाद्विजः प्रत्यवैतिनसन्देहः सन्ध्याकृत्स्नस्स वर्ज्जितः संपादनीयंयत्नेनश्रौतभस्मसदाद्विजैः स्मार्त्तं वातदभावेतुलौकिकं वासमाहितैःयाहृगन्ताहृग्वंवास्तुपवित्रं भस्मसन्ततम् धारणीयंप्रयत्नेन द्विजैः सन्ध्यादिकर्म्मसु अनन्तैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यतेद्विजैः ततोनन्तगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते कालत्रयेपिकर्त्तव्यंभस्मस्नानंप्रयत्नतः भस्मस्नानंयतः श्रौत-न्तत्त्यागीपतितोभवेत्नसंविशंति पापानिभस्मनिष्टे ततःसदा कर्त्तव्यमतियत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणमितिननुयत्कृतं भस्मनिष्टेन श्रीमहादेवपूजनं तत्सर्वाभीष्टदं यस्मात्कर्तव्यंभस्मधारणम् विनाभस्मत्रिपुंड्राभ्यांविनारुद्राक्षमालया पूजितोपिम-हादेवोनतस्यफलदोभवेदित्यादिवाक्यजातपर्य्यालोचनया शिवपूजादावेवभस्म धारणस्यावश्यकताप्रतीतिरितिचेत्तर्हिकर्मादौभस्मन अवश्यकताविधायकवाक्य वैयर्थ्यंदुर्वारमेवतर्हितदेवविधानमस्तु शिवपूजादावपिपुनर्विधानवैयर्थ्यमितिचेन्न अङ्कितः शंखचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयोः समर्चयेद्धरिं नित्यंनान्यथापूजनंभवेत् सर्वकर्माधिकारश्चशुचीनामिवचोदितः शुचित्वंतुविजानीयान्मदीयायुधधारणात् शंखचक्रादिभिश्चिन्हैर्विप्रःप्रियतमोहरेः रहितःसर्वधर्म्मेभ्यःप्रच्युतोनरकं व्रजेत् इत्युक्तं हरिर्भक्तिविलासे तस्मात्विष्णुपासनायामिव शंखचक्रादितदायुधा-कारचिह्नधारणस्यैवावश्यकताविधानदर्शनाच्छिव पूजायासपितदायुधत्रिशू-लादिचिह्नधारणमेवयुक्तमितिसंभ्रमनिवारणायनकुर्य्याद्देवताचिह्नमिति निषे-धाच्छिव पूजादावपिपुनर्भस्मधारणविधायकशाक्यावतारः सुसाधुरेवेति भस्म धारणहीनोयः शिवलिंगंसमर्चयेत्नतस्यपूजां गृह्णातिमहादेवः पराङ्मुखः भविष्यति न सन्देहः प्रत्युतप्रत्यवैतिचेति शिवरहस्ये अष्टमांसे गरुड़प्रति-कश्यपवाक्यम् ब्राह्मणस्तुसमुद्धूल्यत्रिपुंड्रंधारयेत्ततः क्षत्रियस्तथावैश्यःशूद्रश्चो द्धूलनंत्यजेदिति सिद्धान्तागमेईश्वरेणतुशूद्रोस्योद्धूलनंवर्ज्यंमितीश्वर संहिताया मुक्तम् प्रयोगपारिजातेतुविशेषः धार्य्यंभस्मत्रिपुंड्रंतुगृहिणाजलसंयुतं सर्व्वकालं भवेत्स्त्रीणां यतीनांजलवर्जितम् वानप्रस्थस्यकन्यानांदीक्षाहीनन्नृणां तथा मध्याह्नात्प्राक्जलैर्युक्तं परतोजलवर्ज्जितम् मध्यांगुलित्रयेणैवस्वदक्षिणकरस्य

च त्रिपुंड्रं धारयेद्विद्वान्सर्व्वकल्मषनाशनमिति स्मृतिरत्नावल्यामपि मध्यमानामिकांगुष्ठै रनुलोमविलोमतः अतिक्रान्तमनायुष्यमतिदीर्घंतपः क्षयं नेत्रयुग्मप्रमाणेनत्रिपुंड्रं धारयेद्द्विज षड़ंगुलप्रमाणेनवा ब्राह्मणानांत्रिपुंड्रकं नृपाणां चतुरङ्गुलं वैश्यानाद्व्यंगुलं तथा शूद्राणामथसर्वेषामेकांगुल्यं त्रिपुंड्रकमिति इति भस्मधारणं इति भस्मधारणंस्मृतिषुशिवरहस्येऽष्टमांशे ८१ ध्याये गरुड़उवाच गरुड़स्यवचः स्तुत्वाकश्यपः प्राहतंपुनः विनतातनयंदृष्ट्वाविनीतंनियतोमुनिः शिवप्रसादजनकं भस्मनोमहिमांवद कश्यपोवाच भस्माभ्यक्ततनुर्नित्यं पूजयेदिन्दुशेखरंभस्मधारणहीनानांप्रसादोनैवशांभवः भवेज्ज्ञस्यतेप्वेव द्विजस्यापिविशेषतःभस्मधारणहीनानांज्ञानंनैवोपजायते ज्ञानांगलेमिदं भस्मदृष्टमोक्षेनमुक्तिदं भस्मभस्मेतियोब्रूयात्ससततापैर्विमुच्यते भस्मनापादपर्य्यंतंयः स्नातिनियतंसदा सतुसन्तरतेघोरं संसारंदुःखदंनरः द्विजोवर्णीगृहस्थोवायतीर्वापिवनाश्रमी त्रिकालंभस्मनिरतोदेवदेवप्रसादभाक् भस्मस्नानविहीनात्माकृत्वाकर्माण्यपिद्विजः नवैतत्फलमाप्नोतिकुर्वन्नुयत्किञ्चिदप्यहोमित्यवैतिद्विजोवापिभवत्येवनसंशयः भस्मप्रभावो वेदान्तैस्सर्व्वदाप्रतिपाद्यते अथर्वशिरसिस्वैरम्भस्मप्रोक्तंहिपावनं १० शिरोव्रतमिदंभस्मस्नानमापादमस्तकं अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः स्नात्वापापैःप्रमुच्यते ११ योवाकोवांत्यजोवापि नित्यं भस्मतनुर्भवेत् समहेशप्रादस्यपात्रंभवति निश्चितं द्विजोवाप्युत्तमाचारोभस्मस्नानविवर्ज्जितः योभस्मधारणंदृष्ट्वानाभिनंदतिदुर्मतिः १३ तस्योत्पत्तौचसांकर्यमनुमेयंविपश्चिता यतिर्वेदांतनिष्ठोपिभस्मधारणवर्ज्जितः १४ पठन्वापाठयन्वापिनैवभज्ज्ञानमाप्नुयात् जीवात्मैक्यंपरंज्ञानंभस्मस्नानेनजायते १५ भस्माभ्यक्ततनुर्नित्यंत्रिपुंड्रपरिचिन्हितः सतपस्वीसदानर्हःसर्व्वकर्माहकोभवेत् १६ त्रिनेत्रदययापात्रपवित्रोभवतिध्रुवं मित्रभूतःसुराणांच भवत्येवनसंशयः १७ भस्मधारणहीनोयःशिवलिंगंसमर्चयेत् नतस्यपूजां गृह्णाति महादेवः पराङ्मुखः १८ ।

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धेदशमस्तरंगः ।



# अथ एकादशस्तरंगः ।

अथ पुराणधाक्यानिलिख्यंते सनत्कुमार उवाच श्रुत्वा तेभगवन्धर्म्मान्सद्व-
क्त्रान्मुक्तिहेतवः येर्मुक्तपापामनुजास्तरिष्यंतिभवार्णवं अथापरंमहाधर्म्म-
माख्याय संमहत्फलं ब्रूहिकारुण्यतोमह्यं सद्योमुक्तिप्रदंनृणां भायासबहुला-
धर्म्माःशास्त्रे दृष्टासहस्रसः सम्यक्सेविताकालात्संसिद्धिंयच्छन्तिवानवा अतोलोके
कथितं गुह्यं मुक्तिभुक्तेयसाधनं धर्मविज्ञातुमिच्छामित्वत्तोहंपरमेश्वरः श्री-
रुद्रोवाच सर्वेषामपि धर्म्माणामुक्तं च श्रुतिचोदितं रहस्यं सर्वजन्तूनां यत्रिपुंड्रस्य
धारणं सनत्कुमारोवाच त्रिपुंड्रस्यविधिंब्रूहिभगवज्जगतांपते तत्वतोज्ञातु
मिच्छामित्वत्प्रसादान्महामुने कतिस्थानानि किंद्रव्यंकाशक्तिःकाचदेवता किं
प्रमाणंचकः कर्ताकिमन्त्रा अस्य किंफलं एतत्सर्वमशेषेण त्रिपुंड्रस्य च लक्षणं
ब्रूहि मे जगतां नाथलोकानुग्रहकाम्यया श्रीरुद्रोवाच आग्नेय मुच्यतेभस्मदग्ध-
गोमयसम्भवन्तदेवद्रव्यमित्युक्तं त्रिपुंड्रस्य महामुने सद्यादिभिर्ब्रह्ममयैर्महा-
मन्त्रैश्च पञ्चभिःपरिगृह्याग्निरित्यादि मन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत् सर्वदासर्वकालेषु
भस्मधृक्पावनःशुचिः यःस्नातिस्नानदशके विद्याबुध्यापिमानवः भस्मस्नानाद्धि-
निर्मुक्तःसोभुविसर्वकर्म्मणि ॥ २० ॥ पवित्रतरमेतद्वै भस्मैवमुनिचोदितं श्रौता-
नलोद्भवं भस्ममहापापनिवर्त्तकं ॥ २१ ॥ मुक्तिदं ज्ञानदं पुंसामग्निरित्यादि
मन्त्रितं भस्मधृत्वैवसन्ध्यायामधिकारोनसंशयः ॥ २२ ॥ अधृत्वायदितद्भस्मसन्ध्या-
ङ्कुर्याद्द्विजाधमःभस्मधृत्वापुनःसन्ध्यामाचरेत्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ २३ ॥ आद्ययज्ञ-
स्तथाहोमोविवाहोपनयनादिकं देवताभ्यर्चनंनित्यङ्काम्यंस्वाध्यायतर्पणं ॥ २४ ॥
सर्वं भस्मधृक्चैवाशु सर्वेषांफलमश्नुते स तपस्वीसदापात्रं सर्वान्सन्तारयेन्नरान्
॥ २५ ॥ भस्मधारणमात्रेण दुःखन्तरति मानवाः अशुचिर्भिन्नमर्यादोभस्मधृक्-
पावनोभवेत् ॥ २६ ॥ अभक्ष्यभक्षणं कृत्वा गत्वा गम्यामपि द्विजः भस्मनस्नान
मात्रेण सर्व्वपापै प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ वराहं मूषिकं वालं उन्मत्तं श्वानरासभौ
स्पृष्ट्वादृष्ट्वाद्विजोनित्यं भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ २८ ॥ उदक्यांसूतकींदृष्ट्वाय:
स्नातिशिवभस्मनाभस्मस्नानेन पापानांराशिर्भस्मसाद्भवेत् ॥ २९ ॥ भस्मधृक्
सर्व्वदापूज्यो यथा शिवमयोहि सः सन्ध्ययोरथमध्याह्ने निशीथे भस्मधृग्भवेत्

तेनदत्तं जलंपत्रं सदाग्टह्णाति शङ्करः हव्यं ग्टह्णन्ति च सुराःकव्यंपितृगणास्तथा भस्मधारणमात्रेण शिवस्तस्मैप्रसीदतीति मानस्तोकेति संमन्त्र्यशिरोलिंपेत्त्रियंवकंत्रियायुषादिभिर्मन्त्रैर्ललाटे च भुजद्वये स्कन्धे च लेपयेद्भस्मसजलंमन्त्रभावितं तिस्रोरेखाभवन्त्येषुस्थानेषु मुनिपुङ्गव भ्रुवोर्मध्यमसारभ्ययावदंतोभवेद्भ्रुवोःमध्यमानामिकांगुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः अङ्गुष्टेनकृतारेखात्रिपुंड्रस्याभिधीयतेतिसृणामपि रेखाणांप्रत्येकं नवदेवताः अकारोगार्हपत्याग्निर्भूरात्मारजोगुणः ऋग्वेदश्चक्रियाशक्तिःप्रातस्सवनमेवच महादेवस्यरेखायाप्रथमायाश्चदेवता उकारो दक्षिणाग्निश्चनभःसत्वं यजुस्तथामाध्यं दिनं च सवन मिच्छाशक्त्यान्तरात्मको महेश्वरश्चरेखायाद्वितीयायाश्चदेवताः मकाराहवनीयौ च परमात्मातमोदिवौ-ज्ञानशक्तिःसामवेदस्तृतीयं सवनं तथा शिवश्चेति तृतीयायारेखायास्त्वधिदेवता एतान्नित्यं नमस्कृत्यत्रिपुंड्रन्धारयेच्छुचिः माहेश्वरं व्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्त्तितं मुक्तिकामैर्नरैःसेव्यं पुनस्तेषां न सम्भवः त्रिपुंड्रङ्कुरुते यस्तु भस्मनाविधिपूर्व्वकं ब्रह्मचारीग्टहस्थोवावनस्थोयतिरेववा महापातक सङ्घातैर्मुच्यतेचोपपातकैः तथान्यैःचत्रविट्शूद्र स्त्रीगोहत्यादि पातकैः परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनं परनिन्दापरक्षेत्रहरणं परपीड़नं शस्यारामादिहरणं ग्टहदाहादिकर्म्म वा असत्यं वाक्यपैशुन्यंपारुष्यं वेदविक्रयाःकुत्सादयंव्रतत्यागःकैतवं नीच सेवनंगोभूहिरण्यमहिषीतिलकंवलवाससीं अन्नधान्यजलादीनांनीचेभ्यश्चपरिग्रहः दासीवेश्याभुजङ्गीषु वृषलीषु नटीषु वा रजस्वलासुकन्यासुविधवासुचसङ्गमः मांसचर्म्मरसादीनांलवणस्य च विक्रयःशिवद्रव्यापहरणंशिवनिन्दाचकुत्रचित् निन्दाचशिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्नशुद्ध्यति रुद्राक्षं यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुंड्रधृक् सप्तकोटिमहामन्त्राशैवा कैवल्यहेतवः। ते सर्वे तेन जप्तास्युर्योविभर्तित्रिपुंड्रकं सहस्रं पूर्वहृत्तानां सहस्रं च जनिष्यतां स्ववंशजानां मर्त्यानामुद्धरेद्यः त्रिपुंड्रधृक् इहभुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः जीवान्तेचमरणं सुखेनैव प्रपद्यते अष्टैश्वर्य्यगुणोपेतं प्राप्यदिव्यं वपुःशुभं दिव्यं विमानमारुह्यदिव्यस्त्रीशतसेवितः विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणांमहौजसां इन्द्रादिलोकपालानांलोकेषु च यथाक्रमं भुक्त्वाभोगान्सुविपुलांप्रजेशानां पुरेषु च ब्रह्मणः पदमाप्नोति तत्रकल्पशतंरमेत् विष्णुलोकेचरमतेयावद्ब्रह्मशतत्रयं शिवलोकेततः प्राप्यरमतेकालमक्षयं शिवसान्निध्यमाप्नोति न सभूयोभिजायते सर्वोपनिषदां सारं समालोच्य मुहुर्मुहुः इदमेवहि निर्णीतं परंश्रेयस्त्रिपुंड्रकं एतत्त्रिपुंडमाहात्म्यं समासात्कथितं मया रहस्यं सर्व

जन्तूनांशोपनीयमिदं त्वया इति ब्रह्मोत्तरखण्डे तथाचनन्दिकेश्वरपुराणे अङ्गुष्टेन शिरसिप्रदक्षिणो कृत्वा भगवते ब्रह्मणे नमः अथ पञ्चब्रह्मस्तुतिः ओं ईशान मन्त्रस्य ईशान रुद्रोदेवता दुर्वासा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः ईशान प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ईशानस्सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणोधिपतिः ब्रह्माशिवोमेस्तुसदाशिवों इति शिरसि ओं तत्पुरुषमन्त्रस्य तत्पुरुषरुद्रोदेवतादधीच ऋषिर्दैवीगायत्रीछन्दस्तत्पुरुषप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ओं तत् पुरुषायविद्महे महादेवायधीमहितन्नोरुद्रःप्रचोदयात् इति मुखमध्ये ओं अघोर मन्त्रस्याघोरऋषिरघोररुद्रोदेवता अनुष्टुप्छन्दोऽघोरप्रसादसिद्ध्यर्थे जपेविनियोगः घोरघोरमहाघोरव्वज्रघोर प्राणघोरशिवघोरहुं फट्स्वाहा ओं अघोरेभ्योऽथघोरेभ्योघोरघोरतरेभ्यःसर्वेभ्यः सर्वान्तरेभ्यो नमः नमःस्तेरुद्ररूपेभ्यः इति दक्षिणमुखे ओं वामदेवमन्त्रस्य वामदेव ऋषिवामदेवरुद्रोदेवतात्रिष्टुप्छन्दो वामदेव प्रसादसिद्ध्यर्थंजपेविनियोगः ओं ज्येष्टाय नमः ओं श्रेष्टायनमः ओं रुद्रायनमः ओं कालायनमः ओं कलविकरणायनमः ओं कालप्रमथायनमः ओं सर्व्वभूतदमनायनमः ओं मनोन्मनायनमः इति पश्चिममुखे ओं सद्योजातमन्त्रस्यसद्योजात ऋषिर्सद्योजातरुद्रोदेवताजगतो छन्दःसद्योजातप्रसादसिद्ध्यर्थे जपेविनियोगः सद्योजातं। प्रपद्यामि सद्योजातायवैनमः भवेभवेनातिभवेभवस्वमाभवोद्भवायनमः इत्युत्तरमुखे आवान्तरसद्योजातमिति वामदेव देवताहृदयायनमः ओं अघोरायनमः नाभौ ओं तत्पुरुषायनमः पादयोः ओं ईशानायनमः शिरसी सद्योजातायनमः सर्वाङ्गे एतानि तानिशिवमन्त्राणि पवित्राणीभस्मानिकामदहनांगविभूषितानित्रिपुण्ड्रकानिरचितानि ललाटपट्टेलिप्यन्ति तानि देवलिखितानि दूरक्षराणि क्रीं क्रीं श्रीकरञ्चपवित्रं च रोगदोषविनाशनं लोकवश्यकरंपुण्यं भस्मत्रैलोक्यपावनं ओं क्रां अङ्गुष्टाभ्यां नमः ओं क्रींतर्ज्जनीभ्यां नमः स्वाहा ओंक्रूं मध्यमाभ्यां नम. वषट् ओं क्रैं अनामिकाभ्यां नमःक्रूम् ओं क्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः वौषट् ओं क्रः करतलकर पृष्टाभ्यां नमः फट् ओं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः हव्यवाहनायनमः सर्वाङ्गे पुनरपिन्यासंविधीयते नाभौस्कन्दायनमः हृदयेहव्यवाहनायनमः दक्षिणवाहुमूले रुद्रायनमः दक्षिणवाहुमध्ये आदित्यायनमः दक्षिणवाहु अग्रे व सुभ्यां नमः वामवाहुअग्रे प्रभंजनायनमः पृष्टे हरायनमः कण्ठेनीलकण्ठायनमः कटिप्रदेशे श्रीकालाग्निरुद्रायनमःकुक्षौसप्तसमुद्रायनमः शिश्ने प्रजापतयेनमः गुह्ये दीर्घ

चन्द्राय नम जानुने.र्जाङ्घयेनमः कुर्मचक्रे वाराहायनमः गुल्फयोर्भैरवायनमः पादयोर्वासुकीभ्योनमः पादाग्रे सर्वतीर्थेभ्योनमः सर्वांगेसदाशिवायनमः भस्मोद्धूलितसर्वांगे आपादतलमस्तके रोमेरोमेभवेल्लिंगमक्षय्यं शिवालयं इतिविभूति धारणंकृत्वा विभूतिंनिन्दतेयोवैब्राह्मणोऽन्यजातकः पतंतिनरकेघोरेय.वद्ब्रह्मा चतुर्मुखः तावत्पतंतिभूमौतुभस्मानिपरमाणवः श्राद्धेयज्ञेजपेहोमेवैश्वदेवसुरार्चने स्वकर्माणित्रिपुंड्रं धार्यंप्रमाणेनसर्वकर्मफलंलभेत् मध्यमानामिकांगुष्ठैःक्रिमाणे त्रिपुंड्रके महाघोरकृतंपापंमुच्यतेनात्रसंशयः त्रिपुंड्रंब्राह्मणोविद्वान्मनसापि न लंघयेत् श्रुत्याविधीयतेवाक्यं तत्त्यागीपतितोभवेत् तस्मात्सर्वंविसृज्यैतभस्मस्नानंसमाचरेत् जलस्नानाद्विभूतिस्नानंकोटिकोटिगुणाधिकं जलस्नानान्मलत्यागः भूतिस्नानात्सदाशुचिः मन्त्रस्नानाद्धरेत्पापं भस्मस्नानात्परंपदं सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्व यज्ञेषुयत्फलम् तत्फलंसमवाप्नोतिभस्मस्नानेनमानवः भस्मस्नानात्परंतीर्थं गङ्गास्नानं दिनेदिने भस्मरूपीशिव.साक्षात्भस्म त्रैलोक्यपावनं इति श्रीनन्दिकेश्वरपुराणोक्त कालाग्निरुद्रोपनिषत्समासम् नारदेनपृष्टोनारायणस्सदाचारमाहदेवीभागवताध्याये ॥ ११ ॥ भस्मोत्पादनविधिमुक्त्वाजलस्नानानन्तरं भस्मस्नानमाह जलस्नानंपुराकृत्वाभस्मस्नानमतःपरं जलस्नानेलयकृत्वभस्मस्नानंसमाचरेत् समन्त्रस्नान विधिमुक्त्वा सद्योमन्त्रेण सर्वांगेसमुद्धूल्यविचक्षणः पूर्ववस्त्रंपरित्यज्यशुद्धंवस्त्रं परिग्रहेत् प्रक्षाल्यहस्तौपादौचपश्चादाचमनंचरेत् भस्मनोद्धूलनाभावेत्रिपुंड्रंतु विधीयते ततःत्रिपुंड्रस्थानान्युक्त्वानियममाह क्षत्रियश्चतथावैश्य.शूद्रश्चोद्धूलनं त्यजेत् सर्वेषामन्त्यजादीनांमन्त्रेणरहितंभवेदिति द्वादशेऽध्यायेपुनःत्रैवर्णिकानांगोमयग्रहणेगवांवर्णनियममुक्त्वा पाचारणंकृत्वा तस्माद्भसितमादायविनियुंजीत मन्त्रितं विभूतिधारणविधिः स्मृत्युक्तोभवेरितः यदीयाचरणेनेवशिवतुल्योनसंशयः शूद्रहस्ताद्ब्राह्मणेनंग्राह्यमित्यादिनिषेध उक्त्वा त्रिपुंड्रंधारयेद्भक्त्यामनसापि न लंघयेत् श्रुत्याविधीयतेयस्मात्तत्त्यागीपतितोभवेत् त्रिपुंड्रधारणंभक्त्या तथादेहावगुण्ठनं द्विजः कुर्याद्विमन्त्रेण अन्यथापतितोभवेत् उद्धूलनंत्रिपुंड्रञ्चभक्त्यानैवाचरन्तियेतेषांनास्तिविनिर्मोक्षस्संसाराज्जन्मकोटिभिः येनभस्मोक्तमार्गेण न धृतं मुनिपुंगव तस्यविद्धिमुनेजन्मनिःफलंशौकरं तथा येषांवपुर्मनुष्याणांत्रिपुंड्रेणविना स्थितम् श्मशानसदृशंतत्स्यात् न प्रेक्ष्यंपुण्यकृज्जनैः धिग्भालंभस्मरहितंधिग्ग्रामममशिवालयं धिगनीशार्चनंजन्मधिग्विद्यामशिवाश्रयाम् उद्धूलनंत्रिपुंड्रञ्चश्रद्धयानाचरन्तियेतैःपूर्वाचरितंसर्वविपरीतंभवेदपि मनुष्मार्तानांकिंश्रौतभस्मनेत्या-

भंक्याह भस्मना वेदमन्त्रेणत्रिपुंड्रस्यचधारणं विनावेदोदिताचारस्स्मार्तस्यानर्थ कारणम् कृतंस्यादकृतंतेनश्रुतमप्यश्रुतंभवेत् अधीतमनधीतं च त्रिपुंड्रंयोनधारयेत् वृथावेदावृथादानवृथायज्ञोवृथाजपः वृथाव्रतोपवासादिव्रिपुंड्रंयोनधारयेत् भस्मधारणकंमुक्तामुक्तिमिच्छतियःपुमान् विषपानेननित्यत्वंकुरुतेसतुमोहितः तिर्यग्रेखाः प्रदिश्यन्तेललाटेसर्वदेहिनां तथापिमानवामूर्खा न कुर्वन्तित्रिपुंड्रकं नतद्दानंनतत्स्नानंनतज्ज्ञानंनतत्तपः विनातिर्यक्त्रिपुंड्रेणविप्रेणयदनुष्ठितं वेदस्वाध्ययनेशूद्रोनाधिकारीतथाभवेत् इत्यादि वाक्यैःसर्वकर्मादौभस्मन आश्यकत्व मुक्तोपासनाकाडोक्तरीत्या शिवार्चनेत्रिशूलाद्यायुधचिह्नधारणंप्राप्तं विष्णूपासनायांशंखचक्रादिवत् त्रैवर्णिकानांतन्निषेधात्तत्रतैरपिपुनरुक्तविधिनाभस्मैवधार्यमिति द्वितीयंभस्मधारणेविधिमाह नारायणःत्रिपुंड्रेणविनाविप्रोनाधिकारी शिवार्चनेप्राङ्मुखस्मरणोहस्तौप्रक्षाल्याचमय्यपूर्ववत्ततः संर्वविधिमुक्त्वाह सर्वांगेप्रणवेनेवमन्त्रेणोद्धूलनंतत एतदाग्नेयकंस्नानमुदितंपरमर्षिभिः सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदंबुधः ततःप्रक्षाल्यहस्तादौनुपस्पृश्ययथाविधि भस्मनास्नात्यग्निहोत्रेणविप्रःकर्मसमाचरेत् अन्यथासर्वकर्माणि न फलन्तिकदाचन श्राद्धंशौचन्तपोहोमस्तीर्थदेवादिपूजनंतस्यव्यर्थमिदंसर्वंयस्त्रिपुंड्रंनधारयेत् त्रिपुंड्रधृक्विप्र वरीयोरुद्राक्षधरःशुचिः सपंक्तिपावनःश्राद्धे पूज्योविप्रैःसुरैरपि श्राद्धेयज्ञेजपे होमेवैश्वदेवेसुरार्चने धृतत्रिपुंड्रःपूतात्मामृत्युंजयतिमानवः भस्मधारणमहात्म्यं भूयोपि कथयामिते चतुर्वर्णानां भस्मनोधारणफलमुक्त्वाह रक्षार्थं सर्वभूतानां विद्यते वैदिकीश्रुतिः भस्मनोद्धूलनञ्चैव तथा तिर्य्यक्त्रिपुंड्रकं यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विद्यते वैदिकीश्रुतिः भस्मनोद्धूलनंचैव तथा तीर्य्यक्त्रिपुंड्रकं सर्वधर्मतयातेषांविद्यतेवैदिकीश्रुतिः भस्मनोद्धूलभंचैव तथा तिर्य्यक्त्रिपुंड्रकं विज्ञानार्थंच सर्वेषांविद्यतेवैदिकीश्रुतिः इत्यादि वह्निवाक्यानिसंति यः करिष्यतियत्नेनभस्मस्नानं यथाविधि सएवैक.सर्वकर्मस्वधिकारीश्रुतिश्रुतः पावनं पावनानां च भस्मस्नानंश्रुतिश्रुतम् नकरिष्यतियोमोहात्समहापातकीभवेत् अनन्तवारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यंप्राप्यतेद्विजै ततोनन्तगुणं पुण्यंभस्मस्नानादवाप्यते कालत्रयेपि कर्त्तव्यंभस्मस्नानंप्रयत्नतः कर्त्तव्यमन्यथापूता न भविष्यंतिमानवाः भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतंतत्त्यागीपतितोभवेत् यस्योपनयनंब्रह्मन्सएवद्विजउच्यते तस्माच्छ्रौत द्विजैःकार्य्यंत्रिपुंड्रस्य च धारणं विभूतिधारणंत्यक्त्वा यदि सन्ध्यांकरोयि यः प्रत्यवैत्येवयैनासौनाधिकारी सदाद्विजः इत्यादि पञ्चविंशत्यध्यायपर्य्यंतं

चैवर्णिकनित्यधर्मलाभेनभस्मरुद्राक्षयोर्विधानं सदाचारतयोक्तं नारायणीजाल्लम् बहुलेखनेन एवं ब्रह्मवैवर्ते प्रकृतिखण्डेपि निर्णीयोक्तं एतन्निर्णायकोपपुराणवाक्यानिलिख्यन्ते तथाच पाराशरोपपुराणे श्रौतं लिङ्गन्तु विज्ञेयं त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मकं अश्रौतमूर्द्ध्वपुंड्रादिनैव तिर्य्यक्त्रिपुंड्रकं वेदसिद्धोमहादेवस्साचात्संसारमोचकः उमार्द्धविग्रहैः शुद्धश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः लोकानामुपकाराय श्रौतं लिङ्गन्दधातिच वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतंलिङ्गं न चेतरत् तन्त्रसिद्धोमहादेवस्तन्त्रसिद्धेन वर्त्मना दधाति भस्मनातिर्य्यक्त्रिपुंड्रं भक्तवत्सलः तन्त्रसिद्धोमहाविष्णुस्त्रिशूलंचोर्द्ध्वपुंड्रकं दधातिभक्तरक्षार्थं ललाटे चतुरस्रकं तन्त्रनिष्ठः शिवेभक्तास्तन्त्रनिष्ठेन वर्त्मना त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं ललाटेभस्मनैवतु तत्तद्देवतोपासकानां तत्तच्चक्रवज्रपाशादि चिन्हमुक्ताद्द तांत्रिकानां च सर्वेषां भस्मनैव त्रिपुंड्रकं वरिष्ठं सर्वलिङ्गेभ्यस्सत्यमेव न संशयः तन्त्रनिष्ठोरुद्रादेवे भक्तस्तिर्य्यक् त्रिपुंड्रकं विनापुंड्रान्तरं मोहाद्धारयेन्नारकी भवेत् ललाटेभस्मनातिर्य्यक्त्रिपुंड्रं यत्तु तन्मया लिंगमाहेश्वरं प्रोक्तं वैष्णवं ब्राह्ममेव च शैवंभागवतं ब्राह्मं यल्लिंगं परिकीर्त्तितं वैदिकस्तल्ललाटे तु धारयेन्नकदाचन महापापवतान्नृणां वेदसिद्धे महेश्वरे त्रिपुंड्रोद्धूलनादौ च प्रदेशश्चप्रजापती यस्यस्यात्मितरिद्वेषः शिवेवाजगतां गुरौ उत्पत्तौतस्यसांकर्यं स तु मेयविपश्चिता वेदमार्गसमं मार्गमितितन्मनुतेतुयः अधिकंतस्य सांकर्य्यमनु० शिवरुद्रमहादेव ब्रह्मेशानादि नामभिः समं विष्ण्वादि शब्दं यो मनुते सतु सांकरः यस्यस्याद्भस्मनिद्वेषस्त्रिपुंड्रोद्धूलनेपि च उत्पत्तौतस्यसां० पापानामपि वाहुल्याद्दधीचस्य च शापतः गौतमस्य मुनेश्शापाच्छ्रौतंलिङ्गं नरोचते प्रत्युतभ्रान्तिविज्ञानादश्रौते चोर्द्ध्वपुंड्रके ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःश्रद्धांकुर्वन्ति चापरे अनेकजन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तनिवर्त्तिना वेदोक्तेनैवमार्गेणत्रिपुंड्रे जायतेमतिः भस्मनावेदमन्त्रेण त्रिपुंड्रस्यावगुण्ठनं यस्य सिद्धं प्रयत्नेन ब्राह्मण्यं तस्य पुष्कलं वेदवेदान्तनिष्ठानां भस्मनैवत्रिपुंड्रकं सम्यक्ज्ञानप्रदं शीघ्रं सत्यमुक्तं न संशयः भस्मनावेदमन्त्रेणत्रि० विनावेदोदिताचारस्मार्तस्यानर्थकारणं भस्मना वेदमन्त्रेण त्रि० सतांमार्गतया प्राज्ञाः प्रवदन्तिमहर्षयः भस्मना० वर्णधर्मतया प्राज्ञः प्रवदन्ति म० भस्मना० आश्रमाणां च सर्वेषां धर्मत्वेनाहुरास्तिकाः इत्याद्यादशोपपुराणेष्वस्ति किं वहुलेखनेन तथावासिष्ठलैंगेपि तद्यथा वशिष्ठप्रष्टश्शिव प्राह वर्णाश्रमभेदेन भस्मविधिमुक्त्वा एवं भस्मधृतं येन तस्यपुण्यफलं शृणु महापातक सङ्घाश्चतथान्येचोपपातकाः नश्यन्ति मुनिशार्दूलसत्यं सत्यं न संशयः

ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेवच गृहस्थानां च सर्वेषां सर्वसंपत्प्रदं मुने वान प्रस्थयतीनांतु स्वात्मज्ञानप्रदायकं शूद्राणां पुण्यदंनित्यमन्येषां पापनाशकं येन भस्मात्ममार्गेण न धृतं मुनिपुंगव तस्य विद्धिमुनेजन्मनिष्फलं शौकरं यथा येभस्म धारणं मुक्त्वा श्रौतस्मार्तानुवर्तिनस्तैस्समाचरितं सर्वं विपरीतफलप्रदं येषांक्रोधो-भवेद्ब्रह्मन् ललाटेभस्मदर्शनात् तेषामुत्पत्तिसांकर्य्यं मनुमे० येभस्मधारिणं दृष्ट्वा वाचानिन्दन्ति मानवाः तेषां शूद्रेण सम्भूतिरनुमे० येषां नाति मुनेश्रद्धाश्रौत्ते भस्मनि सर्वदागर्भाधानादिसंस्कारस्तेषां नास्तीति निश्चयः येषांभस्मनि विद्वेषो वर्तते हृदये सदा संकीर्णा साभवेद्ब्रह्मन् तेषांवंशपरम्परा येषां दानं श्रुतिर्यज्ञ तपश्चान्यानि सुव्रत भस्मधारणपूर्वंस्यात्तेषांतत्फलंभवेत् इत्यादि।

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे एकादशस्तरंग।



## अथ द्वादशस्तरंगः।

अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं। अथ रुद्राक्षधारणंतन्महिमाचयोगसारे शिखायां हस्तयोः कण्ठेकर्णयोश्चापियोनरःरुद्राक्षंधारयेद्भक्त्या शिवलोकमवाप्नुयात् नव वक्त्रन्तु रुद्राक्षंधारयेद्वामवाहुना चतुर्द्दशमुखंचैव शिखायां धारयेद्बुधः तत्र विशेषः एकवक्त्रःशिवस्साक्षाद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति अवध्यत्वंप्रतिस्रोतोवन्हिस्तम्भं करोति च द्विवक्त्रोहरगौरीस्याद्गोवधाद्यघनाशकृत् त्रिवक्त्रोह्यग्निजन्माचपाप-राशिं प्रणाशयेत् चतुर्वक्त्रः स्वयंब्रह्माब्रह्महत्यांव्यपोहति पञ्चवक्त्रस्तुकालाग्निरग-म्यागम्यपापनुत् षड्वक्त्रस्तुगुहज्ञेयोभ्रूणहत्यांविनाशयेत् सप्तवक्त्रस्त्वनन्तःस्यात्-स्वर्णस्तेयादिपापहृत् विनायकोष्टवक्त्रःस्यात्सर्वानृतविनाशकृत् भैरवोनववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः दशवक्त्रःस्मृतोविष्णुर्भूतप्रेतभयापहः एकादशमुखोरुद्रोनाना-यज्ञफलप्रदःद्वादशास्यस्तथादित्यस्सर्वरोगनिवर्हणत्रयोदशमुखःकामःसर्वकामफल-प्रदःचतुर्दशास्यःश्रीकण्ठोवंशोद्धारकरःपर इति निर्ण्यिद्राक्षसुपक्वाद्वरुद्राक्षधारणे स्मृताः पञ्चामृतं पञ्चगव्यंस्नानकाले प्रयोजयेत् रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रपञ्चाक्षरं तथा त्र्यंबकादि मन्त्रस्तु यथा तत्रनियोजयेत् अघोरेणापि मन्त्रेणरुद्राक्षस्यद्विजो-

त्तस प्रतिष्ठांविधिवत्कुर्य्यात्ततोधिकफलं लभेत् ततो यथा स्वमन्त्रेणधारयेन्नत्रि संयुतः एकवक्त्रादीनांक्रमेणमन्त्राः ओंओंम्रंम्रंनमः १ ओंओंनमः २ ओंक्लींनमः ३ ओंहुंनमः ४ ओंहूंनमः ५ ओंओंहूंहूंनमः ६ ओंसःहूंनमः ७ ओंहूंनमः ८ ओंक्लीं नमः ९ ओंश्रींनमः १० ओंक्रँक्लींनमः ११ ओंश्रींनमः १२ ओंच्चींचीनमः १३ ओंनमोनमः १४ रुद्राक्षेदेहसंस्थेतु कुक्कुटोम्रियते यदि सोपिरुद्रपरं याति किं पुनर्मानवोगुरुः क्वचिन्मालायांविशेष उक्तः अष्टोत्तरशतैः कार्य्याचतुर्पंचशताथवा सप्तविंशतिमानावाततोहीनाधमामता तथाच प्रजापतिःमोक्षार्थीपञ्चविंशत्पा- धनार्थीत्रिंशता जपेत् पुष्ट्यर्थीपञ्चविंशत्पापंदस्याभिचारके सप्तविंशति रुद्राक्ष मालयादेहसंख्यया यत्करोतिनरःपुण्यंसर्वंकोटिगुणंभवेत् योददाति द्विजातिभ्यो रुद्राक्षं शृणुषण्मुख तस्यप्रीतोभवेद्रुद्रःस्वपदञ्च प्रयच्छति रुद्राक्षात्कण्ठदेशेदशन परिमितान्मस्तकेविंशतिद्वेषड्षड्कर्णप्रदेशेकरयुगलकृतेद्वादशेद्वादशैववाह्वोरिन्दुः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकंयत्कलयतिशतकं सः स्वयं नीलकण्ठ इति रुद्राक्षधारणम् । योगसारे द्वितीयपरिच्छेदे श्रीमहादेव उवाच इदानीं देवदेवेशिमालानां धारणं शुभम् रुद्राक्षस्यमाहात्म्यं वदमिपरमे- श्वरि श्रीदेव्युवाच शिखायां हस्तयोः कण्ठेकर्णयोश्चापि योनरः रुद्राक्षंधारयेद्- भक्त्याशिवलोकमवाप्नुयात् नववक्त्रंन्तुरुद्राक्षंधारयेद्वामबाहुनादक्षवाहौ तथा वत्सधारयेद्दयात्तमानसः शिखायांदशमं धार्य्यं कण्ठेच पञ्चविंशतिकर्णयोः पंचमं कलाहृदिचष्टोत्तरंशतं नाभौसप्तचरुद्राक्षंधारणान्मोक्षभाग्भवेत् रुद्राक्षधारणा- द्देवनरोदेवत्वमाप्नुयात् शिखायां दशनं द्वात्रिंशत्परिमितं तथा रुद्राक्षंधारये- न्नित्यं भद्राक्षंच सुरेश्वर रुद्राक्षस्यमहावाहोमाहात्म्यं शृणुयत्नतः एकवक्त्रशिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति अवध्यन्तंप्रतिश्रोतोवन्हेस्तम्भं करोति च द्विवक्त्रोहर- गौरी च गोवधाद्यघनाशकृत् त्रिवक्त्रोऽग्निर्जगन्नाथः पापराशिंविनाशकृत तुला राशिं यथा वन्हिर्भस्मसात्कुरुतेहर त्रिवक्त्रोऽपिच रुद्राक्षस्तथादहतिकिल्बिषं चतुर्व्वक्त्रस्तुधात्तास्यात्नरहत्यांव्यपोहति पंचवक्त्रस्तुकालाग्निरगम्यागमपापनुत्- षड्वक्त्रोगुह साचादगुरुहत्यां व्यपोहति सप्तवक्त्रोह्यनन्तश्चस्वर्णस्तेपाद्यहृत्सदा विनायकोऽष्टवक्त्रःस्यात्सर्व्वान्ृतविनाशकृत् भैरवोनववक्त्रस्यात्शिवसायुज्यदायकः दशवक्त्र स्वयंविष्णुर्भूतप्रेतपिशाचहा एकादशमुखोरुद्रोनानायज्ञफलप्रदः द्वाद- शास्योभवेदर्कस्सर्व्वंतीर्थंफलप्रदः त्रयोदशमुखः कामस्सर्व्वंकामफलप्रदः चतुर्द- शास्यः श्रीकण्ठोवंशोद्धारकरःस्मृतः यथोक्तस्तेऽपिरुद्राक्षेतथेन्द्राक्षेप्रकीर्त्तितः

भद्राक्षेऽविस्तरश्चैतत्तद्गुणांपरिकीर्त्तितं इतिप्राणतोषणीये तथादेवीपुराणे ,विना-
भस्मत्रिपुण्ड्रेणविनारुद्राक्षमालयापूजितोऽपिमहादेवोनस्यात्तस्यफलप्रदः तथा
भस्मत्रिपुंड्रंनोभालेनांगेरुद्राक्षभूषणं नचेत्शिमपीपाणौसविप्रोब्रह्मराक्षसः वाच-
स्पतौईश्वरः रुद्राक्षायस्यगात्रेषुललाटेचत्रिपुण्ड्रकम् सचाण्डालोपिसम्पूज्यः
सर्ववर्णोत्तमोभवेत् अभक्तोवापिभक्तोवानीचोनीचतरोपिवा रुद्राक्षान्धारयेद्य-
स्तुमुच्यतेसर्वपातकैः सहस्रंधारयेद्यस्तुरुद्राक्षाणांधृतव्रतः तंनमन्तिसुराःसर्वेयथा
रुद्रस्तथैवसः ॥ १ ॥ अ रुद्राक्षोजपःपुंसांतावन्मात्रफलप्रदः यस्याङ्गेह्यस्तिरुद्राक्ष-
एकोऽपिबहुपुण्यदः विभूतिर्य्यस्यनोभाले नांगेरुद्राक्षधारणम् नह्विबाण्यांशिवो-
च्चारस्तंत्यजेदन्त्यजंयथा ॥

## इतिनिर्ण्णयाख्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे द्वादशस्तरंगः।



## अथ त्रयोदशस्तरंगः।

हृदयाब्जोजमधरस्यपार्वतीनायकाज्ञयाशिवप्रसादमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामिसमा-
सतः अथसूतउवाच श्रुत्वाऽथवचनंतेनोक्तंशिवतत्वंद्विजोत्तमाः सनत्कुमार-
स्तत्रत्वापुनःप्रश्नमथाकरोत् ॥ २ ॥ सनत्कुमारउवाच सर्वंशिवमयंप्रोक्तं जगदेत-
च्चराचरम् एकएवमहादेवएकएवेतिचश्रुतिः ॥३॥ सकलोनिष्कलश्चेतिद्विधातद्रूप
कल्पनम् सृष्टिस्थितिविनाशंचतिरोधान मनुग्रहम् ॥ ४ ॥ शिवउवाच तत्त्वंयत्
त्रिविधंज्ञेयं तद्भेदंशृणुषण्मुख शिवंसदाशिवंचैवमहेशंत्रिविधंस्मृतम् ॥ ५ ॥
शिवतत्वंसदाशिवनिष्कलंचेतिकीर्तितम् सकलंनिष्कलंचैवसदाशिवमिहोच्यते ॥ ६
महेशंसकलंविद्यात्त्रिविधंतत्त्वलक्षण इतिमृगेन्द्रसंहितायां अथ एवमाहुस्तथाऽन्ये
चसर्ववेदार्थतत्वगाः हृदिसंसारिणांसाक्षात्सकलः परमेश्वरः ॥ १ ॥ योगिनां
निष्कलोदेवोज्ञानिनांचजगन्मयः त्रिविधंपरमेशस्यवपुर्लोकेप्रशस्यते ॥ २ ॥
निष्कलंप्रथमंचैकंततःसकलनिष्कलम् तृतीयंसकलंचैवनान्यथेतिद्विजोत्तमाः ॥३॥
अर्चयंतिमुहुःकेचित्सदासकलनिष्कलम् सर्वज्ञंहृदयेकेचिच्छिवलिंगेविभावसौ ॥४॥
सकलंमुनयःकेचित्सदासंसारवर्तिनः एवमभ्यर्चयंत्येवसदाराःसमुताःनराः ॥ ५ ॥

यथाशिवस्तथादेवीयथादेवीतथाशिवः तस्मादभेदबुद्धैवसमवि'शम्यभेदतः ॥ ६ ॥ यजन्तिदेहेशाह्ये च चतुष्कोणेषड़स्रके दशारेद्वादशारेचषोड़शारेत्रिरस्रके ॥ ७ ॥ सस्वेच्छयाशिवःसाचात्‌देव्यामार्द्धेस्थितः प्रभुः सन्तारणार्थंचशिवस्तद्रुसद्व्यक्ति वर्जितः ॥ ८ ॥ तमेकमाहुर्हि गुणंचकेचित्‌केचित्तमाहुस्त्रिगुणात्मकंच जचुस्तथा-तंचशिवं तथान्येसंसारिणं वेदविदोवदन्ति ॥ ९ ॥ भक्त्याचयोगेनशुभेनयुक्ताविप्राः सदाधर्मरताविशिष्टाः यजन्तियोगीशमशेषमूर्त्तिंषड़स्रमध्येभगवन्तमेव ॥ १० ॥ ये तत्रपश्यंतिशिवं त्रिरस्रे त्रितत्वमध्येत्रिगुणं शिवाचम्‌ इतिलिंगेचतुर्विंशतितमेऽ-ध्याये । अथ क्वचित्कदाचित्‌निर्म्माल्यंनैवेद्यञ्चनिषिध्यते शिवप्रसादः कुत्रापि-स्वप्नेऽपिननिषिध्यते ॥ १ ॥ रुद्रोच्छिष्टं तुनिर्म्माल्यमुच्यतेरुद्रपूजकैः विष्णूच्छिष्ट-न्तुविबुधैर्नैवेद्यमितिकीर्त्यते ॥ २ ॥ शिवप्रसादइत्युक्तं सच्चिदानन्दरूपिणः त्रिमु-र्तिभिरुपास्यस्यतूच्छिष्टं परमात्मनः ॥ ३ ॥ शिवप्रसादःकुत्रापिननिर्म्माल्यमिती-र्य्यते निर्म्माल्यशब्दवाच्यं यत्‌रुद्रोच्छिष्टं क्वचित्‌२ ॥ ४ ॥ प्रसादनैवेद्याभ्यांशब्दा-भ्यांनैवकीर्त्यते प्रसादशब्दःपठितोरुद्रस्यापि च सन्निधौ वाचकोरुद्रभुक्तस्य आहुः पूजाविचक्षणाः सकलदेहस्यरुद्रस्य शिवभेदविवचया ॥ ६ ॥ बुधैः प्रसादशब्देन रुद्रोच्छिष्टमुदीर्य्यते शिवप्रसादमाहात्म्यं शिवप्रसादांबुपादांबुस्नानांबु अभिषे-कांबु इति पुरुषार्थचतुष्टयसम्बोधिनी अथ काखशाखायांत्रिगुणस्नानमश्नीयात्‌ यदि पापाःशिवानर्पितंभुंच्वतद्रेतोभुंच्वमलंभुंच्वक्रिमिंभुंच्व अधिं भुंच्व अधो गच्छेति ॥ १ ॥ तथारुद्रोपनिषद्यपि शिवेति सदवशचरं भगवान्नारायणोव्या-हरन्नेव नागेन्द्रशय्यायां निद्रित इव ध्यायति ॥ १ ॥ शिवं सर्वदैनसाम्बंहृदिस्थं द्वादशांगुलं लिङ्गरूपिणंते नैवमोदते वाह्यं चेन्द्रनीलमणिमयन्तदधारयन्नेव पञ्चाक्षरेण प्रपूजयति शिवशिवेति व्याहरन्नेव भगवान्‌ सञ्जातहर्षप्रेमाश्रून्‌ विमुंचन्नेव लिङ्गाग्रतोवैनृत्यति हवा आनन्दनिर्भरेण शिवस्य नैवेद्यं चतद्व्या-हरन्नेवभक्षयति योवाऽन्योऽपि ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्योवाशूद्रोऽपि शिवस्यनैवेद्यं भुंजीत समतोत्वैवदुःखप्‌सर्वमैश्वर्य्यमाप्नोति सवैविष्णुरेव भवति तरति शोकं न सपुनरावर्त्ततेयेवैशिवस्यनैवेद्यं न भक्षयति अन्धन्तमःप्रविशन्ति नरकेषु पतन्ति हानैव सुखं लभन्त इति अथ ऋग्वेदेऽपि श्लोकरूपेण श्रूयते अशमप्योदनं शम्भोर्भुक्तं खादतिपातिचेत्‌ स्वमांसमस्थि मूत्रं च भुंक्ते खादतिपाति च ॥ १ ॥ ईशार्चनादवर्ज्यमभोज्यमन्नकीटं मलंतत्कुणपञ्चवदन्ति वहिष्कृतं सर्वजनैःसदापि भुक्त्वाप्रयायान्नरकान्‌ समस्तान्‌ ॥ २ ॥ जलैरूपैः शीतलैर्वाकदाचिद् अज्ञानाद्

वा पतितैः पत्रपुष्पैः तुष्टो यच्छेदवाञ्छितार्थं महेशः किं दुर्लभं शिवभक्तस्य लोके
॥ ३ ॥ अल्पमप्यपि नैवेद्यं फलं वाजलमेवातदेव प्राशयित्वाथ ब्रह्मभूयाय कल्पते
शिवोपनिषदि अथ भक्त्या शिवं पूज्य नैवेद्यमुपकल्पयेत् यदन्नमात्मनाश्नीयात्तस्या-
ग्रे विनिवेदयेत् ॥ १ ॥ यः कृत्वा भक्ष्यभोज्यानि यत्नेन विनिवेदयेत् शिवाय स
शिवे लोके कल्पकोटिं प्रमोदते ॥ २ ॥ यः पक्वं श्रीफलं नित्यं शिवाय विनिवेद-
येत् गुरोर्वा होमयेद्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३ ॥ श्रीमद्भिः समहायानैर्भोगान्
भुंक्ते शिवेपुरे वर्षाणामयुतं साग्रन्तदन्ते श्रीपतिर्भवेत् ॥ ४ ॥ कपित्थमेकं
यः पक्वमीश्वराय निवेदयेत् वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥
एकमाम्र फलं पक्वं यः शम्भोर्विनिवेदयेत् वर्षाणामयुतं भोगैः क्रीड़ति स शिवेपुरे
॥ ६ ॥ एकं घोटफलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् वर्षलक्षं महाभोगैः शिवलोके
महीयते ॥ ७ ॥ यः पक्वं दाड़िमफलं चैकं दद्यात् विकसितं नवम् शिवाय
गुरवे वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ८ ॥ यावन्तू वीजसंख्यानं शोभनं परि-
कीर्त्तितम् तावदष्टायुतान्युच्चैः शिवलोके महीयते ॥ ९ ॥ द्राक्षाफलानि पक्वानि
यः शिवाय निवेदयेत् भक्त्या वा शिवयोगिभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १० ॥ यावत्तत्-
फलसंख्यानमुभयोर्विनिवेदितम् तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ११ ॥
द्राक्षाफलेषु यत्पुण्यं तत्खर्जूरफलेषु च तदेव राजवृक्षेषु पारावतफलेषु च ॥ १२॥
यो नारङ्गफलं पक्वं शिवाय विनिवेदयेत् अष्टलक्षं महाभोगैः क्रीड़ते स शिवेपुरे
॥ १३ ॥ वीजपुरे तदर्धं तु तदर्धं लकुचेषु च अक्षोटपीलुनीपेषु तत्पुण्यं तिन्दुकेषु
च ॥ १४ ॥ पनसं नारिकेलं वा शिवाय विनिवेदयेत् वर्षलक्षं महाभोगैः शिव-
लोके महीयते ॥ १५ ॥ परूषं च प्रियालं च मधूककुसुमानि च जम्बु फलानि
पक्वानि वैकंकतफलानि च ॥ १६ ॥ निवेद्य भक्त्या शर्वाय प्रत्येकं च फले फले
दशवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ १७ ॥ क्षीरिकाया फलं पक्वं यः शिवाय निवे-
दयेत् वर्षलक्षं महाभोगैर्मोदते स शिवेपुरे ॥ १८ ॥ वालुकत्रपुसानि यः फलानि
विनिवेदयेत् शिवाय गुरवे वापि पक्वं च करमर्दकम् ॥ १९ ॥ दशवर्षसहस्राणि
रुद्रलोके महीयते वदराणि सुपक्वानि तिन्तिड़ीकफलानि च एवमादीनि चा-
न्यानि शाकमूल फलानि च ॥ २१ ॥ निवेदयेद्यः शिवाय शृणु यत्फलमाप्नुयात्
एकैकस्मिन् फले भोगान् प्राप्नुयादनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि रुद्रलोके
महीयते गोधूमचणकाद्यन्नं सुकृतं सक्तु भर्जितम् ॥ २३ ॥ निवेदयेद् यः शर्वा-
य तस्य पुण्यफलं शृणु यावत्तद्वीजसंख्यानं शिवाय विनिवेदयेत् ॥ २४ ॥ तावद्-

वर्षसहस्राणिरुद्रलोकेमहीयते यः पक्कान्नौत्तुदण्डानिशिवायविनिवेदयेत् ॥ २५ ॥
गुरवेवार्पितन्नित्यंतस्यपुण्यफलंशृणु यावंतिचेत्तुपर्वाणितावद्वर्षप्रमोदते ॥ २६ ॥
साग्रंशिवपुरेभोगैः पौंड्रंपञ्चगुणंफलम् निवेद्यपरमेशायशुक्तिमात्रंरसस्तु ॥२७॥
वर्षकोटिंमहाभोगैः शिवलोकेमहीयते निवेद्यफाणितंशुद्धंशिवायगुरवेऽपिवा ॥
२८ ॥ रसासहस्रगुणितंफलमाप्नोमिमानवः गुड़स्यपलमेकं यः शिवायविनि-
वेदयेत् ॥ २९ ॥ अब्दकोटिंशिवेलोकेमहाभोगैः प्रमोदते खण्डस्यपलनैवेद्य
गुड़ाच्छतगुणंफलम् ॥ ३० ॥ खण्डात्सहस्रगुणितंशर्करायानिवेदने मल्लिकां
महाशुद्धांशङ्करायनिवेदयेत् ॥ ३१ ॥ कोटिकल्पनरः साग्रंशिवलोके महीयते
परिशुद्धमिष्टमाजंसिद्धंचैवसुसंस्कृतम् ॥ ३२ ॥ मासंनिवेद्यशर्वायशृणुयत्फलमाप्नु-
यात् अशेषफलदानेन यत् पुण्यंपरिकीर्त्तितम् ॥ ३३ ॥ तत् पुण्यंप्राप्नुयात्सर्वं
महादाननिवेदने यः कनकानिदिव्यानिस्वादूनिसुरभीणिच ॥ ३४ ॥ निवेदयि
येत्तुशर्वायतस्यपुण्यफलंशृणु कल्पकोटिनः साग्रंशिवलोकेव्यवस्थितः ॥ ३५ ॥
पिवन् शिवामृतंदिव्यंमहाभोगैर्हियुज्यते दिनेदिनेतुसुस्नाप्यवस्त्रपूतंसमाचरेत्
॥ ३६ ॥ सुस्वादुःशिवभक्तेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ३७ ॥ महासरांसियःकु-
र्य्यात्भवेत्पुण्यंशिवाग्रतः तत्पुण्यंसकलंप्राप्यशिवलोकेमहीयते ॥ ३८ ॥ यदि-
ष्टमात्मनः किञ्चिदन्नपानफलादिकम् तत्तच्छिवायदेयंस्यादुत्तमंभोगमिच्छता
॥ ३९ ॥ न शिवः परिपूर्णत्वात् किञ्चिदश्नातिकर्य्यचित् किन्त्वीश्वरनिर्भक्तत्वा
सर्वमात्मनिदीयते ॥ ४० ॥ नरोहतियथावीजंखस्थमाश्रयवर्जितम् पुण्यवीजं
तथा सूक्ष्मंनिष्फलंस्यान्निराश्रयम् ॥ ४१ ॥ सुक्षेत्रेषुयथावीजमुप्तंभवतिसत्-
फलम् अल्पमप्यचयंतद्वत्पुण्यंशिवसमाश्रयात् ॥ ४२ ॥ तत्तदीश्वरमुद्दिश्ययद्
यदात्मसमीहितम् तत्तन्दीश्वरभक्तेभ्यःप्रदातव्यंफलार्थिना ॥ ४३ ॥ इति शैव
रत्नाकरे इमंप्रसादंभुंजानोविरंचिर्किलजैमिनिः विष्णुः परशुरामोऽपिशिवे नच
परीक्षितौ ॥ १ ॥ पादोदकप्रसादानांनिर्म्माल्यानांनिषेवकौ वशिष्ठस्यगरिष्ठोऽ-
भूत्प्रसादस्यप्रभावतः ॥ २ ॥ प्रसादसेवनाज्जातोविश्वामित्रोमहामुनिः पाणि
निश्चकणादश्चकपिलोगौतमादयः ॥ ३ ॥ प्रसादसेवनादघ्राणादर्चनाद्धारणा-
दपि जातादर्शनकर्त्तारः श्रावयन्तिजगत्त्रयम् ॥ ४ ॥ इति अथलैंगे पुष्पंफलं
सुगन्धं च वस्त्राण्याभरणानिच शिवार्पितानिस्त्रीकुर्य्यादन्यथाकिल्बषीभवेत्
॥ १ ॥ शिवाग्रेशिवनिर्म्माल्यंगृह्णीतेवशिवाद् द्विजः स्वयमद्यान्तचान्यस्मै-
नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ अथ ब्रह्मांडे मह्यमन्नं प्रयत्नेन निवेद्याश्नातियः

सदा भूपाल सर्ववेदज्ञोभवत्यं वाञ्छसर्व्वथा ॥ १ ॥ अतीतानागतंज्ञानंभूपालत्वंच शाश्वतम् जातिस्मरत्वं सौन्दर्यनैवेद्यस्य च भक्षणात् ॥ २ ॥ मन्नैवेद्यमनुच्छिष्टं मत्वानुच्छिष्टमुत्तमम् योऽश्नातिसतुसर्वज्ञः सभूपालोऽपिजायते ॥ ३ ॥ निर्म्माल्यं सलिलपोलादेवस्यममशूलिनः क्षयापस्मारकुष्टाद्यैःसद्योमुच्येतवन्धनात् ॥ ४ ॥ निर्म्माल्यंपरमंपुण्यं नैवेद्यं पापनाशनम् ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतिनांचैवमुक्तिदम् ॥ ५ ॥ निर्म्मलत्वाच्चनिर्म्माल्यं नृणांनैर्मल्यकारकम् यद्यदात्महितंलोकेतत्तद्द्रव्यंपरंचयत् ॥ ६ ॥ शिवलिंगार्पितंकुर्य्यात्तत्रतुष्यतिशङ्करः उपवाससहस्राणि प्रजापत्यायुतानिच ॥ ७ ॥ शिवार्पितं विनाभुंक्ते सद्योभवतिकिल्विषी उपवास सहस्राणि प्रजापत्यायुतानिच ॥ ८ ॥ शिवप्रसादसिक्थस्यकोट्यंशेनापिनो-समम् अलंयागसहस्रेणाऽप्यलंयोगाऽर्बुदैरपि ॥ ९ ॥ भक्षितेशिवनैवेद्ये शिवसा-युज्यमाप्नुयात् दृष्टेऽपिशिवनैवेद्यं यान्तिपापानिदूरतः ॥१०॥ भक्षितेशिव नैवेद्ये पुण्यान्यायान्तिकोटिशः इति अथ स्कन्दपुराणेऽपि नैवेद्यंपुरतोन्यस्तं दर्शनात् स्वीकृतंमया रसान्भक्तसजिह्वाग्रादश्नामिकमलोद्भव ॥ १ ॥ शिवोपभुक्तं स्रग्गन्ध मन्नपानादिकं तथा निवेदितमितिप्रोक्तं सर्वपापहरंपरम् ॥ २ ॥ खाद्यानि यानिचान्यानिपेयान्यन्यानियानिवै तानिदेयानिशम्भोर्वै अश्नीयादुदासभावतः ॥३॥ स्पष्टलिंगाययद्दत्तंचरूकंतन्नसंशयः तत्प्राशयेत्स्वयंप्राज्ञोनान्यस्मैवैप्रदापयेत् ॥४॥ न दद्यात्गोजलादिभ्योदद्याच्चनरकं व्रजेत् शुद्धेशिवप्रसादेच शुचित्वं यो न भावयेत् ॥५॥ सोऽपियातिनरोघोरं नरकं कालमक्षयम् सुप्रतिष्ठितलिंगेतुयथान पूर्वभावना ॥ ६ ॥ तथा शिवप्रसादस्य पूर्वनाम न संस्मरेत् तत्रैवान्यत् शिव उवाच निर्म्माल्यधारणात् पुत्रसालोक्यं लभतेनरः ॥ ७ ॥ पादोदकस्य पानेन सामीप्यं लभतेसदा मत्प्रसादोपभोगेन सारूप्यं प्रतिपद्यते ॥ ८ ॥ निर्म्माल्य धारयेन्मूर्द्ध्नि नैवेद्यञ्चापि भक्षयेत् मत्प्रसादोदकं पीत्वागाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ अथ सिद्धान्तशिखामणाम् आरोग्यकारणं पुंसामन्तःकरणशुद्धिदम् तापत्रयमहारोगसमुद्धरण भेषजम् ॥ १ ॥ विद्यावैशद्यकरणं विनिपातविघात-कम् द्वारं ज्ञानावतारस्यमोहच्छेदस्य कारणम् ॥ २ ॥ वैराग्य सम्पदोमूलं महानन्दप्रवर्द्धनम् दुर्लभंपापचित्तानां सुलभंशुद्धकर्म्मणाम् आदत्तं ब्रह्मविष्णा-द्यैर्वशिष्ठाद्यैश्चतापसैः ॥ ३ ॥ शिव स्वीकृतमन्नाद्यं स्वीकार्य्यंसिद्धिकांक्षिभिः इति अथ शिवरहस्ये तृतीयांशे संसारवन्धनाशायशिवनैवेद्यभोजनम् कल्पितं गिरिशेनेदंमन्ततोमुक्तिसाधनम् ॥ १ ॥ मुक्तिसाधनभूतेषु श्रेष्ठानिदशतानि तु

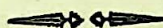
सेवनानि प्रयत्नेन मुमुक्षुभिरहर्निशम् ॥ २ ॥ शिवतीर्थं विभूतिश्चरुद्राक्षाश्च शिवार्च्चनम् शिवलिंगेविल्वपत्रं शिवनैवेद्यभोजनम् ॥ ३ ॥ जपः पञ्चाक्षरस्यापि शिवस्यापि शिवार्पणम् सदाशिवकथालापोदशैतेमुक्तिदाःस्मृताः ॥ ४ ॥ मुक्तिदं दशकं सेव्यमप्रमादेन सादरम् एतस्मादधिकं किञ्चित्मुक्तिदत्वेन कीर्त्तितम् ॥ ५ ॥ मुक्तिदेषु प्रमादोयः करिष्यति विमोहितः नरोनमुच्यते नूनं घोरसंसार सागरात् ॥ ६ ॥ मुक्तिदत्वेन विज्ञातं तस्मात्तत्सेवनंवरम् इति अथ शैवरत्नाकरे तिलानांषोड़शांशस्तु तृणाग्रेविन्दुसंमितम् गन्धमाल्यसमायुक्तं प्रसादमिति शस्यते ॥ १ ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं निर्म्माल्यस्य भक्षणम् तस्यपापमहं शीघ्रं नाशयामिवरानने । २ ॥ यस्य प्रसादाद्देवस्य ब्रह्माब्रह्मत्वमाप्नुयात् विष्णुत्वमपि विष्णुश्च सः शिवःकैर्नसेव्यते ॥ ३ ॥ लिङ्गेऽर्पितेऽखिलेविश्वेह्यर्पितंस्यान्नसंशयः साक्षाल्लिंगार्च्चनोच्छिष्टं स्वदेहेधारयेन्नरः ॥ ४ ॥ वज्रकायस्तु भवति शिवसायुज्यमाप्नुयात् इति अथैकपादपुराणे अन्नपानादिभिः सर्वैर्यस्तु संतर्पयेच्छिवम् तत्फलेनाश्नुते मोक्षंशिवः परमकारणम् ॥ १ ॥ निर्म्माल्यधारयेद्भक्त्याशिरसापार्वतीपतेः राजसूयस्ययज्ञस्यफलमाप्नोति नारद ॥ २ ॥ शिरसाशिव निर्म्माल्यंभक्त्यायोधारयेद्यदि अशुचिर्वीतमर्य्यादः सर्वावस्थांगतोऽपि वा ॥ ३ ॥ तस्यपापानि घोराणि नाशयत्येवशङ्करः इति शिवरहस्येपि प्रसादःप्रथमोग्राह्यः प्रसादाद्गुरुसम्भवः प्रसादोनिर्मलं नित्यंप्रसादात्सत्यसंग्रहः ॥ १ ॥ प्रसादात् करणाभावः प्रसादात्सर्वकारणात् प्रसादोगुरुवाक्यंच प्रसादश्चसुभोगदः ॥ २ ॥ परंज्योतिः परंतत्वं परात्परतरंमहत् परवस्तुसमावाप्तिः परमात्मप्रसादतः ॥३॥ प्रसादंगिरिजादेवी सिद्धकिन्नरगुह्यकैः विष्णुप्रमुखदेवैश्च सुदुर्लभमगोचरम् ॥४॥ एक एवेति यो रुद्रःसर्वदेवेषु गोयते तस्यप्रसादलेशेनमुक्तिर्भवति किङ्करी ॥ ५ ॥ निर्म्माल्यं परमानन्दं निर्म्माल्यं शुद्धसद्धनम् निर्म्माल्यं परमंज्ञानं निर्म्माल्यं परमामृतम् ॥ ६ ॥ इति अथ शिवगीतायाम् शिवनामविहीनस्यध्यानहीनस्य शूलिनः शिवभक्तिविहीनस्य त्रिपुंड्रोद्धूलनादिषु ॥ १ ॥ श्रद्धाहीनस्य रुद्रस्य प्रसादे बुद्धिवर्जनम् साक्षान्मुक्तिश्च हेदेवानैवसिद्ध्यति देहिनः ॥ २ ॥ प्रसादेन विनायजनंयेजानन्ति सुरप्रभोः शास्त्रतत्वं न जानन्ति ग्रन्थेनैकेनकेवलम् ॥ ३ ॥ इति प्रसादस्य पूजाङ्गत्वेन तद्ग्रहणमन्तरापूजाविकलत्वेन तद्ग्रहणस्यावश्यकत्वेऽपि तदतिरिक्त भक्ष्यपेयव्यवहरणीय वस्त्वर्पितदर्पणमन्तराग्रहणे प्रायश्चित्तिर्भवेदिति स प्रमाणं निरूपयति अथ लिङ्गसारे अनिवेद्यतुभुंजानः प्राय-

शित्तिर्भवेन्नरः शिवाष्टशतजापेन पूजया च विशुध्यति॥ १॥ शुद्धान्नं स्निग्धमश्नीयात्‌शिवमन्त्रेण मन्त्रितम् भोक्ताशिव इति स्मृत्वामौनीचैकाग्रमानसः॥२॥ इति अथवातुलतन्त्रे असमर्प्यंयदीशायवस्तु किंचित्कदाचन क्वचिन्नैवोपभुंजीत शिवभक्तिपरोनरः॥ १॥ इति अथ शैवरत्नाकरे अनर्पितंतुयोभुंक्ते शिवलिङ्गस्य तत्ववित् तद्‌विष्ठा सदृशं चान्नं नीरंच सुरयासमम्॥ ४२॥ सर्वंचतृणकाष्ठादि भक्ष्यं चैव सुलेपनम् लिंगार्पण प्रसादान्यन्नान्यं गृह्णीत बुद्धिमान्॥ ३॥ गन्धं मृगमदश्चैव कर्पूरंतैलमञ्जनम् लिङ्गार्पितं प्रसादान्यदन्नेयं सर्वंह्निमूत्रवत्॥ ४॥ इति अथ लिङ्गसारे रत्नाभरणवसनमासनं वाहनादिकम् प्रसादमेवभोक्तव्यंनो चेत्तद्‌गरवद्‌भवेत्॥ १॥ भोज्यंपेयंलेह्यचोष्यंसर्वंलिङ्गार्पितं तथा लिङ्गोच्छिष्टन्तुभुंजीरन् सधनाःस्युःसुहृद्‌वृत्ताः॥ २॥ अथ पत्रं पुष्पं फलन्तोयमन्नपानादि चौषधम् अनिवेद्यनभुंजीत यदाहाराय कल्पितम्॥ १॥ इक्षुदण्डफलापूपाः खाद्यानि व्यञ्जनानि च प्रसादमेवभोक्तव्यमन्यद्‌गोमांसविट्‌समम्॥ २॥ सर्वञ्च तृणकाष्टादि भक्ष्यञ्चैवांबुलेपनम् गन्धोमृगमदंचैव कर्पूरंतैलमञ्जनम्॥ ३॥ रत्नाभरण जातं च वस्त्रं सकलवाहनम् प्रसादमेव भोक्तव्यमन्यच्चाण्डालविट् समम्॥ ४॥ कर्म्मणामनसावाचात्रिविधंचार्पितं शुभम् नोचेदनर्पितं भुक्तं तत्सर्वंनिष्फलं भवेत् प्रसादन्त्रिविधं प्रोक्तं शुद्धं सिद्धिप्रसिद्धकम् शुद्धं खिङ्गमुखात्यक्तं सिद्धश्चरत्रिसर्ज्जितम्॥ १॥ प्रसिद्धंगुरुणात्यक्तंमित्येतत् त्रिविधंस्मृतम् लिङ्गार्पणन्तु सर्वंचवाह्यमभ्यन्तरं भवेत्॥ २॥ रूपं द्रव्यस्यवाह्यन्तु निरूपश्चाऽन्तरं पुनःशिवस्वामिकमेवान्नं शिवायविनिवेदयेत्॥ ३॥ विनियोगोपचारेण सन्तुष्यति सदाशिवः सर्वलोकैकनाथायतस्मैकः किं प्रयच्छति॥ ४॥ उपचार प्रियः शम्भुस्तेनैवायं प्रसीदति रूपंसमर्प्यद्रव्यस्य हृदयेऽप्यर्पयेत्ततः॥५॥ उभयार्पणहीनश्चेत्प्रसादं निष्फलंभवेत् यत्रतुशिवसन्निधानं नास्ति तत्रापि बुभुक्षितेन पिपासितेन चान्नादिकंवागादिनाशिवाय समर्प्यैवभोक्तव्य मुक्तश्रुत्याद्यनुसारात् इतिस्कान्दे अथलिङ्गे खाद्यानियानिचान्नानि पेयान्यन्यानियानि वै देयानितानि वैशम्भोरश्नीयाद्‌दासभावतः॥ १॥ भोज्यालेह्याश्चचोष्याश्चये च लिङ्गार्प्पिताःपरे लिङ्गोच्छिष्टन्तु भुंजीत तत्प्रसादेरितं बुधैः॥२॥ रूपांगञ्च समायुक्तंरुचिर्वैशब्दकारकम् तन्मिश्रादर्पितंचैतच्छम्भोः प्रसादसिद्धकम्॥ ३॥ रूपे समर्प्यद्रव्यस्यरुचिं चैवार्पयेत्ततः उभयार्पणहीनश्चेत्प्रसादोनिष्फलोभवेत्॥ ४॥ इति अथस्कान्दे समायातं परिस्पृष्टम्पदास्पृष्टं मनिच्छया शिवायकल्पितं वस्तु न किञ्चिदपि

दुष्यति ॥ १ ॥ इति अथ क्रियातिलके गवांसर्पिः शरीरस्थं न करोत्यात्मपोषणम् मिश्रितं कर्म्मणात्यन्तं पुनस्तासान्तु भेषजम् एवमन्तः शरीरस्थः सर्पिवत् परमेश्वरः विनाचोपासनांदेवोनकरोति हि तत्फलम् आद्याग्निहोत्रप्राणाग्निहोत्रादौयद्यदन्नादिकं निष्पन्नंतत्तत्सर्वंशिवाय निवेद्यैवतत्तच्छ्राद्धादिकर्म्मविधिर्नचनिवेदनमन्तरा इत्याह अथ शिवमहापुराणेत्यादि अथ शिवमहापुराणे धर्म्मसंहितायां सप्तदशोऽध्यायः शिवायसर्वपाकान्नं निवेद्याग्नौचहोमयेत् कल्पयेच्चगुरोर्भागमित्ययं सततंविधिः ॥ १ । शिवाग्निगुरुविप्रेभ्यःसर्व्वंपाकाग्रमन्वहम् योनिवेद्यात्मनाभुंक्तेसरुद्रोनात्र संशयः ॥ २ ॥ अनिवेद्यचयोभुंक्ते सभुंक्ते किल्विषंनरः कृषिवृद्ध्यादिवाणिज्यक्रोधसंमार्जनादिभिः ॥ ३ ॥ पुंसांपापानिवर्द्धन्ते सूनादोषैस्तुपञ्चभिः संमार्जनांजनन्तोयमग्निकुण्डनिपेषणम् ॥ ४ ॥ सूनापञ्च गृहस्थानांनित्यंपापाभिवृद्धये शिवाग्निगुरुपूजाभिः पापैरेतैर्नलिप्यते ॥ ५ ॥ अन्यैश्च पातकैर्घोरैस्तस्मात् संपूजयेत् त्रयम् शिवाग्निगुरुनैवेद्यैर्यावत्सिक्थास्तु संख्यया ॥ ६ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि दाता शिवपुरेवसेत् घृतापूपान्नसिक्थेस्य पुण्यंदशगुणोत्तरम् ॥ ७ ॥ षाष्टिकौदननैवेद्ये सहस्रगुणितंफलम् सुगन्धिशालि नैवेद्ये विज्ञेयंतद्दशाधिकम् ॥ ८ ॥ रक्तशालिसुनैवेद्ये फलं दशगुणंहितम् कलमाशालिनैवेद्ये तस्यलक्षाधिकंफलम् ॥ ९ ॥ एवं शालिविशेषेणफलंस्यादुत्तरोत्तरम् सद्व्यञ्जनघृतैर्भूयस्तत्पुण्यमति वर्द्धते ॥ १० ॥ क्षीरभक्तेन नैवेद्ये तस्य पुण्यंदशाधिकम् दधिशर्करयायुक्ते तत्पुण्यंस्याद्दशाधिकम् ॥ ११ ॥ रसान्नं सुरसंशोतं कर्पूरसुरभीकृतम् निवेद्यपुण्यमाप्नोतिदशकोटिगुणाधिकम् ॥ १२ ॥ गुड़खण्डकृतैर्भक्ष्यैर्घृतेनपरिपाचितैःकोट्युत्तरंतुनैवेद्ये शिवाग्निगुरुवंधुषु ॥ १३ ॥ यथा यथाचस्वादूनिस्निग्धानि सुरभीणिचे भक्त्यानिवेद्यभुंजानःफलमक्षयमाप्नुयात् ॥ १४ ॥ शिवमभ्यर्चयत्नेनहुत्वासौविधिपूर्व्वकम् शिवैर्मन्त्रैर्वलिंपश्चात् ददतियेनतेयमम् ॥ १५ ॥ पश्यन्तित्रिदिवं यान्ति तस्माद्दद्याद्दिनेदिने मण्डलंचतुरस्रं च कृत्वागन्धादिवासितम् ॥ १६ ॥ धन्वन्तरायईशान्यां प्राच्यामिन्द्रायनिःक्षिपेत् याम्यांयमायवारुण्यांसुदक्षोमायदक्षिणे ॥ १७ ॥ पितृभ्यश्च विनिक्षिप्य प्राच्यामर्पणे ततः धातुश्चैवविधातुश्चद्वारपेभ्यश्चनिक्षिपेत् ॥ १८ ॥ खभ्यश्चखपतिभ्यश्चवयोभ्योनिक्षिपेद्भुवि देवपितृमनुष्यैश्चप्रेतैर्भूतैःसगुह्यकैः ॥ १९ ॥ वयोभिः कृमिकीटैश्च गृहस्थश्चोपजीव्यते स्वाहाकारःस्वधाकारोवषट्कारस्तृतीयकः ॥ २१ ॥ हन्तकारस्तथैवान्योधेन्वास्तनचतुष्टयम् स्वाहाकारञ्च देवेभ्यः

पितृभ्यस्तुस्वधामृतम् । २१ ॥ वषटकारस्तथैवान्येदेवाभूतेश्वरास्तथा हन्तकारं मनुष्याश्चपिबन्ति सततं स्तनम् ॥ २२ ॥ इति अथ कूर्मे यः श्राद्धकालेहरभुक्त शेषं ददाति भक्त्या पितृदेवताभ्यः तैरेवपिण्डैश्चतिलैर्विमिश्रैर कल्पमस्मात्पितरः सतृप्ताः ॥ १ ॥ प्राणाग्निहोत्रं यः कुर्यात् शिवस्यैवप्रसादतः अश्वमेधायुतं पुण्यं सिक्थेसिक्थेलभेन्नरः ॥ २ ॥ अथ प्राणाग्निहोत्रमाह तैतरीये आरण्यके दशमप्रपाठके १० पञ्चमसप्तत्यनुवाक्ये ५७ प्राणेनिविष्टोऽमृतंजुहोमि शिवोमाविशाप्रदाहाय अपानायस्वाहा श्रद्धायामपानेनिविष्टोऽमृतंजुहोमि शिवोमाविशाप्रदाहायंव्यानायस्वाहा श्रद्धायामुदानेनिविष्टोऽमृतंजुहोमि। शिवोमाविशाप्रदाहाय उदानायस्वाहा श्रद्धायांऽञ्छसमानेनि विष्टोऽमृतंजुहोमिशिवोमाविशाप्रदाहाय समानायस्वाहा ब्रह्माणि मआत्माऽमृतताय अमृतापिधानमसि अनु० ६८ इति सर्वसाधारणोपासकविषयः।

इति निर्म्मालयरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे त्रयोदशस्तरंगः ।



## अथ चतुर्दशस्तरंगः ।

तत्रविशेषतःशैवविषयमाह अथ लैंगे कर्मणामनसावाचा त्रिविधं चार्पणं शुभम् नोचेदनर्पितंभुंक्तं प्रसादोनिष्फलोभवेत् ॥ १ ॥ स्वेष्टलिंगाययद्दत्तंचरुकं तत्रसंशयः तत्प्राशयेत्स्वयंप्राज्ञोनान्यस्मैतत्प्रदापयेत् ॥ २ ॥ नदद्यात्गोजलादिभ्योदद्याच्चेन्नरकंव्रजेत् इति अथ वृहत्कालोत्तरम् गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्जाग्रन् भुंजानोमैथुनेरतः यः शिवार्पितचेतस्कोभक्तिमान्सतुनान्यथा ॥ १ ॥ संयोगेषु वियोगेषु चानुमात्रसुखानिवा यः कुर्य्यादिष्टलिंगेतुश्रद्दधानोनिरन्तरम् ॥ २ ॥ पञ्चेन्द्रियसुखंमुख्यं हृदयंतस्यकारणम् मारुतंचतनुस्पर्शंसर्व्वलिगंसमर्पणम् ॥३ ॥ इन्द्रियादागतं किञ्चिद्यत्सुखंतच्छिवार्पितम् तत्तत्प्रसादंभोक्तव्यंतत्तदिन्द्रियसुखेनच ॥ ४ ॥ यदिंन्द्रियंसुखंज्ञेयंतदिन्द्रियसुखाच्चरत् ॥ अन्येंद्रियोपभुंक्तं

चेदनर्हम्भूषणादिवत् ॥ ५ ॥ यायाक्रियाविधातव्याप्रस्तुताजायतेरतिः तांतां कुर्य्यान्महादेवेशिवार्पणधियासुधीः ॥ ६ ॥ उपभोगाय पुरतोवस्तु यद्यदुपस्थितम् तत्समर्प्य स्वदेवायविदधीतात्मनाततः ॥ ७ ॥ आरभ्यकर्म्माणिशुभानितानि भावांश्चसर्वान्विनियोजयेद् यः तेषामभावेक्षनकर्मनाशःकर्मक्षयंयातिसमर्पणेन ॥ ८ ॥ इति अथ लिंगसारे इक्षुरम्भाफलादीनिखण्डितानिनिवेदयेत् ॥ १ ॥ द्राक्षाखर्जुरचूतादीन्यखण्डानिनिवेदयेत् ॥ १ ॥ शुद्धेशिवप्रसादेच शुचित्वं योनभावयेत् सोऽपियातिनरोघोरंनरकं च यमक्षयम् ॥ २ ॥ पूर्वंपदार्थान्संशोध्यसद्यःपाकोविधीयते लिंगोच्छिष्टं परंकार्य्यंततः प्रसादसेवनम् ॥ ३ ॥ इति अथ शिवरहस्ये अविकल्पधियाशम्भोर्भक्तोच्छिष्टान्नपानकम् योभुंक्ते सगणाधीशोयावज्जीवंप्रतिज्ञया ॥ १ ॥ प्राणप्रयाणकालेतुसर्वंभोगोपभोगकम् अर्पयेत्सावधानः सन्शिवस्तत्प्राणदायकः ॥ २ ॥ पूजकावहवःसन्तिभक्ताःशतसहस्रशःतत्प्रसादपात्रन्तुद्वौत्रयोनैव पञ्चषट् ॥ ३ ॥ शिवप्रसादमाहात्म्यं सिद्धकिन्नरगुह्यकाः विष्णुप्रमुखदेवाश्चतेन जानन्ति किं नराः ४३ इति अथ शैवरत्नाकरे स शुद्धमन्नं जातं हि यच्छिवाय समर्पितम् तदेवसर्वकालन्तु भुंजानो लिंगतत्परः ॥ १ ॥ मनः प्रसादमतुलंलभते ज्ञानमुत्तमम् आत्मयोगायनियतं यद्यद्द्रव्यंसमाहितम् ॥२॥ तत्तत्समर्प्य देवायभुंजीतात्मविशुद्धये आरोग्यकारणं पुंसामन्तः करणशुद्धिदम् ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलन्तोयं यच्छिवाय निवेदितम् तस्य स्वीकारयोगेनसर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ४ ॥ इति प्रसादविषयम् अथ प्रथमास्कान्दे प्रायश्चित्तं यदि प्राप्तं कृच्छ्रंवाप्यघमर्षणम् तत्प्रसादोदकंपीत्वाशुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ १ ॥ इति तथाच सनत्कुमारं प्रतिब्रह्मणोवाक्यम् अद्यमन्यद्रहस्यन्ते कथयामिशृणुष्वतत् तत्प्रसादोदकस्पर्शात्पुण्यमन्यन्नविद्यते ॥ १ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं शम्भोर्वदननिर्गतम् तत्प्रसादोदकंविद्यात्स्कन्दाद्यैरपि सेवितम् ॥ २ ॥ प्रसादोदकपानेविधिः शिवेनोक्तः निर्माल्यंधारयेन्मूर्द्ध्नि नैवेद्यञ्चापि भक्षयेत् तत्प्रसादोदकं पीत्वागाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ अन्यत्तत्रैवब्रह्मणोवाक्यम् भूतप्रेतपिशाचानांशाकिनीनांविनाशनम् जराव्याप्तशरीराणां रोगाक्रान्तशरीरिणाम् रागैराव्रत्तदेहानांविषशस्त्रहतात्मनाम् वातपित्तकफोद्भूत सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ५ ॥ अग्निचौरभयंपुत्रपुरुषस्यनविद्यते। अल्पमृत्युभयं नास्ति सिंहव्याघ्रभयं तथा ॥ ६ ॥ तस्य सर्वभयन्नास्ति प्रसादोदकदर्शनात् उत्साहं पौरुषं शौर्य्यंसन्ततिः सुखमुत्तमम् ॥ ७ ॥ पीतेवक्त्राम्बुयोगेन शिवधर्म्मा-

मुपङ्क्तिणाम् प्राकृतान्नात्वधर्मेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते॥ ८॥ इति अथ मत्प्रसादो-दकं पुष्पं सदाधार्य्यंमदाश्रयैः अष्टादशभुजाःसर्वेममसाम्यपराक्रमाः॥ ६॥ इति शिवरहस्ये इत्येवं प्रसादाम्बु निरूप्य अथ सप्रमाणं पादाम्बु निरूपयति ५ पादोदकं पुरभिदःपाशजालहरम्परम् रोगकुष्टाद्यपस्मारज्वराणांभेषजम्परम् १ अथ हरिवंशेपुरुहूतसंवादे कदाचिदीशपादाम्बु निर्माल्यपरिमिलितैःपवनः पन्न-गेशेन निपीतःपुण्यकारणात्॥ १॥ तेन विश्वम्भराभारधुरीणत्वमवाप्यते भोगीश्वरत्वमचलमीशभूषणतापिच॥ २॥ सर्वज्ञाताच संप्राप्ता देवेन्द्र नहि संशयः साक्षात्प्रसादभोगेन भक्तोयल्लभतेफलम्॥ ३॥ तदुक्तं नहि मेशक्ति-र्नगुरोर्नगिराम्यतेः इति अथ बौधायनः अथातोमहादेवस्यपादोदकस्वाराध्या-स्यामोभगवतः पादौप्रक्षाल्यशंखमापूर्य्यगन्धपुष्पादिभिरभ्यर्चनंरुद्रायेत्यादि रुद्रायेत्यादिद्वाभ्यांमार्जनंकृत्वा ऋतं च सत्यं परंब्रह्मेति प्राशयेत् एवंकुर्यात्स कुलजान् दशपूर्वान् दशपरान् आत्मानञ्चतारयेत् इति अथ ब्रह्माण्डपुराणे सन-त्कुमारंप्रति ब्रह्मवचनम् गङ्गोदकात्पवित्रं तु शिवपादोदकादिकम् पीतं वा मस्तकस्थं वानॄणां पापहरम्परम्॥ १॥ दृष्टिपूतं पिबेत्सर्वंशिवस्यपरमात्मनः तद्वे पापहरं पुत्र किं पुनःपादयोर्जलम्॥ २॥ इति अथ ब्रह्माण्डपुराणे तत्रैव सनत्कुमार उवाच माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि शिवपादोदकस्य च किं फलंकः प्रभावोवागुणाः केवाऽस्य कीर्त्तिताः॥ १॥ तद्धारयन्ति यो नित्यं शिरसा शिवतत्परःप्राशयन्नियमेनैवं प्रयत्नेन दिनेदिने॥ २॥ कुरुतेयोनरोब्रह्मन्प्रभा-वस्तस्यमेवद ब्रह्मोवाच साधु साधुत्वयावत्सप्रश्नोऽयं पापनाशनः॥ ३॥ अतः पादोदकस्याद्यशृणुमाहात्म्यमुत्तमम् कथयामोहतेवत्सयोग्यस्त्वं श्रुतवानसि॥४॥ पाद्यन्तदाविभोस्तस्यगृह्णीयात्पादतोजलम् शतधारेण मन्त्रेण पञ्चाक्षरयु-तेनवै॥ ५॥ धृत्वाशिरसिपादांबुमहत्फलमवाप्नुयात् अकालमृत्युमथनं सर्वं व्याधि विनाशनम्॥ ६॥ सर्वपापप्रशमनंशम्भोःपादोदकं शुभम् सद्यःफलप्रदं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् पुण्यात्पुण्यतमंश्रेष्ठसर्वदोषनिवारणम्॥ ७॥ सर्वं मङ्गलमांगल्यं सर्वपावनपावनम् दुष्टग्रहोपशमनं स्वेष्टसिद्धिप्रदायकम्॥ ८॥ सर्वकल्याणकृत्प्रोक्तं सर्वकामफलप्रदम्॥ ६॥ सर्वतीर्थफलंसम्यक्प्राप्नुयान्मूर्द्धि धारणात् नारायणशिलांगलात्तत्पृष्टे आड्रकन्नरः॥ १०॥ यदाप्नोति तदा-प्नोति मूर्द्धिं पादांबुधारणात् तथैवपितरस्तस्य नृत्यन्त्तिदिविहर्षिताः॥ ११॥ महानद्यांतुगोदायांवैराजेयमुनाजले ब्रह्मावर्त्ते च केदारे तथा कनखलेऽपि चं

॥ १२ ॥ गङ्गायां च कुशावर्त्ते विल्वकेनीलपर्व्वते दशाश्वमेधेयद्दत्वा तथा कूर्म्मी शिलासु च ॥१३॥ एषु तीर्थेषु यत्पुण्यं तद्वेपादांबुधारणात्प्रयागस्य प्रभासस्य पुस्करस्य च सेवनात् ॥ १४ ॥ पृथूदकस्य शुक्लस्य सानिध्याद्यत्फलम्भवेत् प्रयागेचमृतिर्येषांवाराणस्यांमृतस्यच कुरुक्षेत्रे मृतानांच गतिर्भवतियान्नृणाम् ॥ १५॥ सर्वं भवतिवैवत्सशिवपादं बुधारणात् कुरुक्षेत्रे नैमिषे च भूमिभागेचयेशुभाः ॥ १६ ॥ शिवतीर्थोदकस्यैते कलांनार्हंतिषोड़शीम् मौनीचयस्तु गङ्गायां स्नान धर्म्मरतोनरः ॥ १७॥ तस्ययाद्दक्भवेत् पुण्यं ताद्दक्पादांबुधारणात् श्रवणात्सर्वं शास्त्राणांवेदवेदांगधारणात् ॥ १८ ॥ सर्व्वव्रतानामाचरणात् तपसां यत् फलंमुने तत्सर्वंलभतेमर्त्योमूर्द्ध्नि पादांबुधारणात् ॥ १९ ॥ अग्निष्टोमाद्गोसहस्रात्पौण्डरीकान्महामुने वाजपेयाद्राजसूयाग्नरमेधाच्चयत्फलम् ॥ २० ॥ तथा वहुसुवर्णस्य सर्वमेधस्य यत्फलम् । तत्फलंलभते सद्योमूर्द्ध्नि पादांबुधारणात् ॥ २१ ॥ गृहे यत्र प्रसूताचेत्सूतकंनात्रविद्यते शिवपादांबु संस्पर्शात्सर्वं पापं प्रणश्यति ॥ २२ ॥ दूषितंचापि पादांबुविभ्राणाः शुद्धिमाप्नुयुः अन्त कालेऽपि येनैत्रधार्यते पादयोजलम् ॥ २३ ॥ सोऽपि सद्गतिमाप्नोति विद्याचार वहिष्कृतः अगम्यागमनं येषां पापाचाराश्चये नराः ॥ २४ ॥ तेऽपि पूताभवन्त्याशु शम्भोःपादांबुधारणात् दृष्टिपूतं पिवेत्सर्वं शिवस्य परमात्मनः ॥ २५ ॥ तद्वैपापहरं पुत्र किं पुनःपादयोर्जलम् शम्भोःपादोदकंपीत्वापश्चादशुचि शङ्कया ॥ २६ ॥ यः आचमतिमोहेन तं विद्याद्व्रह्मघातकम् यथापादोदकं पुत्र पत्रंपुष्पं सुखावहम् ॥ २७ ॥ तथैवधूपशेषश्च दीपशेषो न संशयः शेवरत्नाकरे पादोदकं पुरभिदः पापजालहरम्परम् पाणिशुक्तिभिरादायः प्रकामंगणेश्वराः ॥ १ ॥ कुरुक्षेत्रे नैमिषेच भूमिभागाश्चयेशुभाःसर्वतीर्थोदकस्यैवकलांनार्हन्ति षोड़शीम् ॥ २ ॥ अकालमृत्युमथनं सर्वव्याधिविनाशनम् सर्वदुःखोपशमनं शम्भोःपादोदकं शुभम् ॥ ३ ॥ सर्वमंगलमांगल्य सर्वपावनपावनम् सर्वतीर्थ फलं सद्यःप्राप्यते मूर्द्ध्नि धारणात् ॥ ४ ॥ सर्वोत्पातशमनम् सर्वरोग प्रभेदनम् दुष्टग्रहोपशमनमिष्टसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५ ॥ अगम्यागमनं चैव पापाचाराश्चयेशुभाः तेऽपि पूताभवन्त्याशु सद्यःपादांबुधारणात् ॥ ६ ॥ अशौचं नैव विद्येतसूतकेप्रेतके तथा गृहे यस्मिन् प्रसूतांस्त्रीसम्भोगाम्पश्यसेव च ॥ ७ ॥ दूषितंचापि पादांबुविभ्रच्छूद्धिमवाप्नुयात् पादोदकंच निर्माल्यं भक्त्या धार्य्यं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ न संस्पृशन्ति पापानि मनोवाक्कायजानिच विभुःपरशु

रामोऽपि शिवेनपरिदोषितः॥ ९॥ पादोदकप्रसादेन निर्माल्यादि निसेवनात् विशिष्टोऽपि गरिष्ठोऽभूत्प्रसादस्य प्रभावतः॥ १०॥ पादोदकंपि वेदयस्तु लिंगमूर्तेः शिवस्य तु प्रक्षालयति तत्तोयं ब्रह्महत्यादिपातकम्॥ ११॥ लिंगोदकंच पादांबुप्रसाद इति च त्रिधा नमस्कारं हि शिरसायंधार्यंशिवार्थिभिः॥ १॥ इति पादांबुनिरूप्याथस्नानाम्बुंनिरूपयति निर्म्माल्यशलिलं पीत्वादेवस्य ममशूलिनः क्षयापस्मारकुष्टाद्यैस्सद्योमुच्येतवन्धनात्॥ १॥ निर्म्माल्यंपरमं पुण्यं नैवेद्यंपापनाशनम् ब्रह्मचारि गृहस्थानां यतीनांच विमुक्तिदम्॥ २॥ इति ब्रह्माण्डे अथवाल्मिकीयरामायणे प्रथमैःप्रवरैःपीतंसुरमुख्यैः शिरोधृतम् शुद्धतलतयादिष्टं वाल्मीकप्रभवेनच॥ १॥ तत्रदेवर्षिगन्धर्ववसुधातलवासिनः अवांगपतितं तोयं पवित्रमिति संस्पृशेत्॥ २॥ स्नापयित्वाविधानेन यो लिंग स्नपनोदकम् त्रिःपिवेत्त्रिविधं पापं तस्य सद्यः प्रणश्यति॥ ३॥ इति अथायुर्वेदे निर्म्माल्यशलिलं प्राश्यदेवदेवस्य शूलिनः क्षयकुष्टज्वरश्वासैर्मुच्यते किल्विषैरपि इति अथ ब्रह्मगीतायाम् स्नानोदकाच्छुचिस्त्रिपादृगण्डूषंचपिवेत्सदा लिंग ग्राह्यमथाग्राह्यमन्यत्राग्राह्यमिवयत्॥ १॥ लिङ्गावगाहनंचांवुलिंगांवुरुचितर्पणे तेन स्नानंचपानञ्च अन्यद्विण्मूत्ररेतसि॥ २॥ लिङ्गप्रक्षालनं तोयं लिंग तोयं तथैवच तत्तोयंसर्वदाग्राह्यमन्यच्चाण्डालतोयवत्॥ ३॥ शम्भोःस्नानोदकं सद्यःसर्वतीर्थसमम्महत् धारणात् पापसंघातैस्तत्क्षणादेवमुच्यते॥ ४॥ इत्येवं स्नानांवुनिरूप्य अथाभिषेकांवुनिरूप्यते। अथ वृहज्जाबालीयेतृतीयखण्डे अहरहमभ्यर्च्यविश्वेश्वरं लिंगं तत्रुद्रसूक्तै रभिषिच्यतदेवस्नपनंपयः त्रिःपीत्वामहापातकेभ्योविमुच्यतेनशोकमाप्नोति मुच्यते संसारवन्धनात् लिंगाभिषेकं कुर्वीत तल्लिंगोदकमुच्यते तत्रस्नात्वाचपीत्वाचनाशयत्यखिलामयम् तथाच चतुर्वेद तात्पर्ये शिवाभिषेकप्राशनविधिः श्रुत्यन्तरे त्वादत्तेभी रुद्रशतमेभिः शतं हिमा अशीषभिषजेभीरितलिंगाऽभिषेकतोयेन शुचिर्भूत्वाहरोभवेत् मार्जनमद्भिर्गात्रेच स्नान मौरितमिति स्नातानाञ्चैव सर्वेषां रहस्यमतिदुर्लभम् येनस्नानेन सा गौरी रुद्रं भर्त्तारमेतिच अभिषिक्तं जलंप्रातःपिवेन्नित्यं दिनेदिने शूलकुष्टाद्यपस्मार ज्वराणां भेषजं परम् इति अभिषिक्तं जलंप्रातःपिवेन् नित्यं दिनेदिने शूल कुष्टाद्यपस्मार ज्वराणां भेषजंप्रिये॥ १॥ दासमार्गप्रपन्नायेश्रौतेपाशुपतेस्थिताः तैरेवपेयंधार्य्यंचघ्रातव्यंचमुमुक्षुभिः॥ २॥ लिंगाभिषेकं कुर्वीततल्लिंगोदक मुच्यते तत्रस्नात्वाचपीत्वाचनाशयेदखिलामयम्॥ ३॥ आरोग्यमस्तु वलमस्तु

यशोऽस्तुनित्यं सौभाग्यमस्तु वलमस्तु शशांकमौलेस्त्वत्पादमंकेरुहमज्जन पुण्य तोयमास्वादयामिपरतोनपुनर्भवाय इति अथ लिंगसारे लिंगाभिषिक्तं यत्तोयं यच्चलिंगोदकम्भवेत् तत्पिवेल्लिंगशरण अन्यत्तद्मांसवद्भवेत्॥ २॥

## इति निर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे चतुर्दशस्तरंगः।



## अथ पञ्चदशस्तरंगः।

अभिषेकांवु निरूप्य अथ परशिवसदाशिवेश्वरलिंगोत्पत्तिस्तेषां जगत्पूजकत्वंच सप्रमाणमाह अथ लिंगपुराणे ऋषय ऊचुः कथं लिंगीमभूल्लिंगे समभ्यर्च्य स शङ्करः किंलिंगंकस्तथालिंगी सूतवक्तुमिहार्हसि रोमहर्षणउवाच एवं देवाश्च ऋषयःप्रणिपत्यपितामहम् अपृच्छन्भगवल्लिंगंकथमासीदिति स्वयम्॥ १॥ लिंगीमहेश्वरोरुद्रःसमभ्यर्च्चकथंलिति किंलिंगंकस्तथालिंगी सोऽप्याहचपितामहः॥ २॥ पितामह उवाच प्रधानंलिंगमाख्यातं लिंगीच परमेश्वरः रक्षार्थमंवुधीमह्यंविष्णोस्त्वासीत्सुरोत्तमाः॥ ३॥ तदासमभवत्तत्र नादोवैशव्दलक्षणः ओमोमिति सुरश्रेष्ठाःसुव्यक्तःप्लुतलक्षणः॥ ४॥ किमिदं लिति सञ्चिन्त्यमहातिष्ठन्महास्वनम् लिंगस्यदक्षिणेभागे तदापश्यत्सनातनम्॥ ५॥ आद्यं वर्णमकारन्तु उकारंचोत्तरेततः मकारं मध्यतश्चैवनादन्तस्यचोमिति॥ ६॥ सूर्य्यमण्डलवद्दृष्ट्वावर्णमाद्यन्तु दक्षिणे उत्तरेण पावक प्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः॥ ७॥ शीतांशुमण्डल प्रख्यंमकारंमध्यमं तथा तस्योपरि तदापश्येच्छुद्धस्फटिकवत् प्रभुम्॥ ८॥ तुरीयातीतममृतं निष्कलं निरुपद्रवम् निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यंवाह्याभ्यन्तरवर्जितम्॥ ९॥ स वाह्याभ्यन्तरश्चैव स वाह्याभ्यन्तरस्थितम् आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्यापि कारणम्॥ १०॥ स्कन्दपुराणे ईशान संहितायाम् एवंस्तुतस्तदाताभ्यांकृपयापरमेश्वरः॥११॥ लिंगमध्याद्विनिष्क्रम्य शङ्करस्यात्मनो वपु.चकारभगवान् शम्भुर्महादेवोघृणानिधिः॥ १२॥ तथा सन्दर्शयामासवपुषाचात्मनस्तयोः अर्द्धनारीश्वरं नामत्रिनेत्रं नीललोहितम्॥ १३॥ वरदाभयहस्तं च मृगटंकधरंप्रभुम् सर्वाभरण संयुक्तं गणकोटि समन्वितम्॥ १४॥ कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं वालचन्द्रावतं सकम् दृष्ट्वाविस्मय-

मापन्नीभक्त्यासंपूज्यशंकरम् ॥ १५॥ अभवं लिंगरूपेण भक्तानामनुकंपया लिंगमध्ये समभवदर्धनारीश्वरोह्यहम् ॥ १६॥ मन्त्रैर्महेश्वरं देवन्तुष्टावस महोदयम् आवयोस्तुति सन्तुष्ट लिङ्गेतस्मिन्निरंजनम् दिव्यं शब्दमयंरूपमास्थायप्राह संस्थितः ॥ १८॥ अकारन्तस्यमूर्द्धातुललाटं दीर्घमुच्यते ॥ १९॥ इकारो दक्षिणंनेत्रमीकारोवामलोचनम्। उकारोदक्षिणं श्रोत्रं मूकारोवाम उच्यते ॥ २०॥ ऋकारो दक्षिणं तस्यकपोलः परमेष्ठिनः वामंकपोलमृकारो लृलृनासापुटे उभे ॥ २१॥ एकारमोष्टमूर्ध्वश्चऐकारस्त्वधरोविभोः ओंकारश्च तथौकारोदन्तपंक्तिद्वयेक्रमात् ॥ ७॥ अमस्तुतालनीतस्यदेवदेवस्यधीमतःकादि पञ्चाक्षराण्यस्य पञ्चहस्तानि दक्षिणे ॥ ८॥ चादिपंचाक्षराण्येवं पञ्चहस्तानि वा मतः टादिपंचाक्षरंपादस्तादि पंचाक्षरं तथा ॥ ९॥ पकारमुदरन्तस्य फकारःपार्श्वं उच्यते वकारोवामपार्श्वस्त्वैभकारंस्कन्धमस्यतत् ॥ १०॥ मकारं हृदयं शम्भोर्महादेवस्ययोगिनः यकारादिसकारन्ताविभोर्वैसमधातवः ॥ ११॥ हकार आत्मरूपंवैक्षकारः क्रोध उच्यते तंदृष्ट्वा उमयासार्द्धंभगवन्तं महेश्वरम् ॥ १२॥ प्रणम्यभगवान्विष्णुःपुनश्चापश्यदूर्ध्वतः ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चक संयुतम् ॥ १३॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टं त्रिंशदक्षरम् मेधाकमशमदभूयः सर्वधर्मार्थसाधकम् ॥ १४॥ गायत्रीप्रभवंमंत्रंहरितवश्यकारकम् चतुर्विंशति वर्णाढ्यं चतुष्फलमनुत्तमं ॥ १५॥ अथर्वमसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम् अभिचारकमत्यर्थंत्रयस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् ॥ १६॥ कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा त्रयोदशकलायुक्तं वालाद्यैःसहलोहितम् ॥ १७॥ सामोद्भवं जगत्याद्यंवृद्धिसंहारकारणम् वर्णाषडधिकाषष्ठरस्यमन्त्रवरस्य तु ॥ १८॥ पञ्च मन्त्रास्तथालब्ध्वाजजापभगवान् हरिः अथ दृष्ट्वाकलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम् ॥ १९॥ ईशानमीशमुकुटंपुरुषाख्यं पुरातनम् अघोरहृदयंवामकटिगुह्यं सदाशिवम् ॥ २०॥ सद्यःपादंमहादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम् तत्रैव तदा प्रभृति लोकेषु लिंगाश्चसुप्रतिष्ठिताः ॥ २१॥ लिंगवेदीमहादेवीलिंगःसाक्षान्महेश्वरः लयनाल्लिंगमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः ॥ २२॥ यस्तुलिङ्गंपठेन्नित्यंमाख्यानं लिङ्गसंनिधौ।

इतिनिर्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे पञ्चदशस्तरंगः।



## अथ षोड़शस्तरंगः ।

इत्येवंपरशिवसदाशिवेश्वरलिङ्गोत्पत्तिमभिधायाधुनातत्तल्लिङ्गलक्षणनिरूपणमारभते ओंप्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं वाणाख्यञ्चमहाप्रभम् कामवाणान्वितंदेवं संसार दहनक्षमं शृंगारादिरसोल्लासंवाणाख्यम्परमेश्वरम् एवंध्यात्त्वावाणलिंगं यजेत्तं परमं शिवं ॥ १ ॥ मधुपिंगलवर्णाभक्षणाकुण्डलिकायुतम् स्वयंभूलिंगमाख्यातं सर्वसिद्धैर्निषेवितम् ॥ १ ॥ अथवार्णसमाख्यातं यथावच्चेतथादितःवाणः सदाशिवोदेवीवाणोवाणान्तरोऽपि च ॥ १ ॥ येन यस्मेकृतं तस्माद्वाणलिंगमुदाहृतम् सदासंनिहितस्तत्रशिवःसर्वार्थदायकः ॥ १ ॥ रत्नानांपारदस्याथ स्वर्णादिधातूनां तथा मृत्तिकायाश्च निष्पन्नं लिंगंमूर्त्यात्मकं तथा एतदोश्वर लिंगेवैप्रतिमांच निरूपितम् अथ शिवंपुराणे वाणलिंगम् वाणलिंगे स्वयंभूते चन्द्रकान्तेहृदिस्थिते चान्द्रायण समंज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं वाणलिंगेनविद्यते ॥ १ ॥ लिंगेस्वयंभुवेवाणेरत्नजेरसनिर्मिते सिद्धप्रतिष्ठितेचैवनचण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥ २ ॥ स्वर्णलिंगेतथारौप्येताम्रजेलौहनिर्मिते प्रतिमादिषु सर्वासु न चण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥ ३ ॥ शिवभक्ता इतरभक्ता अभक्ता वा सर्वेषांपञ्चविधनिर्माल्यग्रहणावश्यकंच न कदापित्याज्यम् तदुक्तमग्निपुराणे वाणलिंगेचलेलौहेसिद्धेलिंगे स्वयंभुवि प्रतिमासुचसर्वासु न दोषोमाल्यधारणे ॥ ४ ॥ निर्माल्यधारणे इत्यर्थः लौहेधातुमये इत्यर्थःमत्स्यसूक्ते वाणलिंगे नचाशौचं नच निर्माल्यकल्पना सर्ववाणार्पितं ग्राह्यंभक्ताभक्तैश्चनान्यथा १ इति अथ मेरुतन्त्रे ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयंवाणलिंगेन विद्यते तदर्पितं जलञ्चान्नं ग्राह्यं प्रसाद संज्ञया इति अथ गौतमः वाणलिंगे स्वयंभूते चन्द्रकान्तेहृदिस्थिते चान्द्रायण समंज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् १ भुक्तिकालेऽपि मध्वादितदस्वारस्यं कथान्तरम भुक्त्वा तु कथयिष्यामिनिर्विशंकन्तु भुंञ्जनत् १ इति अथ हेमाद्रिः वाणलिंगेनचाण्डेशोनचनिर्माल्यकल्पना सर्ववाणार्पितं ग्राह्यं भक्ताभक्तैश्च नान्यथा ॥२॥ ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं वाणलिंगे न विद्यते तदर्पितं जलञ्चान्नं ग्राह्यं प्रासाद संज्ञया इति अथ त्रैविक्रमे वाणलिंगेच लौहेच सिद्धे लिंगे स्वयंभुवि प्रतिमासुचसर्वासु न चण्डाऽधिकृतिर्भवेत् इति अथस्कान्दे वाणलिंगे स्वयम्भूतेचन्द्रकान्तादि निर्मिते सौवर्णराजते शम्भोर्नैविद्यमपि भक्षयेत् ॥ १ ॥

शिवतलसुधानिधौ वाणेरत्नरसेचमृच्छशिमिला लिंगेस्वयंचोद्भवे रौप्येताम्र सुवर्णलोहविहिते सिद्धिप्रतिष्ठान्विते ॥ १ ॥ चण्डेशाधिकृतिर्नतत्रकलितानेवेति निर्माल्यताम् भोज्यन्तत्वपितान्लिकन्तु सद्भिर्भोज्यं न चेत्तैर्नतत्। वाणे रत्नमयेरसेन्द्रकलितेस्वायंभुवेस्फाटिके चण्डेशाधिकृतिर्नतत्रकलितानेवेति निर्माल्यताम् ॥ ३ ॥ चण्डेशोऽस्ति हि यत्रतत्र हि भवेन्निर्माल्यमावेदिताम् भोज्यं नैव तु वैदिकैर्द्विजवरैःप्राणात्ययेसंकटे ॥ ४ ॥ इत्येव मुक्तपरशिवसदाशिवेश्वरलिंगप्रतिमादि निर्माल्यादौविशुद्धप्राकृतोभयैरेव चण्डादि गणभागमस्त्वेव नियमतोग्राह्यतातत्राहस्कान्दे विशुद्धाःप्राकृतायेति द्विविधाःमानुषास्मृताः शिवसंस्कारिणः शुद्धाःप्राकृता इतरेमताः ॥ १ ॥ वर्णाश्रमादिधर्माणां व्यवस्था- द्विविधामताः एकाशिवेननिर्दिष्टाब्रह्मणाकल्पिताप्परा ॥ २ ॥ शिवोक्तधर्म्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविनाम् शिवसंस्कारहीनानांधर्म्मःपैतामहःस्मृतः ॥ ३ ॥ इति अथ शिवरहस्ये परमशैवलक्षणम् मद्भक्तजनवात्सल्यं मत्प्रसादेन जीवनम् ममतत्व परिज्ञानंभवेद्देवि प्रसादतः ॥ १ ॥ मदीयं भुक्तनैवेद्यं पादांबुकुसुमं दलम्। धर्म्ममर्थञ्चकामञ्चमोक्षञ्चददतेक्रमात् ॥ २ ॥ नित्यं परमशैवेन सेव्यते देव सेवितम इति अथस्कन्दपुराणेकालिकाखण्डे तदाशम्भोर्वचःश्रुत्वामहादेवस्य सत्तमाः उवाच प्राञ्जलिर्वाक्य विष्णुःसर्व्वसुरोत्तमान् ॥ १ ॥ व्यपेतदुःखभूतोऽस्मिप्रसाद त्तवशङ्कर त्वंहिमेपरमोदेवस्त्वं हिमेपरमोगुरुः ॥ २ ॥ किन्त्वेकं प्रष्टुमिच्छामिप्रसादात्तद्वदस्वमे चात्वारः आश्रमाः प्रोक्ता येत्वयात्रिपुरान्तक ॥ ३ ॥ शिवाश्रमः कथंभिन्नस्तेभ्योऽपि परमेश्वर तेषांचलक्षणंदेवकैस्मिन्हैस्विङ्गिताश्वते ॥ ४ ॥ मद्भक्तैरवगन्तव्यातन्मेवदमहेश्वर ईश्वर उवाच ब्रह्मचारी गृहस्थश्चवानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥ ५ ॥ चत्वार आश्रमाह्येतेपृथगाचारलक्षणः एषांचतुर्णांचत्वारोमुनय अवतारकाः ॥ ६ ॥ एतेषामपिनामानिवासुदेवावधारय दधोचिर्गौतमागस्त्योदुर्वासाश्चयथाक्रमम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य्याश्रमस्थोहिदधीचिश्च्यवनात्मजः गृहस्थाश्रमनिर्माता गौतमोमुनिपुंगवः ॥ ८ ॥ अथागस्त्योपि ब्रह्मर्षिर्वानप्रस्थः प्रवर्त्तकः दुर्वाससापियतिनामाश्रमोनिर्मितोहरे ॥ ९ ॥ तस्याश्रमः कृतःकश्चिदुत्कर्षोदृश्यतेनृणाम् परांदीक्षांविनाशैवीवक्ष्यत्रयविमोचनीम् ॥ १० ॥ यत्रकुत्राश्रमेस्थित्वादीक्षया तु विमुच्यते परिग्रहश्चाश्रमाणां यथाक्रधि नचान्यथा ॥ ११ ॥ एतेस्वधर्म्मात्परमांयाति ब्रह्म स लोकताम् नमांप्रयान्ति सर्व्वेतेतआश्रमांय्यान्तिभावतः ॥ १२ ॥ तस्मात्शिवाश्रमं नामसर्वाश्रमसमुद्भवैः

धर्म्मैर्म्मदर्पणधियाभस्मधृग्विजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ मल्लिंगपूजकोवत्समत्सायुज्या-
यकल्पते अथ किं वहुनोक्तेन पुनरुक्तेन केशव ॥ १४ ॥ आपादमस्तकं धार्य-
मग्निरित्यादि मन्त्रतः त्रिपुंड्रम्परयाभक्त्यास्थानेषु कथितेषु च ॥ १५ ॥ रुद्राक्ष
धारणंचैवकर्णकण्ठकरादिषु शिवलिंगार्चनं पुण्यं सर्वाश्रमविधिस्सदा ॥ १६ ॥
पञ्चाक्षरजपश्चैवरुद्राध्यायानुवर्त्तनम् शिवशब्दजपश्चैवमन्निवेदित भक्षणम् ॥१७॥
शिवक्षेत्रेषु वसतिरविमुक्ते विशेषतः वर्णाश्रमाणां नियतोमद्भक्तै धर्म्मैईरितः
॥ १८ ॥ संक्षेपाच्छृणुमद्वाक्यम्भवाब्धुद्धरणप्लवम् प्रमादाद्यदिवामोहान्मूर्खो
वा पण्डितोऽपिवा ॥ १९ ॥ यः शिवेतिस्मरेत्कश्चित्तद्विदुर्भक्तमुत्तमम् एतेनाहं
परांत्प्रीतिंगच्छामि किमतःपरम् ॥ २० ॥ य ओंनमः शिवायेति अवशेनापि
कीर्त्तयेत् सःपूज्यस्सर्व्वदासद्भिस्त्वद्भक्तैश्चविशेषतः ॥ २१ ॥ एवमद्भक्तलिङ्गानि
तेषु प्रीतिपरामम तेषु दत्तं हरेः किञ्चिदनन्तफलदंस्मृतम् ॥ २२ ॥ तेषांद्रोहः
सदाविष्णोममद्रोहो न संशयः तस्माद्विष्णोतेभक्तान्मद्भक्तपरिपूजने ॥ २३ ॥ एव-
माज्ञाप्य श्रीवत्सलक्षणं वृषभध्वज अन्तर्धानं जगामाशुतस्मात्स्थानान्महेश्वरः
॥ २४ ॥ इति परशिवसदाशिवभक्तलक्षणमभिधायमहेश्वर भक्तलक्षणमाह
विश्वस्मादधिकोरुद्रोविश्वानुग्रहकारकः इति यस्यस्थिराबुद्धिःसवैमाहेश्वरःस्मृतः
॥ २५ ॥ विष्णाद्यैर्मलिनः प्रायैर्निर्मलेपरमेश्वरे साम्योक्तिं यो न सहते सवै
माहेश्वराभिधः ॥ २६ ॥

इतिनिर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे षोड़शस्तरंगः ।



## अथ सप्तदशस्तरंगः ।

इत्येवं त्रिविधभक्तस्वरूपंविविच्य अथ सकलविश्वकारणात्मकैकशिवस्यैवाऽ-स्वरूपाऽकाशादिकारणपरशिवः प्रणवात्मक सकलवेदाद्यचरकारणसदाशिवः पुरुषात्मक साकारदेवमनुष्याद्यखिलविग्रहकारणेश्वरेत्येवमादि त्रिविधभेदभावनातस्तस्य निखिलजगतएकाकारणस्य विशुद्धप्राकृततदितरेषाञ्च प्रसादनिर्माल्यादि भक्षणस्य नित्यत्वमभक्षणे प्रायश्चित्तंचेति सप्रमाणं निरूप्यसर्वोत्पत्तेरादिकारणमाह प्रपञ्चोपशमंशान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थम्मन्यन्तेसोऽयमात्मेति माण्डूके इति अथ तैतिरीये आरण्यके। तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यःपृथिवीपृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसःपुरुषः इति अथ प्रणवकारणतामाह ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरःसर्वभूतानांब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्माशिवोमेऽस्तुसदाशिवोम्० अनु० ४७ नमस्ताराय च इति शुक्लयजुः अ० नमस्ते अथ पुरुषकारणतामाह ओंऋतꣳसत्यंपरंब्रह्मपुरुषं कृष्णपिंगलम् ऊर्ध्वरेतंविरूपाक्षं विश्वरूपायवैनमोनमः० अनु० १२ अथस्कन्दपुराणेकालिकाखण्डे सृष्ट्यर्थंसर्वतत्वानांलोकस्योत्पत्तिकारणम् योगिनामुपकारायस्वेच्छयाचिन्त्यतेशिवः ॥ १ ॥ यतोवाचानिवर्त्तन्ते यद्भासाभासतेजगत् एकमेवाद्वितीयं यन्नेहनानेति वाक्यगम् ॥ २ ॥ तत्सत्यंब्रह्मपरमन्तदात्मातच्छिवं विदुः अरूपस्यापि नामानि व्यवहारायकल्पते ॥३॥ मायाशबलितं तच्चतद्भवेत्कृष्णपिंगलम् त्रिनेत्रंनीलकण्ठं चसोमंवाङ्गचतुष्टयम् ॥ ४ ॥ शिवशङ्कर ईशेतिनामभिःसर्वकारणम् चतुर्थं शिवमद्वैतन्तुरीयं ब्रह्मकेवलम् ॥५॥ तस्यचिन्तापराशक्तिःसहस्रांशेनजायते तच्छक्तेस्तु सहस्रांशादादिशक्तिसमुद्भवा ॥ ६ ॥ आदिशक्तिसहस्रांशादिच्छाशक्तिसमुद्भवा तच्छक्तेस्तु सहस्रांशाद्ज्ञानशक्तिसमुद्भवा ॥ ७ ॥ ज्ञानशक्ति सहस्रांशात्क्रियाशक्ति समुद्भवा एतावैशक्तयः पञ्चनिष्कलाश्चेति कीर्त्तिता मुखादसृजतेशानं नेवयोरुद्रसंज्ञितं शिरसःसृष्टवान्देवः सदाशिवतनुशिवः ॥ ८ ॥ ब्रह्माणमथवाहुभ्यां पादाभ्यां विष्णुमीश्वरः गणेशषण्मुखौजाता वात्मनपरमेशतुः ॥१०॥ शिवपादारविन्दे श्रीर्याश्रीयं श्रीपतिं विधिरिन्द्रचन्द्रसुरानन्यानुत्पादयति साशिवा ॥ ११ ॥ मायाख्याप्रकृत्तिर्जाताजन्तून्संमोहयत्यपि बुद्धिरूपास्वयं देवीचंडिकेति च

गीयते ॥ १२ ॥ दुर्गादेहान्महाकालोजातास्तैलोक्यमोहिनोमहाकालः पति-र्यस्याजगत्संहारकारकः ॥ १३ ॥ तस्य नेत्रत्रयोजाता अग्निसूर्योतथा शशिः भुजाभ्यां क्षत्रियास्सर्वैमन्व.द्या देवताऽपि ॥ १४ ॥ वक्त्रात्तु ब्राह्मणा सर्वेकश्य-पाद्याप्रजाकराः विश्वकर्म्मादि वैश्यास्तु मक्थिभ्यां परमेशि तुः ॥ १५ ॥ पादा-भ्यांचित्रगुप्तादि शूद्राजाताः पिनाकिनः एवं सर्वजगज्जातंचराचरमयं शिवात् ॥ १६ ॥ इति अथ शिवपुराणे कैलाश संहितायाम् वामदेव उवाच भगवन् षण्मुख.शेष विज्ञानामृतवारिधे विश्वामरेश्वरसुतप्रणतार्त्ति प्रभञ्जन ॥ १ ॥ षड्विधार्थपरिज्ञानमिष्टदंकिमुदाहृतम् केतत्रषड्विधाह्यर्थाः परिज्ञानञ्च किं प्रभो ॥ २ ॥ प्रतिपाद्यश्चकस्तस्यपरिज्ञानेच किं फलम् एतमर्थमविज्ञाय पशु-शास्त्रविमोहितः ॥ ३ ॥ अहं शिवपदाद्वैतज्ञानामृत्तरसायनम् पीत्वाविगत संमोहोभविष्यामि यथा तथा ॥ ४ ॥ कृपामृतादयाद्दृष्ट्याविलोक्यत्वचिरमपि कर्त्तव्योऽनुग्रहः श्रीमत्पादांबुजशरणागते ॥ ५ ॥ इति श्रुत्वामुनीन्द्रोक्तं ज्ञान-शक्तिधरोविभुःप्राहान्यदर्शनमह्यामन्त्रांसजनकंवचः ॥ ६ ॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच श्रूयतां मुनिशार्द्दूलत्वयायत्पृष्टमादरात् समष्टिव्यष्टिभावेन परिज्ञानं महेशि तुः ॥ ७ ॥ प्रणवार्थपरिज्ञानरूपंतद्विस्तरादहम् वदामि षड्विधार्थैक्यपरिज्ञानेन सुव्रत ॥ ८ ॥ प्रथमोमन्त्ररूपःस्याद्द्वितीयोमन्त्रभावितः देवतार्थस्तृतीयोऽर्थः प्रपञ्चार्थस्ततःपरम् ॥ ९ ॥ चतुर्थःपञ्चमोऽर्थस्याद्गुरुरूपोप्रदर्शकः षष्ठःशिष्यात्म-रूपोऽर्थ.षडर्थाःपरिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥ तत्रमन्त्रस्वरूपन्तम्वदामिमुनि सत्तम आद्य.स्वरः पंचमश्चपवर्गान्तस्ततःपरः ॥ ११ ॥ विन्दुनादौच पंचार्णाःप्रोक्तावेदै-र्नचान्यथा एततमर्ष्टिरूपोहि वेदादि.समुदाहृतः ॥ १२ ॥ नादःसर्व्वसमष्टिः-स्याद्विन्द्वाद्यं यच्चतुष्टयम् व्यष्टिरूपेण संसिद्धं प्रणवेशिववाचके ॥ १३ ॥ यन्त्र रूपं शृणु प्राग्शिवलिंगन्तदेवहि सर्वाधस्तात्लिखेत्पीठंतदूर्ध्वं प्रथमंस्वरम् ॥१४॥ उवर्णञ्च तदूर्ध्वस्थं पवर्गान्तंतदूर्ध्वगम् तन्मस्तकस्थं विन्दुञ्चतदूर्ध्वंनादमालिखेत् ॥ १५ ॥ एवं यन्त्रसमालिख्यप्रणवेनेववेष्टयेत् तदुत्थेनैवनादेनभिन्द्यान्नादावसा-नकम् ॥ १६ ॥ देवतार्थं प्रवक्ष्यामि गूढं शङ्करभाषितम् सद्योजातं प्रपद्यामी-त्युपक्रम्यसदाशिवः ॥ १७ ॥ इति प्राहुःश्रुतिःसाक्षाद्ब्रह्मपञ्चकवाचकम् प्रणवं ब्रह्मरूपिण्यः सूक्ष्माःपंचैव देवताः ॥ १८ ॥ एताएवशिवस्यापि मूर्त्तित्वेनोप-बृंहिता शिवस्य वाचकोमन्त्रश्शिवमूर्त्तेश्च वाचकः ॥ १९ ॥ मूर्त्तिमूर्त्तिमतो-र्भेदोनात्यन्तं विद्यतेयतः ईशानमुकुटोपेत इत्यारभ्य पुरोदितः ॥ २० ॥ शिवस्य

विग्रहः पञ्चवक्त्राणि शृणु सांप्रतं पश्चमादि समारभ्य सद्योजाताद्यनुक्रमात् ॥२१॥
ऊर्द्ध्वान्तमीशानान्तं च मुखपञ्चकमीप्सितुः ईशानस्यैव देवस्य चतुर्व्यूहपदे स्थि-
तम् ॥ २२ ॥ पुरुषाद्यं च सद्यान्तं ब्रह्मरूप चतुष्टयम् पञ्चब्रह्मसमष्टिः स्यादीशानं
ब्रह्म विश्रुतम् ॥ २३ ॥ पुरुषाद्यन्तु तद्व्यष्टिस्सद्योजातान्तकं मुने अनुग्रहमय-
श्चक्रमिदं पञ्चार्थकारणम् ॥ २४ ॥ अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरोभावादि गोचरः
एकश्चान्यस्तु जीवानां परापरविमुक्तिदः ॥ २५ ॥ एकस्तदाशिवस्यैव कल्पद्वय-
मुदाहृतम् अनुग्रहेऽपि सृष्ट्यादिकल्पानां पञ्चकं विभोः ॥ २६ ॥ अस्ति तत्रापि
सद्याद्याः देवताः परिकीर्त्तिताः अनुग्रहमयं चक्रं शान्त्यतीत कलामयम् ॥ २७ ॥
सदाशिवाधिष्ठितं च परमम्पदमुच्यते एतदेव पदं प्राप्यं यतीनां भावितात्मनाम् ।२८।
सदाशिवोपासकानां प्रणवासक्तचेतसाम् एतदेव पदं प्राप्य ते न साकं मुनीश्वराः
॥ २९ ॥ भुक्त्वा सु विमलान् भोगान् देवेन ब्रह्मरूपिणा महाप्रलय संभूतौ शिव
साम्यं भजन्ति हि ॥ ३० ॥ सर्वैश्वर्य्येण सम्पन्न इत्याहाथर्वणी शिखा सर्वैश्वर्य्य
प्रदातृत्वमस्यैव प्रवदन्ति हि ॥ ३१ ॥ चमकस्य पदं नान्यदधिकं स्विद्यते पदम्
ब्रह्मपञ्चकविस्तारः प्रपञ्च खलु दृश्यते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मभ्य एव सञ्जाता निवृत्याद्याः
कलामताः सूक्ष्मभूत स्वरूपिण्यकारणत्वेन विश्रुताः ॥ ३३ ॥ स्थूलरूपस्वरूपस्य
प्रपंचस्यास्य सुव्रत पंचधावस्थितं यत्तद्ब्रह्मपंचकमिष्यते ॥३४॥ पुरुषश्रोत्रवाग्स्रो-
चशब्दाकाशौ च पंचकम् व्याप्तमीशानरूपेण ब्रह्मणा मुनिसत्तम ॥ ३५ ॥ प्रकृति-
स्त्वक्चपाणिश्चस्पर्शो वायुश्च पञ्चकम् व्याप्तं पुरुषरूपेण ब्रह्मणैव मुनीश्वर ॥ ३६ ॥
अहंकारस्तथा चक्षुः पादौ रूपं च पावकः अघोरब्रह्मणा व्याप्तमेतत्पञ्चकमञ्चितम्
॥ ३७ ॥ बुद्धिश्च रसनापायूरस आपश्च पञ्चकम् ब्रह्मणा वामदेवेन व्याप्तं भवति-
नित्यशः ॥ ३८ ॥ मनो नासा तथोपस्थ गन्धं भूमिश्च पञ्चकम् सद्येन ब्रह्मणा
व्याप्तं पञ्चब्रह्ममयं जगत् ॥ ३९ ॥ यंत्ररूपेणोपदिष्टः प्रणवः शिववाचकः समष्टि
पञ्चवर्णानां बिन्द्वाद्यं यच्चतुष्टयम् ॥ ४० ॥ शिवोपदिष्टमार्गेण यन्त्ररूपं विभावय
सदाशिवः समष्टिः स्यादा काशाधिपतिः प्रभुः ॥ ४१ ॥ अस्यैव व्यष्टितामन्नं
महेशादि चतुष्टयम् सदाशिव सहस्रांशान्महेशस्य समुद्भवः ॥ ४२ ॥ पुरुषानन्य
रूपत्वाद्द्वयोरधिपतिश्च सः मायाशक्ति युतो वामे सकलश्चक्रियाधिकः ॥ ४३ ॥
अस्यैव व्यष्टिरूपं स्यादीश्वरादि चतुष्टयम् ईशो विश्वेश्वरः पश्चात्परमेशस्ततः परम्
॥ ४४ ॥ सर्वेश्वर इतीदं तु तिरोधाचक्रमुत्तम् तिरोभावो द्विधा भिन्न एको रुद्रादि
गोचरः ॥ ४५ ॥ अन्यश्च देहभावेन पशुवर्गस्य सन्ततम् भोगानुरञ्जनपरः कर्म-

साध्यस्वगणावधि ॥ ४६ ॥ कर्मसाम्ये चैएकः स्यादनुग्राहमयोविभोः अस्मिन्सर्वेश्वराद्यास्तुदेवताः परिकीर्त्तिताः ॥ ४७ ॥ तिरोभावात्मकं चक्रं भवेच्छान्ति कलामयम् महेश्वराधिष्ठितंच पदमेतदनुत्तमम् ॥ ४८ ॥ एतदेवपदंप्राप्य महेशपद सेविनाम् महेश्वराणां सालोक्यक्रमादेतच्चमुक्तिदम् ।४९। महेश्वरसहस्रांशाद्रुद्र मूर्त्तिरजायत अघोरवदनाकारस्तेजस्तत्वाधिपश्चसः ॥ ५० ॥ गौरीशक्ति युतो वामे सर्वसंहारकृत्प्रभुः अस्यैवव्यष्टिरूपंच शिवाद्यथ चतुष्टयम् ॥ ५१ ॥ शिव हरौमृड़भवौविदितंचक्रमद्भुतम् संहाराख्यन्तु संहारस्त्रिधानित्यादिभेदतः ॥ ५२ ॥ नित्योजीवसुषुप्त्याख्योविधेर्नैमित्तिकः स्मृतः विलयस्तस्य सुमहानितिवेदनिदर्शितः ॥ ५३ ॥ जीवानां जन्मदुःखादिश्रान्तानांसुषितात्मनाम् विश्रांत्यर्थंमुनिश्रेष्ठाः कर्मणां पाकहेतवे ॥ ५५ ॥ संहारः कल्पितस्त्रेधारुद्रेणामिततेजसा रुद्रस्यैवतुकृत्यानान्त्रयमेतदुदाहृतम् ॥ ५६ ॥ संहृतावपिसृष्ट्यादिकृत्यानांपंचकं विभोः अस्मिंस्तत्रभवाद्यास्तेदेवतापरिकीर्त्तिताः ॥५७॥ संहाराख्यमिदं चक्रंविद्यारूपकलामयम् अधिष्ठितंच रुद्रेन पदमेतन्निरामयम् ॥ ५८ ॥ एतदेवपदंप्राप्यं रुद्राराधनकांक्षिणाम् रौद्राणांतद्विसालोक्यं क्रमात्सायुज्यदं मुने ॥ ५९ ॥ रुद्रमूर्त्तेःसहस्रांशाद्विष्णोरेवाभवज्जनिः सवामदेव चक्रान्मावारितलैकनायकः ॥ ६० ॥ रमाशक्ति युतोवामेसर्वरक्षाकरोमहान् अस्यैववासुदेवादि चतुष्कंव्यष्टितांगतम् ॥ ६१ ॥ वासुदेवोनिरुद्धश्चततः रुक्मणः परःप्रद्युम्नश्चेतिविख्यातं स्थितिचक्रमिदंपरम् ॥ ६२ ॥ स्थितिः सृष्टस्य जगतस्तत्कर्तॄणांचपालनम् आरब्धकर्मभोगान्तं जीवानांफलभोगिनाम् ॥६३॥ विष्णोरेवेदमाख्यातं कृत्यंरक्षाविधायिनः ॥ ६४ ॥ स्थितावपिच सृष्ट्यादि कृत्यानांपञ्चकं विभोः अपिप्रद्युम्नमुख्यास्ते देवतास्तत्रकीर्त्तिताः ॥ ६५ ॥ स्थितिचक्रमिदं ब्रह्मन् प्रतिष्ठारूपमुत्तमम् जनार्दनाधिष्ठितश्चपरमं पदमुच्यते ॥ ६६ ॥ एतदेवपदंप्राप्यं विष्णुपादप्रसेविनाम् वैष्णवानामिदंचक्रं सालोक्यादिपदप्रदम् ॥ ६७ ॥ विष्णोरेवसहस्रांशात्सम्बभूवपितामहः सद्योजातमुखाकारः पृथिवीतत्वनायकः ॥ ६८ ॥ वागदेवीसहितोवामे सृष्टिकर्त्ताजगत्प्रभुः हिरण्यगर्भादयस्यैवव्यष्टिरूपंचतुष्टयम ॥ ६९ ॥ हिरण्यगर्भोऽथविराट्पुरुषोकालएवच सृष्टिचक्रमिदं ब्रह्मपुत्रादिऋषिसेवितम् ॥ ७० ॥ सृष्टिस्तुसंहृतस्यास्य जीवस्यप्रकृतौवहिः आनीयकर्मभोगार्थं साधनांगफलैःसह ॥ ७१ ॥ संयोजनैस्थितीदम्तुकृत्यंपैतामहंविदुः जयत्सृष्टावपिमुनेकृत्यानांपञ्चकंविभोः ॥ ७२॥

अस्तिकालादयस्तत्रदेवता: परिकीर्त्तिता: निवृत्तिरूपमाख्यातं सृष्टिचक्रमिदं: बुधैः ॥ ७३ ॥ पितामहाधिष्ठितस्त्वपदमेतद्विशोभितम् एतदेवपदंप्राप्यं ब्रह्मार्पितधियान्नृणाम् ॥ ७४ ॥ पैतामहानामैतद्धिसालोक्यादि विमुक्तिदम् अस्मिन्नपिचतुष्कोच चक्राणांप्रणवोभवेत् ॥ ७५ ॥ महेशादिक्रमादेवगौर्व्याद्यत्यासदाचकः इदंखलुजगच्चक्रं श्रुतिविश्रुतवैभवम् ॥ ७६ ॥ पञ्चारचक्रमितिहिस्तौति श्रुतिरिदंमुने एकमेवजगच्चक्रंशम्भोः शक्तिविजृम्भितम् ॥ ७७ ॥ सृष्ट्यादिपञ्चावयवं पञ्चारमितिकथ्यते अलातचक्रभ्रमिवदविच्छिन्नलयोदयम् ॥ ७८ ॥ परितोवर्त्तंयस्मात्तस्माच्चक्रमितीरितम् सृष्ट्यादेः पृथक्सत्यत्वात्पृथुत्वेनोपदिश्यते ॥ ७९ ॥ हिरण्मयस्वरूपस्य शम्भोरमितवर्चसः शक्तिकार्यमिदंचक्रं हिरण्मयज्योतिर्विश्रुतम् ॥ ८० ॥ सलिलेनावृतमिदं सलिलंवह्निनावृतम् आवृतोवायुनावह्निराकाशेनावृतोमरुत् ॥ ८१ ॥ भूतादिनाखमावृत्तं भूतादिमहतावृतः अव्यक्तेनावृतस्तद्वन्महानित्येवमास्तिकैः ॥ ८२ ॥ उक्तानिसप्तावरणान्यस्य चक्रस्य गुप्तये चक्राद्दशगुणाधिक्यं सलिलस्यविधीयते ॥ ८३ ॥ उपर्युपरिचान्योन्यमेवंदशगुणाधिकम् इदमर्थंहृदोक्तत्यचक्रसामीप्यवर्तनात् ॥ ८४ ॥ सलिलस्यचतन्मध्ये इति प्राहश्रुतिः स्वयम् अनुग्रहतिरोभावसंहृतिस्थितिसृष्टिभिः ॥ ८५ ॥ करोत्यव्रतंलीलामेकः शक्तियुतःशिवः बहुनेहकिमुक्तेनमुनेसारंवदामिते ॥ ८६ ॥ शिवएवेदमखिलंशक्तिमानितिनिश्चितम् सूतउवाच श्रुत्वोपदिष्टंगुरुणावेदार्थं मुनिपुंगवः ॥ ८७ ॥ परमात्मनिसन्दिग्धमर्थं पप्रच्छसादरम् वामदेवउवाच ज्ञानशक्तिधरस्वामिन् परमानन्दविग्रहः ॥ ८८ ॥ प्रणवार्थामृतंपीतं श्रीमुखाब्जपरिस्रुतम् इदृशज्ञश्चजातोऽस्मिसन्देहोविगतोमम ॥ ८९ ॥ सदाशिवादिकीटान्तंरूपस्यजगतःस्थितिः पुंस्त्रीरूपेण सर्वत्रदृश्यतेनहिसंशयः ॥ ९० ॥ एवंरूपस्यजगतः कारणंयत्सनातनम् स्त्रीरूपन्तत्किमाहोस्वित्पुरुषंवानपुंसकम् ॥ ९१ ॥ उतमिश्रंकिमन्यद्वानजातस्तत्रनिर्णय.वहुधाविविदन्तीहविद्वांसःशास्त्रमोहिताः ॥ ९२ ॥ जगत्सृष्ट्यभिधायिन्यः श्रुतयोजगतासह यथैवनभावं गच्छेयूरेतदन्यत्रवेदय ॥ ९३ ॥ जानामीतिकरोमीति व्यवहाराप्रदृश्यते सद्भिःसर्वात्मसंसिद्धोविवादोनान्यकस्यचित् ॥ ९४ ॥ सचदेहेन्द्रियमनोबुध्यहंकारसम्भवः अहोस्विदात्मनोरूपं महानत्रापिसंशयः ॥ ९५ ॥ दृश्यतेतद्धिसर्वेषांविवादास्येदमद्भुतम् उत्पाद्यज्ञानसम्भूतं संशयाख्यविषद्रुमम् ॥ ९६ ॥ शिवाद्वैतमहाकल्पवृक्षभूमिर्यथाभवेत् चित्तंममतथादेवबोधोऽस्मिन्नुपयातव ॥ ९७ ॥ सूतउवाच श्रुत्वेवं

मुनिनापृष्टं वचोवेदान्तनिर्वृतम् रहस्यं प्रभुराहेदंकिञ्चिन्मन्दहसिताननः ॥ ९८ ॥ सुब्रह्मण्यउवाच एतदेवमुनेगुह्यं शिवेन परिभाषितम् अम्बायाःशृण्वतस्तस्यास्तन्यं पीत्वामुहुर्मुहुः ॥ ९९ ॥ ममापिनिश्चितं तत्तेवदामिशृणुसाम्प्रतम् कर्त्तृत्वस्तता-त्वमारभ्यशास्त्रवादः सुविस्तरः ॥ १०० ॥ त्वयोपदिष्टायेशिष्यास्तत्रकोवाभवत् समः कापिलादिषुशास्त्रेषुभ्रमन्त्यन्यापिनेधमाः ॥ १ ॥ येशप्तामुनिभिःषड्भिः शिवनिन्दापराःपुरा ॥ २ ॥ नश्रोतव्याहितद्वार्त्तातेऽन्यथावादिनोयतः अनु-मानप्रयोगस्याप्यवकाशोऽत्रविद्यते ॥ ३ ॥ पञ्चावयवयुक्तस्य सतुधूमस्यदर्शनात् पर्वतस्याग्निमद्भावं वदत्यत्रापिसुव्रत ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षस्यप्रपञ्चस्यदर्शनालम्बनंत्वतः ज्ञातव्यः परमेशानः परमात्मा न संशयः ॥ ५ ॥ स्त्रीपुरुषमयोविश्वः प्रत्यक्षेणैव दृश्यते षट्कोशरूपपिण्डोहितत्रचाद्यत्रयम्भवेत् ॥ ६ ॥ पित्रं शजपुनश्चान्यन्मात्रं शजमितिश्रुतिः एवं सर्व्वशरीरेषु पुंस्त्रीभावविदुर्बुधाः ॥ ७ ॥ सच्चिदानन्दरूपत्वं वदतिब्रह्मणः श्रुतिः असन्निवर्त्तकःशब्दः सदात्मेतिनिगद्यते ॥ ८ ॥ निवर्त्त-कञ्जडत्वस्यचिच्छब्देन विधीयते त्रिलिंगवर्त्तिसच्छब्दः पुंरुषोऽत्रविधीयते ॥ ९ ॥ प्रकाशवाचीसभवेत्सप्रकाश इतिस्फुटम् ज्ञानशब्दस्यपर्य्यायः चिच्छब्दस्त्रीत्वमा-गतः ॥ १० ॥ प्रकाशचिच्चमिथुनंजगत्कारणतांगतम् सच्चिदात्मन्यपि तथाजग-त्कारणतांगते ॥ ११ ॥ एकत्रैवशिवः शक्तिरितिभावोविधीयते तैलवर्त्त्यादि मालिन्यात्प्रकाशस्यापि विद्यते ॥ १२ ॥ मालिन्यमशिवत्वञ्चचिताग्न्यादिषुदृश्यते एतन्निवर्त्तनत्वेनशिवत्वंश्रुतिचोदितम् ॥ १३ ॥ जीवाश्रितायाश्चिच्छक्तेर्दौर्बल्यं विद्यते सदा तन्निवृत्त्यर्थमेवात्रशक्तित्वं सर्वकालिकम् ॥ १४ ॥ बलवान्शक्तिमां-श्चेतिव्यवहारःप्रदृश्यते एवंशिवत्वंशक्तित्वंपरमात्मनिदर्शितम् ॥ १५ ॥ शिव-शक्त्योस्तुसंयोगादानन्दः सस्ततोदितः प्रकाशतेतमुद्दिश्यमुनयः क्षीणकल्मषाः ॥ १६ ॥ शिवेमनःसमाधायप्राप्ताः शिवमनामयम् सर्वात्मत्वेतयोरेवब्रह्मत्युप-निषत्सुच ॥ १७ ॥ गीयतेब्रह्मशब्देन बृहिधात्वर्थगोचरःबृंह नत्वंबृहत्वंच यथासादाख्यविग्रहे ॥ १८ ॥ पञ्चब्रह्ममयेविश्वप्रतीति ब्रह्मशब्दिता प्रतिलोमात्म केहंसेवक्ष्यामिप्रणवोद्भवम् ॥ १९ ॥ व्यञ्जनस्यसकारस्यहकारस्य च वर्जनात् अमित्येवंभवेत्स्थूलोवाचकः परमात्मनः ॥ २० ॥ महामन्त्रोभवेत्सूक्ष्मस्तदु-द्धारंवदामिते आद्येत्रिपञ्चरूपेचस्वरेषोड़शकेत्रिषु ॥ २१ ॥ महामन्त्रोभवेदा-द्योसकारोभवेद्यदा हंसस्यप्रतिलोमःस्यात्सकारार्थः शिवस्मृतः ॥ २२ ॥ शक्त्या त्मकोमहामन्त्रस्थः स्यादितिनिर्णयः गुरूपदेशकालेतुसोहंशक्त्या त्मकः शिवः

॥ २३ ॥ इति जीवपरीभूयाभ्र द्दामन्त्रस्तदापशुशब्दया त्मकश्शिवांशश्च शिवैक्य-
च्छिवसाम्यभाक् ॥ २४ ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मवाक्येतु प्रज्ञानार्थः प्रदृश्यते प्रज्ञानशब्द-
श्चैतन्यपर्याय स्यान्नसंशयः ॥ २५ ॥ चैतन्यमात्मेति मु शिवसूत्रप्रवर्त्तितम्
चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञ नक्रियात्मकम् ॥ २६ ॥ स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावोयस्य
आत्मापरिकीर्त्तितः इत्यादि शिवसूत्राणांवार्त्तिकं कथितं मया ज्ञानं बन्ध
इतीदन्तु द्वितीयं सूत्रमीशितुः ॥ २ ॥ ज्ञानमित्यत्मनस्तस्य किञ्चिज्ज्ञान
क्रियात्मकम् इत्याद्यव्यपदेनेशःपशुवर्गस्य लक्षणम् ॥ २८ ॥ एतद्रूपं पराशक्तेः
प्रथमस्यंदतांगतम् एनामेवपरांशक्तिं श्वेताश्वतरशाखिनः ॥ २९ ॥ स्वाभाविकी
ज्ञानबलक्रियावेत्यस्तुवन्मुदा ज्ञानक्रियेच्छारूपं हि शम्भोर्दृष्टित्रयंमतम् ॥ ३० ॥
एतन्मनोमध्यगं सदिन्द्रियद्वारगोचरम् अनुप्रविश्यजानाति करोति च पशुस्सदा
॥ ३१ ॥ तस्मादात्मनएवेदंरूपमित्येवनिश्चितम् प्रपंचार्थं प्रवक्ष्यामि प्रणवैक्य
प्रदर्शकम् ॥ ३६ ॥ ओमितीदं सर्वमिति श्रुतिराहसनातनी तस्मादेवेतीत्युप-
क्रम्य जगत्सृष्टिः प्रकीर्त्तिता ॥ ३७॥ तस्याः श्रुतेस्तु तात्पर्यं वक्ष्यामि श्रूय-
तामिदम् शिवशक्तिसमायोगपरमात्मेति गीयते ॥ ३८ ॥ पराशक्तेस्तु संजा-
ताचिच्छक्तिस्तु तदुद्भवा आनन्दशक्तिस्तज्जास्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा ॥ ३९ ॥
ज्ञानशक्तिस्ततोजाताक्रियाशक्तिस्तु पंचमी एताभ्य एव संजाता निवृत्याद्याःक-
लामुने ॥ ४० ॥ चिदानन्द समुद्भूतौ नादविंदू प्रकीर्त्तितौ इच्छाशक्तेर्मकार-
स्तु ज्ञानशक्तेस्तु पंचमः ॥ ४१ ॥ स्वर क्रियाशक्तिजातं अकारस्तु मुनीश्वर
शिवादीशान उत्पन्नस्ततस्तत्पुरुषोद्भवः ॥ ४२ ॥ ततोघोरस्ततोवामस्सद्यो
जातोद्भवस्ततः एतस्मान्मात्रिकादष्टत्रिंशन्मात्रसमुद्भवः ॥ ४३ ॥ ईशानाच्छा-
न्त्यतीताख्याकलाजाताथ पुरुषात् उत्पद्यन्ते शान्तिकलाविद्याघोरसमुद्भवा
॥ ४४ ॥ प्रतिष्ठाचनिवृत्तिश्च वामसद्योद्भवैर्मुने ईशचिच्छक्ति मुखतोविभोर्मि-
थुन पंचकम् ॥ ४५ ॥ अनुग्रहादि कृत्यानां हेतुः पञ्चकमिष्यते वाच्यवाचक
सम्बन्धान्मिथुनत्वमुपेयिवि ॥ ४६ ॥ कलावर्णस्वरूपेऽस्मिन् पंचके भूत पञ्चकम्
वियदादिक्रमादासीदुत्पन्नं मुनिपुङ्गव ॥ ४७ ॥ आद्यं मिथुनमारभ्यःपंचकं
यन्मयंविदःशब्दैकगुण आकाशःशब्दस्पर्शगुणोमरुत् ॥ ४८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणः
प्रधानोवह्निरुच्यते शब्दस्पर्शरूपरसगुणकं सलिलंमतम् ॥ ४९ ॥ शब्दस्पर्शरूप
रसगन्धाढ्या पृथिवीमता ॥ ५० ॥ व्यापकत्वंच भूतानामिदमेवं प्रकीर्त्तितम्
व्याप्यत्वं वैपरीत्येन गन्धादिक्रमतोभवेत् ॥ ५१ ॥ भूतपञ्चकरूपोऽयं प्रपञ्चः

परिकीर्त्तते विराट् सर्वसमष्ट्यात्मा ब्रह्माण्डमितिचस्फुटम् ॥ ५३ ॥ पृथिवी तत्वमारभ्य शिवतत्वावधिक्रमात् निलीयात्तत्वसन्दोहं जीव एव विलीयते ॥५४॥ स शक्तिके पुनःसृष्टौ शक्तिद्वाराविनिर्गतंस्थूलप्रपंचरूपेण तिष्ठत्याप्रलयं सुखम् ॥ ५५ ॥ निजेच्छया जगत्स्रष्टुमुद्युक्तस्यमहेशितुः प्रथमोयः परिस्पन्दश्शिवतत्वं तदुच्यते ॥ ५६ ॥ एषैवेच्छाशक्ति तत्वं सर्वकृत्यानुवर्त्तनात् ज्ञानक्रियाशक्ति युगमे ज्ञानाधिक्योसदाशिवः ॥ ५७ ॥ महेश्वरं क्रियोद्रेके तत्वबुद्धिमुनीश्वरः ज्ञानक्रियाशक्तिसाम्यं शुद्धविद्यात्मकं मतम् ॥ ५८ ॥ स्वात्मरूपेषु भावेषु मायातत्वविभेदधीः शिवो यदा निजं रूपं परमैश्वर्यपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ निगूह्य मायया खिलपदार्थ ग्राहकोभवेत् तदा पुरुष इत्याख्यातत्सृष्टेत्यभवच्छ्रुतिः ॥ ६० ॥ अयमेव हि संसारीमाययामोहितः पशुः विवादभिन्नं न जगतात्मानं भिन्नमित्यपि ॥ ६१ ॥ जानतोऽस्यपशोर्देवमोहोभवति न प्रभोः यथेन्द्रजालिक स्यापि योगिनोनभवेद्भ्रमः ॥ ६२ ॥ गुरुणाज्ञापितैश्वर्यश्शिवोभवति चिद्घनः सर्वकर्तृत्वरूपा च सर्वज्ञत्व स्वरूपिणी ॥ ६३ ॥ पूर्णत्वरूपानित्यत्वव्यापकत्व स्वरूपिणी शिवस्य शक्तयः पंचसंकुचद्रूपभास्कराः ॥ ६४ ॥ अपि संकोचरूपेण विभान्त्य इव नित्यशः पशोः कलाख्यविद्येति रागकालौ नियत्यपि ॥ ६५ ॥ तत्व पंचकरूपेण भवत्यत्रकलेति सा किंचित्कर्तृत्वहेतुःस्यात्किंचित्तत्वैकसाधनम् ॥ ६६ ॥ साविद्यातु भवेद्रागोविषयेष्वनुरञ्जकः कालोहिभावाभावानां भासना भासनात्मकः ॥ ६७ ॥ क्रमावच्छेदकोभूत्वाभूत्वादिरिति कथ्यते इदं तु मम कर्त्तव्यमिदं नेति नियामिका ॥ ६८ ॥ नियतिःस्याद्विभोश्शक्तिस्तदाक्षेपात्पतेत्पशुः एतत्पञ्चकमेवास्य स्वरूपावारकत्वतः ॥ ६९ ॥ पंचकंचुकमाख्यातमन्तरंगत्वसाधनम् वामदेव उवाच निपत्यधस्तात्प्रकृतेरुपरिस्थः पुमानिति ॥ ७० ॥ पूर्वत्र भवताप्रोक्तमिदानींकथमन्यथा मायया संकुचद्रूपस्तदधस्थ इति प्रभो ॥ ७१ ॥ श्रीसुब्रह्मण्य उवाच अद्वैत शैववेदोऽयद्वैतं न सहते क्वचित् सर्वज्ञः सर्वकर्त्ताचशिवएवस्वमायया ॥ ७२ ॥ संकुचद्रूप इव सन् पुरुषः संवभूवह कलादि पंचकेनैव भोक्तृत्वेन प्रकल्पितः ॥ ७३ ॥ प्रकृतिस्थ पुमानेष भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् इति स्थानद्वयान्तस्थः पुरुषो न विरोधकः ॥ ७४ ॥ संकुचन्निजरूपाणां ज्ञानादीनां समष्टिमत् सत्वादिगुणसाध्यंच वुद्ध्यादित्रितयात्मकम् ॥ ७५ ॥ चित्तं प्रकृतितत्वं तदासौत्सत्वादिकारणं सात्विकादि विभेदेन गुणा प्रकृतिसम्भवाः ॥ ७६ ॥ गुणेभ्योवुद्धिरुत्पन्नावस्तु निश्चयकारिणी अहं-

कारस्ततो बुद्धं संजातास्त्रिविधस्स: ॥ ७७ ॥ जीवनंचाथ संरम्भोगवंचैवत्रिधा वपु: अहंकारात्तैजसात्तु मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ॥ ७८ ॥ जातानि मनसोरूपं स्यात्संकल्पविकल्पकम् बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रंत्वक्चचुर्जिह्वाचनासिका ॥ ७९ ॥ शब्दःस्पर्शंचरूपंचरसोगन्धस्वगोचर: बुद्धीन्द्रियाणांकथिता: श्रोत्रादिक्रमतस्तत: ॥ ८० ॥ वैकारिकादहंकारात्ममंसाच्चाणि प्रजज्ञिरे तानि वाक्यानि पादौ चपायुपस्थौच तत्क्रिया: ॥ ८१ ॥ वदनादानुगमन विसर्गानन्दसंज्ञिता:भूता- दिकादहंकारात्तन्मात्राण्यभवन् क्रमात् ॥ ८२ ॥ अवकाश प्रदानत्वं वाहक- त्वंचपाचनम् संरम्भोधारणं तेषां व्यापरा:परिकीर्त्तिता: ॥ ८३ ॥ वामदेव उवाच भूतसृष्टि: परापोक्ता:कलादिभ्य: कथं पुन: आत्मातत्वमकार:स्याद्विद्या- स्यादुत्तरस्तत: ॥ ८४ ॥ शिव तत्वं मकार:स्यात्सर्व मत्वार्थकावुभौ बिन्दुना दौतु तत्रत्यादेवता:शृणुसांप्रतम् ॥ ८५ ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च महेश्वरसदाशिवौ तेहि साक्षाच्छिवस्यैवमूर्त्तय: श्रुति विश्रुता: ॥ ८६ ॥ तन्मात्रेभ्योभवतीति सन्दोहोऽत्रमहान्प्रभो श्रोसुब्राह्मण्य उवाच तस्माद्देति समारभ्यभूतसृष्टिकरम् मुने ॥ ८७ ॥ जातानि पंचभूतानि कलाभ्य इति निश्चितम् स्थूलप्रपंचरूपाणि तानि भूतपतेर्वपु: ॥ ८८ ॥ शिवतत्वादि पृथ्वन्ततत्वानामुदयक्रमे तन्मात्रेभ्यो भवतोति कथितानि क्रमान्मुने ॥ ८९ ॥ तन्मात्राणां कलानामप्यैक्यं स्यादभूत कारणात् अविरुद्धत्वमेवात्रविद्धिब्रह्मविदाम्बर ॥ ९० ॥ स्थूलसूक्ष्मात्मके विश्वे चन्द्रसूर्यादयोग्रहा: स नक्षत्राश्च संजातास्तथान्येज्योतिषांगणा: ॥ ९१ ॥ ब्रह्म विष्णु महेशादि देवता भूत जातय: इन्द्रादयोऽपि दिक्पालादेवाश्च पितरो ऽसुरा: ॥ ९२ ॥ राक्षसामानुषाश्चान्येजंगमस्त्वविभागिन:पशव: पक्षिण:कीटा: पन्नगादि प्रभेदिन: ॥ ९३ ॥ तरुगुल्मलतौषध्य: पर्वताश्चाष्टविश्रुता: गङ्गाद्या: सरित: सप्तसागराश्चमहर्षय: ॥ ९४ ॥ यत्किंचिद्वस्तुजातं तत्सर्वमत्र प्रति- ष्ठितम् पुंस्त्रीरूपमिदं विश्वं शिवशक्त्यात्मकं बुधै: ॥ ९५ ॥ अवाष्टशेरूपास्यं स्याच्छिवज्ञानविदाम्बरैस्सर्वं व्रह्मतुरपासीत सर्वोविरुद्र इत्यपि ॥ ९६ ॥ श्रुति- राहमुनेतस्मात्प्रपंचात्मासदाशिव: अष्ट त्रिंशत्कलान्याससमर्थ्याहितभावनात् ॥ ९७ ॥ सदाशिवोऽहमिवेति भावितात्मागुरुश्शिव: प्रपंचदेवता पंचमन्त्रात्मा नहि संशय: ॥ ९८ ॥ एवंविधाचार्य कृपापाटिताखिल वन्धन शिष्य: शिवयदा सत्तोगुर्वात्मा भवति ध्रुवम् ॥ ९९ ॥ यदस्तिवस्तु तत्सर्वंगुण प्राधान्ययोगत: समस्तंव्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते ॥ १०० ॥ इति सप्तदशस्तरङ्ग ॥

## अथ अष्टादशस्तरंगः ।

इत्थंवतामसदाशिवात् कोटान्ताजोवत्वेन सृष्ट्यन्तर्गता इत्यभिधायेदानींपर शिवातिरिक्त सदाशिवादीनां स्वतोऽनुपास्यत्वेनतदुत्तरतदावरणावाउपास्यत्व-मित्याशयेन परशिवस्तवनमाह । अथ ऊपमन्युरुवाच स्तोत्रं वक्ष्यामिति कृष्ण पञ्चावरणमार्गतः योगीश्वरमिदं पुण्यं कर्म्मयेन समाप्यते ॥ १ ॥ जयजयजग देकनाथशम्भोप्रकृतिमनोहरनित्यचित् स्वभाव अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचामपि मनसांपदवीमतीतत्व ॥ २ ॥ स्वभाव निर्म्मलाभोगजयसुन्दरचेष्टित स्वात्मतुल्य महाशक्तेजयशुद्धगुणार्णव ॥ ३ ॥ अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासदृशविग्रह अतर्क्य महिमाधारजयानाकुलमंगल ॥ ४ ॥ निरञ्जननिराधार जयनिष्कारणोदय निरन्तरपरानन्द जयनिर्वृत्तिकारण ॥ ५ ॥ जयातिपरमैश्वर्य्ये जयातिकरुणा-स्पद जयस्वतन्त्रसर्वस्व जयासदृशवैभव ॥ ६ ॥ यजावृतमहाविश्व जयानावृत्त केनचित् जयोत्तरसमस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर ॥ ७ ॥ जयाऽद्भुतजयाक्षुद्र जयाक्षतजयाव्यय जयामेयजयामाये जयाभयजयामल ॥ ८ ॥ महाभुजमहा-सार महागुणमहाकथ महावलमहामायमहारसमहारथ ॥ ९ ॥ नमः परम देवायनमः परमहेतवेनमः शिवायशान्तायनमः शिवतरायते ॥ १० ॥ त्वदधीन मिदंकृत्स्नजगद्धितसुरासुरम् अतस्त्वदविहितामासां चमतेकोऽनिवर्त्तितुम् ॥ ११ ॥ अयंपुनर्जनोनित्यं भवदेकसमाश्रयः भवानतोनुगृह्यास्मै प्रार्थितं संप्र-यच्छतु ॥ १२ ॥ जयांविकजगन्मातर्जयसर्वजगन्मयि जयानवधिकैश्वर्येजया-नुपमविग्रहे ॥ १३ ॥ जयवाङ्मनसातीते जयाचित्स्वान्तभङ्गिके जयजन्मजरा-हीनेजयकालोत्तरोत्तरे ॥ १४ ॥ जयाऽनेकविधावस्थे जयानेकसुखात्मके जया-नेकमहासत्वे जयानेकगुणार्जिते ॥ १५ ॥ जयानेकगुणात्मस्थे जयलोकमहे-श्वरि जयविश्वाधिकात्मस्थे जयविश्वे श्वरप्रिये ॥ १६ ॥ जयविश्वसुराध्यक्षे जय विश्वविजृम्भणि जयमंगलदिव्यांगिजयमंगलदीपिके ॥ १७ ॥ जयमङ्गलचारित्रे जयमङ्गलदायिनि नमः परमकल्याणिगुणसञ्चयमूर्त्तये ॥ १८ ॥ नमः शिवायै विश्वस्मात्परस्यैशिवशक्तये त्वत्तः खलुसमुत्पन्नं जगत्त्वय्येवलीयते ॥ १९ ॥ त्वद्वि-नातःफलंदातुमीश्वरोऽपिनशक्नुयात् जन्मप्रभृति देवेशिजनोऽयंत्वदुपाश्रितः ॥ २० ॥ अतोऽस्यतवभक्तस्यनिर्वर्त्तयमनोरथम् . पञ्चवक्त्रोदशभुजः शुद्धस्फटिक

सन्निभः ॥ २१ ॥ वर्णं ब्रह्मकलादेहोदेवःसकलनिष्कलः शिवमूर्तिसमारूढःशां
त्यतीतः सदाशिवः ॥ २२ ॥ भक्त्यामयार्च्चितोमह्यं प्रार्थितंसम्प्रयच्छतु सदाशि-
वांकमारूढ़ाशक्तिरिच्छाशिवाह्वया ॥ २३ ॥ जननीसर्वलोकानां प्रयच्छतुमनो
रथम् शिवयोर्दयितौपुत्रौदेवौहेरंवषण्मुखौ ॥ २४ ॥ शिवानुभावौचशिवौशिव
ज्ञानामृताशिनौ तृप्तौपरस्परांस्निग्धौशिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ ॥ २५ ॥ आरा-
धितौसदादेवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि सर्वलोकपरित्राणं कर्त्तुमभ्युदितौसदा ॥२६॥
स्वेच्छावतारंकुर्वन्तौस्वांशभेदैरनेकशः ताविमौशिवयोः पार्श्वेनित्यमित्थंमया-
र्चितौ ॥२७॥ तयोराज्ञांपुरस्कृत्यप्रार्थितंमेप्रयच्छताम् शुद्धस्फटिकसंकाशमीशा-
नाख्यं सदाशिवम्। २८॥ मूर्द्धाभिमानिनौमूर्त्तिः शिवस्य परमात्मनः शिवार्चन
रतंशान्तंशान्त्यतीतं खमास्थितम् ॥ २९ ॥ पञ्चाक्षरांतिमंबीजंकलाभिः पञ्च
भिर्युतम् प्रथमावरणेपूर्वंशक्त्यासहसमर्चितम् ॥ ३० ॥ पवित्रं परमं ब्रह्मप्रा-
र्थितंमेप्रयच्छतु वालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यंपुरातनम् ॥ ३१ ॥ पूर्ववक्त्राभि
मानञ्चशिवस्य परमेष्ठिनः शान्त्यात्मकंमरुत्संस्थंशम्भोः पादार्चनेरतम ॥ ३२ ॥
तुरीयंशिवबीजेषुकलासुच चतुष्कलम् पूर्वभागेमयाभक्त्या शक्त्यासहसमर्चितम्
॥ ३३ ॥ पवित्रंपरमं ब्रह्मप्रार्थितंमेप्रयच्छतु अञ्जनाद्रिप्रतीकाशमघोरंघोरविग्र-
हम् ॥ ३४ ॥ देवस्य दक्षिणंवक्त्रं देवदेवपदार्चकम् विद्यापदंसमारूढ़ं वह्नि
मण्डलमध्यगम् ॥ ३५ ॥ द्वितीयंशिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम् देवेशोत्तरदि-
ग्भागेशक्त्यासहसमर्चितम् ॥ ३६ ॥ पवित्रंपरमं ब्रह्मप्रार्थितंमेप्रयच्छतु कुंकुम
क्षोदसंकाशं वामाख्यंवरवेषधृक् ॥ ३७ ॥ वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायाःप्रतिष्ठि-
तम् वारिमंडलमध्यस्थं महादेवार्चनेरतम् ॥ ३८ ॥ द्वितीयं शिवबीजेषुत्रयोदश
कलान्वितम् देवेशोत्तरदिग्भागेशक्त्यासहसमर्चितम् ॥ ३९ ॥ पवित्रंपरमं ब्रह्म
प्रार्थितंमेप्रयच्छतु शंखकुन्देन्दुधवलं सद्याख्यसौम्यलक्षणम् ॥ ४० ॥ शिवस्यं
पश्चिमंवक्त्रं शिवपादार्चनेरतम् निवृत्तिपदनिष्ठञ्चपृथिव्यां समवस्थितं ॥ ४१ ॥
प्रथमंशिवबीजेषुकलाभिश्चाष्टभिर्युतम् देवस्य पश्चिमेभागेशक्त्यासहसमर्चितम्
॥ ४२ ॥ पवित्रंपरमं ब्रह्मप्रार्थितंमेप्रयच्छतु शिवस्य च शिवायाश्चहृन्मूर्त्तौशिव
भाविते ॥ ४३ ॥ तयोराज्ञांपुरस्कृत्यतेमेकामंप्रयच्छताम् शिवस्यच शिवायाश्च
शिरोमूर्त्ति शिवाश्रिते ॥ ४४ ॥ तयोराज्ञांपुरस्कृत्यतेमेकामंप्रयच्छताम् शिवस्य
च शिवायाश्चशिखामूर्त्तौशिवाश्रिते ॥ ४५ ॥ सत्कृत्यशिवयोराज्ञांतेमेकामं
प्रयच्छताम् शिवस्य च शिवायाश्चनेत्रमूर्त्तौशिवाश्रिते ॥ ४६ ॥ सत्कृत्यशिवयो

राज्ञांतेमेकामं प्रयच्छताम् शिवस्य च शिवायायवर्मणोशिवभाविते ॥ ४७ ॥
सत्कृत्यशिवयोराज्ञांतेमेकामं प्रयच्छताम् अस्त्रमूर्त्तीच शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे
॥ ४८ ॥ सत्कृत्यशिवयोराज्ञांतेमेकामं प्रयच्छताम् वामोज्येष्टस्तथारुद्रः का-
लोविकरणस्तथा ॥ ४९ ॥ वलोविकरणश्चैववल:प्रमथन: पर: सर्वभूतस्य दमने
तादृशश्चाष्टशक्तय: ॥ ५० ॥ प्रार्थितंमेप्रयच्छन्तुपरमेशस्य शासनात् अथानन्तश्च
सूक्ष्मश्चशिवश्चानेकनेत्रक: ॥ ५१ ॥ एकरुद्रस्त्रिमूर्त्तिश्चश्रीकण्ठश्चशिखण्डक:
तथाष्टौशक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिता: ॥ ५२ ॥ तेमेकामं प्रयच्छन्तुशिवयो-
रेवशासनात् भवाद्यामूर्त्तयश्चाष्टौतेषामपिच शक्तय: ॥ ५३ ॥ महादेवादयश्चान्ये
तथैकादशमूर्त्तय: शक्तिभि:सहिता: सर्वेतृतोयावरणे:स्थिता: ॥ ५४ ॥ सत्कृत्य
शिवयोराज्ञांदिशन्तुफलमीप्सितम् वृषराजोमहातेजामहामेघसमस्वन: ॥ ५५ ॥
मेरुमन्दरकैलासहिमाद्रिशिखरोपम: सिताभ्रशिखराकार: ककुदापरिशोभित:
॥ ५६ ॥ महाभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजित: रक्तास्यशृङ्गचरणोरक्तप्राय
विलोचन: ॥ ५७ ॥ पीवरोन्नतसर्वाङ्गसुचारुगमनोज्वल: प्रशस्तलक्षण: श्रीमान्
प्रज्वलन्मणिभूषण: ॥ ५८ ॥ शिवप्रिय: शिवासक्त: शिवयोर्ध्वजबाहन: तथा
तच्चरणन्यासभावितापरविग्रह: ॥ ५९ ॥ गोराजपुरुष: श्रीमान् श्रीमच्छूलव-
रायुध: तयोराज्ञां पुरस्कृत्यसमेकामं प्रयच्छतु ॥ ६० ॥ नन्दोश्वरोमहातेजा
नगेन्द्रतनयात्मज: सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वन्दित: ॥ ६१ ॥ सर्वस्यान्त:
पुरद्वारिसार्द्धपरिजनै:स्थित: सर्वेश्वरसमप्रख्यसर्वासुरविमर्दन: ॥ ६२ ॥ सर्वेषां
शिवधर्माणां मध्यक्षत्वेभिषेचित: शिवप्रिय: शिवासक्त श्रीमच्छूलवरायुध:
॥ ६३ ॥ शिवाश्रितेषुसंसक्तस्त्वनुरक्तश्चतैरपि सत्कृत्यशिवयोराज्ञां समेकामंप्रय-
च्छतु ॥ ६४ ॥ महाकालोमहावाहुर्महादेवइवापर: महादेवाश्रितानान्तु
नित्यमेवाभिरक्षिता ॥ ६५ ॥ शिवप्रिय: शिवासक्त: शिवयोरर्चक:सदा सत्कृत्य
शिवयोराज्ञां समेदिशतुकांक्षितम् ॥ ६६ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञ: शास्ताविष्णो:
परातनु: महामोहात्मतनयोमधुमांसासवप्रिय: ॥ ६७ ॥ तयोराज्ञांपुरस्कृत्य
समेकामं प्रयच्छतु ब्राह्मणीचैवमाहेशोकौमारीवैष्णवोपरा ॥ ६८ ॥ वाराही
चैव माहेन्द्रोचामुण्डाचण्डविक्रमा एताबै मातर:सप्तसर्वलोकस्यमातर: ॥ ६९ ॥
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात् मत्तमातंगवदनोगंगोमाशंकरात्मज:
॥ ७० ॥ आकाश देहोदिग्बाहु: सोमसूर्य्याग्नि लोचन: ऐरावतादिभिर्दिव्यै-
र्दिग्गजैर्नित्यमर्चित: ॥ ७१ ॥ शिवज्ञानमदोभिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत् विघ्न

ब्रह्मासुरादीनांविप्रेशःशिवभावितः ॥ ७२ ॥ सतृक्षत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु कांचितम् षण्मुखःशिवसंभूतश्शक्तिवज्रधराःप्रभुः ॥७३॥ अग्ने स्तनयोदेवोह्यपर्णी तनय प्रभुः गङ्गायाश्चगणांवायाःक्षतिकायास्तथैव च ॥७४॥ विशाखेन च शाखेनने नैगमेयेनचावृतः इन्द्रजिच्चेन्द्र सेनानी तारका सुरजित्तथा ॥ ७५ ॥ शैलानां मेरुमुख्यानांवेधकश्च स्वतेजसा तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः ॥ ७६ ॥ कुमारःसुकुमाराणांरूपोदाहरणं महत् शिवप्रियःशिवासक्तःशिवपादार्चकः सदा ॥ ७७ ॥ सतृक्षत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु कांचितम् ज्येष्ठावरिष्ठावरदाशिवयोः पूजनेरता ॥ ७८ ॥ तयोराज्ञां पुरस्कृत्यसामेदिशतु कांचितम् त्रैलोक्यवन्दिता साक्षादुल्काकारागणांविका ॥ ७९ ॥ जगत्सृष्टि विवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाभ्यर्थिता शिवात् शिवायाः प्रविभक्तायाभ्रुवोरन्तरनिः सृता ॥ ८० ॥ दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवतीह्युमा कौशिकायाश्च जननी भद्रकाल्यास्तथैव च ॥ ८१ ॥ अपर्णायाश्चजननी पाटलायास्तथैव च शिवार्चनरतानित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा ॥ ८२ ॥ सतृक्षत्यशिवयोराज्ञांसामेदि शतु कांचितम् चण्ड सर्वगणेशानः शम्भोर्वदनसम्भवः ॥ ८३ ॥ सतृक्षत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु कांचितम् वृषभोनाम गणपो वृषवाहपदार्चकः ॥ ८४ ॥ सतृक्षत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु कांचितम् पिंगलोगणपः श्रीमान्शिवासक्तश्शिवप्रियः ॥ ८५ ॥ आज्ञयाशिवयोरेव समेकामं प्रयच्छतु भृंगीशोनामगणपःशिवाराधनतत्परः ॥ ८६ ॥ प्रयच्छतु समेकामं पत्युराज्ञापुरःसरम् वीरभद्रोमहातेजाहिमकुन्देन्दुसन्निभः ॥ ८७ ॥ भद्रकालीप्रियोनित्यं मातॄणांचाभि रक्षिता यज्ञस्य च शिरोहर्त्तादक्षस्य च दुरात्मनः ॥ ८८ ॥ उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गतक्षकः शिवास्यानुचरः श्रीमान् शिवशासनपालकः ॥ ८९ ॥ शिवयोःशासनादेवसमेदिशतु कांचितम् सरस्वती महेशानीवाक्सरोज समुद्भवा । ९० ॥ शिवयोः पूजनेनित्यंसामेदिशतु कांचितम् विष्णोर्वक्षस्थितालक्ष्मीःशिवयोःपूजनेरता ॥ ९१ ॥ शिवयोःशासनादेवसामेदिशतु कांचितम् महामोठीमहादेव्याः पादपूजापरायणा ॥ ९२ ॥ तस्या एव नियोगेन सामेदिशतु कांचितम् कौशिकीसिंहमारूढ़ापार्वत्याःपरमासुता ॥९३॥ विष्णोर्निद्रामहामायामहामहिषमर्दिनी निशुम्भशुम्भसंहन्त्रीमधुमांसासवप्रिया ॥ ९४ ॥ सतृक्षत्यशासनं मातुस्सामेकामं प्रयच्छतु रुद्रारुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः ॥ ९५ ॥ भूताख्याश्च महावीर्य्यामहादेव समप्रभाःनित्यमुक्तानिरुपमानिर्द्वंद्वानिरुपप्लवाः ॥ ९६ ॥ स शक्तयस्सानुचराःसर्वलोक नमस्कृताःसर्वे-

षामेवत्नोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः ॥ ९७ ॥ परस्परानुरक्ताश्चपरस्परमनुव्रताः परस्परमिति स्निधापरस्परमनस्कृताः ॥ ९८ ॥ शिवप्रियतमानित्यं शिवलक्षण लक्षिताःसौम्याघोरास्तथामिश्राश्चान्तरालद्वयात्मका ॥ ९९ ॥ विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा सत्कृत्यशिवयोराज्ञान्तेमेकामन्दिशन्तु वै ॥ १०० ॥ देव्याःप्रियसखीवर्गोदेवीलक्षणलक्षिताः सहितोरुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः ॥ १०१ ॥ तृतीयावरणेशम्भोर्भक्त्यानित्यं समर्चितः सत्कृत्य शिवयोराज्ञांसमेदिशतु मङ्गलम् ॥ १०२ ॥ दिवाकरोमहेशस्य मूर्त्तिर्दीप्तः सुमण्डलः निर्गुणोगुण संकीर्णस्तथैव गुणकेवलः ॥ १०३ ॥ अविकारात्मकश्चाद्यस्ततः सामान्यविक्रयः असाधारण कर्म्माच सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ १०४ ॥ एवं त्रिधा चतुर्धाचविभक्तः पञ्चधापुनः चतुर्थावरणेशम्भोः पूजितश्चानुगैःसह ॥ १०५ ॥ शिवप्रियःशिवासक्तःशिवपादार्चनेरतः सत्कृत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु मङ्गलम् ॥ १०६ ॥ दिवाकरषडंगानि आदित्याद्याश्चमूर्त्तयः आदित्योभास्करोभानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः ॥ १०७ ॥ अर्कोब्रह्मा तथा रुद्रोविष्णुश्चादित्यमूर्त्तयःविस्तारासुतरावोधिन्याप्यायिन्यपराःपुनः ॥ १०८ ॥ ऊषाप्रभातथाप्राज्ञासन्ध्याचेत्यपिशक्तयः सोमादिकेतु पर्य्यन्ताग्रहाश्च शिवभाविताः ॥ १०९ ॥ शिवयोराज्ञयानुज्ञामङ्गलंप्रदिशन्तु मे अथवा द्वादशादित्यास्तथाद्वादशराशयः ॥ ११० ॥ ऋषयोदेवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसांगणाः ग्रामण्यश्च तथा यक्षराक्षसाश्चासुरास्तथा ॥ १११ ॥ सप्तसप्तगणाश्चैतेसप्तच्छंदोमयाहयाः वालखिल्यगणाश्चैव सर्वेशिवपदार्चका ॥ ११२ ॥ सत्कृत्यशिवयोराज्ञांमंगलम्प्रदिशन्तु मे ब्रह्माथदेवदेवस्य मूर्त्तिभूमण्डलाधिपः ॥ ११३ ॥ चतुःषष्टिगणैश्वर्योवुद्धितत्वे प्रतिष्ठितः निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैवगुणकेवलः ॥ ११० ॥ अविकारात्मको देवस्ततः साधारणःपरः असाधारणकर्माचसृष्टिस्थितिलयक्रमात् ॥ ११५ ॥ एवं त्रिधा चतुर्धाचविभक्तः पञ्चधा पुनःचतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः ॥ ११६ ॥ शिवप्रियः शिवासक्तश्शिवपादार्चनेरतः सत्कृत्यशिवयोराज्ञांसमेदिशतु मंगलम् ॥ ११७ ॥ हिरण्यगर्भोलोकेशोविराट्कालश्चपुरुषः सनत्कुमारःसनकःसनन्दश्चसनातनः ॥ ११८ ॥ प्रजानांपतयश्चैवदक्षाद्याब्रह्मसूनवः एकादशसपत्नीकाधर्म्मः संकल्प एवच ॥ ११९ ॥ शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः शिवाज्ञावशगाःसर्वेदिशन्तुममंगलम् ॥ १२० ॥ चत्वारश्चतथावेदाः सेतिहासपुराणकाः धर्म्मशास्त्रादिविद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विता ॥ १२१ ॥ परस्पराविरुद्धार्थाः शिवैकप्रति-

पादकाः सत्कृत्यशिवयोराज्ञां मंगलं प्रदिशन्तुमे ॥ १२२ ॥ अथ रुद्रोमहादेवः शम्भोर्मूर्त्तिर्गरीयसी वाङ्मयमण्डलाधीशः पौरुषेश्वर्यवान्प्रभुः ॥ १२३ ॥ शिवा भिमानसंपन्नोनिर्गुणस्त्रिगुणात्मकः केवलं सात्विकश्चापिराजसश्चैवतामसः २२४ अविकाररतःशर्वस्ततस्तुसमविक्रियः असाधारणकर्माच सृष्ट्यादिकारणात्पृथक् ॥ १२५ ॥ ब्रह्मणोऽपिशिरच्छेत्ताजनकस्तस्यतत्सुतः जनकस्तनयश्चापि विष्णो रपिनियामकः ॥ १२६ ॥ बोधकश्चतयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः अण्डस्यान्तर्व हिर्वर्त्तीरुद्रोलोकद्वयाधिपः ॥ १२७ ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चनेरतः शिवस्याज्ञांपुरस्कृत्यसमेदिशतुमंगलम् ॥ १२८ ॥ तस्य ब्रह्मषडंगानिविद्येशानां तथाष्टकं चत्वारोमूर्त्तिभेदाश्चशिवपूर्वाः शिवार्चकाः ॥१२९॥ शिवोभवोहरश्चैव मृडश्चैवतथापरः शिवस्याज्ञांपुरस्कृत्यमंगलं प्रदिशन्तुमे ॥१३०॥ अथविष्णुमहेशस्य शिवस्यैवापरातनुः वारितत्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः ॥ १३१ ॥ निर्गुणः सत्वबहुलस्तथैवगुणकेवलः अविकाराभिमानीच त्रिसाधारणविक्रियाः ॥ १३२ ॥ असाधारणकर्माच सृष्ट्यादि कारणात्पृथक् दक्षिणांगभवेनापिस्पर्धमानःस्वय- म्भुवा ॥ १३३ ॥ आद्येनब्रह्मणासाक्षात्सृष्टः स्रष्टाचतस्यतु अण्डस्यान्तर्वहिर्व- र्त्तीविष्णुर्लोकद्वयाधिप ॥ १३४ ॥ असुरान्तकरश्चक्रीशक्रस्यापितथानुजः प्रादु- र्भूतश्चदशधाभृगुशापच्छलादिह ॥१३५॥ भूभारनिग्रहार्थायस्वेच्छयावतरत्क्षितौ अप्रमेयबलोमायीमाययामोहयन् जगत् । १३६ ॥ मूर्त्तीकृत्यमहाविष्णुंसदा- विष्णुमथापिवा वैष्णवैःपूजितोनित्यंमूर्त्तित्रयमयासने ॥ १३७ ॥ शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चनेरतः शिवस्याज्ञांपुरस्कृत्यसमेदिशतुमंगलम् ॥ १३८ ॥ वासुदेवोनिरुद्धश्चप्रद्युम्नश्चततःपरः संकर्षणः समाख्यातश्चतस्रोमूर्त्तयोहरेः १३९ मत्स्यकूर्मोवराहश्चनारसिंहश्चवामनः रामत्रयं तथा कृष्णोविष्णुस्तुरगवक्त्रकः ॥ १४० ॥ चक्रंनारायणस्यास्त्रं पांचजन्यंचशार्ङ्गकम् सत्कृत्यशिवयोराज्ञां मंगलंप्रदिशन्तुमे ॥ १४१ ॥ प्रभासरस्वतीगौरीलक्ष्मीश्च शिवभाविता शिवयोः शासनादेता मंगलंप्रदिशन्तुमे ॥ १४२ ॥ इन्द्रोऽग्निश्चयमश्चैवनिर्ऋतिर्वरुणस्तथा वायुःसोमः कुवेरश्चतथेशानस्त्रिशूलधृक् ॥ १४३ ॥ सर्वेशिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः सत्कृत्यशिवयोराज्ञां मंगलंप्रदिशन्तुमे ॥ १४४ ॥ त्रिशूलमथ- वज्रञ्चतथापरशुसायकौ खङ्गपाशांकुशाश्चैवपिनाकश्चायुधोत्तमः ॥ १४५ ॥ दि- व्यायुधानिदेवस्यदेव्याश्चैतानिनित्यशः सत्कृत्यशिवयोराज्ञां रक्षांकुर्वन्तुमेसदा ॥ १४६ ॥ वृषरूपधरोधर्मः सौरभेयोमहाबलः वाडवाख्यानलस्पर्द्धीपंचगोमातृ

भिर्वृतः ।१४७॥ वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसापरमेशयोः तयोराज्ञां पुरस्कृत्यसमेकामं प्रयच्छतु ॥ १४८ ॥ नन्दासुभद्रासुरभिः सुशीलासुमनास्तथा पञ्चगोमातरश्चैताः शिवलोकेव्यवस्थिताः ॥ १४९ ॥ शिवभक्तिपरानित्यं शिवार्चनपरायणाः शिवयोः शासनादेवदिशन्तुममवांछितम् ॥१५०॥ क्षेत्रपालोमहातेजानीलजीमूतसन्निभ.दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्वलः ॥ १५१ ॥ रक्तोर्ध्वमूर्द्धज श्रीमान् भ्रूकुटीकुटिलेचणः रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः ॥ १५२ ॥ नग्नत्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः भैरवोभैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्चसंवृतः ॥ १५३ ॥ क्षेत्रेक्षेत्रेसमासीनःस्थितोयोरक्षकस्सताम् शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः ॥ १५४ ॥ शिवाश्रितान् विशेषेणरक्षन्पुत्रानिवौरसान् सत्कृत्यशिवयोराज्ञां समेदिशतु मङ्गलम् ॥ १५५ ॥ ताम्रजंघादयस्तस्य प्रथमावरणेर्चिताः सत्कृत्य शिवयोराज्ञांचत्वारस्समवन्तुमाम् ॥ १५६ ॥ भैरवाद्याश्चयेचान्ये संमतात्तस्य वेष्टिताः तेऽपिमामनुगृह्णन्तु शिवशासन गौरवात् ॥ १५७ ॥ नारदाद्याश्च मुनयोदिव्यादेवैश्च पूजिताःसाध्याश्चैव तु येदेवाजनलोकनिवासिनः ॥ १५८ ॥ विनिवृत्ताधिकाराश्चमहर्लोकनिवासिनः महर्षयस्तथान्येच वैमानिकगणैःसह ॥ १५९ ॥ सर्वेशिवार्चनरताशिवाज्ञावशवर्त्तिनः शिवयोराज्ञयामह्यन्दिशन्तु ममकांक्षितम् ॥ १६० ॥ गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रोदेवयोनयः सिद्धाविद्याधराद्याश्चयेपिचान्येनभश्चराः ॥ १६१ ॥ सुराश्चराक्षसाश्चैवः पातालतलवासिनः अनन्ताद्याश्च नागेन्द्राविनतेयादयोद्विजाः ॥ १६२ ॥ कूष्माण्डाःप्रेत वेतालाग्रहाभूतगणाःपरे ॥१६३॥ डाकिन्यश्चापि योगिन्य शाकिन्यश्चापि तादृशः क्षेत्राराम गृहादीनि तीर्थान्यायतनानिच द्वीपाः समुद्रानद्यश्चनदाश्चान्येसरांसिच ॥ १६४ ॥ गिरयश्चसुमेर्वाद्याःकाननानि समन्ततःपशवः पक्षिणोवृक्षाः क्रमिकीटादयोमृगाः ॥ १६५ ॥ भुवनान्यपि सर्वाणिभुवनानामधीश्वरा अन्डाद्यावरणैः सार्धमाशाश्चदशदिग्गजाः ॥१६६॥ वर्णापदानिमन्त्राश्चतत्वान्यपि सहाधिपैः ब्रह्माण्डधारकारुद्रारुद्राश्चान्येसशक्तिकाः ॥ १६७ ॥ यच्चकिञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृष्टञ्चानुमितं श्रुतम् सर्वेकामंप्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात् ॥१६८॥ अथ विद्यापराशैवीपशुपाशविमोचनी पञ्चार्थं संज्ञितादिव्यापशुविद्याबहिष्कृता ॥१६९॥ शास्त्रञ्च शिवधर्माख्यन्धर्माख्यञ्च तदुत्तरम् शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसंमितम् ॥१७०॥ शैवागमाश्चयेचान्येकामिकाद्याश्चतुर्विधाः शिवाभ्यामविशेषेण सत्कृत्येहसमर्चिताः ॥ १७१ ॥ ताभ्यामेव समाज्ञातामामाभिप्रेतसिद्धये कर्मेदम-

नुमन्यंतांसफलंसाध्वनुष्टितम् ॥ १७२ ॥ शैवामाहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्टितम् ॥ १७३ ॥ लौकिकाब्राह्मणाःसर्वेचत्रि-
याश्चविशःक्रमात् वेदवेदांगतत्त्वज्ञाःसर्वशास्त्रविशारदाः ॥ १७४ ॥ सांख्यावैशे-
षिकाश्चैवयौगोकानैयायिकानराःशौरावाह्मातथारौद्रावैष्णवाश्चापरेनराः ॥१७५॥
शिष्टाःसर्वेविशिष्टाश्चशिवशासनयन्त्रिताः कर्मेदमनुमन्यन्तांममाभिप्रेतसाधकम्
॥ १७६ ॥ शैवासिद्धान्तमार्गस्थाःशैवाःपाशुपतास्तथा शैवामहाव्रतधराःशैवका
पालिकाःपरे ॥ १७७ ॥ शिवाज्ञापालकाः पूज्याममापि शिवशासनात् सर्वे
मामनुगृह्णन्तुशंसन्तु सफलक्रियाम् ॥ १७८ ॥ दक्षिणज्ञान निष्ठाश्चदक्षिणोत्तर
मार्गगाः अविरोधेन वर्त्तन्तामन्त्रश्रेयोऽर्थिनोमम ॥ १७९ ॥ नास्तिकाश्च शठा
श्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाःपाषण्डाश्चातिपापाश्चवर्त्तन्तां दूरतोमम ॥ १८० ॥
बहुभिः किंस्तुतैरत्रयेऽपि केऽपि चिदास्तिकास्सर्वेममानुगृह्णन्तु सन्तःशंसन्तु
मङ्गलम् ॥ १८१ ॥ नमः शिवायशांवायसंसुतायादि हेतवे पञ्चावरणरूपेण
प्रपञ्चेनावृतायते ॥ १८२ ॥ इत्युक्तादण्डवद्भूमौप्रणिपत्यशिवं शिवाम् जपेत्पं
चाक्षरींविद्यामष्टोत्तरशतावराम् ॥ १८३ ॥ तथैव शक्तिं विद्यांचजपित्वातत्सम-
र्पणम् कृत्वाचमापयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत् ॥ १८४ ॥ एतत्पुण्यतमं
स्तोत्रं शिवयोर्हृदयङ्गमम् सर्वाभीष्ट प्रदंसाचाद्भुक्ति मुक्त्येकसाधनम् ॥ १८५ ॥
य इदं कीर्त्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वासमाहितः सविधूयाशुपापानि शिवसायुज्य
माप्नुयात् ॥ १८६ ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहाभ्रूणहापिवाशरणागतघातीच
मित्र विश्रम्भघातकः ॥ १८७ ॥ दुष्टःपापसमाचारोमातृहापितृहापिवास्तवेना-
युत जप्नेनतत्तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ १८८ ॥ दुःस्वप्नादि महानर्थसूचकेषु भयेषु
च यदि संकीर्त्तयेदेतन्नततोऽनर्थभाग्भवेत् ॥ १८९ ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चा-
न्यदपि वाञ्छितम् स्तोत्रस्याऽस्य जपेनिष्ठस्तत्तत्सर्वंलभेन्नरः ॥ १९० ॥ असंपूज्य
शिवं स्तोत्रञ्जपात्फलमुदाहृतम् संपूज्य च जपेतस्यफलंवक्तुं न शक्यते ॥ १९१ ॥
आस्तामियं फलावाप्तिरितस्मिन्कीर्त्तिते सति सार्धमम्बिकयादेवः स्तुत्वेदं
दिवितिष्ठति ॥ १९३ ॥ तस्मान्नभसिसंपूज्यदेवदेवं सहोमया कृतांजलिपुटस्ति-
ष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत् इति शिवपुराणे वायवीय संहितायामुत्तरभागे चतु-
र्विंशोऽध्यायः २४ सृष्टिनिरूपणेसव्यूहानां सर्वेषां सुतपत्तिरथच स्तोत्रेस्वस्वव्यूह
सहिता शिवमर्चयन्तीति च निरूपितं तत्पुराणेषु स्पष्टं । इति अष्टादशस्तरङ्गः



## अथैकोनविंशस्तरंगः ।

गणेशशक्ति सूर्याणांत्रिगुणात्मकानां सन्धिगतानां मेषां व्यूहाः पूर्वनोक्ताः तत्तपुराणेषु विशेषतोवर्णिता अत्र संक्षेपतो वर्णयामः ईश्वररुद्रं सृष्टिनिर्माण सन्धिवेलायां सव्यूहाँस्वसृष्टिं गणेश उत्पादयति तत्र सत्वरजस्तमोगुणात्मकान् विष्णुब्रह्मारुद्रान्त्रीन्गुणेशं चतुर्थमुत्पाद्यपञ्चमः स्वयञ्च वर्त्तते एवमेवरुद्रविष्णुसृष्ट्युत्पत्यन्तरवेलायांमव्यूहांस्वीयांसृष्टिमुत्पादयतिकालिकाख्याशक्तिः अत्रांशेप्रमाणं द्वादशस्कन्धेदेवीभागवतेऽष्टमाध्यायस्थमाह वह्निर्मुखातुयामायातमः शब्देन सोच्यते वह्निर्मुखातमोरूपाज्जायते सत्वसम्भवः ॥ १ ॥ रजोगुणस्तदेवस्यात्सर्गादौसुरसत्तमः गुणत्रयात्मका प्रोक्ताः ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ॥ २ ॥ रजोगुणाधिको ब्रह्माविष्णु सत्वाधिकोभवेत् तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥ ३ ॥ स्थूलदेहोभवेद्ब्रह्मालिंगदेहोहरिस्मृतः रुद्रस्तु कारणोदेहस्तुरीयास्वहमेवहि ॥ ४ ॥ साम्यावस्थातुयाप्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपीणी अतऊर्द्ध्वंपरंरूपंमद्रूपंरूपवर्जितम् ॥ ५ ॥ एवमेवब्रह्माविष्णुसृष्टिनिर्माणसंधिवेलायांसव्यूहांस्वीयांसृष्टिं सूर्य्यउत्पादयतीत्येत्पूर्वोक्तस्तोत्रे निरूपितम् इत्येतावतासदाशिवात्कोटान्तसर्वेषां शिवएवकारणं अथचसकलसंप्रदायेपूजाद्यवसरेऽन्यासविषयेनेत्रत्रयायवौषड़िति प्रदर्शनात् शिवएवसर्वेषांमध्ये प्रथमः सर्वैःपूज्यः इत्यभिधायसदाशिवादीनां सर्वेषांगुरुरपि सएवेति निश्चितम् तत्रमानमाह शिवपुराणे वायवीय संहितायामुत्तरभागेसप्तमाध्याये उपमन्युरुवाचेति न शिवस्याणवोवन्धः कार्मोमायेय एव वा प्राकृत्तोवाथबौद्धोवाह्यहंकारात्मकस्तथा ११ नैवास्यमानसोवन्धोनचैतानेन्द्रियात्मकः न च तन्मात्र वन्धोऽपि भूतवन्धो न कश्चन ॥ २ ॥ नच कालःकलाचैव नाविद्यानियतिस्तथा न रागो नच विद्वेषः शम्भोरमित तेजसः ॥ ३ ॥ नचाप्यभिनिवेशोऽस्य कुशलाकुशलान्यपि कर्माणि तद्विपाकश्च सुखदुःखेच तत्फले ॥ ४ ॥ आशयैर्नास्य सम्बन्ध संस्कारैःकर्मणामपि भोगैश्चभोग संस्कारैःकालत्रि तयगोचरैः ॥ ५ ॥ न तस्य कारणं कर्त्तानादिरन्तस्तथान्तरम् न कर्मकारणंवापिनाकार्यंकार्यमेव च ॥ ६ ॥ नास्यवन्धुर्नचारिर्वानियन्ता प्रेरकोपिवा नपतिर्नगुरुर्भ्रातानाधिको न समस्तथा ॥ ७ ॥ न जन्ममरणे तस्य न कांचितमकांचितंनविधिर्ननिषेधश्च नमुक्तिर्नच वन्धनम् ॥ ८ ॥

नास्तियद्यदकल्याणन्तत्तदस्यकदाचन कल्याणं सकलञ्चास्ति परमात्मा शिवोयतः ॥ ९ ॥ स शिवस्सर्वमेवेदमधिष्ठायस्वशक्तिभिः अप्रच्युतस्वतोभावःस्थित.स्थाणुरतस्मृतः ॥ १० ॥ शिवेनाधिष्ठितं यस्माज्जगत्स्थावरजङ्गमम् सर्व्वरूपः स्मृतः शर्वस्तथाज्ञानमुद्धति ॥ ११ ॥ शर्वोरुद्रोनमस्तस्मै पुरुषः सत्परोमहान् हिरण्यवाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः ॥ १२ ॥ अम्बिकापतिरीशानः पिनाकीवृषवाहनः एकोरुद्रः परंब्रह्मपुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ १३ ॥ वालाग्रमात्रोह्यन्मध्ये विचिंत्योदहरान्तरे हिरण्यकेशः पद्माचोह्यरुणस्ताम्रएवच ॥ १४ ॥ योवसर्पत्यसौदेवो नीलग्रीवोहिरण्मयः सौम्योघोरस्तथामिश्रश्चाचरश्चामृतोव्ययः ॥ १५ ॥ सपुंविशेषः परमोभगवानन्तकान्तकः चेतानाचेतनोन्मुक्तः प्रपञ्चाच्चपरात्परः ॥ १६ ॥ लोकेशातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्य्येविलोकिते शिवेनातिशयत्वेनस्थिते प्राहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥ प्रतिसर्गप्रसूनानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम् उपदेष्टासएवादौकालावच्छेद वर्त्तिनाम् ॥१८॥ कालावच्छेदयुक्तानां गुरुणामप्यसौगुरुः सर्व्वेषामेवसर्व्वेशः कालावच्छेदवर्जितः ॥ १९ ॥ सिद्धिः स्वाभाविकीतस्यशक्तिः सर्वातिशायिनी ज्ञानमप्रतिमं नित्यंवपुरत्यन्तनिर्मलम् ॥ २० ॥ ऐश्वर्य्यमप्रतिद्वन्द्वं सुखमात्यन्तिकंवलम् तेजः प्रभावोवीर्य्यञ्च क्षमाकारुण्यमेवच ॥ २१ ॥ परिपूर्णस्यसर्गाद्यैर्नात्मनोऽस्ति प्रयोजनम् परानुग्रहएवास्य फलंसर्व्वस्यकर्मणः ॥ २२ ॥ इति अथ सिद्धान्तशिखामणौ अप्रत्यक्षोमहादेवः सर्वेषामात्ममायया प्रत्यक्षोगुरुरूपेणवर्त्तते भक्तिसिद्धये ॥ १ ॥ शिवज्ञानं महाघोर संसारार्णव तारकम् दीयतेयेनसः गुरुः कस्यवंद्योनजायते ॥ २ ॥ गुरुरेवातसर्व्वेषांकारणं सिद्धकर्मिणाम् गुरुरूपोमहादेवः यतः साक्षादुपस्थितः ॥ ३ ॥ निष्कलोहि महादेवोनित्यज्ञानं महोदधिः सकलोगुरुरूपेणसर्वानुग्राहको भवेत् ॥ ४ ॥ सः शिवः सगुरुर्ज्ञेयोयोगुरुः सः शिवःस्मृतः नतयोरन्तरंकुर्याद् ज्ञानावासैश्च महामतिः ॥ ५ ॥ हस्तपादादिसाम्येननेतरैः सदृशंवदेत् आचार्य्यज्ञानदंशुद्धं शिवरूपतयास्थितम् ॥ ६ ॥ आचार्य्यस्यावमानेनश्रेयः प्राप्तिर्विहन्यते तस्मान्निःश्रेयसः प्राप्त्यैपूजयेत्तं समाहितः ॥ ७ ॥ गुरुभक्तिविहीनस्य शिवभक्तिर्नजायते तत.शिवे यथाभक्तिस्तथाभक्तिर्गुरावपि ॥ ८ ॥ गुरुमाहात्म्ययोगेन निजाज्ञानातिरेकतः लिंगस्यापिचमहात्म्यं सर्वोत्कृष्टं विभाव्यते ॥ ९ ॥ शिवस्यवोध्यं यल्लिंगंगुरुवोधितचेतसा ॥ इति अथ शिवउवाच शिवरूपंसमादाय भवपाशनिवृत्तये सिद्धान्तसारवेत्ताहं सिद्धान्तासारभेदकः ॥ १ ॥ विच्छिन्ना

प्रमत्तश्चसदानुग्रहनिग्रहे शिवोदिव्याकृतिर्देविनचष्टगोचरोऽप्यहम् ॥२॥ तथाश्री-
गुरुरूपेणशिष्यान्शास्यामिपार्व्वति परं संनिश्चितजनकं परानन्दसमुद्भवम् ॥ ३ ॥
तत्तत्वं विदितंयेनसगुरुः कुलनायिके तस्यास्येप्रणमेन्नित्यं भक्त्यागुरुदयागिरा
॥ ४ ॥ भूतभव्यौमन्त्रतन्त्रौशम्भवं वेत्तियः सदा वेधसः षड्विधंदेविसगुरुःकुल-
नायिके ॥ ५ ॥ वर्णंकलांपदंतत्वं मन्त्रं भुवनमेवच बोधयेद्यः षड्ध्वानंसगुरुःकु-
लनायिके ॥ ६ ॥ षड़ाधारंनवद्वारंषोड़शाधारनिर्णयम् योजानातिविधानेन
सगुरुः कुलनायिके ॥ ७ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्चरूपञ्चतदतीतकम् योवेत्तिपञ्च-
कंदेविसगुरुः कुलनायिके ॥ ८ ॥ संमोहनतन्त्रेऽपि षट्चक्रंषोड़शाधारंत्रिलक्षं
व्योमपञ्चकम् स्वदेहेयोविजानाति सगुरुः कथितोबुधैः ॥ ९ ॥ नवचक्रेश्वरे
पिण्डंपदं तथारूपंरूपातीतं चतुष्टयम् योवासम्यग्विजानाति सगुरुः कथितो
बुधैः ॥१०॥ पिण्डादिच तुष्टयंयथाश्रुतगीतायां पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदंहंसः
प्रकीर्तितःरूपंबिन्दुरितिज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम् ॥ ११ ॥ नवचक्रेश्वरे
योवापरांचपश्यंतीमध्यमामपिवैखरीम् चतुष्टयविजानाति सगुरुः परिकीर्त्तितः
॥ १२ ॥ इति गुरुविशेषलक्षणम् रुद्रयामलेउत्तरखण्डे गुरुमूलंजगत्सर्वम्
गुरुमूलंपरन्तपः गुरोः प्रासादमात्रेण मोक्षप्राप्नोतिसद्वशी ॥ १ ॥ मुण्डमाला
तंत्रे गुरुरेकः शिवःसाक्षात्गुरुः सर्व्वार्थसाधकः गुरुरेवपरं तत्वंसर्वंगुरुमयंजगत्
॥ १४ ॥ विनागुरुप्रसादेन पुरश्चरणकोटिभिः न मन्त्रफलमाप्नोतितंदेवोन
प्रसीदति ॥ १५ ॥ पिच्छातन्त्रे गुरुमूलमिदंशास्त्रंनान्यः शिवतमः प्रभुः
अतएवमहेशानि यत्नतोगुरुमाश्रयेत् ॥ १६ ॥ गुरुर्मातापितास्वामीबान्धवः
सुहृदः शिवः इत्याध्यायमनोनित्यं भजेत्सर्व्वात्मनागुरुम् ॥ १७ ॥ शक्तियामले
गुरुरेकःशिवःप्रोक्तः सोहंदेविन संशयः गुरुत्वमपिदेवेशिमन्त्रोऽपिगुरुरुच्यते ॥१८॥
अतोमन्त्रेगुरौदेविनहिभेदः प्रजायते कदाचिच्चसहस्रारेपद्मेध्येयोगुरुःसदा ॥
॥ १९ । कदाचिद्धृदयाम्भोजे कदाचिद्दृष्टिगोचरे गुरुध्यानंविनादेवि मन्त्रो-
भवतिनिस्फलम् ॥ २० ॥ मुण्डमालातन्त्रे देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन्
धिया तदासिद्धोभवेन्मंत्रः प्रकटेहानिरेवच ॥ २१ ॥ पार्व्वत्युवाच ऐक्यज्ञानं
महादेवकथमुत्पद्यतेप्रभो नराकृतिंगुरुंमन्ये देवताध्यानरूपिणी ॥ २२ ॥ मन्त्रा-
क्षरस्वरूपोहिकथमैक्यंभवेच्छिव एतन्मेसंशयं देवछेत्तुमर्हसिसाम्प्रतम् ॥ २३ ॥
शिवउवाच एकजातिस्वरूपेण स्वभावादेकजन्मतः एतेषां भागयोगेतुचैकसाधन
मेवहि ॥ २४ ॥ गुरोर्जातश्चमन्त्रश्चमन्त्राज्जातातुदेवता अतएववरारोहेदेवता-

या: पितामहः ॥ २५ ॥ पितुस्वभावनाद्देवितथैवच पितुः पितुः तदुद्भवस्तोष-
मेतिविपरीते विपर्य्ययः ॥ २६ ॥ तदुक्तं मातृकाभेदतन्त्रे श्रीदेव्युवाच नराकृ-
तिं गुरुं नाथंमन्त्रंवर्णात्मकंतथा ध्यानानुरूपिणं देव मेकत्वं वाकथंवदेत् ॥ २७ ॥
श्रीशिवउवाच गुरुवक्त्रान्महामन्त्रोलभ्यते साधकोत्तमैः यदेवाज्जायतेबीजस्तस्य
मूर्त्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥ देवतायाः शरीरंहिबीजादुत्पद्यतेप्रिये गुरोराज्ञानु-
सारेण चान्यमूर्त्तिस्तुजायते ॥ २९ ॥ गुर्वादिभावनाद्देवि भावसिद्धिःप्रजायते
अतएवमहेशानिचैकत्वं परिकथ्यते ॥ ३० ॥ मुण्डमालातन्त्रे मन्त्रेवागुरुदेवेवान
भेदंयस्तुकल्पते तस्य तुष्टाजगद्धात्रीकीर्त्तिंदह्याद्दोमेदोने ॥३१॥ गुरुतंत्रे गुरुःकर्त्ता
गुरुर्हर्त्ता गुरुःपातामहीतले गुरुसन्तोषमात्रेण तुष्टाःस्युः सर्वदेवता ॥३२॥ गुरौ-
तुष्टे शिवस्तुष्टोरुष्टे रुष्टस्त्रिलोचनः गुरौतुष्टेशिवातुष्टारुष्टेरुष्टाच सुन्दरि ॥ ३३ ॥
अतोगुरुर्महेशानि संसारार्णवलंघने कर्त्तापाताच हर्त्ताच गुरुमोक्षप्रदायकः
॥ ३४ ॥ बृहन्नीलतंत्रेऽपि शैवोपिपरविंद्यानामुपदेष्टान संशयः वैष्णवः स्वम-
तस्थानांसौरः सौरविदांसताम् ॥३५॥ गाणपत्यस्तुदेवेशिगणदीक्षां प्रवर्त्तकः शैवे-
शाक्तेच सर्वत्रदीक्षास्वामीन संशयः ॥ ३६ ॥ इति अथ गुरुगीतायाम् गुरोःपा-
दोदकंपीत्वागुरोरुच्छिष्टभोजनम् गुरुमूर्त्तिंसदाध्यानं गुरोर्मंत्रं सदाजपेत् ॥३७॥
काशीक्षेत्रनिवासीच जाह्नवीचरणोदकम् गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात्तारकं ब्रह्मनि-
श्चितम् ॥ ३८ ॥ सर्वगुरुत्वात्सकलकारणत्वात्सर्वपूज्यत्वाच्चपरशिव सदाशिवे-
श्वराणामुच्छिष्टभक्षणेसर्वेषामधिकारोऽतएव अभक्षणेप्रायश्चितंचेति ॥

इति निर्म्माल्यरत्नाकरीयपूर्वार्द्धे एकोनविंशस्तरंगः
पूर्वार्द्धश्च समाप्तिमगमत् ।





काशी

ब्रह्मनालसे श्रीयुत बाबू बेचू सिंह द्वारा प्रकाशित।



कलकत्ता

बड़ाबाजार सूतापट्टी नं० ६५

"छवितवक्ता" यन्त्रमें डी० पी० मिश्र द्वारा मुद्रित।

# निर्म्माल्य रत्नाकरः ।

॥ अथोत्तरार्द्धः प्रारभ्यते ॥



ननुपरशिव सदाशिवेश्वरेतिचयाणामर्पितान्येववस्तूनिग्राह्यानिनत्वनर्पिता नीतिपूर्वार्द्धेवहुप्रकारेण दर्शितानिसन्ति अत्रोत्तरार्द्धेतुसामान्यवाक्यैर्निर्माल्यस्य निषेधोभवन्निमितसंग्रहग्रन्थे वक्ष्यते इतिचेत् तत्कथं संगच्छते इति तत्राह अत्र- ग्रन्थे निर्म्माल्यशब्दोपड्विधनिर्म्माल्यबोधकः षट्स्वपिभोज्यमन्नादिधार्य्यमाल्यव- स्त्रादिभेदेनद्विप्रकार निर्म्माल्यम् देवस्वं ॥ १ । देवताद्रव्यं ॥ २ ॥ नैवेद्यं ॥ ३ ॥ चनिवेदितम् ॥ ४ ॥ चण्डद्रव्यं ॥ ५ ॥ वहिःक्षिप्तं ॥ ६ ॥ निर्म्माल्यं षड्- विधंस्मृतम् ॥ १ ॥ देवस्वंग्रामभूम्यादिदासीदासचतुष्टयम् इति देवस्वम् ॥ १ ॥ हेमरूपकरत्नादि देवद्रव्यमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ इति देवताद्रव्यम् २ संकल्पितं यद्देवाय पत्रंपुष्पंफलंजलम् अन्नपानादितत्सर्वं नैवेद्यमिति कीर्त्तितम् ३ इति नैवेद्यम् ॥ ३ ॥ देवोपभुक्तास्स्रग्गन्धमधुपानादिकं तथा निवेदितमिति प्रोक्तं सर्वशास्त्रस्यनिश्चितम् ॥ ४ ॥ इति निवेदितम् ४ गणपस्यवक्र तुण्डाय सूर्य्ये चण्डांशवेऽर्पयेत् विष्णोस्तु विष्वक्सेनाय रुद्रे चण्डेश्वराय च ॥ ५ ॥ शम्भू- च्छिष्टं शेसिकायेदद्यादर्चन सिद्धये अन्यथानैव सिद्धिःस्यादर्चकोनरकं व्रजेत् ६ विष्वक्सेनायदातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् पादोदकं प्रसादञ्च लिंगेचण्डेश्वराय तु ॥ ७ ॥ इति चण्डद्रव्यम् ५ बहिःक्षिप्तमनर्हंस्यादन्यद्रव्यत्वकारणात् पिशा- चानां च सर्वेषामधिकारोऽत्र सर्वदा ॥ ८ ॥ इति बहिःक्षिप्तम् इति षड्विध निर्माल्यमभिधायतस्य सामान्यानि निषेध वाक्यानि दर्शयति शिवपुराणे वाय- वीय संहितायाम् सर्वक्रियान्नसंत्यागः श्राद्धान्नस्यचवर्जनम् ॥९॥ तथा पर्य्युषिता- न्नस्य पावकस्य विशेषतः मद्यस्य मद्यगन्धस्य नैवेद्यस्यचवर्जनम् ॥१०॥ सामान्यं सर्ववर्णानां ब्राह्मणानां विशेषतः एषु सप्तनिषेधेषु श्राद्धान्नस्य नैवेद्यस्य च यो निषेधः सःपितृश्राद्धक्रियार्थमथच देवतार्थं यत्पूर्वसंकल्पितं तस्यैव निषेधःसंक- ल्पितं यद्देवायेति वच नात्सङ्कल्पितस्यैवावगमात् यद्देवतायै संकल्पितंसद्दत्तन्तत्-

प्रसादम्भवति यत्तु संकल्पितं सन्नदत्तंतन्नैवेद्यम्भवति तस्या संकल्पित भक्षणग्रहणे सप्रमाणं दोषं निरूपयति पत्रंपुष्पम्फलन्तोयमन्नपनादिचौषधम् अनिवेद्यन भुंजीतयदाहाराय कल्पितम् ॥१॥ इच्छुदण्डफलापूपाःखाद्यानि व्यञ्जनानिच प्रसादमेव भोक्तव्यमन्यद्गोमांससन्निभम् ॥२॥ इतिस्कान्दे अनर्चितं वृथामांसमवीरायाश्चयोषितः द्विषदन्नं न गर्ह्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् २१२ म० च० अ० वृथा कृशरः संयावंपायसापूपमेवच अनुपाकृत्मांसानि देवान्नानि हवींषि च इत्यपि मनुः देवतानुद्देशेन आत्मार्थं यत्पच्यते तद्वृथा कृशरम् तिलैस्सहसिद्धौदनं संयावः घृतक्षीरगुड़गोधूमचूर्णसिद्धासकरिकेति प्रसिद्धः अनुपाकृत्मनर्चितं वृथा मांसानीत्यर्थः देवतान्नानिनैवेद्यार्थमन्नानि प्रागनिवेदनात् हवींषि पुरोडाशादीनि होमात्प्राग्वर्जयेत् भुक्तवत्स्वथविप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि भुंजीयात्तुततः पश्चादवशिष्टन्तु दम्पती ११६ विघसाशीभवेन्नित्यं नित्यंचामृत भोजनम् विघसोभुक्तशेषं तु यज्ञ शेषं तथामृतम् २८५ विघसाशीति सर्वदाविघसभोजनःस्यात् सर्वदाचामृतभोजनोभवेत् विघसामृतपदयोरप्रसिद्धत्वादर्थंव्याकुरुते विप्रादि भुक्तशेषं विघ सउच्यते दर्शपौर्णमासादि यज्ञावशिष्टं पुरोडाशाद्यमृतम् सामान्याभिधानेऽपि प्रकृतत्वाच्छाद्धे विप्रभुक्तशेषभोजनार्थोऽयं विधिरित्यलम् देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्चदेवताः पूजयित्वाततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ११७ अघंसकेवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् यज्ञशिष्टाशनंह्येतत्सतामन्नं विधीयते ११८ इति मनोस्तृतीयाध्याये एतावतायच्छ्राद्धान्नं नैवेद्यञ्च यन्निषिद्धं तत्संकल्पितं पितृदेवेभ्य अनर्पित विषयं तच्च सर्वदा सर्वत्रैव निषिद्धमिति भाव्यम् अन्यत्रापि तथा पादामृतस्थनैवेद्यं भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् तथापर्य्युषितं चापि पक्वं परगृहागतम् १ निषिधितन्तु परद्रव्यं तत्प्रयत्नेन वर्जयेत् शूद्रान्नं सूतिकान्नं च नैवेद्यं श्राद्धभोजनम् २ पतितान्नं समूहान्नं राजान्नञ्च विवर्जयेत् इति सार्द्धद्वयश्लोकैः श्राद्धान्नं देवार्पित नैवेद्यस्य च सर्वथा निषेधस्य नैवं तात्पर्य्यं पित्रन्नंदेवान्नमपि शिवानर्पितसच्चेत्तेन श्राद्धेकृतेतस्य देवार्पणे वाकृते शिवानर्पितत्वात्नतदन्नं पितरःगृह्णन्ति नचदेवाः अतएव तदन्नं श्राद्धकर्त्तुःशिवेतरदेवार्पण कर्तुश्च न भक्षणीयमित्येवं सप्रमाणं निरूपयिष्ये तथाहि शाक्तोवावैष्णवोवापि शैवोवागणपोथवाशिवार्चन विहीनस्य कुतः सिद्धिर्भवेत्प्रिये १ अनाराध्य च मान्देवियोऽर्चतेदृदेवतान्तरम् न गृह्णन्ति महादेवि शापन्दत्वा व्रजेत्पुरम् २ शिवार्चनविहीनोयः पूजयेद्देवतान्तरम् विशेषतः कलियुगे

स नरः पापभाग्भवेत् ३ शिवपूजांविनादेविनान्यपूजांकदाचन शिवपूजां विनादेवि अन्यपूजांकरोति यः ४ अन्नं विष्टासमंतस्यपयोमूत्रं वरानने स एवरसनाहीनः कुम्भोरोजायते प्रिये ५ अत्र प्रमाणेदेवशब्दाद्देवानामेव शिवात्माकपूजननिषेधो न पितॄणामिति नाशंक्यं देवाएवपितर इत्यत्र मनुराह वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् प्रपितामहान् तथादित्या-श्च्छ्रुतिरेषा सनातनी २८४ काले चण्ड द्रव्यंगुरुद्रव्यं देवद्रव्यं तथैव च रौरवेते तु पच्यन्ते मनसायेतु भुंजते १ शम्भु पुराणे नारदः न द्विजाः परि-गृह्णन्ति देवस्याल्पीकृतंधनम् अविज्ञाय च कुर्वन्ति ये क्रियालोभमोहिताः १ अपाङ्क्तेया भवन्तीहतेवैदेवलका द्विजाः अविज्ञान विधानाद्येब्राह्मण-लोभमोहिताः २ देवस्वमुपभोक्ष्यन्ति पतितास्तेभवन्ति हि गर्हितामानवे शास्त्रेतद्विजाह्य प्रशंसिताः ३ देवस्वं ब्राह्मणस्वंचलोभादुपजीवयन्तियेसः पापात्मापरलोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ४ कात्यायनस्मृतौ देवस्व हरणा च्चैव जायते विविधोज्वरःज्वरोमहाज्वरश्चैव रौद्रोवैष्णवएवच ५ अत्रदेवस्वं पर-शिवसदाशिवेश्वरेतरषड्देवता विषयंतच्चतत्तदवसरे निरूपयिष्यामःमत्स्य सूक्ते वाणलिंगेनचाशौचं नच निर्माल्यकल्पना सर्वं वाणार्पितं ग्राह्यं भक्ताभक्तैश्च नान्यथा ॥ १ ॥ मेरुतन्त्रे ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं वाणलिंगेन विद्यते तदर्पितं जलंचान्नंग्राह्यं प्रासाद संज्ञया ॥ २ ॥ हेमाद्रिः वाणलिंगेनचण्डेशोनचनिर्मा-ल्यकल्पना सर्वं वाणार्पितं ग्राह्यं भक्ताभक्तैश्च नान्यथा ॥ ३ ॥ अग्निपुराणे वाणलिंगेच लौहेच सिद्धेलिंगेस्वयंभूवि प्रतिमासुच सर्वासु न दोषोमाल्यधारणे इत्यर्थः लौहेधातुमये इत्यर्थः पराशरे देवतान्तरभक्तानां समबुद्धिरथापिवा नास्तिकोवेदहीनोवाजप्रतिष्ठां समाचरेत् १ स्कान्दे अन्येषां देवतानांच न गृह्णीयाच्च भक्षितम् अभक्तानांच पक्वान्नं भुक्त्वाच नरकं व्रजेत् ॥ १ ॥ यच्च परादित्रयातिरिक्त देवतान्तरभुक्तं तन्नग्राह्यं तैस्त्रिभिर्भुक्तान्तु ग्राह्यमेव तैरभुक्तं न कदापि ग्राह्यम् । यश्चकश्चिदज्ञः शिवमन्यदेवतुल्यं मन्यते तेन पक्वं यदन्नं तन्न ग्राह्यम् इत्येवं विस्तरतोपूर्वार्द्धे दर्शितमस्माभिः अत्रोत्तरार्द्धे तु षड्देवेषु पूर्वं गणेशविषयं विवेचयिष्ये शुण्डास्य रुद्रानथशक्ति विष्णू सूर्यं विधिं वैक्रमतः प्रणम्य निर्माल्यमेषांग्रहणे प्रकारमवच्म्ये हि सम्यक्छृणुभोः प्रमाणैः १ विनायकं विघ्नविनाशनं परम् । नमाम्यहम्प्राणभृतां शुभप्रदम् । सुरार्च्चितशङ्करपादपङ्कजे मनोरतिं मे प्रददातु निश्चलाम् २ वन्देगजास्यं शिशुभावमाशङ्कर्णारबिन्दा-

हरणं प्रयासम् । देव्याः हसन्त्यापरिचुम्बितास्यं शम्भोस्तनूजं शिवभक्तिकन्दम् ३
परशिव सदाशिवेश्वरेभ्योऽन्येयेशुण्डास्यादयः षट्तथेतरेन्द्रादयः सुराश्चये तथा-
न्येकेचिद्यक्षोरग गन्धर्वादयः असुराश्चमनुष्य पशुपक्षिक्षुद्रकीटादयः येयेऽत्र
सन्तितेषु तेषु द्विपास्य एवतैः प्रथमं पूज्य इत्येतत्सप्रमाणं निरूपयिष्यामः
अथस्कन्दान्तर्गत कालिकाखण्डे भद्रपीठेनिवेश्यैनंगणानाह्वयतत्रवै विष्णुब्रह्मेन्द्र
विबुधान्प्रोवतुःपरमेश्वरौ ॥१॥ गणेशत्वंच पुत्रोमि सर्वपूज्यस्त्वमस्तुभोः कर्मार
म्भेषु सर्वेषु वचनादावयोःसुराः ॥ २ ॥ नियुतं गणनाथास्तेपाशांकुशकरोद्यताः
पार्श्वेचरन्तु नियुतं विघ्नन्तोविघ्नसन्ततिम् ॥ ३ ॥ मांवानारायणं वापि ब्रह्माणं
वापि पुत्रक त्वामनभ्यर्च्यकार्येषु विघ्नस्तेषांभविष्यति ॥४॥ येत्वां संकीर्तयिष्यन्ति
दूर्वाभिः पूजयन्तिये फलमूलोपहारैश्चमोदकैरपि पुत्रक त्वामनभ्यर्च्य कार्येषु
तेषां विघ्नोभविष्यति भाद्रशुक्ल चतुर्थ्यां वाप्यसि तायाश्चमास्यपि ॥ ६ ॥ नच
तेषां विघ्नभूयात्कार्येषु त्वत्प्रसादतः त्वया प्रसादिताश्चैवेदेवासुरनरोत्तमाः ॥ ७ ॥
न तेषां विघ्नकृद्भूया इतुरुक्त्वा पूजयेच्छिवःफलैर्मूलैःसुरैःसार्द्धं पार्वत्याच गणे-
श्वरैः ॥ ८ ॥ मुनिभिःशंकरस्तत्रदत्वाखुवाहनन्तदा संप्राप्य पूजां महतींगण-
नाथोऽपि शङ्करात् ॥ ९ ॥ देवैस्सपूजितस्सर्वैः शृण्वतान्त्रिदिवौकसाम् प्राह-
बद्धाञ्जलिर्देवगजास्योऽसौशिवामपि ॥ १० ॥ केषामविघ्नभूतानां पात्रभूता
महेश्वरः मद्गणैर्दण्डनीयाः केविघ्नपाशैर्दुरासदे ॥ ११ ॥ गणेशस्य वचःश्रुत्वा-
प्रसन्नःप्राहशंकरः देवान् विलोक्य तत्रस्थान्नरांश्च मुनिभिः सह ॥ १२ ॥ ईश्वरं
न नमन्ति येकर्मारम्भेषु त्वां सदा तेषां विघ्नगणैःसाकं विघ्नाचरणमाचर ॥१३॥
नार्चयन्ति द्वियेचत्वांचतुर्थ्यां मासिमास्यपि तेषां विघ्नगणैस्साकं विघ्नाचरण-
माचर ॥ १४ ॥ असितायांसपर्याभिस्सर्वेचन्द्रोदयेसति तेषां विघ्नग० ॥ १५ ॥
भाद्रशुद्ध चतुर्थ्यांवानियता नार्चयन्तिये तेषां विघ्नग० ॥ १६ ॥ व्रतारम्भे विवा-
हादौसंग्रामे यज्ञकर्मणि तेषां विघ्नग० ॥ १७ ॥ येनार्चयन्तिमनुजाःफलमूलैश्च
मोदकैः तेषां विघ्नग० ॥ १८ ॥ येदेवान्चि प्रबन्ध्यादोनतिथीन्नार्चयन्तिये तेषां
विघ्नग० ॥ १९ ॥ येस्वदारामतिक्रम्य परदारोपजीविनः तेषां विघ्नग० ॥ २० ॥
धर्मविघ्नकरायेचयेचद्रोहरताःपरेतेषां विघ्नग० ॥ २१ ॥ असूयकानास्तिकाये
निन्दकाश्रमवर्त्तिनाम् तेषां विघ्नग० ॥ २२ ॥ दुष्टास्तेनागुरुद्रोहीमातापित्रोः
परत्वकः तेषां विघ्नग० ॥ २२ ॥ भूमिर्भारायचेचौराराजा नोदुष्टचेतसः तेषां
विघ्नग० ॥ २३ ॥ स्वव्याव्यवसिनोमूर्खाद्यूतजीवाभिमानिनः तेषां विघ्नग०

॥ २४ ॥ पांशापहारकाः पापा येचन्यासापहारकाः तेषां विघ्नग० ॥ २५ ॥ येच वार्धुषिकामूढ़ाः गणान्गणिकाप्रियाः तेषां विघ्नग० ॥ २६ ॥ धनधान्यापहर्त्तारोयेचमांसमधुप्रियाः तेषां विघ्नग० ॥ २७ ॥ जड़ान्धमूकबधिरा नावमन्यन्ति रूपिणः तेषां विघ्नग० ॥ २८ ॥ दरिद्रान्धनगर्वेण निन्दन्ति याचितांश्चये तेषां विघ्नग० ॥ २९ ॥ प्रदोषेषु च मांयेतु अपश्यन्तोऽर्चनोद्रिताः तेषां विघ्नग० ॥३०॥ विष्णुब्रह्माणमपिच देवान्पश्यन्ति भक्तितः तेषांविघ्नग० ॥ ३१ ॥ नारायणादिनामानिप्रदोषेषुवदन्तिये तेषांविघ्नग० ॥ ३२ ॥ येभस्मपुंड्रहीनांगा रुद्राक्ष परिवर्जिताः तेषांविघ्नग० ॥ ३३ ॥ पंचाक्षरविहानायेरुद्रजाप्यविवर्जिताः तेषां विघ्नग० ॥ ३४ ॥ पञ्चयज्ञविहीनायेनित्यं स्वाध्यायवर्जिताः तेषांविघ्नग० ॥ ३५ ॥ येदुष्टान्नप्रियानित्यं विप्रातीर्थंप्रतिग्रहाः तेषांविघ्नग ॥ ३६ ॥ अग्निदाःगरदाः पापाः स्त्रीणांचैवघातकाः तेषांविघ्नग० ॥ ३७ ॥ पतिघ्नोव्यभिचारिण्यः परसद्मप्रियाश्चया तेषांविघ्नग० ॥ ३८ ॥ क्षपणावितण्डकुशलाः कुशास्त्रनिरताश्चये तेषांविघ्नग० ॥ ३९ ॥ परान्नादाः सदाविप्रानित्यंपर्वस्वतिप्रियाः तेषांविघ्नग० ॥ ४० ॥ परपीड़ारतायेच चौराराज्योपजीविनः तेषांविघ्नग० ॥ ४१ ॥ राष्ट्रघ्नाः पिशुनाघोरा सत्यवाक्यविवर्जिताः तेषांविघ्नग० ॥ ४२ ॥ सर्वजीववधोद्युक्तारंध्रान्वेषणपराश्चये तेषांविघ्नग० ॥ ४३ ॥ इत्युक्तोगणनाथोऽसौतथा स्त्वित्याहशंकरः तस्मात्पूज्योगणेशानः कर्मारम्भेषुसर्वदा ॥ ४४ ॥ इति अथ गणेशपुराणेनवतितमोऽध्याये अन्तर्दधेखिलाधारः सुमुखोऽसौगजाननः तेच चक्रुस्तदामूर्त्तिं गणेशस्यशुभाननाम् ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाप्यचतांस्थूलेप्रासादे रत्ननिर्मिते सुमुखेतिच तस्यास्तेनामचक्रुस्तुविश्रुतम् ॥ २ ॥ संपूज्यचनमस्कृत्वा स्वंस्वंस्थानंययुः सुराः सर्वेतेमुनयोलोकाः सर्वकार्य्येरतास्तदा ॥ ३ ॥ केचित्तस्यानामचक्रुरेकदन्त इतिस्फुटम् गन्धर्वैःकिन्नरैरन्यास्थापितामूर्त्तिरुत्तमा ॥४॥ प्रासादेकांचनेश्रेष्ठेऽनेकधापरिपूज्यच कपिलेतिच नामास्या स्थापयामासुरुत्तमम् ॥ ५ ॥ गुह्यकाश्चारणाः सिद्धामूर्तिरन्यांप्रचक्रिरे महालयेप्रतिष्ठाप्यनेमुश्चपुपूजुश्चताम् ॥ ६ ॥ गजकर्णेतिनामास्याश्चक्रुस्तेतुस्फुटार्थकम् तत्प्रभावाद्विमानस्थाः सर्वेतेदिवमाक्रमन् ॥ ७ ॥ लम्बोदरेतिनाम्नाच स्थापितासर्वमानवैः श्वापदैरखिलैरन्यास्थापितामूर्त्तिरुत्तमा ॥ ८ ॥ विकटेतिच नाम्नातां पुपूजुस्तेययुर्वनम् गिरयश्चद्रुमाश्चान्यामूर्त्तिं स्थाप्यप्रपूज्यच ॥ ९ ॥ विघ्ननाशन इत्येवंनामकृत्वाश्रितास्तुकौ तत्प्रसादाच्चतेख्याताः पर्वताश्चद्रुमास्तथा ॥ १० ॥

सर्वैः पक्षिगणैर्मुर्त्तिस्थापितारत्नकाञ्चनी गणाधिपेतिनाम्नातैः पूजिताच नभ-
स्मृता ॥ ११ ॥ सर्वैर्विषधरैरेकास्थापितागणनायकी यस्याहुतिः कृतातैस्तुधूम्र-
केतुरीतिस्फुटा ॥ १२ ॥ सर्वैर्जलाशयैरेकाप्रतिमास्थापिताशुभा गणाध्यक्षेति
नाम्नासापूजितापरमोत्सवैः ॥ १३ ॥ कृमिकीटादिनाचैव वनस्पत्यौषधीगणैः
स्थापितापरमामूर्त्तिर्भालचन्द्रेतिविश्रुता ॥ १४ ॥ अन्यैः सचेत नैरन्यारत्न
प्रासादमध्यगा वैनायकीमहामूर्त्तिः पूजिताभक्तिभावतः ॥ १५ ॥ गजानना-
ख्ययाख्यातासर्वेषां सर्वकामदा तेतेजगन्त्रयेख्यातास्तत्तज्जात्यावभूविरे ॥ १६ ॥
सुखिनः स्वस्वकार्येषुदक्षादेव प्रसादतः प्रत्येकनामकथनेनशक्तिर्ममवर्त्तते ॥ १७ ॥
सारं सारं प्रवक्ष्येवकृतंनाम्नां सहस्रकम् ततोऽपिसारभूतानिप्रोक्तानिद्वादशैवतु
॥ १८ ॥ समुद्रमथनाद्यद्वदुरत्नानोवचतुर्दश एवं संक्षेपतोब्रह्मन्महिमातेऽभि
वर्णितः ॥ १९ ॥ विस्तराद्वदितुंशेषोनेशोनेशोऽप्यहंहरिः इन्द्रादिमशकानाञ्च
जीवानां यत्तरत्नसाम् ॥ २० ॥ तत्रैकागणनाकार्य्या मयासत्यवतीसुत तस्मात्स-
र्वेषुकार्येषु पूजनोयोगजाननः ॥ २१ ॥ योन पूजयतेदेवदेवं विघ्नविनाशनम्
सुदुरात्मापरित्यज्यश्चाण्डाल इवदूरतः ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच अनुक्रमेण कथयना
मानिद्वादशैवमे श्रवणात्पठनादेषां सर्वनिर्विघ्नतामियात् ॥२३॥ ब्रह्मोवाच, सुमु-
खश्चैकदन्तश्चकपिलोगजकर्णकः लम्बोदरश्चविकटोविघ्ननाशोविनायकः ॥ २४ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षोभालचन्द्रोगजाननः द्वादशैतानिनामानियः पठेच्छृणुयादपि
॥ २५ ॥ विद्यारम्भे विवाहेच प्रवेशेनिर्गमे तथासंग्रामे संकटेचैवविघ्नस्तस्य न
जायते ॥ २६ ॥ शुक्लांबरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् प्रसन्नवदनंध्यायेत्सर्व
विघ्नोपशान्तये ॥ २७ ॥ कोटिकन्याप्रदानानि कोटियज्ञव्रतानिच तपांसियानि
सर्वाणि तीर्थान्यायतनानिच ॥ २८ ॥ स्वर्णभारसहस्राणि कोटिदानानिया-
न्यपि कृच्छ्राणितप्तकृच्छ्राणि पराकेन्दुव्रतानिच ॥ २९ ॥ शतांशमेषांपुण्यस्य
तानिनाम्नांनयान्तिच इमानिप्रातरुत्थायशुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ३० ॥ यः
पठेन्मानवोभक्त्याविघ्नानोयान्तितंनरम् सिद्धयन्तिसर्वकार्य्याणि मोक्षमन्तेव्रजत्यसौ
॥ ३१ ॥ तस्यदर्शनतोलोकाः देवाः पूताभवन्तिच अतएव मुनेसौराः शाक्ताः
शैवाश्चवैष्णवाः ॥ ३२ ॥ उक्ताद्वादशनामानि सर्वकार्य्याणि कुर्वते गणेशाअपिकु-
र्वन्ति किमत्रापिचकौतुकम् ॥ ३३ ॥ नसिद्धयन्तिहि कार्य्याणिद्वादशान्यतमस्यह
उच्चारणं विनाब्रह्मंस्तस्मादेकं समाचरेत् ॥ ३४ ॥ अथाथर्वशीर्षगणेशोपनिषदि-
भाष्येगणेशशब्दार्थमाह आदिदेवगणानां महत्तत्त्वादितत्वगणानां निर्गुणसगुण

ब्रह्मगणानांचपतिर्गणपतिः सर्वादिपूज्यः सर्वपूज्यत्वात् गणसमूहे इति धात्वर्थात् नचैवमशुभकर्मारम्भे गणेशपूजनं न दृष्टं प्राणप्रयाण समये पितृयज्ञादावप्रसिद्धार्थत्वात् इतिवाच्यम् गयाख्यगणेशपादस्य पितृमुक्तिप्रदत्वात् वेदोक्तसत्कर्मारम्भे पितृयज्ञसिद्धिप्रदत्वात् वेदोक्तपितृयज्ञारम्भे गणेशपूजननिषेधाभावात् तद्वत्प्राणप्रयाणसमयेऽपि कथितत्वाच्च ज्येष्ठराजम् इति श्रुतेः पितॄणामपि जेष्ठत्वात् तथाच गणेशेत्रिपुरवधकाले शिववाक्यम् शैवैस्तदीयैरतवैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरैरपि सर्वकार्ये शुभाशुभेलौकिक वैदिकेचत्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात् इति तथाचोक्तं मौद्गले गणशब्दः समूहस्य वाचकः परिकीर्त्तितः समूहायोगरूपाश्च वाह्यान्तरैक्यभावतः ॥ १ ॥ अन्नानांसकलानांवैसमूहेऽन्नमयं परम् कथितं ब्रह्मवदेतदेवंनानागणाःस्मृताः ॥ २ ॥ तेषां स्वामीगणेशानस्तंज्ञात्वायोगिनःपुरा शान्तिप्राप्ताविशेषेणयोगशान्तिमयंपरम् ॥ ३ ॥ इति अन्यच्च कथितं साम वेदेयच्छृणुवेदरहस्यकम् येनत्वं शान्ति संयुक्तोभविष्यति न संशयः ॥ १ ॥ मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम् गकारात्मकमेवंतत्तत्रब्रह्मगकारकः ॥२॥ मनोवाणी विहीनंचसंयोगायोगसंस्थितम् णकारात्मकरूपंतं णकारस्तत्र संस्थितः ॥ ३ ॥ विविधानि गकाराच्चप्रसूतानि महामुने ब्रह्माणितानि कथ्यन्तेतत्स्वरूपाणियोगिभिः ॥ ४ ॥ निरोधात्मकरूपाणि कथितानि समन्ततः गकारश्च णकारश्च नाम्निगणपतेःस्थितौ ॥ ५ ॥ तदा जानीहिभोःयोगिन्ब्रह्मकारीश्रुतेर्मुखात् तयोःस्वामीगणेशश्चयोगरूपेण संस्थितः ॥ ६ ॥ तद्भजस्वविधानेनशान्तिमार्गेणपुत्रक इति अथस्कान्दे उक्तौ वमाह्वययत्स्कन्दःशक्रस्तं कालरूपिणम् य इदंमाययामोह्यकलयत्यखिलंजगत् इति ॥ १ ॥ विघ्नरूपेण घोरेण सकालपुरुषोभुवि गर्जनादखिलांल्लोकान्कम्पयामासवेगवान् ॥ २ ॥ इति योगवाशिष्टे भृगुंप्रतिकालवाक्यम् तद्यथा मातपःक्षपयावुद्धेकल्पकालमहानलैः योनदग्धोऽस्मिमितस्य किंत्वंशापेनधक्ष्यसि ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डवलयोग्रस्तानिर्गुणारुद्रकोटयः भुक्तानि विष्णुवृन्दानिकानशक्तावयंमुने ॥ २ ॥ इति स्मृतिभिः विघ्नं महाकालंहरति तस्मैनमः अथाह आत्मासमेतुर्विधृतिरेषांलोकानामसम्भेदाय एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरेष भूपाल एष सेतुर्विधारण एषां लोकानामसम्भेदाय इति श्रुतेः लोकानामसम्भेदाय विघ्नमयस्त्वमर्यादायुक्त लोकत्वात् शिवसुताय तद्यथा गणेशेनसृष्टाःशिवादयस्तपश्चक्रुःतत्रादौशिवहृदि ब्रह्मानुभवोरबभूवसमाधिक्रियाधिक्यात् ततोहृदि गणेशंददर्शसंस्तुत्यप्रार्थनांचकार त्वं

मे पुत्रोभवत्वत्पितृतारकत्वात् तदहंमायामोहभयहीनश्चरामि गणेशजनकत्वा-दिति तदेवविनायकसंहितायां मयूरेशचरित्रमाहात्म्ये ध्यानेमनसि मेजातःपुत्रत्वं पालयप्रभो ममपुत्र इतिख्यातोलोकेस्मिन्भगवन्भव ॥ १ ॥ इत्यादि स्मृतिभ्यः त्रिगुणावतारैर्ब्रह्मविष्णुशिवाख्यैरवध्यासुरनाशनार्थं कलांशगणेशावतरणं सर्वत्र प्रसिद्धम् तदवतारचरित्रज्ञापनार्थत्वादत्रशिवसुत इति कथितः वेदप्रामाख्येषु पुराणेषु नानादवतारप्रतिपादनात् नचैवन्तपः प्रार्थितगणेशःशिवसुतःतत्रशिवः श्रेष्ठोगणेशजनकत्वादितिवाच्यम् एवं शिवविष्णाद्यवतार चरित्रत्वादनादि संप्रदायत्वाच्च विष्णुथर्वशीर्षे ब्रह्मण्योदेवकीपुत्रोब्रह्मण्योमधुसूदनः इतिश्रुतेः देवकीपुत्रत्वेनविष्णोर्नैकनिष्टत्वापत्तिः भक्तवाञ्छितक्लृतत्वाद्भक्ताधीनदेवेशत्वाच्च तेनमः वरदमूर्त्तये सर्वेश्वरजनवरदत्वात्प्रत्यक्षवरदमूर्त्तिःस्ववरदाभावाच्च नचैवं शिवविष्णादयोवरदमूर्त्तयः स्वस्वभक्तवरदत्वादिति वाच्यम् शिवविष्णादिवरदा-गणेशत्वाद्गणेशवरदाभावात् ननु शिवपुराणेगणेशवरदः शिवःकथितःसर्वादि पूज्योभव इति वचनादिति चेन्न शिवपुत्रभावरक्षणार्थत्वात्पितृदत्ताधिकारपरा-यण पुत्रत्वात् दशरथदत्तयुवराजाधिकारयुक्तरामचन्द्रवत्पुरातनसंप्रदायत्वात् ते नमः व्रातपतय इत्यारभ्यवेदमूर्त्तये नम इति पर्य्यन्तमष्टनामान्तर्गत-सर्वनामत्वात् नाममन्त्रतत्वमस्यात्मक सत्यवादिभक्तरक्षणात्मकोङ्कारात्मकैका-क्षरविधागायत्रीध्यानस्तुति प्रतिपादकमष्टवर्गप्रकाशकत्वादष्टाङ्गमिति इति स्तुति प्रतिपादकोदशमःखण्डः इति अथर्वणऋषिप्रोक्तं गणेशाथर्वशीर्षं समा-प्तम् इत्येतावतागणेशस्य परशिव सदाशिवेश्वरेभ्यःपश्चात्पूज्यत्वेऽपि त्रिगुणात्मक ब्रह्माविष्णुरुद्रेभ्यः पूर्वपूज्यत्वमेवेति निश्चितम् तस्माद्गणेशोपासकस्यापि पूर्व-मेतान् त्रीन्पूजयित्वैवगणेशपूजनाभिधानम् अन्यथा तस्यापि गणेशनिर्माल्यम-ग्राह्यमेवेतिभावः तत्राह उत्पत्तितन्त्रे शाक्तोवावैष्णवोवापि शैवोवागाणपोथवा शिवार्चन विहीनस्य कुतःसिद्धिर्भवेत्प्रिये ॥ १ ॥ अनाराध्य च मान्देवियोऽर्च-येद्देवतान्तरम् न गृह्णाति महादेवि शापंदत्वाव्रजेत्पुरम् ॥ २ ॥ शिवार्चन विहीनोयःपूजयेद्देवतान्तरम् विशेषतः कलियुगेसनरःपापभाग्भवेत् ॥ ३ ॥ अतः गाणपत्यैरपि शिवं पूजयित्वैव गणेशपूजांकृत्वागणेशस्य शतांशोच्छिष्टभागिभ्यो-दत्वापश्चादेवतन्निर्माल्यादिग्राह्यमिति अथ आगमकल्पद्रुमे पार्वत्युवाच नैवेद्यं पञ्चदेवानांश्रोतुकामास्मिशङ्कर यस्यज्ञानं विनासर्वापूजाभवति निष्फला ॥ १ ॥ शिवउवाच अथ वक्ष्यामि नैवेद्यन्तिलशर्करयायुतम् निर्माय मोदकं देवि गणे-

ग्राय निवेदयेत् ॥ १ ॥ अन्यानिमोदकान्यन्ननारिकेलं चफानिसम् गणाधिपतयेदद्यात्पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ अथ रुद्रयामलतन्त्रे निवेदितञ्च यद्द्रव्यंभोक्तव्यंतद्विधानतः तन्नचेद्भुजतेमोहाद्भोक्तुमायान्ति देवता ॥ १ ॥ गौतमीतन्त्रे गणेशेवक्रतुण्डायसूर्यंचन्द्रांशवेऽर्पयेत् विष्णोस्तुविष्वक्सेनायशिवे चण्डेश्वरायच ॥ २ ॥ शक्त्युच्छिष्टे शेसिकायेदद्यादर्चनसिद्धये अन्यथानैव सिद्धिःस्यादर्चकोनरकंव्रजेत् ॥ २ ॥ इति अथ मुद्गलपुराणे द्वितीयखण्डेद्विसप्ततितमाध्याये गन्धपुष्पादिकं तस्योच्छिष्टं धार्यं विशेषतः ॥ १ ॥ नैवेद्यभक्षणे नैवसदाभक्त्यादरेणच न देवसाम्यताकार्य्यादासवन्नित्यमादरात् ॥ २ ॥ भययुक्तेन संसेवाकार्य्याभक्तेन धीमता इति कारणे विनायकस्य निर्माल्यं विप्रादीनां प्रदास्यति सुब्रह्मण्यस्य निर्माल्यंभोजनञ्च जयार्थिनाम् उमादेव्याश्चनिर्माल्यं सर्वेषां भोजनन्ततः सकलानांतु नैवद्यं सर्वेषां भोजनंभवेत् भास्करस्य तु नैवेद्यं भुक्तं व्याधिचयं भवेत् गुरुपुस्तकनागानांवह्नेर्व्योर्हगि गणेश्वरे पार्वतीयचमातृणां न निर्माल्यं शिवे यथा अथगणेशेः ततः चमापयेद्देवंततोविप्रांश्चभोजयेत् स्वयंभुंजीत तच्छेषं ब्राह्मणेभ्योयदर्पितम् ॥ १ ॥ सप्तग्रासान्मौनयुक्तोयथाशक्त्यायथासुखम् इत्थं कुर्यात्तुमासेषु चतुर्ष्वपि विधानतः ॥ २ ॥ अथस्कान्दे व्यासयुधिष्ठिरसंवादे ब्राह्मणभोजनं दत्वामोदकान् दक्षिणान्वितान् पश्चात्स्वयंतुभुंजीत देवब्राह्मणशेषतः।

इति निर्म्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे प्रथमस्तरङ्गः।



## अथ द्वितीयस्तरंगः ।

आनन्द कानने काश्यां वसन्तं शम्भुमीश्वरं तदंघ्रि युगले प्रीत्यै नीलरुद्रन्नमाम्यहं ॥ १ ॥ तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयं । तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये निर्म्माल्यस्यापि निर्णयम् ॥ २ ॥ कुर्म्मपुराणे तमाविश्य महादेवो भगवान्नीलरुद्रकः करोति लोक संहारम्भोषणं रूपमाश्रितः दग्धेष्व शेषदेवेषु देवीगिरिवरात्मजा एकसासाक्षिणीशंभोस्तिष्टति वैदिकीश्रुतिःशिवः कपालैर्देवानांकृतस्रग्वरभूषणा आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन् व्योममण्डलं त्रिशूलीकृतीवसानोयोगमैश्वर्य्यमास्थितः पिलातत्परमानन्दं प्रसूतम मृतंस्वकं करोति ताण्डवंदेवीमालोक्य परमेश्वरः पिलान्नृत्यामृतंदेवीभर्तुः परमसंगलं योगमास्थायदेवेशदेहमायातिशूलिनः संत्यक्तातांडवरसंस्वेच्छैव च पिनाकधृक् यातिस्वभावं भगवान्दग्धाब्रह्मांडमण्डलं इन्द्रियाणि च सर्वाणितैजसेयांति संक्षयं वैकारिकादेवगणाः प्रलयंयांतिसत्तमाः वैकारिकास्तेजसश्चभूतादिश्चेतिसत्तमाः अव्यक्तोजगतोयोनिः संहरेदेकमव्ययः महेश्वरेच्छाजनितो नस्वयं वैभवेल्लयः प्रधानाद्यंविशेषांतंदहेद्रुद्र इतिश्रुतिः योगीनामथसर्वेषां ज्ञानविन्यस्त चेतसां अत्यन्तिकंचैवलयंविदधातीह शंकरः इत्येवं भगवान्रुद्रः शंकरः कुरतेवशी स्यापिकामोहिनीशक्तिर्नारायण इतिश्रुतिः सर्वेश्वराः सर्वविद्याः शाश्वतानन्तभोगिनः सर्वकामप्रदोरुद्राइत्येषावैदिकीश्रुतिः किन्तुदेवं महादेवं सर्वशक्तिसनातनं आराधयेद्दै गिरोशं सगुणंवाथनिर्गुणं तस्मात्सर्वान्यरित्यजदेवान् ब्रह्मपुरोगमान् आराधयेद्विरूपाक्ष मादित्यांतरसंस्थितं श्रीरुद्रएवभगवान्नान्योविभगवान् द्विजाः योवैरुद्रः सभगवानित्यथर्वशिरः स्वयं भगवान्रुद्रएवेतिवदत्येवपुनःपुनःनरुद्रादपरोदेवोभगवान्निति गियते तस्मात्सभगवान्रुद्रोभजनीयोमुमुक्षुभिः भगवन्तमुमाकांतं भजन्तिभवभीरवः न रुद्रादपरोदेवोभवभीमभयापहः भगवान् रुद्रएवेति न वदिष्यन्तियेद्विजाः तेवेदवाह्याः सर्वेपिसत्यंसत्यं न संशयः श्रीमहारुद्राएवेति भगवान्नितियोवदेत् सन्तरत्येव संसारमसारमतिदुःसहम् भगवान्रुद्रएवेतिवेदतत्वविदोविदुः ततस्तेवेदतत्वज्ञाभगवन्तंभजन्तितम् योयोवै रुद्रइत्यत्रवैकारोवर्त्तते द्विजाः सएवकारस्तेनान्ययोगएवनिषिध्यते भगवान् रुद्र

एवेतिवैकारेणविनिश्चिते रुद्रान्योभगवान्नेतिनिश्चयोवेदतोभवेत् भगवन्त्वमुमाक्रान्तमनन्यायेभजन्तितम् नमस्कुर्म्मोनमस्कुर्म्मोनमस्कुर्म्मः पुनःपुनः इति शिवरहस्ये अथ देवीभागवते पञ्चमस्कन्धे प्रथमाऽध्याये विष्णोरप्यधिकोरुद्रो विष्णुस्तुब्रह्मणोऽधिकः तस्मान्नसंशयः कार्य्यः क्षणेन शिवपूजने॥ १॥ इच्छया ब्रह्मणोवक्त्राद्वरदानार्थमुद्भवौ मूलरुद्रस्यांशभूतोरुद्रनामा द्वितीयकः॥ २॥ सोऽपि पूज्योऽस्तिसर्वेषांमूलरुद्रस्य काकथा देवोतत्वस्य सानिध्यादुत्तमत्वं स्मृतंशिवे॥ ३॥ इति अथ शिवपुराणे ज्ञानसंहितायां सप्ततितमाऽध्याये रुद्रोनामसविख्यातोलोकानुग्रहकारकः ध्यानार्थंचैव सर्वेषामरूपोरूपवानभूत्॥ १॥ सएवचशिवः साक्षाद्भक्तवात्सल्यकारकः अन्येच येसमुत्पन्ना यथाऽनुक्रमतोलयम्॥ २॥ यातिनैवतथारुद्रः शिवेरुद्रोविलीयते सर्वेरुद्रंमिलित्वाच नयान्ति प्राकृताइमे॥ ३॥ रुद्रइमान्मिलित्वातु नयतिश्रुतिशासनात् सर्वेरुद्रंभजंत्येवरुद्रः कञ्चिद्भजेन्नहि॥ ४॥ अन्यंभजन्तियेनित्यं तस्मिंस्तेलीनतांगताः तेनैव महत्वं प्राप्ताः कालेन महतापुनः॥ ५॥ रुद्रभक्तास्तुयेकेचित्तत्क्षणं शिवतां गतः अन्यापेक्षानतेषां वैश्रुतिरेषासनातनी॥ ६॥ इति अथ शिवपुराणे कैलाशसंहितायाम् महेश्वरसहस्रांशादरुद्रमूर्त्तिरजायत अघोरवदनाकारस्तेजस्तत्वाधिपश्चसः॥ १॥ गौरीशक्तियुतोवामे सर्वसंहारकृत् प्रभुः अस्यैवव्यष्टिरूपंस्याच्छिवाद्यथचतुष्टयम्॥ २॥ शिवहरीमृड़भवौविदितं चक्रमद्भुतम् संहाराख्यन्तुसंहारास्त्रिधानित्यादिभेदतः॥ ३॥ नित्योजीवः सुषुप्त्याख्योविधेर्नैमित्तिकः स्मृतः विलयस्तस्यतुमहानितिवेदनिदर्शितः॥ ४॥ जीवानां जन्मदुःखादिश्रान्तानां मुषितात्मनाम् विश्रांत्यर्थमुनिश्रेष्टाः कर्म्मणां पाकहेतवे॥ ५॥ संहारः कल्पितस्त्रेधारुद्रेणामिततेजसा रुद्रस्यैवतुकृत्यानां त्रयमेतदुदाहृतम्॥ ६॥ संहृतावपिसृष्टादिकृत्यानां पञ्चकम् विभोः अस्मिंस्तत्रभवाद्यास्तेदेवताः परिकीर्त्तिताः॥ ७॥ संहाराख्यमिदंचक्रं विद्यारूपकलामयम्॥ ८॥ अधिष्ठितंच रुद्रेणपदमेतन्नीरामयं एतदेवपदंप्राप्यरुद्राराधनकाङ्क्षिणाम् रौद्राणां तद्विसालोक्यं क्रमात्सायुज्यदंमुने॥ ९॥

इति निर्म्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे द्वितीयस्तरङ्गः



## अथ तृतीयस्तरंगः।

तत्रगृह्यसूत्रम् ओंपूषाभगंए सविताभेददातुरुद्रः कल्पयतुललामगुंविष्णुर्योनिमकल्पयतुत्वष्टारूपाणि पिंएशतु आसिंचतु प्रजापतिर्धातागर्भंदधातुमे अथर्तुमतीं जायामपि गच्छेत्पिण्डपितृयज्ञेनयजेत् मध्यपिण्डंपत्नीप्राश्नाति पुत्रकामा इति अथमनुर्द्वितीयाध्याये पतिव्रताधर्म्मपत्नीपितृपूजनतत्परामध्यमंतु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी आयुष्मन्तं सुतंसूतेयशोमेधासमन्वितम् ॥१॥ धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकंधार्म्मिकं तथा इति अथलैङ्गे: वसुरुद्रार्करूपिण मध्यपिण्डस्तुपुत्रदः वेदोक्तंरुद्र निर्म्माल्यं किंपुनर्बहुभाषणैः इति रुद्रः कल्पयतुलला· मगुमितिश्रुत्यारुद्रस्यसर्वजगदुत्पादकलिंगरूपतयासकलपितृत्वमथच वसुरुद्रार्करूपिणमध्यपिण्डस्तुपुत्रदः इति लिंगपुराणवचनाच्चयथाक्रमतोमध्यपिण्डस्य रुद्रनिर्म्माल्यरूपस्य पुत्रप्रदानकर्तृत्वाच्चरुद्रस्यैवजगत्पितृत्वात् सर्वजीवानांरुद्र निर्म्माल्यभक्षणाधिकारएवेतितात्पर्य्यम् अथरुद्रात्मकाग्नेर्ध्येयरूपम् रुद्रकल्पे रुद्र· तेजःसमुद्भूतं द्विमूर्द्धानंद्विनासिकम् षरानेत्रंच चतुः श्रोत्रं त्रिपादंसप्तहस्तकम् याम्यभागेचतुर्हस्तं सव्यभागेत्रिहस्तकम् स्रुवंस्रुचच्चशक्तिंच अक्षमालांच दक्षिणे तोमरंव्यजनंचैवघृतपात्रन्तुवामके बिभ्रत्सप्तभिर्हस्तैर्द्वि सुखं सप्तजिह्वकम् दक्षिणेच चतुर्जिह्वंत्रिजिह्वमुत्तरेमुखम् द्वादशकोटिमूर्त्याख्यं द्विपंचाशत्कलायुतम् स्वाहास्वधावषट्कारैरं कितंमेषवाहनम् रक्तमाल्यांवरधरम् रक्तपद्मासनस्थितं रौद्रन्तुवह्निनामानं वह्निमावाहयाम्यहम् एवं ध्यानोत्तरं कुण्डस्थमग्निंवेदिस्थं वाधमन्याप्रत्रोध्यध्यायेत् ओंचत्वारिशृङ्गास्त्रयोऽअस्य पादाद्वेशीर्षेसप्तहस्तासोऽस्य त्रिधाबद्धोवृषभोरोरवीति महादेवोमर्त्यांए आविवेश ओंभूः स्वाहाइदमग्नयेन मम इत्यारभ्य ओंअग्नये स्विष्टकृतेस्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृतेनमम इत्यन्तद्वादशाहुति रूपोगृहदेवतानां नैवेद्यार्पणरूपश्चदेवयज्ञः तत्रपञ्चायतन देवतानां नैवेद्यायर्णंकुर्य्यात् सचविधिः तत्राश्वलायनः वैस्वदेवंपुराकृत्वा नित्येचाभ्युदये तथा स्वाभिष्टदेवतादिभ्यो नैवेद्यञ्चनिवेदयेत् अकृत्वावैश्वदेवन्तु नैवेद्यं यो निवेदयेत् तदन्नंनचगृह्णन्तिदेवा विष्णवादयोधुवम् स्कान्दे नानाव्यंजन संयुक्तं रसषट्कैस्तु संस्कृतम् निवेद्यान्नं समाप्नोति फलंयज्ञाधिकंद्विज इति ग्रासप्तग्रंयति

भूतानामग्निᳩरुद्रस्य सप्ततिᳩ मच्च इतितैत्तिरीयसंहिता इत्येवंरुद्रध्यानादारभ्य एतत्पर्य्यन्तंरुद्रस्याग्निरूपतयारुद्रात्मकाग्नौ बलिवैश्वदेवंकृत्वापश्चाचेतरदेवाद्य-र्पणंचकृत्वास्वयंभुंजीत न चान्यथा परञ्च परशिवादित्रिभ्यस्तु अग्निरूपात्मक रुद्रहोमतः प्रागेवार्पणविधानं तत्रमानमाह शिवपुराणे शिवायसर्वपाकान्नंनि-वेद्याग्नौच होमयेत् कल्पयेच्चगुरोर्भागमित्ययं सततं विधिः॥ १॥ शिवमभ्य-र्च्यंयत्नेनहुत्वा सौविधि पूर्व्वकम् शैवैर्मंत्रैर्वलिं पश्चाद्ददन्तियेनतेयमम् पश्यन्ति त्रिदिवंयान्तितस्माद्दद्याद्दिनेदिने इति ॐनमः शम्भवायच मयोभवायच नमः शङ्करायचमयस्करायच नमः शिवायच शिवतरायच इत्यन्नाभिमन्त्रणम् गाय-त्र्याप्रोक्षणंच अन्नं ब्रह्मरसोविष्णुर्भोक्तादेवोमहेश्वरः एवंध्यात्वाद्विजोभुंक्तेसोऽन्न दोषैर्नलिप्यति इति अथप्राणाग्निहोत्रंकृष्णयजुस्तैत्तिरीयारण्यके शिवोमाविशा प्रदाहायप्राणायस्वाहा श्रद्धायामपानेनिविष्टोऽमृतंजुहोमि शिवोमाविशाप्रदा-हायअपानायस्वाहा श्रद्धायांव्यानेनिविष्टोऽमृतं जुहोमिशिवोमाविशाप्रदाहाय व्यानायस्वाहाय। श्रद्धायामुदानेनिविष्टोऽमृतंजुहोमि शिवोमाविशप्रदा-हाय उदानाय स्वाहा श्रद्धायाᳩसमानेनि विष्टोऽमृतंजुहोमि शिवोमाविशा प्रदाहाय समानाय स्वाहा ब्रह्मणिमआत्मामृतत्वाय अमृतापिधानमसि इत्य-न्नाभिमन्त्रणं प्रोक्षणं प्राणाग्निहोत्रञ्चशिवबोधकमन्त्रैरेव इत्येतावतायश्च वैदि-कविधिनाऽन्नादिकं भुंक्ते स तु परादित्रिदेवापर्णपूर्व्वकाऽग्न्यात्मकरुद्रहवनान्नाभि मन्त्रणप्रोक्षणप्राणाग्निहोत्रादिविधिं कृत्वा भुंजानःसन् शिवनिर्म्माल्यभोजन-जनितं फलमश्नुते एवं यश्च वैदिकविधिनाभुंक्ते स तु निर्म्माल्यभक्षणजनितफल-मभुंजानत्वात्पापभागभवत्येवेति निश्चितम् तथाच श्रुतिस्मृतिप्रमाणैरुद्रनिर्माल्य भक्षण विधेरावश्ये प्राप्तेऽपि परमाग्रहतमोग्रस्त जन्तूनांदृढ़प्रत्ययार्थं प्रमाणा-न्तरमाह तथाच जाबालोपनिषदि रुद्रभुक्तं भुंजीयाद्रुद्रपीतंपिवेद्रुद्राघ्रातंजिघ्रेत रुद्रेणाघ्रात जिघ्रंति तस्माद्ब्राह्मणाः प्रशान्तमनसो निर्माल्यमेवभक्षयन्तीति अथ ऋग्वेदेपिश्लोकरूपेण श्रूयते अन्तरिक्षन्तितेजनारुद्रं परीमनीयागृभ्णातिजिह्वया सायंरसपूर्णामृतोदकं अन्तर्नेक्षन्तियेरुद्रं भवानीसहितं शिवं पुरीमेव गृह्णं बि जिह्वया तेन संशयः सैवरत्नाकरे ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्यास्तथाशूद्राश्चयेनराः न लंघये त्तु निर्मांल्यंधारणेषु महत्फलं तथा सूत संहितायां शम्भोर्निर्माल्यकं शुद्धं भुंजीयात् सर्व्वथा द्विजः अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ब्रह्माण्डपुराणे निर्माल्यंपरमंपुण्यं नैवेद्यं पापनाशनं ब्रह्मचारीगृहस्थानांयतीनांच विमुक्तिदं

आदित्यपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे निर्माल्यंदेवदेवस्य चान्द्रायणसताहरं अज्ञयापरयाभक्त्याभोक्तव्यंतद्द्विजातीभिः इति अथ भागवतेचतुर्थस्कन्धे दक्षंप्रति सतीवाक्यम् किम्बा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्येन्नह्मादयस्तमवकीर्यजटाश्मशाने तन्माल्यभस्मनृकपालवसत्पिशाचैर्मूर्द्ध निदधति तच्चरणावसृष्टम् तच्चरणादेव स्खष्टङ्गलितं निर्माल्यं येधारयन्तीति श्रीधरः इति अथशैवे व्यास उवाच रुद्रप्रसादं भुंजानोविवेकेकिलजैमिने अष्टादशमहाविद्यास्थानावागराशिपारगः कंठरङ्गस्खलन्त्यङ्गारतीभासुरात्ततः ॥ २ ॥ सुरासुर शिरोरत्न विराजित पादांबुजः तथाच शिवरहस्ये तृतीयांशे शैवरत्नाकरे वाजपेयसहस्रेण त्वश्वमेधशतेन च नास्तीह वहु यज्ञैश्च रुद्रोच्छिष्ट फलंसमम् । भुंजीतरुद्रभुक्तान्नं रुद्रपीतंजलं पिबेत् रुद्रघ्रातंसदाजिघ्रेत् इति जावालिकी श्रुतिः ॥१॥ अथ शंकरसंहितायाम् तदा गिरिवरास्वंशःसपुत्रगणवांधवः पादौप्रक्षाल्यविधिवत्प्रभोः संप्राश्यतज्जलम् संप्रोक्ष्यमूर्द्धसुखेषां श्रद्धयासहसेवया ॥ १ ॥ मधुपर्कमहेशायक्षलाभक्त्याविधानतः मधुपर्कस्य शेषस्य विनियोगं व्यजिज्ञपत् ॥ २ ॥ अर्थिनस्तस्यतेदेवाहरिब्रह्ममुखाविभोः अद्राक्षुर्मुखसादायशिरस्यंजलिमंजसा ॥ ३ ॥ अवेत्यतद्भुवस्तेषांविभजस्वेतिचादिशत् ततोऽहंमहर्षिमित्येव निर्माल्यंनिर्मलाहृत्तम् ॥ ४ ॥ अमलास्वात्मसिध्यर्थं स्वीकृत्यासंसुनिर्म्मलाः इति अथ सौरपुराणे निर्माल्यं धारयेद्भक्त्याशिरसापार्वतीपतेः राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १ ॥ शिरसाशिवनिर्माल्यं भक्त्यायोधारयिष्यति अशुचिर्भिन्नमर्यादःसर्वावस्थांगतोऽपिवा ॥ २ ॥ स्त्रीचैवाप्रयुक्तात्मानियमैश्च वहिष्कृतः तस्यपापानि नश्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ ३ ॥ निर्माल्यलङ्घनाच्छ्रश्चोश्चाण्डालःसोऽभिजायते पृथूदकं महातीर्थं गङ्गाचयमुनातथा ॥ ४ ॥ नर्म्मदासरयूश्चिप्रा तथा गोदावरीनदी सदासन्निहितास्त्वेवं शम्भोःस्नानोदकेमुने ॥ ५ ॥ शम्भोःस्नानोदकं सेव्यं सर्वतीर्थमयंहितत् धारणात् पापसंघातैस्तत्क्षणादेवमुच्यते ॥ ६ ॥ पादोदकंच निर्माल्यं भक्तैर्धार्यं प्रयत्नतः न तान्स्पृशन्ति पापानिमनोवाक्कायजान्यपि ॥७॥ इति अथ सिद्धान्तशिखामणौ सर्वमंगलमांगल्यं सर्वपावन पावनम् सर्वसिद्धिकरं पुंसांशम्भोः पादांबुधारणम् ॥ १ ॥ इतेरतद्रुद्रनिर्माल्यग्रहणविधिर्भक्ताभक्त सर्वजनसाधारणविषयः अथानन्यरुद्रभक्तविषयक विधिमाह सिद्धान्तशिखामणौ अर्पयित्वानिजेलिंगे पत्रंपुष्पंफलंजलम् अनाद्यं सर्वभोज्यंचस्वी कुर्याद्भक्तिमान्नरः ॥१॥ गुरुत्वात्सर्वलोकानां शम्भोरमिततेजसः तस्मैनिवेदितं सर्व्वंस्वीकार्यन्तत्परायणाम्

ये लिङ्गधारिणोलोकेये शिवैकपरायणाः तेषां च शिव निर्माल्यमुचितं नान्यजन्तुषु
॥ ३ ॥ अनन्यशिवभक्तेन भुज्यमाने शिवार्पिते सिक्थेसिक्थेऽश्वमेधस्य यत्
फलंतदवाप्स्यति ॥ ४ ॥ निर्माल्यंनिर्मलं शुद्धं शिवेन स्वीकृतं यतः निर्मलैस्तत्परै-
र्धार्यंनान्यैः प्राकृतजन्तुभिः ॥ ५ ॥ शिवभक्ति विहीनानांजन्तूनां पापकर्मणाम्
विशुद्धेशिवनिर्माल्ये नाधिकारोऽस्तिकुत्र चित् ॥६॥ शिवलिंग प्रसादस्य स्वीका-
राद्यत्फलंभवेत् तथा प्रासाद स्वीकाराज्जङ्गमाच्चगुरोरपि ॥ ७ ॥ तस्माद्गुरुं
महादेवं शिवयोगिनमेवच पूजयेत्तत्प्रसादान्नं भुंजीयात्प्रतिवासरम् ॥ ८ ॥
क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामिमहामुने निर्माल्यं मनसोलिङ्गप्रसाद इति कथ्यते
॥ ९ ॥ शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेष सिद्धति शिवप्रसादं यद्द्रव्यं शिवाय
विनिवेदितम् ॥ १० ॥ निर्माल्यन्तत्तु शैवानां मनोनैर्मल्यकारकम् मनःप्रसाद
सिद्ध्यर्थं निर्माल्यं ज्ञानकारणम् शिवप्रसादस्वीकुर्वन् प्रासीदील्येव कथ्यते अन्न
शुद्धिर्हिसर्वेषां सत्व शुद्धिप्रदाहृता विशुद्धमन्नजातंहि यच्छिवाय समर्पितं तदेव
सर्वकालन्तुभुंजानोलिङ्गतत्परः ॥ १३ ॥ इति अथ शिवतत्व सुधानिधौ शम्भोः
पाद्यजलाभिपूर्णममलं शङ्खं सुगन्धार्चितम् रुद्राभ्यांपरिमार्जयेदभिमुखस्तत्-
प्राशयेत्पाणिना ॥ १ ॥ पाद्यञ्चेत्तत्तमित्यसौदशपरान् पूर्वांश्च सन्तारयेत्
नैवेद्यं शिवपूजितस्य तु तथा सर्वार्थदंप्राशनात् ॥ २ ॥ नैवेद्यन्तुलसीदलैरभि-
मतंपादांबुभिर्मिश्रितम् भोज्यं पातकनाशनंहयमखैस्तुल्यं पवित्रं सदा ॥ ३ ॥
शम्भोर्वाथगुरोस्तु यच्च कथितं पादांबुभिर्मिश्रितम् भुक्तोच्छिष्टनिषेवणंत्वघहरं
शिष्यस्य तत्वार्थिनः ॥ ४ ॥ निर्माल्यंलतिनिर्मलंभवहरंधार्यंनरैर्मूर्द्धनि भक्ष्यं
नैव मलोदरैरसनयालालंवशुद्धाग्रणी देवेभ्योवलिभुग्यतोऽम्बुज भवस्तस्माद्धरिः
श्रीपतिः ॥ ५ ॥ रुद्रोऽस्मादधिकः क्रमेण कथितोभक्तोस्वयंभावयेत् इति अथ
मात्रिकाभेदतन्त्रे निर्माल्यैर्लभते स्वर्गं निर्माल्यैर्मोक्षमाप्नुयात् पापयुक्तोऽपि
चाण्डालोनिर्माल्यं गृह्णाति यदा ॥ १ ॥ तदा मोक्षंलभेद्देवि निर्माल्यस्य प्रसादतः
महापातकयुक्तोऽपि निर्माल्यं गृह्णाति यदा ॥ २ ॥ तदा मुक्तिर्लभेद्देविसत्यं सत्यं
न संशयः इति अथ लिंगार्चनतन्त्रे अशुचिर्वाशुचिर्वापि उच्छिष्टं भक्षयेत्तुयः
स एव परमाराध्योमोक्षभाग्भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥ अतःपरं तुनैवेद्यं रुद्रस्य पर-
मात्मनः कथयामि समासेन सावधानावधारय ॥ १ ॥ मिष्टं घृतंपुष्परसंवारिधौतं
सुतण्डुलम्रस्भापक्वफलंदुग्धं क्रमेण परिकल्पितम् ॥ २ ॥ संविद्रसं विल्वफलं
चाम्रंजम्बुफलन्तथा वदरंधकमेरुञ्च नैवेद्यार्थं निवेदयेत् ॥ ३ ॥ इति तृतीयः

## अथ चतुर्थस्तरंगः ।

इत्येवं साधारणतयाभक्ताभक्तद्वयोरेव रुद्र निर्म्माल्यस्यावश्यग्राह्यतां प्रदर्श्या-थनिषेधवाक्यानि लिखित्वातेषां तात्पर्य्यन्तदुत्तरं वक्ष्यामः व्यासजैमिनिसंवादे अ-नर्हं मम नैवेद्यं पादांबुकुसुमंदलम् इतोऽक्षरेण कथितं तत्रकेचिन्महर्षयः ॥ १ । वदंतितत्कथं स्वामिन् यथार्थं कथयस्वमे व्यास उवाच देवदेवस्य वचसोविषयोऽयं न जैमिने ये वीरभद्रशपिताःशिवभक्तिपरांमुखाः ॥ २ ॥ शम्भोरन्यत्र देवेषु ये भक्तायेन दीक्षिताःयेऽशुद्धकर्म्मिणः शम्भो रन्यस्य समबुद्धयः ॥ ३ ॥ तेषामनर्हंमी-शस्य तत्प्रसाद चतुष्टयम् वीरभद्रशापितादीनां चतुर्विधन्त्याजं नैवेद्यं सर्वैरेव-त्याजं निवेदितं तु सर्वैरेव ग्राह्यन्तच्चतुष्टयं किं किञ्च नैवेद्यं किं निवेदितं तज्-ज्ञानाय षड्विधं निर्माल्यन्दर्शितमप्याह शिवान्नभूतमखिलं निर्माल्यं परिभाष्यते भोज्यं धार्य्यमिति द्वेधायद्विधंचतदिष्यते ॥ १ ॥ देवस्वं देवताद्रव्यं नैवेद्यं च निवेदितम् चण्डद्रव्यं वह्निःक्षिप्तं निर्माल्यं षड्विधं स्मृतम् ॥ २ ॥ देवस्वं ग्राम भूम्यादि दासीदास चतुष्टयम् हेमरूपेकरत्नादि देवद्रव्यमिति स्मृतम् ॥ ३ ॥ संकल्पितं यद्देवाय पत्रंपुष्पंफलंजलम् अन्नपानादितत्सर्वंनिवेद्यमिति कीर्त्तितम् ॥ ४ ॥ एतत्त्रिविधनिर्माल्यमनर्हमिति कथ्यते शिवद्रव्यापहारेण नरकं यात्य सौजनः ॥ ५ ॥ शिवोपभुक्तस्रग्गन्धमन्नपानादिकन्तथा निवेदितमिति प्रोक्तं सर्वं पापहरंपरम् ॥ ६ ॥ स्थापितंविधिनालिंगं सर्वैर्देवासुरैर्नरैः एतद्द्विविधनिर्माल्ये चण्डेशोऽधिकृतः शिवे ॥ ७ ॥ वह्निःक्षिप्तमनर्हंस्यादन्यद्रव्यत्वकारणात् पिशा-चानांच सर्वेषामधिकारोऽत्रसर्वदा ॥ ८ ॥ देवस्वं देवताद्रव्यं २ चण्डद्रव्यम् ३ वह्निक्षिप्तमिति चतुष्टयं रौद्रैरेवग्राह्यन्नान्येषां रुद्रस्य स्वद्रव्यरक्षणे राजादिवद् स्वयं प्रायश्चरक्षितेऽपि रुद्रभक्तानां राजपुरुषवत्स्वस्वामि द्रव्यरक्षणेऽवश्याधि-कारतयारुद्रपदार्थजन्य द्रव्यग्रहणरक्षणे तेषामधिकार एवेतिभावः चण्डद्रव्य-मपि रौद्रैर्ग्राह्यमेवतत्र प्रमाणमाह शिवरहस्ये यत्र भक्तिर्विशेषःस्यान्नचण्डोनैव दूषणम् यत्रैव भक्ति सामान्यं तत्र चण्डोभविष्यति ॥ ९ ॥ अथाभक्तान् निषेध-माह शिवपुराणे निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं निर्मलत्वादनिंदितम् तस्मादभोज्यं निर्माल्यं प्राकृतैरशिवात्मभिः ॥ १ ॥ लोभान्नधारयेच्छम्भोर्निर्माल्यं नच भक्षयेत्

जिह्वाचापल्य संयुक्तःशिव संस्कारवर्जितः ॥ २ ॥ शिव निर्माल्यभोजीचरौरवं नरकं व्रजेत् तल्लिङ्गधारिणोलोकेदेशिकास्तत्परायणाः ॥ ३ ॥ तदेक शरणास्तेषु योज्यं नैवान्यजन्तुषु अशुद्धात्माऽशुचिर्लोभान्मद्भक्त पावनं परम् ॥ ४ ॥ भक्षयेन्नाशमायाति शूद्राध्यायीद्विजोयथा अज्ञान लोभयुक्तोवाजिह्वाचापल्य मानसः ॥ ५ ॥ रुद्रनिर्माल्यभोजी तु रौरवं नरकं व्रजेत् निर्मलत्वाच्च निर्माल्यं मलदेहीनधारयेत् ॥ ६ ॥ धारयेच्छिवनिर्माल्यं भक्त्यालोभान्नधारयेत् इति अथ सौरपुराणे मोहान्नधारयेच्छम्भोनिर्माल्यं न च भक्षयेत् न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि नारद ॥ १ ॥ निर्माल्य लङ्घनाच्छम्भोश्चाण्डालःसोऽपि जायते पृथूदकं महातीर्थं गङ्गाच यमुना तथा ॥ २ ॥ एवञ्च भक्तानां नैवेद्यमेवत्याज्यं निवेदितादि पञ्चकं तु ग्राह्यमेव अभक्तानान्तुकेवलं निवेदितमात्रमेव ग्राह्यमन्यत्पञ्च विधन्त्याज्यम् अन्यदपि लिङ्गार्चन तन्त्रे देवीश्वर संवादे दुर्लभंतवनिर्माल्यं ब्रह्मादीनां कृपानिधे तत्कथं परमेशान निर्माल्यन्तवदूषितम् ॥ १ ॥ मध्यस्थानस्थितं य त्तु मुखञ्च परमेश्वरि श्यामलं तत्वमीशानं सदा ऊर्द्ध्वं शुचिस्मिते ॥ २ ॥ कालाग्निरूपिणंतत्त सर्वशक्तिमयंसदा तेजोमयं महेशानि दुःखामूर्द्धं वरानने ॥ ३ ॥ क्षीरोदमथने देविउत्थितं गरलं महत् ततः करतले कृत्वातद्विषं परमेश्वरि ॥ ४ ॥ निपीतं तद्विषं सूक्ष्मं तीक्ष्णं ब्रह्माण्ड नाशनम् तद्विषं कण्ठदेशे तु स्थितं हि मम सर्वदा ॥ ५ ॥ ततः प्रभृति देवेशि मुखंज्वालायते सदा पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं वा वरवर्णिनि ॥ ६ ॥ अन्नादि परमेशानि उपचारं मनोहरम् योदद्यात्परमेशानि तन्मुखोपरि पार्वति ॥ ७ ॥ अग्राह्यन्तत्तुनिर्माल्यं साक्षाद्ब्रह्ममयंयतः एतत्तुपरमेशानि निर्माल्यं यस्तुधारयेत् ॥ ८ ॥ सभ्रष्टोजायते देवि निष्कृतिर्नास्ति तस्यवै एतदेवनिर्माल्यं विष्णुयामलेस्पष्टं तदाह शिवोऽर्द्धवक्त्रे यद्दत्तं पत्रं पुष्पंफलंजलम् निर्माल्यं तद्विजानीयादग्राह्यं विष्णुशासनात् ॥ १ ॥ देव्युवाच पूजयित्वामहादेवं निर्माल्यं भक्षयेन्नच सपतेन्नरकेघोरेतस्यनोनिष्कृतिर्भवेत् ॥ २ ॥ कैंशायशिवभक्तानां कथमुक्तं च विष्णुना एतद्ब्रूहिमहेशानयदि जानासितत्वतः ॥ ३ ॥ शिव उवाच शृणुदेवि वदाम्यत्रकारणं यदि पृच्छसि सर्वेषामेव शैवानांशिवभक्ताग्रणीर्हरिः ॥ ५ ॥ वैकुण्ठधामलभते शिवनिर्माल्यसेवनात् लक्ष्मीमवापभगवान् शिवपूजार्चनेरतः ॥ ६ ॥ एकदाशिवमभ्यर्च्यवरं प्रार्थयते हरिः विदित्वानिर्माल्यफलं सोऽब्रवीन् मम संनिधौ ॥ ७ ॥ अद्यप्रभृतिनिर्माल्यं मामदत्वातुभक्षयेत्श्वयोनिं प्राप्य

दुष्टात्मा विष्टायांजायते क्रमि: ॥ ८ ॥ शिवं संपूज्यनिर्माल्यं भक्षयेन्मांनिवेद्यच चतुर्वर्गफलंप्राप्य शिवलोके महीयते ॥ ८ ॥ विष्णोर्वचनमाकर्ण्यवरं तस्मैप्रदत्तवान् एवं भविष्यति हरेतव संकल्पहेतुना ॥ ९ ॥ इति दत्वावरं देवस्तत्रैवांतरधीयत तदा प्रभृतिलोकेऽस्मिन् मर्यादेयमभूत्पुरा ॥ १० ॥ इति अथ लिङ्गार्चनतन्त्रे निर्माल्यदृढ़भक्तित्वाद्ग्रहणीयाद्यस्तु साधकः प्रथमं विष्णवेदत्वाविष्णु मन्त्रेण पार्वति ॥ १ ॥ निर्माल्यं हि महेशस्य विष्णोर्ग्राह्यं वरानने देवासुर मनुष्याश्चगन्धर्वा किन्नरादयः ॥ २ ॥ ते सर्वेपरमेशानि विकाराबुद्रबुदयः निर्माल्येषु च देवेशि अधिकारः कथं भवेत् रौद्राणां रुद्रनिर्माल्यं विष्ण्वादि निवेदनं विनैव ग्राह्यं न चण्ड नच दूषण मिति वचनात् वैष्णवानां तुरुद्रनिवेदितस्य विष्णुनिवेद्यैवग्राह्यमितिभावः ॥ ३ ॥ निर्णयसिन्धुलिंगार्चन चन्द्रिका प्रायश्चित्तमयूषादि निबन्धन धृतवचनानि धनस्यभक्षणे तेषां पादोनं लक्ष्मीरितम् निर्माल्य भक्षणे लक्षंपादतःशुद्धमरेरितः अकामभक्षणे यद्वा निर्माल्यस्य जपेत्सुधीः ब्रह्मपञ्चकसाहस्रंसूर्वेन सहितंततः ॥ २ ॥ कामतोभक्षणेदोचाप्रायश्चित्तं न चान्यतः इति स्मृत्यर्थसारेऽपिशिवसौरनिर्माल्य भक्षचान्द्रः जातिलिंगं विनालिंगं यः पूजयतिसत्तमः तस्यनैवेद्य निर्माल्य भक्षणात् समक्रुच्छ्रकम् ॥ १ ॥ सौरेऽपि वरंविषमपि प्राश्यंशिवस्वंनैवभक्षयेत् विषमेका किनंहन्ति शिवस्वंपुत्रपौत्रकम् ॥ १ ॥ स्कान्देच विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पं निवेदितं निर्माल्यं तद्विजानीयात् वर्ज्यंवस्त्रविभूषणमर्पयित्वातुतं भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत् धनस्येत्यादिनिषेधवाक्यानिरुद्रेतरभक्तानां रुद्रधनरत्नादि रुद्रस्वंग्रामभूम्यादिचण्डद्रव्यञ्च इत्येतत् त्रयं न ग्राह्यमिति तात्पर्य्यंबोधकानिविसर्जितस्येतिस्कांदवचनात् रौद्राणान्तु पूर्वोक्तान चण्डंनच दूषणमित्यादिवचन प्रमाण्यात् एतत्त्रयमपिग्राह्यमेवेतितात्पर्य्यम् अथ निर्माल्य विषयेशिवचनम् पाद्मे अनर्हं ममनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् मह्यं निवेद्यतत्सर्वं कूपएवविनिक्षिपेत् स्कान्दे निर्माल्यंचैव नैवेद्यं विशेषेणविवर्जयेत् द्रव्यसन्नपासं तोयं शिवस्वं न स्पृशेत् क्वचित् निर्माल्यं नैवलंघेच्चकूपेसर्वं विनिक्षिपेत् सौरेऽपि भूप्रदेशो यथा कश्चित् स्वदेहमल दूषितः असंस्पृश्योभवेत्सोऽपि योयस्यांगमलंस्पृशेत् ॥ १ ॥ तस्मान्नसंस्पृशेल्लिंगं नरोनिर्माल्यदूषितः नधारयेच्च निर्माल्यं भक्त्यालोभान्नभक्षयेत् ॥ २ ॥ भक्षणान्नरकं गच्छेदुविलंघ्यच विमूढधीः नतत्रस्नानपूजाद्यं प्रतिगृह्णाति शंकरः ॥ ३ ॥ यत्रनैवेद्य निर्माल्यं सवासंजलमाविशेत् लैंगे शिवस्व

स्त्रिपुष्टांगाः स्वर्गनीयाः न साधुभिः तेन कर्मविपाकेन ततस्ते रौरवौकसाः ॥ १ ॥ द्रव्य मन्नं फलं तोयं शिवस्वन्नस्पृशेत् क्वचित् भविष्येऽपि दत्वानैवेद्य वस्त्रादीन्नाददीत कदाचन त्यक्तव्यं शिवमुद्दिश्य तदादानेन तत्फलम् ॥ १ ॥ स्कान्दे निर्माल्यं योहिमदुभक्त्या शिरसाधारयिष्यति अशुचिर्भिन्नमर्यादोनरः पापसमन्वितः ॥ १ ॥ नरकेपच्यतेघोरे तिर्य्यग्योनौच सम्भवेत् एतानि निषेधवाक्यानि रुद्रनिन्दकविषयानि तत्राह शिव पुराणे इत्थं विचार्यमोहान्धोयज्ञेसज्जोभवेत्तच विहितेऽथमहायज्ञे भोजनावसरे-स्वयम् ॥ १ ॥ ईश्वरःकर्मणां साक्षीफलदाताशशापतम् यस्मादनीश्वरं चेदं कृतंकर्मत्वयाततः ॥ २ ॥ तदिदं भोजनन्तेद्य निर्माल्यं भवतक्षणात् तथेशवचनात्सर्वं तदुच्छिष्टमभूत्किल ॥ ३ ॥ उच्छिष्टभोजनात्सर्वेदेवाश्चापिमहर्षयः विकलांगाः समभवत् तत्क्षणाद्वीरभद्रतः ॥ ४ ॥ केषां चिद्बाहवच्छिन्नाच्छिन्नग्रीवास्तथापरे नासाविरहिताः केचित् केचित्क्षतभुजद्वयाः ॥ ५ ॥ तमवेक्ष्यविकारंसमहादेवकृतन्तदा शशापस्वात्मनाशायमहादेवं जगत्पतिम् ॥ ६ ॥ यत्किञ्चित्त्वयिदेवेशभक्ष्यं भोज्यं फलं जलम् समर्प्यते तदप्यस्तु निर्माल्यं तत्क्षणात्परे ॥ ७ ॥ इत्युक्ते तेन ब्रह्माद्याहाहाकारं विधायच कथमित्थं त्वयाप्रोक्तं हत्वान्तहतबुद्धिना ॥ ८ ॥ यत्पादपद्मरजसाशुद्धत्यंगानिनान्यथा तदर्पितं भवेन्नैव निर्माल्यं चातिनिर्मलम् ॥ ९ ॥ मंगलं परमंह्येतत्तदंगं यत्समास्पृशेत् उच्छिष्टंतत्कथं मूढतववाक्याद्भविष्यति ॥ १० ॥ इत्यं गतेकिमत्रास्तियोग्यं चेतिविचिंत्यसः उवाच वचनं चाद्यनियतिंपालयन् विधिः ॥ ११ ॥ यः कश्चित् परमेशस्य निन्दांकुर्य्याद्विमोहितः सः शूद्रएवरुंजातो निर्माल्यं स्यात्तदर्पितम् ॥ १२ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं भक्तिभावसमर्पितम् परमेशेभगवति शोधकं स्यान्नसंशय ॥ १३ ॥ तस्मात्सवर्णकल्पितं पत्रं पुष्पं फलं जलम् शोधनायमहेशस्य विनाशूद्रायकल्पितम् ॥ १४ ॥ शिवलिंगं समभ्यर्च्यः पिवेच्चजलाप्लुतम समूलापार्वभौमो वैकैलाशंचाधिगच्छति ॥ १४ ॥ इति अथपाद्मे नारीसंगप्रमत्तोऽसौ यस्माद्वामवमन्यते योनिलिंगस्वरूपन्तुतस्मादस्य भविष्यति ॥ १ ॥ ब्राह्मणं मांनजानाति भृगूणां समुपागतम् अब्रह्मण्यत्वमापन्नोनेजार्होऽसौद्विजन्मनाम् ॥ २ ॥ तस्मान्नोजलमश्नातु तस्मादेनं हविस्तथा निर्माल्यमस्य तत्सर्वं भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥ एवं शप्त्वामहातेजाः शंकरंलोकपूजितम् सोऽहलेऽपि ततोविष्णुस्त्वयं पुनःकृतांजलिपुटस्थितः मयाक्रोधेन पादेन हृदिसन्ता-

ड़ितस्तदा ॥ १ ॥ तदादिहृदयेतेन ब्रह्मणप्रियकाम्यया पुत्रलांछनमेवेदं भृगुपादांकितंधृतम् ॥ २ ॥ अहंचनिश्चयं कृत्वासर्वं ब्राह्मणसंसदि कथितं सर्वब्रह्मत्तान्तं श्रेष्ठोनारायणः स्मृतः॥ ३ ॥ चमायत्रभवेद्विप्रास्तत्रसर्व्वंप्रतिष्ठितम् क्रमेण प्राप्यते ब्रह्मचमायुक्तेन चेतसा ॥ ४ ॥ ततोऽहं वैष्णवोजातस्सदाविष्णुपरायणः कदाचिद्दचयज्ञे वैविष्णुर्मुख्योवभूवह ॥ ५ ॥ शम्भुंत्यज्यहरिं सुख्यन्दृष्ट्वाहं यज्ञकर्म्मणि मुखरत्वमास्थितः पुनयज्ञकर्म्मप्रवर्त्तकः ॥ ६ ॥ पार्व्वतींतत्रदग्धान्तां शम्भुः कोपसमन्वितः मृतांसतीसविज्ञाय ययौ तु सगणैर्वृत्तः ॥ ७ ॥ विष्णुं निर्जित्यदचन्तंहत्वायज्ञप्रणाशिनम् मदीयश्चिबुकं तत्रवीरभद्रेण पातितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मणा सांत्वितः शम्भुदचंसञ्जीवितंमखम् चकारस्वयमेवेशः संपूर्णं भागसंयुतम् ॥ ९ ॥ तदा स चिबुकोऽहञ्चक्रतस्तेन महात्मना नन्दिनाशापितस्तत्रदारुणोह्यभवत्किल ॥ १० ॥ ततोऽहंमानसेपुत्रविस्मितः शंकरंस्मरन् कालरूपीस्वयं शम्भुः कालाधीनमिदंजगत् ॥ ११ ॥ ईश्वरोऽयं शिवप्रोक्तःपरस्तस्मान्नविद्यते विचार्यशंकरंचित्ते धृत्वाहंभजंनेरतः शैवोयातोहमत्यंतोभस्माङ्गलेपनेरतः नाना पाशुपतैर्मार्गैरभजं शंकरं सदा ॥ १२ ॥ इत्येतावतादचशापस्य रुद्रनिन्दकानां शूद्रत्वेन रुद्रनिर्माल्यग्रहणायोग्यत्वं विधिनापूर्वंविहितमेव तन्निषेधवाक्यानां तादृश शूद्रविषयेचरितार्थत्वात् भृगुशापस्यतुशैवजातोहऽमत्यन्तोभस्मांगलेपनेरतः इत्यादि वाक्यैः पुनः शैवभावप्रापितत्वेन पूर्वोक्तस्वनिन्दावाक्यानामन्नावस्थायामुक्तत्वेन अप्रमाणिकत्वंस्वयमेव दर्शितमेवञ्च रुद्रनिर्माल्यन्तन्निन्दकेतराणां सर्वेषांग्राह्यमेवेतिस्पष्टमायातमिति भावः अथ हेमाद्रौपरिशिष्टे अग्राह्यं शिव नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलं शालीग्रामशीलासङ्गात्सर्व्वंयातिपवित्रताम् ॥ १ ॥ आचार्कंपाद्मस्कान्दब्रह्मपुराणेषु संग्रहेच शिव उवाच अनर्हंमम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् शालिग्रामशिलालग्नंसर्व्वंयातिपवित्रताम् ॥ १ ॥ स्कान्दे अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रपुष्पंफलंजलम् शालग्रामस्य संसर्गात्सर्व्वंयाति पवित्रताम् १ अथ वैष्णव संग्रहोत सत्सिद्धान्त मार्त्तण्डे वाल्लभोयानां दुर्जनकरि पञ्चानने रामानुजीयानां पञ्चायत न पूजनमध्येशालग्रामसहपूजनेनस्मार्त्तानां शिवनिर्माल्यग्राह्यताप्रदर्शनम् अथच लक्षणप्रकाशिकाकाराणां शालग्रामस्य सर्व्वदेवात्मकत्वेन सर्व्वदेव पूजाधारतयातत्रशिवबुद्ध्यापूजायां पत्रादीनामर्पणम् अन्यच्चकृत्यरत्नावलीकाराणाम् शिवनाभिविषयकमेतदितिस्थितम् पूजाप्रकाशोदाहृतपाद्मे शालग्रामशिलालिंगेयःकरोति समार्चनम् तेनाऽर्चितः कार्त्तिकेय युगानामेक

सम्मतिः ॥ १ ॥ ननु शालग्रामेण सहपूजितशिवार्चणमिति भ्रमितव्यम् अत्तर-स्वारस्यात्तथाऽप्रतीतेः तस्माच्छिवनिर्माल्यं सर्वोत्कृष्टं न कस्यापि वर्जनीय-मिति सिद्धम् इति सदानन्दकृतसज्जनमनोरञ्जन्यासुक्तम् इति सामान्यम् विशेष तस्तु अयमर्थः केवलनैवेद्यनिवेद्यातिरिक्त चतुर्विधदेवस्वं देवताद्रव्यमित्यादि शिवनिर्माल्य ग्रहणेच्छाविषयेतत्तत्पदार्थैः शालग्रामसंसर्गात् अर्थात् शिवपूज-नोत्तर शालग्राम पुन पूजनात् पवित्रता भवति अर्थात्दोषरहितता भवति न त्वन्यथा तथाच तद्ग्राह्यमेव शिवानर्पितशालग्रामार्पितन्तुतैरपि न ग्राह्यम् इति तत्र मानं लिंगार्चनतन्त्रे निर्माल्यं दृढभक्तित्वात् गृह्णीयात्साधकोत्तमः प्रथमं विष्णवेदत्त्वा विष्णुमन्त्रेण पार्व्वति ॥ १ ॥ शिवशालग्रामयोरेकत्रपूजनेतु महान् दोषः तदाहस्कान्दे काशिकाखण्डे गौरीवाक्यम् प्रदत्तंचैव जानामि हरेनिरव शेषतः शालग्रामार्चनःसाध्यं पूजालिंगस्यचेशितुः लोहयित्वात्रदेवेशंवरं यत्नव्यवा-नतो ॥ १ ॥ निर्माल्यं नैवसंभोज्यमभिषिक्तं यदीश्वरे फलंदलं तथैवापः पयोदधि घृतंमधु एवं निवेदितं तत्स्यादभिषेकोच्छ्रितं हरेः ग्राह्यं सर्वयत्नभागं विहीनं यच्छिवागमम् ॥ २ ॥ निवेदितन्तुभोक्तव्यं सर्वैर्विप्रादिभिर्हरेः तवच-क्रांकयोगेन किंस्याल्लिंगं पवित्रकम् सालग्रामार्चनासाकं शिवलिंगेन यस्यहि सर्वेनरकमाप्नोति यावदिंद्राश्चतुर्दश अत्रा मेवहिशण्डक्यां गौरीनाभात्मिका-शिलाः किञ्चिद्दुगर्त्तसमायुक्ताः सद्रूपाः सन्तिसर्वदा ताभिर्लिंगार्चने नैवतुष्टास्त्वां शंकरेणहि इत्यादि सहपूजन निषेधवाक्यानि अथ विधिनिषेधानां स्वस्व विषये यथा नियोज्य परस्परविरोधं परिहृत्यसारमात्र दत्तशापनिषेधस्य भृगुशाप निषेधस्यच अथच यद्विष्णोः प्रार्थितं भोशिव तवपूजनोत्तरं त्वन्निर्माल्येनमां पूज्यैवपश्चातदभक्षणीयमित्यादिवाक्यस्य नैवेद्यातिरिक्त निवेदितपंचविध चण्डादिद्रव्यस्य अग्राह्यताच,एतत्सर्वंनशैवविषयं शैवानांतुतत्तद्विधिवलात् सर्वं ग्राह्यमेव परन्त्वायं विधिनिषेध विषयोदद्र विषयकः परादित्रयाणान्तु सर्वैरेव-ग्राह्यं तद्विषयेविधेरेवसत्वात् अथ शिवपुराणे ज्ञानसंहितायां द्वाचत्वारिंशा-ऽध्याये लोकानांस्थापितेलिंगे कल्याणञ्चाभवत्तदा प्रसिद्धंचैवयल्लिंगं लिंगमे तत्तथापुनः ॥ १ ॥ विशेषोऽनकथं लभ्येच्छ्रुयताष्टषिसत्तमाः रुद्रेणस्थापितं यच्चतल्लिंगमिदमेवच ॥ २ ॥ अन्यखज्योतोरूपश्चनात्रकार्य्याविचरणा मक्षिका पादमात्रंहि शिवस्वं न स्पृशेत् क्वचित् ॥ ३ ॥ तंपप्रच्छुस्तदासर्वेशिवे निर्मा-ल्यता कथम् तत्छ्रुत्वावचनं तेषां सूतस्त्वेवाब्रवीदिदम् ॥ ४ ॥ साधुपृष्टं ऋषि-

श्रेष्ठाः कथयामि यथा श्रुतम् दक्षशापाच्चयत्प्रोक्तं यच्चैवकथितं त्विह ॥ ५ ॥
रुद्रेणैवज्ञातं यच्चतल्लिंगेदूषणंस्मृतम् तत्सर्वंच तथाज्ञोयोभक्तोनैव विदुष्यति
॥ ६ ॥ रुद्रे शिवरहस्ये नीलरुद्र उवाच विश्वेदयास्थितिलयावनपावनेशसादी
नदीन मधुनापरिपालयेश विश्वेशदेवपरमेश महेश शंभोपाहिप्रसीदसुरशत्रु
विनाशनेमे शक्तिंप्रदेहि जगतोमम कालनाशे श्रीकालकण्ठदयया तवरूपतुल्यम्
॥ १ ॥ वासन्तवा चलनिभंममदेहि शम्भोभक्तोस्मि शंकर विशेषपरिपालयाशु
अथरौद्रलिंगलक्षणं वीरमित्रोदयधृते नदीसमुद्भवंरौद्र मन्योन्यस्य विघर्ष-
णात् नदीवेगात्समंस्निग्धं सञ्जातं रौद्रमुच्यते ॥ १ ॥ समुच्चयेऽपि सरित्प्रवाह
संस्थानं वाणलिंगसमाकृतिं तदन्यदपिवोधव्यं रौद्रंलिंगं सुखावहम् ॥ २ ॥ न
दोषायनर्मदायावाणलिंगसमाकृतिः तदन्यदपिवोधव्यं रौद्रलिंगं भविष्यति ॥ ३॥
रौद्रलिंगं तथा ख्यातंवाणलिंग समाकृति श्वेतंरक्तं तथापीतं कृष्णं विप्रादि
पूजितम् ॥ ४ ॥ स्वभावात्कृष्णवर्णंवासर्वजातिषु सिद्धिदम् नसदासम्भवं रौद्रं
वाणलिंगवदीरितम् अथ लिंगलक्षणम् सूतसंहितायाम् समकृत्यतुलारूढं
वृद्धिमेति न हीयते वाणलिंगमितिख्यातं शेषंनार्मदमुच्यते ॥ १ ॥ त्रपञ्चवारं
यस्यैवतुलासाम्यं न जायते तदावाणं समाख्यातं शेषं पाषाणसम्भवम् अथ
रुद्रलिंगोत्पत्तिमाह वाशिष्टलिंगोपपुराणे अथैतेषामहंशंभुर्मायापाशनिवृत्तये
आत्मज्ञानप्रदानाय देवदारुवनंगतः ॥ १ ॥ कल्याणवेषमास्थायमन्मायाशक्ति
वैभवात् विष्णुश्चमायया ब्रह्मन् भार्य्याभूत्ममसुन्दरी ॥ २ ॥ तयासहमुने
क्रीडांकलावेषंदिगम्बरम् वर्णाश्रम समाचारविनिर्मुक्तस्तयासह ॥ ३ ॥ अहं
भिक्षाटनं तेषां मन्दिरेकृतवान्द्विजा मांदृष्ट्वामाययानार्य्योमोहिता मुनि-
पुंगव ॥ ४ ॥ त्यक्तवस्त्रासुनेकाश्चित्काश्चितत्यक्त विभूषणाः काश्चिन्मांवोक्ष्यतिष्ठन्ति
काश्चिदालिंगनोत्सुकाः ॥ ५ ॥ काश्चिन्मांभुंक्ष्वभुंक्ष्वेति प्रोच्यधावन्तिमां प्रति
महर्षीणां सुतास्तेऽपि ममभार्य्यासुशोभनाम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वामन्मथविह्वांगा निर्ल-
ज्जाविवशाभृशम् त्यक्तवस्त्राः समालिंग्यभुक्तवन्तो महामुने ॥ ७ ॥ केचिन्मो-
हेन नृत्यंतिमण्डितभ्रूविलासिनः मुने केचित् करास्फोटंकुर्वंति परिमोहिताः
॥ ८ ॥ एवं नराणां नारीणां क्षुलंभ्रान्तमभून्मुने तद्दृष्ट्वामुनयः सर्वेकुपिताः
मांप्रियाञ्चमे ॥ ९ ॥ अतीवपुरुषंवाक्यं प्रोचुर्मांम्प्रतिसुव्रत शेपुश्चशापैर्मांब्रह्मन्
माययाममोहिताः ॥ १० ॥ महामन्त्रैर्महाघोरैरभिचारकृतेमम तत्सर्वं
विफलं ब्रह्मन्नभून्मप्याश्रयामम ॥ ११ ॥ तेसम्भूयमुनिश्रेष्ठा समुपेत्यमहामुने

दृष्टवन्तोभवान् कस्त्वं किमुदिश्यलमागतः ॥ १२ ॥ इति पृष्टेन तैरुक्तं मयाब्रह्म-
विदांवर ईदृशोऽहमितिप्राज्ञाः पुनर्वक्ष्यामि कारणम् ॥ १३ ॥ इदानीं भार्यया-
सार्द्धंतपश्चर्तुमिहागतः इति मद्वचनं श्रुत्वा मुनयोमुनिपुंगव ॥ १४ ॥ प्रोचुर्धिग्
धिङमहामूढवल्लेशाच्छाद्यविग्रहम् त्वद्भार्यां महादुष्टां मोहयन्तितपस्वि
॥ १५ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वाममभार्यापतिव्रता न कथंचिदियं दुष्टा न दुष्टा-
ऽप्यन्यमिच्छति ॥ १६ ॥ इत्युक्तायमया ब्रह्मन् ब्रह्मणाम मायया संभूयातीव
संदृष्टाः परुषं वाक्यमब्रुवन् ॥ १७ ॥ गच्छगच्छमहादुष्ट भार्येति व्यभिचारिणी
त्वंचवर्णाश्रमाचारविहीनोबुद्धि पूर्वतः ॥ १८ ॥ नान्यमिच्छति भार्यामे इत्य
नृतंत्वयेरितम् इत्या कर्णैवचस्तेषां सत्यमेवेरितं मया ॥ १९ ॥ मद्दृष्ट्या मम-
भार्येयं मयाभिन्नाह्यविक्रिया रागद्वेषभयक्रोध लोभमोहादिवर्जिता ॥ २० ॥
पुण्यपापविनिर्मुक्ता सर्वदापरमार्थतः अहंच सर्वदाविप्रावर्णाश्रमविवर्जितः ॥२१॥
न कर्त्तानच भोक्ताऽहं न च कारयिता तथा धर्माधर्मौन मेविप्राःसर्वदा पर-
मार्थतः ॥ २२ ॥ भवतामात्मविज्ञान मशेषक्लेशनाशनम् नास्तिदेहात्मबोधेन
कृतं कर्माखिलं सदा ॥ २३ ॥ मांसदृष्ट्याविलोक्यैनां मांचवेदविदांवरा दूष-
णान्युक्तवं तत्तुयुयन्तन्नास्तिमे सदा ॥ २४ ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वामुनयः क्रोध
मूर्च्छिताः सर्वेविचार्यसंभूयमामिवं पुनरब्रुवन् ॥ २५ ॥ अहोविरुद्धं भवताप्रोक्तं
चोरेण साहसात् न कर्त्ता न च भोक्ताहं पुण्यपापविवर्जितः ॥ २६ ॥ वर्णाश्रम
विनिर्मुक्तस्तपश्चर्तुमिहागतः इति श्रुत्वामुनयोयदुक्तवंतस्तत् स्कन्दपुराणे नागर-
खण्डे दृष्टव्यम् तस्माल्लिंगं पतत्वाशुतथैव वसुधातले एतस्मिन्नन्तरेभूमौलिंगं तस्य
पपाततत् ॥ १ ॥ वशिष्टलैंगे तिष्ठतिष्ठ सदास्त्रीणां मोहनं पुरुषाधम लिंगमे-
तत्समुत्पाट्यवनेऽस्मिन् भार्ययाविना ॥ १ ॥ ततोलिंगंसमुत्पाट्य तत्रैवांतर्हितो
भवत् मांचलिंगंचमद्भार्यां नापश्यन् मुनयोमुने ॥ २ ॥ उत्पातोऽभूत्तदातत्र
सर्वलोकभयंकरः नतदाराजतेसूर्यो न चन्द्रो नच पावकः ॥ ३ ॥ भूकंपश्चसमुद्
भूतोमन्त्रास्तेषां न भान्तिच एवं संक्षुभितेऽरण्येमुनयः संशितव्रताः ॥ ४ ॥ पर-
स्परं समालोक्य ब्रह्मलोकं समभ्ययुः ब्रह्मा उवाच इतः पूर्वं कृतं कर्मभवद्भिर
खिलंवृथा ॥ ५ ॥ लिंगार्चनं विनातेन मोहितोदेवमयया तच्चवज्ञैर्यथा दृष्टं
लिंगंभूमौनिपातितम् ॥ ६ ॥ तल्लिंगसदृशंलिंगं कृत्वाश्रद्धापुरः सरम् पञ्चाक्षरेण
मन्त्रेण प्रणवेनसहादरात् ॥ ७ ॥ पूजयध्वं सपत्नीकाः सपुत्रैरखिलैः सह-
स्थापितं विधिनालिंगं सर्वैर्देवासुरैर्नरैः ॥ ८ ॥ एतद्विविधि निर्माल्यैरचर्ण्डेशो-

धिक्षतः शिवे इति अथाचारादर्शे ब्रह्मपुराणे ब्रह्मांगलग्नं विप्रेभ्यो वैष्णवंचप्रदीयते रुद्रांगलग्नमग्नौचदहेत्सर्वंचततत्क्षणे ॥ १ ॥ शिष्टेभ्योप्यथदेवेभ्यो यत्तुदीनेषुनिक्षिपेत् विप्रेभ्यस्तुतद्देयं ब्रह्मणेयन्निवेदितम् ॥ २ ॥ वैष्णवंसात्वतेभ्यश्चभस्मांगिभ्यश्चशाम्भवम् सौरंमगेभ्यः शाक्तेभ्यस्तापिनेयन्निवेदितम् ॥ ३ ॥ स्त्रीभ्यश्चदेयं मातृभ्यो य त्तुकिंचिन्निवेदितम् भूतप्रेतपिशाचेभ्योयत्तुदीनेषुनिक्षिपेत् ॥ ४ ॥ रुद्रांगलग्नमग्नौचेति रुद्रांगलग्नम् देवस्वमित्यादि चतुर्विधं रुद्रद्रव्यमग्नेरुद्ररूपत्वात् तत्रैवक्षिपेदग्नौक्षिपेदित्यर्थः हवनं कुर्यादितिभावः भस्मांगिभ्यः शाम्भवमितिशम्भोर्द्रव्यंभस्मांगिभ्यः शिवभक्तेभ्योवादेयमित्यर्थः अत्र सर्वत्र रुद्रविषये शिवशब्दोरुद्रपरएव रुद्रस्य शिवाद्वरप्राप्त्या शिवत्वसद्भावात् इति रुद्रविषयः रुद्रशिवभेदम् दर्शयति गुणानां वासनाभेदभेदितायाद्विजर्षभा मायायापरभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥ यस्य मायागतं सत्वं शरीरंस्यात्तमोगुणः संहारायत्रिमूर्त्तीनां स रुद्रस्यान्नचापरः ॥ १५ ॥ तथा यस्यतमः साक्षाच्छरीरं सात्विकोगुणः पालनायत्रिमूर्त्तीनां स विष्णुः स्यान्नचापरः ॥ १६ ॥ रजोयस्यशरीरंस्यात्तदेवोत्पादनायच त्रिमूर्त्तीनां सवैब्रह्मासवेद्विप्रतथा परः ॥ १७ ॥ रुद्रस्यविग्रहंशुक्लं कृष्णं विष्णोश्चविग्रहं ब्रह्मणोविग्रहं रक्तं चिन्तयेद्भुक्ति मुक्तये ॥ १८ ॥ शौक्लं सत्वगुणाज्जातंरागो जातोरजोगुणात् कार्ष्ण्यंयतमोगुणाज्जातमिति विद्यात् समासतः ॥ १९ ॥ परतत्वैकतावुध्या ब्रह्माणं विष्णुमीश्वरं परतत्वं तयावेदावदन्ति स्मृतयोपिच ॥ २० ॥ पुराणानि समस्तानिभारतप्रमुखान्यपि परतत्वैकतावुध्यातान् परंप्रवदन्तिच ॥ २१ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण केवलं मुनिपुंगवाः ब्रह्मविष्ण्वादियस्त्वे नन परं तत्वमास्तिकाः ॥ २२ ॥ तथापिरुद्रः सर्वेषामुत्कृष्टः परिकीर्त्तितः स्वशरीरतयायस्मान्मनुतेसत्वमुत्तमं ॥ २३ ॥ रजस स्तमसः सत्वादुत्कृष्टं द्विद्विजोत्तमाः सत्वात्सुखं तज्ज्ञानञ्चयत्किंचिद परंपरं ॥ २४ ॥ परतत्वप्रकाशस्तुरुद्रस्यैवमहत्तरः ब्रह्मविष्ण्वादिदेवानांन तथा मुनिपुंगवाः ॥ २५ ॥ परतत्वतयारुद्रः स्वात्मानं मनुतेभृशं परतत्वप्रकाशेनन तथा देवतांतरम् ॥ २६ ॥ हरिब्रह्मादिरूपेण स्वात्मान मन्यतेभृशं हरिब्रह्मादयोदेवान तथा रुद्र चास्तिकाः ॥ २७ ॥ रुद्रः कथञ्चित्कार्यार्थंमनुतेरुद्ररूपतः न यथादेवता स्वर्वाब्रह्मस्फूर्त्यं तावतात् ॥ २८ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादयोदेवाः स्वात्मानं मन्यतेंजसा न कश्चित्तत्वस्वरूपेण न तथा रुद्र आस्तिकाः ॥ २९ । ब्रह्मविष्ण्वादिदेवाः स्वात्मानं मन्यतेंजसा कथञ्चित्तत्वरू-

ऐरेण न तथा रुद्र आस्तिकाः ॥ ३० ॥ तत्त्वबुद्धिः स्वतःसिद्धारुद्रस्यास्यतपोधनाः हरि ब्रह्मादिबुद्धिस्तु तेषां स्वभाविकी मता ॥ ३१ ॥ हरि ब्रह्मादिदेवान्ये पूजयंति यथा बलं अचिरान्नपरप्राप्ति स्तेषामस्तिक्रमेणहि ॥ ३२ ॥ रुद्रं येवेदविच्छ्रेष्टाः पूजयन्ति यथा बलं तेषामस्तिपरप्राप्ति रचिरान्न क्रमेणतु ॥ ३३ ॥ रुद्राकारतया रुद्रेवरिष्टोदेवतांतरात् इति निश्चियबुद्धिस्तु नराणां मुक्तिदायिनी ॥ ३४ ॥ गुणाभिमा निनोरुद्राद्धरि ब्रह्मादिदेवताः वरिष्टा इति बुद्धिस्तुसत्य संसारकारणं ॥ ३५ ॥ परतत्वादपिश्रेष्ठो रुद्रोविष्णुपितामहः इति निश्चयबुद्धिस्तुसत्यः संसारकारणं ॥ ३६ ॥ रुद्रोविष्णुः प्रजानाथस्वराट् सम्राट् पुरन्दरः परतत्वमतिज्ञानं नराणां मुक्तिकारणं ॥ ३७ ॥ आत्मत्वेराजबुद्धिस्तु न दोषाय फला यहि तस्मात्ब्रह्ममति र्मुख्यासर्वेत्रनहि संशयः ॥ ३८ ॥ तथापि रुद्रेविप्रेन्द्राः परतत्वमतिर्भृशं वरिष्टान तथान्येषुपरस्फूर्त्यल्पतावलात् अस्ति रुद्रस्य विप्रेन्द्रा अन्तः सत्ववहिस्तमः विष्णोरन्तस्तमः सत्ववहिरस्ति रजोगुणः ॥ ४० ॥ अन्तर्वहिश्चविप्रेन्द्रा अस्तितस्य प्रजापते अतोयेत्वागुणं सत्वं मनुष्याविवदंतिच ॥ ४१ ॥ हरिः श्रेष्टोहरःश्रेष्ट इत्यहोमोहवैभवं सत्वाभावात्प्रजानाथं वरिष्टं नैवमन्यते ॥ ४२ ॥ अनेक जन्मसिद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्त्तिनां हरः श्रेष्टोहरेः साचादितिबुद्धिप्रजायते ॥ ४३ ॥ महापापवतांनृणांहरिः श्रेष्टोहरादिति बुद्धिर्विजायते तेषां सदासंसारएवहि ॥४४॥ निर्विकल्पेपरेतत्वे श्रद्धायेषांविजायते अयत्नसिद्धापरमामुक्तिस्तेषां न संशयः ॥ ४५ ॥ निर्विकल्पं परंतत्वं नामसाक्षाच्छिवः परः सोयंसांवस्त्रिनेत्रश्चचन्द्रार्धकृतशेखरः ॥ ४६ ॥ स्वात्मतत्वसुखस्फूर्त्ति प्रमोदातांडवप्रियः रुद्रविष्णुप्रजानाथे रूपास्योगुणमूर्त्तिभिः ॥ ४७ ॥ इष्टशोपरमामूर्त्तिर्यस्मात्साधारणो सदा तद्विसाचात्परंतत्वं नान्यत्सत्यंमयोदितं ॥ ४८ ॥ विष्णुब्रह्मादमन्यं वास्वमोहान्मन्वतेपरं न तेषां मूर्त्तिरेषास्तिततस्ते न परंपदम् ॥ ४९ ॥ तस्माद्वेयापरामूर्त्तिर्यस्यासाधारणं भवेत् सशिवः सच्चिदानन्दः साक्षात्तत्वं नचापरम् ॥ ५० ॥ ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च विभक्तापि पण्डिताः परमात्मविभागस्थानजीवव्यूह संस्थिता ॥ ५१ ॥ अविद्योपाधिकोजीवो न मायोपाधिकः खलुमायोपाधिकचैतन्यं परमात्माहिनापरम् ॥ ५२ ॥ मायाकार्य्यगुणच्छन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः मायोपाधि परव्यूढा न जीवव्यूहसंस्थिताः ॥५३ ॥ परमात्मविभागत्वं ब्रह्मादीनांद्विजर्षभाः समानमपिरुद्रस्तुवरिष्टोनात्र संशयः ॥ ५४ ॥ ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रस्यस्वसाधारणरूपतः स्वविभूत्यात्मं-

नाचाऽपिकुर्वीते एवसेवनं ॥ ५५ ॥ रुद्रस्वे नैवरूपेण विष्णोश्च ब्रह्मणस्तथा सेवनं नैवकुरुतेविभूतेर्वाद्वयोरपि ॥ ५६ ॥ केवलं कृपयारुद्रो लोकानां हितकाम्यया स्वविभूत्यात्मना विष्णोर्ब्रह्मणश्चापरस्यच ॥ ५७ ॥ करोति सेवाहेविप्राः कदाचित्सत्यमीरितं न तथा ब्रह्मणाविष्णुः न ब्रह्मणा न पुरन्दरः ॥ ५८ ॥ एतावान्मात्रमालंब्यरुद्रं विष्णुं प्रजापतिं मन्वतेहिसमंमर्त्यामाययापरिमोहिताः ॥५९॥ केचिदेषांमहापापासात्साम्यंवाञ्छन्ति मोहिता ॥ ६० ॥ हरेरजस्य चोत्कर्षं हराद्वाञ्छन्ति केचन रुद्रेण साम्यमन्येषां वाञ्छन्तिचविमोहिताः तेमहापातकैर्युक्तायास्यन्ति नरकार्णवं ॥ ६१ ॥ रुद्रादुत्कर्षमन्येषां ये वाञ्छन्तिविमोहिताः पच्यन्ते नरकेतीव्रे सदातेनहि संशयः ॥ ६२ ॥ केचिदद्वैत समाश्रित्यवैडाल वृत्तिकानराः साम्यरुद्रेण सर्वेषांप्रवदन्ति विमोहिताः ॥ ६३ ॥ देहाकारेण चैकत्वेसत्यपिहिजपुंगवाः शिरसापादयोः साम्यं सर्वथा नास्तिहिद्विजाः ॥ ६४॥ यथाश्वापानयोः साम्यंच्छिद्रत्वेपि न विद्यते तथैकत्वेपि सर्वेषांरुद्रसाम्यं न विद्यते ॥ ६५ ॥ विष्णुप्रजापतीन्द्राणां मुत्कर्षं शंकरादपि प्रवदन्तीववाक्यानि श्रौतानि प्रतिभान्तिच ॥ ६६ ॥ पौराणिकानि वाक्यानिस्मार्तानि प्रतिभान्ति च तानितत्वात्मना तेषांमुत्कर्षंप्रवदन्तिहि ॥ ६७ ॥ विष्णुं प्रजापतींद्रेभ्यो रुद्रस्योत्कर्षमास्तिकाः वदन्तियानि वाक्यानितानि सर्वाणिहिद्विजः ॥ ६८ ॥ प्रवदन्तिस्वरूपेण तथा तत्वात्मनापिच नैवंविष्णवादिदेवानामिति तत्वव्यवस्थितिः ॥ ६९ ॥ बहुनोक्ते न किंसर्वास्त्रिमूर्त्तीनां विभूतयः वरिष्ठाहिविभूतिभ्यस्तेवरिष्टा न संशयः ॥ ७० ॥ तेषुरुद्रोवरिष्टश्च ततोमायोपरः शिवः मायावशिष्टात्सर्वज्ञात्सांवः सत्यादिलक्षणः ॥ ७१ ॥ वरिष्टोमुनयः साक्षाच्छिवोनात्र विचारणा शिवाद्वरिष्टोनैवास्तिमयासत्य मुदीरितम् ॥ ७२ ॥ शिवस्वरूपमालोक्य प्रवदामि समासतः शिवादन्यतयाभान्त शिवएव न संशय ॥ ७३ ॥ शिवादन्यतयाभान्तं शिवं योवेदवेदतः सवेदपरमं तत्वं नास्ति संशयकारणम् ॥ ७४ ॥ यः शिवः सकलं साक्षाद्वेदवेदान्तवाक्यतः समुक्तोनात्रसंदेहः सत्यमेवमयोदितं ॥ ७५ ॥ भासमानमिदं सर्वं भानमेवेतिवेदयः सभा न रूपंदेवेशंपतिनात्रविचारणा ॥ ७६ ॥ प्रतीतमखिलं शम्भुस्तर्कतश्च प्रमाणतः स्वानुभूत्याच योवेदस एव परमार्थवित् ॥ ७७ ॥ जगद्रूपं तयापश्यत्रयिनैव प्रपश्यति प्रतीत मखिलं ब्रह्मसपश्यं न हि संशयः ॥ ७८ ॥ प्रतीतम प्रतीतञ्च सदसच्चपरःशिवः इति वेदान्तवाक्यानां निष्टाकाष्टासुदुर्लभा ॥ ७९ ॥ इति सकलं कृपयामयोदितं

श्रुतिवचसा कथितं यथा तथैव यदिह्हृदये निहितं समस्तमेतत्परमगतिर्भवता मिहैव सिद्धा ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सूत संहितायां यज्ञवैभवखंडस्योपरिभागे सूतगीतायां द्वितीयोध्याय: ॥ २ ॥ अथ पराशरोपपुराणे ॥ सर्वकारणमीशान सांब: सत्यादि लक्षण: न विष्णुर्नविरिंचिश्च न रुद्रोनापर: पुमान् ॥ ३३ ॥ अथात: संप्रवक्ष्यामि देवताधिक्यमादरात् यस्य विज्ञान मात्रेण प्रसीदति महेश्वर: ॥ १ ॥ अचेतनेभ्य: सर्वेभ्यश्चेतना अधिकामुने चेतनेषुमनुष्याश्च मनुष्येष्वधिकाद्विजा: ॥ २ ॥ द्विजेषु ब्राह्मणास्तेषु कुलीना अधिकास्मृता: तेभ्योमनुष्यगन्धर्वा अधिकावेदवित्तम: ॥ ३ ॥ तेभ्योपि देवगन्धर्वा: पितरश्चतत: परं कर्म्मदेवसमाख्याश्च तथा देवास्तत: परं ॥ ४ ॥ तेभ्यइन्द्रोधिकस्तस्मादधिकस्तुबृहस्पति: बृहस्पतेरपि प्राज्ञ: प्रजानाथोधिकस्मृत: प्रजापतेरपि ब्रह्मा ब्रह्मणो विष्णुरास्तिक: विष्णोरपि हरस्तस्मान्नाथोसाक्षान्महेश्वर: ॥ ६ ॥ ततोधिकतर: साक्षाच्छिव: सांब: सनातन: तदन्यद्विश्वमीशान: सतुविश्वाधिक: शिव: ॥ ७ ॥ रुद्राधिक्यमविज्ञाय ब्रह्मनारायणौपुरा अहं ब्रह्मात्वहं चेतिविभ्रांत्याकुरुतारणं ॥ २४ ॥ क्रोधेन महतायुक्तो ब्रह्मासर्वजगत्पति: शशापविष्णुंगर्भस्थोभवत्वमितिमोहित: ॥ २५ ॥ त्वद्भक्ताब्राह्मणा: साक्षात्रिपुंड्रभस्मगुंठने भवेयुर्विमुखानित्यं वेदसिद्धेपिसुक्तिदे ॥ २६ ॥ त्रिशूले चतुरस्रे च वेणुपत्रोपमे तथा पुंड्रांतरेरतानित्यं भवेयुस्तांत्रिकाद्विजा: ॥ २७ ॥ आयुधै: शंखचक्राद्यैस्त्वदीयैरंकिताद्विजा: अग्नितप्तैर्महामोहाद्भवेयुश्चां सयोर्द्वयो: ॥ २८ ॥ वेदसिद्धेनमार्गेण त्वदीयाराधनेद्विजा: त्वद्भक्ताविमुखानित्यं भवेयु: परिमोहिता: ॥ २९ ॥ त्वदीयेपञ्चरात्रेच तन्त्रे भागवते तथा दीक्षिताश्च द्विजानित्यं भवेयुर्निर्भयाद्धरे ॥ ३० ॥ श्रौतस्मार्तसदाचारे सद्योमुक्तिकरेशुभे त्वद्भक्ताविमुखानित्यं भवेयु: परिमोहिता: ॥ ३१ ॥ पराशरउवाच इतिशप्तोविरिञ्चेन विष्णुर्मोहवशंगत: महाक्रोधेन संयुक्त: शशापचतुराननं ॥ ३२ ॥ श्रीविष्णुरुवाच शंकरेण भवेच्छिन्नं त्वदीयं पञ्चमंशिर: पंकजोद्भवकेनापि कारणेनाचिरेणतु ॥ ३३ ॥ त्वद्भक्ता ब्रह्मणालोके क्षत्रिया वैश्यसम्भवा: शूद्राश्च शंकरानित्यं भवेयुर्वैपितामह ॥ ३४ ॥ तन्त्रं त्वदीयं विच्छिन्नं भवेत्सर्वत्रसर्वदा न भवेत्त्वत्प्रतिष्ठाच स्वतंत्रापद्मसम्भव ॥ ३५ ॥ श्रीपराशर उवाच ॥ एवं प्रस्खलितौमोहात्तावप्यभवतांद्विज अविज्ञाय शिवाधिक्य महोमोहस्य वैभवम् ॥ ३६ ॥ आधिक्यं सर्वदेवेभ्यो मनुते शंकरस्य य: संसारसागरन्तीर्त्वामुक्ति पारंसगच्छति ॥ ३७ ॥

रुद्रं विश्वाधिकं साक्षात्सर्वदा सर्वसाक्षिणं सर्वस्मादधिकंचैव मनुतेसतु शंकरः सर्वस्मादधिकत्वं येनवदन्तिपिनाकिनः सममन्यद्वदंत्येनं तेमहापातकैर्युताः ॥३९॥ आधिक्यं सर्वमानानां यथा वेदस्य विद्यते तथा रुद्रस्य देवानामाधिक्यं विद्यते ऽनघ ॥ ४० ॥ वाशिष्टलिंगे ईश्वरः स्पर्शमूर्त्तिः स्यात्शब्दमूर्त्तिः सदाशिवः रुद्रस्तेजोमयः साक्षाद्रसमूर्त्तिर्जनार्द्दनः गन्धमूर्त्तिश्चतुर्वक्त्र इत्येताः पञ्चमूर्त्तयः एताट्टशं रुद्रंसर्वोत्कृष्टं तंरुद्रं यज्ञोच्छिष्टभाग भागवते वदन्ति एषते ब्रह्मभागोस्तु यदुच्छिष्टोध्वरस्यवै यज्ञस्तु रुद्रभागेन कल्पतामद्ययज्ञहन् ॥ ५२ ॥ अस्यार्थः भागोस्त्वित्याह एष इति हे रुद्रयावदल्यर्थे यदित्यव्ययं यज्ञसते यावानुच्छिष्टं अवशिष्टोर्थः तावानेष तवभागोस्तु हे रुद्रतेभागेनाद्ययज्ञः कल्पतां संपद्यतां एताट्टशंनिन्दारूपवाक्यं व्यासप्रणीतं नास्ति आधुनिककृतं निश्चीयते व्यासेन सौरपुराणे इन्द्रदेवसंवादे देववाक्येन शिवनिन्दका पुरुषश्चांडाल इव मन्यते तथाच सौरपुराणे अष्टत्रिंशत्तमेऽध्याये गुरुरुवाच शृणुवन्तुत्रिदशाः सर्वे ममोपायंवदाम्यहं देवः कश्चिद्यदि भवेत्कापटीवैष्णवः स्वयम् ॥ ६१ ॥ शंखचक्रांकिततनुस्तुलसीकाष्ठ भूषितः ऊर्ध्वपुंड्रंच विभ्राणो हरिनामाक्षरं जपन् ॥ ६२ ॥ देवतामात्रनिन्दीच अकलामतिसोभ्द्दरे शिवद्वेष्टा महापाप प्रेरकः शिवनिन्दकः ॥ ६३ ॥ दर्शनेन यदितद्राज्ये शिवनिन्दा कृताभवेत् तदातत्पूर्वजाः सर्वे नरकं यान्तिदारुणं ॥ ६४ ॥ ततोदेवेषु सर्वेषु न कश्चिदवदत्तथा कथयन्तिस्म चान्योन्यं नैतत्कर्मास्तिसुन्दरम् ॥ ६५ ॥ कथाश्चाण्डालः शिवं ब्रूयात्साधारणेन विष्णुना यस्य प्रसादाद्वैकुण्ठः प्राप्तवानीट्टशंपदम् ॥ ६६ ॥ इति इमानि भागवतोक्ता निवेदविरुद्धानि वचनानि नादरणीयानि उक्तञ्च तैतरीय संहितायाम् यदग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्यति यदग्नयेस्विष्टकृतेऽवद्यति भागधेये नैवतद्रुद्रꣳसमर्धयति सकृत्सकृदवद्यति सकृदिवहि रुद्रउत्तरार्धादवद्यत्येषावै रुद्रस्य ॥ ५ ॥ दिक्स्वायामेवदिशि रुद्रं निरवदयतेद्विरभिधारयति चतुरवत्तस्याप्त्यै पशवोवैपूर्वा आहुतय एषरुद्रोयदग्निर्यत्पूर्वा आहुतीरभिजुहुयाद्रुद्राय पशून् पिदध्यादपशुर्यजमानः स्यादतिहायपूर्वा आहुतीर्जुहोति पशूनां गोपीथाय ॥ ६ ॥ शतः स्पर्शयति भूतानामग्निꣳरुद्रस्य सप्रतिꣳशञ्च अत्रवात्स्यायन भाष्यम् स्विष्टकृदेकस्मात् सर्वेभ्योवैकतः कृतेशास्त्रार्थसिद्धः सर्वेभ्यः कार्य संस्कार साम्यतः दर्शपूर्णमासयोः श्रूयते शेषात् स्विष्टकृतेसमवद्यति इति तत्राग्नेयादिनां त्रयाणां हविषां मध्येयस्य कस्यचिदेकस्य हविषः शेषादवदातव्यं

तावतैवशास्त्रार्थानुष्ठान सिद्धेरितिचेत् नैवमनुपयुक्तं हविः संस्कर्तुमिदमवद्यीयते संस्कारस्य सर्वेष्वपि हविःषुसमानः तस्मात्सर्वेभ्योहविः शेषेभ्यः स्विष्टकृदनुष्टेय इति माधवीयवेदार्थ प्रकाशेकृष्णयजुः संहिताभाष्येद्वितीयकाण्डे षष्ठप्रपाठेषष्ठो ऽनुवाकः॥ विस्तरतुपूर्वार्द्धे॥ यच्चतुर्थस्कन्धे यज्ञोच्छिष्टं रुद्रभागकल्पितं तस्य दृढ़ोकरणार्थं नवमस्कन्धे चतुर्थे अध्याये नाभागप्रसंगेन दर्शितं तन्महदसंगतम् उक्तञ्च नाभागानभगापत्यं यततं भ्रातरंकविं यविष्टंव्यभजन्दायं ब्रह्मचारिण-मागतम्। १॥ भ्रातरोभक्तकिंमह्यं भजामपितरंतव किंममार्यास्तताभ्यांक्षु-र्मापुत्रक तदादृथाः॥२। इमेअंगिरसः सत्रमासतेऽद्यसुमेधसः॥ षष्ठंषष्ठमुपेत्या-हकवेंमुह्यं तिकर्मणि॥ ३॥ तांस्त्वंशंसयु सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः तस्वर्यंता-धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः॥ ४॥ दास्यंत्यथततोगच्छ तथा सतुकृतवान्यथा तस्मैदत्वाययुः स्वर्गंते सत्रपरिशेषितम्॥ ५॥ तंकश्चित्स्वीकरिष्यं तं पुरुषः कृष्णदर्शनं उवाचोत्तरतोभ्येत्यममेदं वास्तुकं वसु ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि-स्मामानवः स्यान्नोतेपितरिप्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा॥ यज्ञवास्तुगतंसर्वमुच्छिष्ट मृषयः क्वचित्॥ चक्रुर्हिभागंरुद्राय सदेवः सर्वमर्हति नाभागस्तं प्रणम्याहत-वैशकिलवास्तुकं इत्याहमेपिता ब्रह्मन् शिरसात्वां प्रसादये यत्तेपितावदद्धर्मं त्वंतु सत्यं प्रभाषसे ददामितेमन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्मसनातनं हाग्रणेद्रविणं दत्तं सत्सत्रे परिशेषितं इत्युक्त्वांतर्हितः रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः॥ नभगस्यवंशमाह नभ-गस्यापत्यं नाभागः नाभागादंबरीषो भूतमहाभागवित इति विवक्ष्यन् तद्धेतुत्वेन वंशप्रवर्तकस्य नभगस्य निःकपटं चरितन्तेन तुष्टोरुद्रप्रसादमाह यततमित्या-दिना ब्रह्मचारिणं बहुकालं गुरुकुलेवसन्तं नैष्टिकोसौ इति मत्वाविभागसमये तस्मैभागप्रकल्प्यैवभ्रातरः सर्वदायं विभज्यगृहीत्वापश्चाद्गुरुकुलादागतं यंभाग प्रार्थितं कविंविद्वांसंयविष्टं प्रतीतितं पितरंदायं व्यभजन्नित्यर्थः॥ तदेव प्रश्नो-त्तराभ्यां दर्शयति तत्रनाभागः पृच्छति हेभ्रातरः मह्यं किमभक्तव्य भजन् कंभागंमदर्थेयूयं कल्पितवन्तः भ्रातरः आहुःतदाविस्मृतमिदानींतु तवपितरं विभ जामःत्वं पितरंगृहाणेत्यर्थः सचपितरंगत्वाततहेतात आर्या श्रेष्ठाः ममत्वाम-भांक्षुः भागंचक्रुः मदोयोभागस्त्वमित्यर्थः यद्वाहेतातकिमिदं ममाभांक्षुः भजाम पितरंतवेत्युक्तवन्तः आर्यास्त्वां मह्यं किमर्थं ददुरित्यर्थः पिताह हेपुत्रक तत्तैरुक्तमाआदृथा प्रतारणमावन्तः कृतं तस्मिन्नादरंमाकार्षीः नह्यहंदायभाग साधन मित्यर्थः तथापि तैर्भागत्वेन दत्तोहं तवजविनोपायमुपदेक्ष्यामीत्याह

इम इति सपादाभ्यां द्वाभ्यां अविप्लवः षड्होभवतिषष्ठः षड्होभवतोविहितेषुषड्-हेषु ... षष्ठं षष्ठमहः कर्म्मोपेत्यप्राप्यकर्म्मणि तदनुष्ठानेसुमेधसोपिते ... अनेनमुह्यन्ति कर्व्वहेविद्वन्तान्महात्मनोपित्वं इदमिच्छ रौद्रमिति-चयेत्ज्ञेन दक्षिणा प्रोतचत्ववैश्वदेवेद्वे सूक्ते शंसयुपाठयतत: कर्म्मणिसमाप्तेमति-तेभ्य: यत: स्वर्गंगच्छन्त: स्वसत्रे परिशेषितेनात्मनो धनन्तेतुभ्यं दास्यति अथ तस्मात्ततान् गच्छेतितथेत्यादिमुक्तवाक्यं यथावत् कृतवान् सत्रपरिवेषणं सत्रा-वसिष्टं धनं ॥ ५ ॥ पुरुष औरुद्रः तस्यते इतिदर्शनं शरीरं कृष्णदर्शनं यस्य सत्रास्तुतं यज्ञभूमिकं धनं ममेत्य,वाच तद्दिस्मतदेव ममेदमितिमानवोनाभाग उवाच पुनस्तुरुद्रः नौआवयोरस्मिन्विवादेतेपितरिप्रश्नःस्यादिति पृच्छवान् इति शङ्कोक्तिः पृष्टस्यमनोर्वाक्यं यज्ञवास्तुगतमिति उत्छिष्टं उर्वरितं क्वचिदिति दत्ताध्वरे उच्छेषणभागोवैरुद्र इति श्रुतरेवकिंचसदेव इश्वरः सर्वमप्यर्हतिकिं पुनर्यज्ञावच्छिष्टमित्यर्थः औरुद्रआह यत्त इति इदमाख्यानं श्रुति प्रसिद्धं यदिति-भागवतेव्यासेनोक्तं तत्तैत्तरीयसाखायां स्पष्टतरं द्रष्टव्यं स न उच्छिष्टपरं य एवं वेदेषतेरुद्र भागोयं निरयाचयास्तं जुषस्वविदेर्गौपत्यः रायस्पोषऽसुवीर्यऽसंवत्-सरीणाऽस्वस्ति मनुः पुत्रेभ्योदायंव्यभजत्सनाभानेदिष्टं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरभ-जत्स आगच्छत्सोब्रवीत्कथामानिरभागितिनत्वानिरभाक्षमित्यब्रविदं गिरसइमे सत्रमासतेते ॥ ४ ॥ सुवर्गं लोकं न प्रजानंतितेभ्य इदं ब्राह्मणं ब्रूहितेसुवर्गं लोकं यन्तोय एषां पशवस्ताऽस्ते दास्यं तीति तदेभ्यो ब्रवीते सुवर्गं लोकं यन्तोय एषां पशव आसन्तानस्मा अददुस्तं पशुभिश्चरंतं यज्ञवास्तौरुद्र आगच्छत्सोब्रवी-न्ममवाइमे पशवइत्यदुर्वै ॥ ५ ॥ मह्यमिमानित्यब्रवीन्नवैतस्यतईशतइत्यब्रवीद्य-द्यज्ञवास्तौहीयते ममवैतदितितस्माद्यज्ञवास्तुनाभ्रवेत्यऽसोब्रवीद्यज्ञमाभजाथ तेपशून्नाभिमऽस्य इति तस्माएतमंथिनःसऽस्रावमजुहोत्ततोवैतस्यरुद्रःपशून्नाभिंम मन्यत यत्रैतमेवं विद्वान्मंथिनः सऽस्रावंजुहोति न तत्ररुद्रः पशूनभिमन्यते ॥ ६॥ दधात्वायतनवतीर्या उपजीवनोये भवत उपजीवनीयोभवतितेदुर्वैयेत्वे तमेकाद-शच ॥ ७ ॥ एतेषां मन्त्राणां तात्पर्यं चतुर्वेदतात्पर्यदीपिकायां हरदत्तेनोक्तं अप्यर्कदेवतवतीमृचमामनामः शब्देन विश्व इति शंकरवैश्वदेवीं पित्रींचमतं इति पुष्पदन्तेन पौर्णमितादृशानिकतिनामनिदर्शनानि ॥ ६८ ॥ एषागतिः श्रुतिगिरामितिनिर्णयेन तत्तद्ग्रहार्चेन विधीमुनयः स्मरन्ति मन्त्रेण शंकरशनैः शस्तुपक्रमेण वुध्यस्वशब्दसहितेन वुधस्यपूजां ॥ ६९ ॥ आम्नायमृग्यजुषसामविधं

विचिन्त्यसारं समुद्धृतवतापरमेष्ठिनापि मन्त्रस्त्रिपादयम दृष्टविधान्तरेण दृष्टश्च-राचरगुरोमनुनायथोक्तं ॥ ७० ॥ गृह्णातुकामसनलः सकलं हविस्तेराष्ट्रोवलिं हरति भागदुघः प्रजाभरः पार्थेन शंकर निवेदितसं बुजाचेनेशंहविः स्फुटमदृश्य तपाश्चंतमस्ते ॥ ७१ ॥ टीका अत्रोदाहरणमाह अप्यर्कदैवतवतीमृच० सवितृ-देवस्याघोषाविश्वेदेवस्यतेतुरितिमन्त्रः मन्त्रवाच्यार्थोदि.तीतिनेरुक्ताः तत्तदेवता-द्योतकपदसमन्वयेन नानादेवत्यामितामृचं ब्राह्मणमाह विश्वोदेवस्यन्तेतुरित्याह साविचरोतेन मर्तोवृणीतसख्यमित्याहपित्र्यदेवत्येतेन विश्वेरायइषुध्यसीत्याह वैश्वदेव्येतेन द्युम्नं वृणीतपुष्यसइत्याह पौष्णोतेन सावाएषर्कसर्वदेवत्येति ॥६८॥ अनेनैवन्यायेन तत्तदेवताकेष्वर्कश्रुतत्तत्पदान्वयसमन्विता मन्त्राः कल्पकारैर्वि-नियुज्यन्त इत्याह एषागतिः श्रुतिगिरामिति० शमुपक्रमेणशं नो देवीरभिष्टये इत्यनेनबुध्यस्वशब्दमहितेन उद्बुध्यस्वेत्यनेन ॥ ६९ ॥ इत्थमुत्पादितायाः सावित्र्या स्त्रयीसारत्वमाह ॥ आम्नायमृग्यजुषसाम० त्रिभएवतुवेदेभ्यः पादंपादमदु-दुहत तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याःपरमेष्ठी प्रजापति अथ वर्णस्याप्यत्वेवांतर्भावा-त्त्रिभ्य इत्युक्तं ॥ ७० ॥ क्रमप्राप्तं क्रमेणिवत्वमुपादयतिगृह्णातु कामसनलः सकः नहिपरपरिग्रहार्थोगृह्णत एवसंभवति गृह्णतापि स्वामि न एवसमर्पणीयत्वात् यज्ञस्य यज्ञिनांच हविषां महेश्वर स्येवस्वामित्वमवसीयते यथोक्तं गाथपतिं मेधपतिंरुद्रं जलाषभेषजं आवोराजा न मध्वरस्य रुद्रमित्यादिभिः इमं पशुं पशुपतेते अद्यबध्नामिपशुपतेः पशवोविरूपा इत्यादि कैयतदिदमुक्तं सकलं हविस्त इति ॥ अत्रेतिहास प्रसिद्धमर्थं निदर्शनत्वेनाहपर्थेः न शंकरनिवेदि० श्लोकश्च भवति तस्योपहार सकलं नैशंनत्यकमात्मनः ॥ ददर्शचरवकाभ्याशिवा सुदेवेनिवेदित मिति ॥ तत्रसप्तम्यावासुदेवस्य हविर्निवेदनाधिकरणत्वमुक्तं ॥ ईश्वरस्य तु संप्रदानत्वमुक्तंभिप्रेतमिति ॥ ७१ ॥ सोमपशुगव्यलक्षणा नांप्रधा-नहविषां ईश्वरशेषित्वमुत्पत्ति सिद्धमित्याह ॥ सोमंत्वदर्थमनुशुश्रुमह्वयमान-मालंभनंतवपते नियतं पशूनां गव्यञ्चते गविसदेवतदध्वरेषुचण्डेश्वरेण सहनाक सदांविवादः ॥ ७२ ॥ उत्पत्तितः शिवगृहीतसमन्वयास्ते सोमः पशुर्गविच संतिह वींषियानि ॥ देवाः पशोर्हविषिभागमनुस्तयाते गृह्णन्तितद्दितरेष्वपि कल्पनीयं ॥ ७३ ॥ कर्मैकमेव न परंपशुवन्धनं तेकर्तव्यमाहुरूपलभ्यतवाभ्य-नुज्ञां ॥ सर्वेषु कर्मसुभवत्प्रसवेनपुंसामारं भणं प्रपदमन्त्र विदोगृणंति ॥ ७४॥ सोमं त्वदर्थमनुशुश्रुम० ॥ अयंसोमः कपर्दिनेघृतं न पवनतेमधु इति महेश्वर

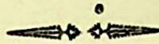
शेषित्वमुक्तं सोमस्य पशुं पशुपतेर्ते अद्येतिपशूनां रौद्रंगवीति गव्यस्य ॥ ७२ ॥ एतदेवविवृणोति ॥ उत्पत्तितः शिवगृहीत ॥ उत्पत्तितः अभियवोपाकरण प्रभृत्या उतदाहियग्रवमुत्प्रद्यते हवींषिपयो दधिघृतादोनितद्वदितरेष्वपीति यथापशौ अंशभागिनोनां देवतानां ईश्वरानुमतिरवश्यंभाविनी तथैव हविरन्तरेष्वपीति महेश्वर समन्वयाविशेषात्तत्तदनुमत्या भवितव्यमिति ॥ ७३ ॥ पशुवन्धन कर्म्मवदन्येष्वपि कर्म्मसु महेश्वरानुमतिः प्रपदमन्त्रेदृष्टेत्याह ॥ कर्मैकमेवेनपरंपशु० ॥ सर्व कर्मारम्भेजप्य प्रपदाख्योमन्त्रः सामगैराम्नायते ॥ तपश्चतेजश्चेत्युपक्रमय कर्म्माधिपतये नम इत्यंतं अत्रविरूपाख्योसीति प्रस्तुत्यत्वां प्रपद्ये त्वयासूत इदं कर्म्मकरिष्यामितन्मेसमृध्यतां तन्मउपपद्यतामितितत्तत्कर्मारम्भेषदेवाभ्यनुज्ञान प्रार्थ्यते । तदिदमुक्तं प्रपदमन्त्रविदोगृणंतीति ॥ ७४ ॥ *संकल्पतःप्रभृतियज्ञतनुंविभज्यदेवान् प्रजापतिमुखान्प्रतिदर्शयंतः । सामाहुतिं हुतवहार्चिषिहूयमानां अध्वर्यवस्तवगृणंतिगिरीश भागं ॥७५॥ सर्वैधनं धनपते रूपशुक्रशिष्टं यद्देवतातिथि समाश्रित भृत्यवर्गैः ॥ यज्ञेशयज्ञपरिशिष्टमपित्वदीयं मंथग्रह व्यतिकरैभवतायशोक्तम् । ७६ ॥ गव्येन सामहविषा चरभिस्वपक्वैः साध्याखिलसप्तमुनयोविभजन्ति यज्ञान् सर्वेषुतेष्वपि भवान विशेषितस्त्वां राजा न मध्वरविधौवयमासनामः ॥ ७७ ॥ अग्नि प्रकाशयतु शंकर रुद्रवन्तं मन्त्रस्त्वमग्न इति वातदनन्तरोवा ॥ राजन्वतोचितिरितीव विशेषणस्यनात्वं प्रतोयमपनेतुमिमौ प्रकर्षं । ७८ ॥ यारोहिणी भवतिदेव तथा त्वदीयातस्यां त्वदेकविषयौविषमाक्षदृष्टौ ॥ मन्त्राविमौतदिहयज्ञपतित्वमोशस्पष्टं त्वदेकविषयं प्रतियंतघोराः ॥ ७९ ॥ पित्राकुमारमिवभृत्यमिवेश्वरेण शिष्यं गिरीश गुरुणेवगुणाधिकेन ॥ अग्निंत्वयाकृतविशेषणमूचिवां सौमन्त्राविमौगसयतः परमं प्रकर्षम् । ८० ॥ ऋक्संहितावदति मेधपतिं भवन्तं राजा न मध्वरविधेरयमाहमन्त्रः ॥ त्वत्सूक्तमन्त्रगणमण्डलमौलिरत्नं रूपेण च त्वदविधान गृहीतशक्तिः ॥ ८१ ॥ त्वत्कंपुरामरण तस्तनयित्नुकल्पादाकारणं परमकारुणिकब्रुवाणः ॥ मंत्रोयमावरी इति यावदुपक्रमायामूलं महेशविदितः शिव धर्म्मसूक्तेः ॥ ८२ ॥ * सोमलक्षणे हविषीहूयमानावस्थायामपि महेश्वर समन्वयः श्रूयत इत्याह ॥ संकल्पतः प्रभृतियज्ञ० ॥ प्रजापतिमनसांधोच्छेतो इति यज्ञतनवेसमाम्नायन्ते अवरुद्र आहुतः इति हूयमानावस्य सोमस्य रुद्रतादात्म्य प्रतिपादनमुखेन तद्रौद्रत्वमुक्तं ॥ ७५ ॥ तत्रसर्वावस्थासुतत्तदेवता-

त्मकत्वेश्वरदैवतनीत इति दर्शनात् ॥ अवगच्छाम इति देवतांतरगृहेतुमिष्ट मपि यज्ञपतित्वादीश्वरस्यै वेतिसोदाहरणमाह ॥ सर्वधनं धनपतेरूपमन्यि गृहवृत्तान्ते यद्यज्ञवास्तौ हीयते ममैवैतदिति हीयते परिशिष्टं तयाविद्यत इत्यर्थ. बह्वृच ब्राह्मणेच ममवाइदं ममचैवास्त्विति ॥ सर्वेषामपि यज्ञानां ईश्वर एवेश्वर इत्याह ॥ ७६ ॥ गव्यं न सोमहवि० अग्नयेरुद्रवतेपुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिति श्रूयते तत्रयाज्यानुवाको भवत त्वमग्नेरुद्र आवोराजा न मिति ॥७७॥ तत्रकथमग्नेरध्वरराजत्वं न प्रतीयते श्रत आह ॥ अग्नि प्रकाशयतुशं० ॥ राजन्वतीचितिरितीच्छीवाक्यं विशेषण भूतस्या पिराज्ञः प्रकर्ष यथा नायनयि तथा अग्नीनीयमानावपि मन्त्रोतद्विशेषण भूतरुद्रप्रधानायेवभवत इति ॥ ७८ ॥ तत्रचयाज्यानुवाक्ययोर्मन्त्रयोरीश्वर प्रकाशकत्वंदृष्टमित्याह ॥ यारोहिणीभवतिदेव तथा० ॥ अग्न्युपसर्जनतयादेवस्य निर्देशमसहमानः तत्समाधत्ते ॥ ७९ ॥ पित्राकुमारमिवभृत्यमिवेश्वरे ॥ निर्देशागतं अप्राधान्यं वस्तुगतप्राधान्यं नोपरुध्यादिति भावः ॥ ८० ॥ मन्त्रान्तर संवाददपि मन्त्रोयमीश्वर गोचर एवेत्याह ॥ ऋक्संहितावदति मेधपतिं ॥ रौद्रसूक्तपाठादपितत्प्रतिपादक एवार्थंमन्त्र इत्याह ॥ त्वत्सूक्तमन्त्रमखलमौलिरत्ना इमारुद्रायेत्यादिरौद्रसूक्तमध्वर्यवः समामनन्ति ॥ तस्मादयमावोराजान मध्वरस्येत्यन्तिमोमन्त्र इति स्वरूपपर्यालोचनयापि देवमेवाभिधातुं अयंशक्नोतीत्याह ॥ रूपेणच त्वदभिधान गृहीतशक्तिः ॥ अग्न्यादि शब्दानां गुणवृत्त्याप्यत्रोपपत्तिरितिभावः । ८१ ॥ अर्थाभिधानपुरः सरमयमेवमन्त्रः शिवाराधन वाक्यस्य मूलमित्याह ॥ त्वत्कं पुरामरणतस्तनः । त्वत्कंत्वदीयं अचितशब्देन मन्त्रस्थेन मरण मुच्यते ॥ स्तनयित्नुशब्देन तत्साद्दश्यं सकारलोपः छान्दसः ॥ आक्रणुध्वमित्याह्वानं यावदुपक्रमाशिव धर्मसूक्तिः यावन्नायातिमरणं यावन्नाक्रमतेजरा ॥ यावन्नेंद्रियवैकल्यं तावत्पूजय शंकरं इति ॥ ८२ ॥ विश्वाधिकस्त्वमसिविश्वमयं सुरारिर्यन्नेश्वरस्त्वमसियज्ञमभुंगृणन्ति आद्याजगत्प्रकृतिरेष भवान्निमित्तंन्नातः कथंनुयुवयोर्भगवन्नभेदः ॥ ४५ ॥ विश्वात्मनः श्रुतिषुविश्वपतित्ववादः संगच्छतेस्तुतितथैवरथांगपाणेः ॥ विश्वस्यपत्युरथविश्वतयाभिधानं नालंगुणायगुणगृह्य निकर्षहेतुः ॥ ४६ ॥ विश्वं महेश्वर भवान धितिष्ठतीति विश्वात्मतामुपचरं तियदागमास्ते ॥ तत्पण्डिताविदितवेदरहस्य शीलाजानंति मूढम तयस्तुत देवसत्वं ॥ ४७ ॥ एवमुपास्योपासक भावादत्यं तभिन्नयोः परमेश्वर परमपुरुष

योरभेदवाद इत्यन्तत्राह ॥ विश्वाधिकस्त्वमसिविश्व० ॥ विश्वाधिकोरुद्रो-महर्षिरित्यत्रविश्वाधिकत्वमाम्नायते ॥ विश्वं नारायणमिति विश्वत्वं ॥ गाथ पतिं मेधपतिंरुद्रं जलाषभेषजं इति आवोराजा न मध्वरस्य रुद्रं इतिच यज्ञेश्व-रत्वं ॥ विष्णुर्यज्ञ इति यज्ञोवैविष्णुरितिच यज्ञात्मकत्वं तस्य प्रकृतित्वंतुतद साधारणतन्त्रादेवावगम्यते । वासुदेवः पराप्रकृतिरिति ॥ शिवस्य निमित्त कारणत्वे मन्त्रोपनिषदाह ॥ यः कारणा नोतिनिखिलानितानिकालात्मयुक्ता-न्यधितिष्ठत्येक इति ॥ एवं तत्तदोशितव्यरूपः परमपुरुषः तत्तदीश्वरेण कथं तादात्म्यमापद्यंत इति भाव ॥ ४५ ॥ ननुनकेवलमस्य विश्वं नारायण मिति विश्वत्वमाम्नायते पतिं विश्वस्येति विश्वपतित्वमपि अत आह ॥ विश्वात्मनः स्तुतिषुवि० विश्वत्वविश्वपतित्वयोस्त्वायातययोरिवपरस्पर विरुद्धयोरेकत्रसमावेश सम्भवात् विश्वपतित्ववादः स्तुतिरेव उत्कर्षहेतुः स्तवनमपकर्ष हेतुर्निर्देतिसार्व-जनीनमिति ॥ ४६ ॥ ईश्वरेपिविश्वाधिकत्वोविश्वात्मकत्वमितियोवैरुद्र इत्यादौ श्रूयते अत आह ॥ विश्वं महेश्वर भवा० ॥ अत्र सर्वशब्दपर्यायेण विश्वशब्देन सर्वाधिष्ठातृत्वं लक्ष्यते ॥ तथाहुः पौराणिकाः शिवेनाधिष्ठितं सर्वं जगदेतच्चरा-चरं ॥ सर्वरूपः स्मृतः शर्वस्तथाज्ञात्वानमुह्यति इति ॥ ४७ ॥ हविर्नोस्ती-तिदेवस्य यज्ञे चैवत्वमुक्तवान् ॥ शंभोर्यज्ञेश्वरस्यान्तवारयित्वा प्रजापतिं ॥ ४८ ॥ अदत्वाये महामोहाद्धविःप्रथममध्वरे ॥ तेषां शिरांसिशीघ्रेणछिन्नानिस्युर्मदा-ज्ञया ॥ ५० ॥ इति स्कन्दे तत्रैव अदत्वा प्रथमं यज्ञे हविरस्यय जन्तिच ॥ तेषां शिरांसिछिन्नानि विशिर्याणि भवंत्विति ॥ ७ ॥ इत्यादि बहुशः ॥ इत्यादि नंदिदधीच वाक्येनये शिवंपरिहृत्ययज्ञेऽन्यदेवं यजन्ति तेषां शिरांसिपतिष्यन्ति ॥ तद्वत् यज्ञस्य प्रथमभागंये ग्रहीष्यंति तेषामपि शिरांसिपतिष्यंति ॥ तद्यथा एतन्मखेशस्य सुवर्णपात्रे हविस्समग्रं विधिमन्त्र पूतं विष्णोर्नयास्य प्रतिमस्यभागमप्रभुर्विभुज्याहवनीय एवइत्येवमभिप्रायेण पूजयन्नित्यर्थः ततश्च दक्ष प्रजापतिं हस्ताभ्यामासाद्य तिष्ठतोविष्णोस्सशिर स्कोहस्तावपिछित्वायज्ञाद्बहिष्कृतः इत्यप्युक्तम् ॥ तद्यथासमुत्थाय महाविष्णु र्भ्रामयित्वात्रिधापुनः ॥ शूलंवक्षस्य थोहस्तौछित्वा यज्ञाद्बहिष्कृतः ॥ शिवाज्ञयामहाविष्णोगच्छत्वं निधिसंनिधौ ॥ जगन्नाथेतिनाम्नातेपूज्यं दारु-मयंवपुरित्यतः ॥ यज्ञीयपदार्थस्य समग्रस्यहिशिवोऽधिष्ठातातोतस्यैवाज्ञानु-सारेण सर्वेषां ग्रहणाधिकारः पश्चाद्यः शेष उर्वरितः तमपिरुद्रस्यैवहिज्ञात्वा

ग्टह्णीयुः इति वर्णाश्रमस्थितानां पुरुषाणां रुद्र निर्माल्य भक्षणं नित्यमेवसिद्धम् तत्राहमनुः विघसासीभवेन्नित्यं नित्यंवामृतभोजनम्॥ विघसोभुक्तशेषंतु यज्ञ शेषं तथा मृतम्॥ २८५॥ विघसासीति॥ सर्वदाविघस भोजनः स्यात्॥ सर्वदाचामृतभोजनो भवेत्॥ विघसामृतपदयोरप्रसिद्धत्वादर्थंव्याकुरुते॥ वि-प्रादिभुक्तशेषं विघस उच्यते॥ दर्शपौर्णमासादि यज्ञशिष्टं पुरोड शाद्यमृतम् सामान्याभिधानेऽपि प्रकृतत्वाच्छ्राद्धेवि प्रभुक्तशेषभोजनार्थोऽयं विधिरित्यलम्॥ देवानृषीन्मनुष्यांश्चपितृन् ग्टह्यांश्च देवताः॥ पूजयित्वाततः पश्चाद्गृहस्थः शेष-भुग्भवेत्॥ ११७॥ अघंसकेवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात्॥ यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥ इति मनुस्मृतीयाध्याये॥ इति रुद्रोच्छिष्टं सर्वेषां ग्रहण मेवसिद्धम्॥

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे चतुर्थस्तरङ्गः।



## अथ पञ्चमस्तरंगस्तत्रशक्ति विषयम्।

ययासंजायते सर्वं यस्यामेवविलीयते जननीसर्वभूतानां तस्यै शक्त्यै नमो नमः॥ १॥ बुद्धेर्जाड्यंयत्प्रतेनार्शमेति ब्रह्मज्ञानं यद्व्रतोनासमेति दुष्टान्दै-त्यैन्याजघानेकहेतिः पायान्मायासान्तरायादुमेति॥ २॥ तत्रसौरम्॥ श्रुत्वा ग्रभिन्नसह्विषासुरपातपीठां॥ सुत्खातखड्ग रुचिराङ्गदवा हुदण्डाम् येऽभ्यर्च यन्तिह्विनतभुजोनवम्याम्॥ दुर्गातिदुर्गगहनं न विशन्तिमर्त्याः॥ १॥ अन्यच्च-दाहभगवान् कपिलोमहात्मा॥ मरीच दैत्यगुरवेभृगु नन्दनाय॥ तत्वं शृणुष्वसु-मनाभगवन्महान्तमाराधनं कियदपि त्रिजगज्जनन्याः॥ २॥ याकामधेनुरष्ट-शीकिलभक्तिभाजायाकल्पपादपसमासुकृतार्थिनांच॥ चिन्तामणीत्यवगताधन लिप्सुभिर्वा॥ कस्मान्नतां भृगुसुतान्नयजन्तिगौरीम्॥ ३॥ येतां स्मरन्ति निगडैरपिबद्धपादा॥ व्याघ्राह्वि चौरनृपवन्हि भयेषुदुर्गाम्॥ तेषां न किञ्चि-दपिशत्रुभयं नृणांस्यादवद्धास्तुमुक्ति सुपलभ्यसुखंलभन्ते॥ ४॥ हे भार्गवार्य

गिरिजा प्रणति प्रसादे ॥ दैवं निरुद्धमपि न प्रभवत्यवश्यम् ॥ आसन्नमेवसमयां वनराजिसुचैर्ग्रीष्मोऽपि पल्लवचयोपचितां करोति ॥ ५ ॥ धात्राखहस्तलिखितानि ललाटपट्टे ॥ दैवाक्षराणि दुरितैकनिबन्धनानि ॥ गौरीप्रसादजनिते न जनः मम तस्तान्येकतः सपरिमार्जयतीतिचित्रम् ॥ ६ ॥ तेसंमताजनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति बन्धुवर्गः ॥ धन्यास्त एवनिभृतात्मज भृत्यदाराः येषां सदाभ्युदयदा गिरिजाप्रसन्ना ॥ ७ ॥ यः कारयेद्वरपताकसित भ्रगोरम् ॥ तत्रोपुरश्च सुचयाऽऽयतनंभवान्याः ॥ चन्द्रावदातभवनेविपुलेच सौख्यम् ॥ राज्यं श्रियंच भुवि कामसुपैतिसत्यम् ॥ ८ ॥ येकारयन्ति भवनं भृगुनन्दनायाः शक्त्या सुवर्णरजतायसतास्रशैलम् ॥ सामन्तमौलिमणिरश्मिसमुज्ज्वलांगे ॥ सिंहासनेऽङ्गदकिरीटभृतोरमन्ते ॥ ९ ॥ ये मेरुमूर्द्धि सुरसंघकृता भिषकां ॥ पञ्चामृतेगिरिसुता मभिसेचयन्ति । तेदिव्यकल्पमनुभूयसुरेन्द्रराज्यं राज्याभिषेकमतुलं पुनराप्नुवन्ति । ये देवदारुमलयोद्भव चन्दनेन येकुंकुमेन च शिवासुपलेपयन्ति ॥ तेदिव्यगन्धपटवास सुगंधदेहाः ॥ नन्दन्तिनन्दन वनेषु सहाप्सरोभिः ॥ ११ ॥ दिव्यैश्चपद्मकरवीरकजातिपुष्पैः ॥ गौरीशुभैरनुदिनं ननुयेऽर्चयन्ति तेभूतलेनरपतित्वमवाप्ययोगीद्यास्यन्ति सौख्यमचिरेण परां चसिद्धिम् ॥ १२ ॥ आमोदिभिर्मरुकपुष्प सुगंधधूपैर्येलोकनाथदयितामिहधूपयन्ति ॥ कर्पूरसारसमगन्धवराः सुरामाः आलिंगयन्ति दयितासुरराजलोके ॥ १३ ॥ दोधूयते कनकदण्डविराजितैश्च ॥ सच्चामरैः प्रचलकुण्डलसुन्दरीभिः दिव्यांवरस्रग्नुलेपन भूषणांगः ॥ कलामण्डानि भवनेवरवस्त्रपूजाम् ॥ १४ ॥ देदीप्यते सकनकाज्वलपद्मरागः ॥ रत्नप्रभाभरण हेममयेविमाने ॥ दिव्यांगनापरिवृतोमनसोऽभिरामः ॥ प्रज्वाल्यदीपममलं भवनेभवान्याः ॥ १५ ॥ योजागरं गिरिसुताभव ददाति चैत्रोत्सवादिदिवसेऽभ्यधितूर्यनादम् ॥ वीणामृदंगमधुरस्वर भाषिणीभिः संगीयते सद्विकशोदरिकिन्नरीभिः ॥ १६ ॥ कुर्वन्ति ये मदुपलेपनवासचित्रम् ॥ संमार्जनं गिरिसुतातनयेऽनुरक्ताः ॥ मुक्ताकलापमणिकांचनभित्तिचित्रैर्वैडूर्यकुट्टिमतलेभुवनेवसन्ति ॥ १७ ॥ दद्याच्चयः परम भक्तियुतोभवान्याः ॥ घंटावितानमथचामरमातपत्रम् केयूरहारमणि कुण्डल मण्डितोऽसौ ॥ रत्नाधिपोभवति भूतलचक्रवर्त्ती ॥ १८ ॥ अभ्यर्चयन्ति विधिवद्विविधोपचारै र्गन्धर्वसिद्धविबुधेस्तुतपादपद्माम् ॥ भक्त्याप्रहृष्टमनसः प्रणमन्तिदेवीम् ॥ तेभुर्भुवः स्वमहिमासफलाभवन्ति ॥ १९ ॥ गायन्ति ये गिरि-

सुतां च विलोकयन्ति ध्यायन्ति वा मलधियश्च शिवां स्मरन्ति गौरीमुमांभगवतीं जगदेकदेवीम् । ते वै प्रयान्ति परमं पदमिन्दुमौले ॥ २० ॥ देवीं समस्तभुवनादि-विचित्रदेहाम् । सूर्य्याग्निचन्द्रनयनामिह कालमात्राम् । दीर्घाष्टदिग्भुजचयां मृदुभावहासाम् । येऽभ्यर्चयन्ति हृदिहन्तत एव धन्याः ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुपूरु-पृथुराघवधुन्धुमारमान्धातृहैहयययात्यजमीढ़मुख्यैः । आरोग्यसन्ततिधराजयसौख्य-लुब्धैः सम्पूजिता भगवतीमनुजैर्भवानी ॥ २२ ॥ योगेश्वरीं वेदवतीं भवानीं ब्राह्मीं कुमारीं सुभगां च वाणीम् । नारायणीं हैमवतीमनन्तां विश्वादिभूतां भजभार्गवार्य्याम् ॥ २३ ॥ यशांसिविद्यासुखमर्थमायुर्विभूतयः पुष्टिरनर्थहानिः । तद्भक्तिभाजां भविनां विमुक्तये भवन्ति योग्यानुगताः समाधयः ॥ २४ ॥ नीचोऽपि मन्दमतिरल्पकुलोद्भवोऽपि भीरुः शठोऽपि चपलोऽपि निरुद्यमोऽपि गौरी-पदाब्जयजनार्थमिहोद्यतश्च सन्दृश्यते ननु सुरैरपि गौरवेण ॥ २५ ॥ तावत्कृता-कृतमपि मतिघातमेति । कर्मार्जिते न विधिनापि कृतोद्यमेन । आर्य्यापदा-ब्जुजरजोविरजः प्रणम्य । यावन्न वत्सशिरसाध्रियते जनेन ॥ २६ ॥ विद्यातपः कुलजनिं विविधं च शिल्पम् । शौर्य्यं मतिश्च विनयस्तु विदग्धता च । एते गुणाः गुणवतां परमे च भद्रा । गौरीप्रसादरहितस्य तृणी भवन्ति ॥ २७ ॥ तावन्न सिद्ध्यति रसोनरसायनानि । मन्त्रा महोदयफलाविलसत्प्रवादाः । क्लिश्यन्ति साधकजना भुविवर्त्तिकाश्च । यावन्न तुष्यति कवे वरदा भवानी ॥ २८ ॥ गो-ब्राह्मणार्चनपराश्च रताः स्वधर्मे । ये मद्यमांसविमुखाः शुचयश्च शैवाः । सत्य-प्रियाः सकलभूतहिते रताश्च । तेषां च तुष्यति सदा सुमते मृड़ानी ॥ २९ ॥ भूतादिभूतां विषयेन्द्रियाणां परां तथान्तःकरणात्मरूपाम् ॥ सदाऽर्चयां काय-मनोवचोभिः सञ्चिन्तयार्य्यां सकलार्थदात्रीम् ॥ ३० ॥ अजामेका लोहितशुक्ल-कृष्णां वह्वीः प्रजाः सृज्यमानां सुरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहा-त्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ३१ ॥ प्रभावमेतत्त्रिजगज्जनन्यास्तवोदितं भार्गव-वेदगुह्यम् । श्रोतुर्यदिच्छा तदुदीरयस्वविप्रर्षे किं वा कथनीयमस्ति ॥ ३२ ॥ शृण्वन्ति ये वाऽथ पठन्ति मर्त्याः स्तवान्विताख्यानमिदं भवान्याः । भुक्त्वा चयान् कामसुखांश्च तेऽत्र प्रयान्ति शम्भोः परमं पदञ्च ॥ ३३ ॥ एवं मुनीनां गदितं भवान्याश्चरितं शुभम् । श्रुत्वा पुरन्दरः श्रीमान् भक्त्या परमया द्विजाः ॥ ३४ ॥ आराधयामास तदा पार्वतीं परमेश्वरीम् । वरांश्च विविधान् लब्ध्वा चक्रे राज्य-मकण्टकम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्री सौरे सूतशौनकसंवादे
पार्वतीप्रभावकथनं नाम पञ्चाशोऽध्यायः॥

अथ महाकालसंहितायाम्॥ शून्ये ब्रह्माण्डगोले तु पञ्चाशच्छून्यमण्डले। पञ्च-शून्यस्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता॥ १॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डं राजदन्ता-ग्रके शिवे। स्थाप्यशून्यालयं कृत्वा कृष्णवर्णं विधाय च॥ २॥ महानिर्गुणरूपा च वाचातीतापरा कला। क्रीड़या शून्यरूपन्तु भर्त्तारञ्च प्रकल्पयेत्॥ ३॥ सृष्टे-रारम्भकार्य्यार्थं दृष्टाच्छाया तदा तया। इच्छाशक्तिस्तु सा जाता तया कालो विनिर्मितः॥ ४॥ प्रतिबिम्बं तत्र दृष्टं जाता ज्ञानाभिधातु सा। इदमेतत् किं विशिष्टं जातं विज्ञानकं यदा॥ ५॥ तदा क्रियाभिधा जाता तदिच्छा तो महे-श्वरि!। ब्रह्माण्डगोलके देवि! राजदन्तस्थितं तु यत्॥ ६॥ सा क्रिया स्थापया-मास स्वस्व स्थानक्रमेण च। तत्रैव स्वेच्छया देवि! सामरस्य परायणः॥ ७॥ तदिच्छा कथ्यते देवि! यथावदवधारय। युगादिसमये देवि! शिवं परगुणो-त्तरम्॥ ८॥ तदिच्छा निर्गुणं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम्। शाश्वतं सुन्दरं ब्रह्मन् शुद्धं सर्वयुतं वरम्॥ ९॥ आदिनाथं गुणातीतं काल्या संयुतमीश्वरम्। विपरीतं रतं देवं सामरस्य परायणम्॥ १०॥ पूजार्थमागताः देवा गन्धर्वाप्सरो गणाः। यक्षिणी किन्नरीमन्यासुर्वश्याद्यां तिलोत्तमाम्॥ ११॥ वीक्ष्य तन्मायया प्राह सुन्दरि! प्राणवल्लभे!। त्रैलोक्यसुन्दरि प्राणवासनि प्राणरञ्जिनि!॥ १२॥ किमागतं भवत्याद्या मम भाग्यार्णवो महान्। उक्ता मौनधरं शम्भुं पूजयन्त्य-प्सरो गणाः॥ १३॥ अप्सरस ऊचुः॥ संहारा तारितं देव! त्वया विश्वजन प्रिय। सृष्टेरारम्भकार्य्यार्थमुद्युक्तोऽसि महाप्रभो!॥ १४॥ वेश्याकृत्यमिदं देव! मङ्गलार्थं प्रगायनम्। प्रयाणोत्सवकाले तु समारम्भे प्रगायने॥ १५॥ युगाद्यारम्भकालो हि वर्त्तते मृड़शङ्कर!। इदानीं कोटयः सन्ति तस्याः प्रसवविन्दुवत्॥ १६॥ ब्रह्माणी वैष्णवीनाञ्च माहेशी कोटिकोटयः। तवसामरसानन्द दर्शनार्थं समु-द्भवाः॥ १७॥ सञ्जातास्वागता देवाश्चास्माकं सौख्यसागराः। रतिं हित्वा कामि-नीनां नान्यत् सौख्यं महेश्वर!॥ १८॥ सा रतिर्द्दृश्यतेऽस्माभिर्महत् सौख्यार्थ-कारिका। एवमेव तु चास्माभिः कर्त्तव्यं भर्त्तृभिः सह॥ १९॥ एवं श्रुत्वा महा-देवो ध्यानार्द्धस्थितमानसः। ध्यानं हि त्यासायया तु प्रोवाच कालिकां प्रति॥२०॥ शिवारूपधरे घोरे घोरदंष्ट्रे भयानके। त्रैलोक्यभक्षणकरी सुन्दर्य्यः सन्ति तेऽ-ग्रतः॥ २१॥ सुन्दरी वीक्षणं कर्म्मकुरु कालप्रिये शिवे!। ध्यानं मुञ्च महा-

देवि ! आगच्छन्ति ग्रहं प्रति ॥ २२ ॥ तवरूपं महाकालि ! महाकालप्रियं करम् । एतासां सुन्दरं रूपं त्रैलोक्यप्रियकारणम् ॥ २३ ॥ एवं माया भ्रमाविष्टो महाकालो वदन्निति । ईदृक् कालवचः श्रुत्वा कालं प्राह च कालिका ॥ २४ ॥ माययाच्छाद्य चात्मानं स्वयं स्त्रीरूपधारिणी । इतः प्रभृतिमात्रन्तु भविष्यति युगे युगे ॥ २५ ॥ वल्लाद्योषधयो देव ! दिवावह्नी स्वरूपताम् । रात्रौ स्त्रीरूपमासाद्य क्रीड़न्तिस्म परस्परम् ॥ २६ ॥ अज्ञानं चैव सर्वेषां भविष्यति युगे युगे । एवं शापं प्रदत्त्वा तु पुनः प्रोवाच कालिका ! ॥ २७ ॥ विपरीतरतिं कृत्वा चिन्तयन्ति भजन्ति ये । तेषां वरं प्रदास्यामि तत्र नित्यं वशाम्यहम् ॥ २८ ॥ इत्युक्ता कालिका विद्या तत्रैवान्तर्धीयत । त्रिंशन्निखर्वषड्वृन्द नवत्यर्वुदकोटयः ॥२९॥ दर्शनार्थं तपस्तेपे सा वै कुत्रगताः प्रिया । ममप्राणप्रिया देवी हाहा प्राणप्रिया मम ॥ ३० ॥ किं करोमि क्व गच्छामि इत्येवं भ्रमसङ्कुलः । तदा काल्या कृपा जाता मम चिन्ताज्वरः शिवः ॥ ३१ ॥ यन्त्रप्रस्तारबुद्धिस्तु काल्या दत्त्वातिसत्वरम् । यत्नं यातं तदारभ्य पूर्वं चिह्नगोचराम् ॥ ३२ ॥ श्रीचक्रराजप्रस्ताररचनास्थास तत्परः । इतस्ततो भ्राम्यमाणस्त्रैलोक्यं चक्रमध्यगम् ॥ ३३ ॥ चक्रपारदर्शनार्थं कोट्यर्वुदयुगं गतम् । भक्तप्राणप्रिया देवी महाश्रीचक्रनायिका ॥३४॥ तत्र बिन्दौ परं रूपं सुन्दरं सुमनोहरम् । रूपं जातं महेशानि ! जाग्रत्त्रैपुरसुन्दरि ! ॥ ३५ ॥ रूपं दृष्ट्वा महादेवो राजराजेश्वरोऽभवत् । तस्या कटाक्षमात्रेण तस्या रूपधरः शिवः ॥ ३६ ॥ विना शृङ्गारसंयुक्ता तदा जाता महेश्वरी । विना कालंशतो देवी जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ३७ ॥ न शृङ्गारो न शक्तित्वं क्वापि नास्ति महेश्वरि ! । सुन्दर्या प्रार्थिता काली तुष्टा प्रोवाच कालिका ॥ ३८ ॥ सर्वेषां नेत्रकोणेषु ममांशोऽत्र भविष्यति । पूर्वावस्थासु देवेशि ! ममांशः तिष्ठति प्रिये ! ॥ ३९ ॥ सावस्था तरुणाख्या तु तदन्ते नैव तिष्ठति । मद्भक्तानां महेशानि ! सदा तिष्ठति निश्चितम् ॥ ४० ॥ शक्तिस्तु कुण्ठिता जाता तथा रूपं न सुन्दरम् । चिन्ताविष्टाद्विमलिना जाता तत्र तु सुन्दरी ॥ ४१ ॥ क्षणं स्थिता ध्यानपरा काली चिन्तनतत्परा । तदा काली प्रसन्नाभूत् क्षणार्द्धेन महेश्वरी । वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति सादरम् । श्रीसुन्दर्युवाच ॥ ममशक्तिपरां देहि वरोऽयं प्रार्थितो मया ॥ ४२ ॥ तादृगुपायं कथययेन शक्तिर्भविष्यति । काल्युवाच ॥ मन्नामसहस्रञ्च मया पूर्वं विनिर्मितम् ॥ ४४ ॥ मत्स्वरूपं ककाराख्यं महासाम्राज्यनामकम् । वरदानाभिधं नाम क्षणाद्वै वरदायकम् ॥ ४५ ॥ तत्पठ स्वस-

ह्यामाये तव शक्तिर्भविष्यति ॥ इति ॥ अथ तन्त्रम् ॥ शिवशङ्कर ईशेति नामभिः सर्वकारणम्। चतुर्थं शिवमद्वैतं तुरीयं ब्रह्मकेवलम् ॥ १ ॥ तस्य चिन्तापरा शक्तिः सहस्रांशेन जायते। तच्छक्तेस्तु सहस्रांशादादिशक्तिसमुद्भवः ॥ २ ॥ आदिशक्ति-सहस्रांशादिच्छाशक्तिसमुद्भवः। तच्छक्तेस्तु सहस्रांशाद् ज्ञानशक्तिसमुद्भवः ॥ ३ ॥ ज्ञानशक्तिसहस्रांशात् क्रिया शक्तिसमुद्भवः। एता वै शक्तयः पञ्च निष्कलाश्चेति कीर्त्तिता ॥ इति ॥

अथ कैलाससंहितायां दशमाध्याये। शिवशक्तिसमायोगः परमात्मेति निश्चितम्। पराशक्तेस्तु सञ्जाता चिच्छक्तिस्तु समुद्भवा ॥ १ ॥ आनन्दशक्तिस्त-ज्जास्यादिच्छाशक्तिस्तदुद्भवा। ज्ञानशक्तिस्ततो जाता क्रियाशक्तिस्तु पञ्चमी ॥२॥ एताभ्यएव सञ्जाता निवृत्त्याद्याः कला मुने। स चतुर्व्यूहेषा रुद्रविष्णन्तरे स्थावर्णसहितं जगदुत्पादयति। सर्वपूज्या सर्वमान्या सर्वकारणकारिणी। यं शक्तिरपि शिवपूजनोत्तरमेव पूज्या ॥ अर्चाफलम् ॥ दुर्गार्चनरतो नित्यं महा-पातकसम्भवैः। दोषैर्न लिप्यते वीर पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ इत्याचारादर्शः ॥ पद्मपुराणेऽपि ॥ स्वपन् तिष्ठन् व्रजन् मार्गे प्रलपन् भोजने रतः। कीर्त्तयेत् सततं देवीं स वै मुच्येत बन्धनात् ॥ इति देवीनामकीर्त्तनसामान्यस्यैव बन्ध-निवर्त्तकत्वमुक्तं बृहन्नारदीये ॥ ओमेति केचिदाहुस्तां शक्तिं लक्ष्मीं तथा परे। भारतीत्यपरे चैनां गिरजेत्यम्बिकेति च ॥ दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहे-श्वरीति च। कौमारी वैष्णवी चेति वाराहीति तथा परे ॥ ब्राह्मीति विद्या-विद्येति मायेति च तथा परे। प्रकृतिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षय इति ॥ श्रुतिश्च। एकधा बहुधा चैवं दृश्यते जलचन्द्रवत्। देवीपुराणेऽपि ॥ देव्या व्याप्त-मिदं विश्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। इज्यते पूज्यते देवैरन्नपानात्मिका च सा ॥ सर्वत्र भुवना देवी तनुभिर्नामभिश्च सा। हृच्चे पूर्व्यां तथा वायौ व्योमस्याग्नौ च सर्वश ॥ इति देवीभागवते ॥ असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः सुरैः। गुणकर्म्मविधानाद्यैः कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥ इति किं बहुना शब्दमात्रं ब्रह्म-परम्। अथ देव्यायर्वशीर्षे सर्वे वै देवादेवीमुपतस्थुः कासित्वं महादेवी साब्रवीत् अहं ब्रह्मरूपिणीमत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकजगत् शून्यं चाशून्यं च अहं च पञ्च-भूतानि अहं पञ्चतन्मात्रा अहमखिलं जगत् वेदोऽहमवेदोऽहं विद्याहमवि-द्याहम् अजाहमनजाहम् अधश्चोर्द्ध्वं च तिर्य्यक् चाहमित्यादि सैषाष्टौ वसवः सैकादशरुद्राः सैका द्वादशादित्याः सैका विश्वे देवाः सोमपा असोमपाश्च सैषा

यातुधाना असुराश्च रक्षांसि पिशाच यक्षसिद्धाः सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकालरूपिणीमहं प्रणौमिति त्वं यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न विजानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया यस्या अन्तो न विज्ञायते तस्मादुच्यते अनन्ता यस्या ग्रहं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या यस्या जननं नोपजायते तस्मादुच्यते अजा एकैवं सर्वत्र वर्त्तते तस्मादुच्यते एका एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते अनेका तस्माद्भुवना एव ब्रह्मविष्णुरुद्रादिसकलजगन्मूलकारणं तथा त्रिशक्त्युत्पत्ती जगत् तथा त्रिशक्त्युत्पत्तीरिति तुरीयशक्तिः त्वं पुराणादिषु प्रतिपादितम्॥ सुमन्तुरुवाच॥ सर्वदेवमयो साक्षात् तच्च शूले व्यवस्थिता॥ अनुग्रहाय लोकानां तस्मान्नित्यं तदर्चयेत्॥ १॥ यो न पूजयते भक्त्या शूलं त्रिभुवनेश्वरम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां नासौ स्याद्भाजनं नरः॥ २॥ यस्तु पूजयते नित्यं चण्डिका शूलमुत्तमम्। धर्मार्थकाममोक्षाणां स नरो भाजनं सदा॥ ३॥ तस्माज्जितेन्द्रियो भूत्वा श्रद्धया परयान्वितः। अर्चयेत सदा भक्त्या चण्डिकां शूलधारिणीम्॥ ४॥ वरं प्राणपरित्यागः शिरसः कर्त्तनं वरम्। यदपूज्येह वै भुक्तं त्वण्डिकां चण्डरूपिणीम्॥ ५॥ आप्राणमोक्षणाद्यस्तु कुरुते चण्डिकार्चनम्॥ समनुष्यो नरैर्ज्ञेयः स्वयं दुर्गा व्यवस्थिता॥ ६॥ न हि दुर्गार्चनात् किञ्चित् यत्पुण्यमधिकं नृप। तस्मादेवं विदित्वा तु पूजनीया सदा शिवा॥ ७॥ यदेतत् करतले देव्या स्त्रिशूलं दृश्यते वरम्। अन्तकाले जगत् सर्वं यत्र देवी प्रलीयते॥ ८॥ दक्षिणा अस्य वैशाखा अत्र ब्रह्मा प्रलीयते। या चैषा मध्यमाशाखा वैश्वानरशिखोपमा॥ ९॥ अनुप्राणीवते वार महादेवस्त्रिलोचनः॥ वामतश्च स्थिता येषा शाखाकुरुकुलोद्वह॥ १०॥ लीयतेस्यां महाराज सङ्खचक्रगदाधर। शूलदेशे स्थिता येष्ठ तत्रान्ये देवतागणाः॥ ११॥ षड़ङ्गसहिता वेदा सशिक्षाय पदक्रमः। शाखाङ्गेषु प्रलीयन्ते गायत्री साश्रवास्तथा॥ १२॥ पुनरुत्पद्यते तस्मात् ब्रह्माद्यं स चराचरम्। सदेवा सुरगन्धर्वराक्षसपन्नगादयः॥ १३॥ यस्त्रिशूलं द्विषेन्मोहात् सर्वदेवमयं शिवम्। नरो नरकगामीस्यात्तस्य सम्भाषणादपि॥१४॥ तस्य दक्षिणशृङ्गे तु माणिक्यं विन्यसेत् बुधः॥ मध्यमेचन्द्रसङ्काशं मौक्तिकं विन्यसेत् बुधः॥ १५॥ इन्द्रनीलं न्यसेद्वामे शूलशृङ्गे नराधिप। पद्मरागं न्यसेन्मूले दण्डेमरकतं तथा॥ १६॥ एवं वित्तानुसारेण कृत्वा शूलं नराधिप। नवम्यां शुक्लपक्षे तु दुर्गायाः पुरतो न्यसेत्॥ १७॥ अध्यायः २२३ सर्वावस्थागतो वापि मुक्तो वा सर्वपातकैः। दुर्गां दृष्ट्वा नरः सोऽपि प्रयाति परमं पदम्॥ रुद्रो ब्रह्मा

हरिर्नित्यं पूजयन्ति सदाम्बिकाम्। तेषां माता तु सा देवी वैकुण्ठलोकपूजिता॥ मोहनः सर्व्वलोकानां शङ्खचक्रगदाधरः। लोकानां चयकृत् रुद्रो निर्मुक्तो दुर्गया नृप॥ एवमेते त्रयोलोकास्त्रयोवेदास्त्रयोऽग्नयः॥ त्रयोवेदास्त्रिवर्गस्य त्रयस्तेजांसिभारत। पुष्कराणि तथा त्रीणि त्रयोमात्रा नराधिप। अर्द्धमात्रा तु या सूक्ष्मा सा ज्ञेया चण्डिका बुधैः॥ तस्या एव समुत्पन्नं जगत् स्थावरजङ्गमम्। ब्रह्माविष्णुशिवाख्यञ्च चण्डिकात्म समुद्भवम्॥ स्वयं तिष्ठन् हि बध्यंश्च यरस्तन्मे स्वयं नृप। स्मरते सततं दुर्गां स तु मुच्यति बन्धनात्॥ शाठ्येनापि नमस्कारं यः करोति नराधिप। भगवत्यै नरो भक्त्या स गच्छति सुरालयम्॥ इति भविष्योत्तर पु० नवमीकल्पे दुर्गामाहात्म्ये २२७॥

यमसावित्रीसंवादे नवमस्कन्धे देवी भागवते॥ सर्व्वात्मा सर्व्वभगवान् सर्व्वकारणकारणः। सर्व्वेश्वरश्च सर्व्वाद्यः सर्व्वविसरिपालकः॥ १॥ नित्यरूपो नित्यदेहो नित्यानन्दो निराकृतिः। निरङ्कुशो निराशङ्को निर्गुणश्च निरामयः॥ २॥ निर्लिप्तः सर्व्वसाक्षी च सर्व्वाधारः परात्परः। मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः॥ ३॥ स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम्। यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नास्त्येव कुत्रचित्॥ ४॥ सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी। रूपं विभर्त्यरूपा च भक्त्यानुग्रह हेतवे॥ ५॥ तदाह तारारहस्योद्धृतलिङ्गार्चनचन्द्रिका संगृहीतवचनं महाविद्यां पूजयित्वा शिवपूजां समाचरेत्॥ अन्यथा करणाद्देवि! न पूजा फलमाप्नुयात्॥ इति महाविद्यानां प्रशंसार्थं शिववाक्यम्॥ इति परमपूज्यपादपरमहंसपरिव्राजकावधूतब्रह्मानन्दस्वामिभिरभिहितम्॥ अथ शिवपूजां कृत्वा महाविद्यां पूजयित्वा इतरदेवार्चां समाचरेत् इति वा तदर्थः॥ कामाख्यातन्त्रे च मदीश्वर्याः पादयुगं पुरायो नार्चयेच्छिवे कठोरदण्डं पातञ्च तस्य मूढ्निकरोम्यहम्॥ एवं शाक्तक्रमदीपिकाधृतवचनम्॥ देवीं विहाययो मन्त्री अन्यमादौ यजेद्यदि॥ तदाशु नाशमायाति नरको पद्रवैः स्फुटैः॥ अन्नं विष्टापयोमूत्रं यद्देव्या अनिवेदितम्। तस्मादादौ प्रपूज्या सा चतुर्वर्गफलार्थिभिः॥ मद्भक्ता विष्णुभक्ता वा चान्यदेव प्रपूजकाः। शक्तिमादौ च सम्पूज्य न तु तत् फलभागिनः॥ एतानि च वचनानि पूर्व्वोक्तरीत्याव्याख्यातव्यानि प्रतिमाद्यपेक्ष्य-लिङ्गे शिवपूजाया विशेषवचनमाह॥ अत्रैव शिवपूजापरतः शक्त्यर्चतावश्यकत्वं व्याचष्टे आदौ शिवं पूजयित्वा शक्तिपूजा ततः परम्॥ यत्किञ्चिदुपचाराह तस्य किञ्चित् निवेदयेत्। अन्यथा मूत्रवत् सर्व्वं गङ्गातोयं भवेत् यदि॥ अतएव

महेशानि आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ तारानिगमे महालिङ्गेश्वरतन्त्रे च ॥ पार्थिवं नार्चयित्वा तु कालीन्ताराञ्च सुन्दरीम् ॥ अर्चयेत् यस्त्रिलोकस्थः स गच्छेत् यमयातनां पार्थिवेत्युपलक्षणं वस्तु तस्तु शिवपूजनमित्यर्थः। त्रिपुराकल्पेऽपि यावत् न पूजयेल्लिङ्गं पार्थिवं साधकाधमः ॥ तावत्पूजां न गृह्णन्ति सुन्दरीतारकासिताः असिता कालीत्यर्थः मातृकाभेदतन्त्रे प्रथमपटले ॥ एवं ध्यात्वा महेशानि सन्ध्यां कुर्य्यात् विचक्षणः। शिवपूजां ततः कृत्वा पूजयेत् परदेवताम् ॥ त्रिपुरापरमाविद्या महाविद्या पतिव्रता। पतिपूजां विना पूजां न गृह्णाति कदाचन ॥ अतएव महेशानि आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत्। पश्चाच्चरं पञ्चवक्त्रं पूजयेत् बहुयत्नतः ॥ ततस्तु पूजयेद्देवीं त्रिपुरां मोक्षदायिनीम् ॥ शक्तिसारे ॥ प्रातःकृत्यञ्चरेदादौ प्रातःसन्ध्यां ततः परम् ॥ ततः स्नानं विधायाथ सन्ध्यामाध्याह्निकीं तथा। शिवपूजा ततः कुर्य्यात् तत्तोन्तर्यजनं शिवे !। ततः पूजाविध्यातव्या ततो होमं समाचरेत् ॥ एतद्वचनप्रमाणेन शक्तिपूजादौ शिवं पूजयेत् ॥ अथ तोड़लतन्त्रे ॥ आदौ शिवं पूजयित्वा शक्तिपूजा ततः परम् ॥ अन्यथा मूत्रवत्सर्वं गङ्गातोयं भवेत् यदि ॥ ५ ॥ अतएव महेशानि आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥

अथ आगमकल्पद्रुमे षट्पञ्चाशत्पटले ॥ अथ श्रीभगवत्याश्च पञ्चतत्त्वबलिं शुभाम्। वर्णयामि शृणु शिवे ! सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ १ ॥ पञ्चतत्त्वेन मुख्येन चानुकल्पेन वा प्रिये !। दिव्येन जगदम्बार्थे नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ मुख्यकल्पेन वीराणां नैवेद्यं परिकीर्त्तितम्। पशूनां चानुकल्पेन दिव्यानां दिव्यकल्पकैः ॥ ३ ॥ तदुक्तं भैरवजामले ॥ शृणु भैरव ! वक्ष्यामि मुद्रां देवीप्रसन्नदाम् ॥ ४ ॥ शष्कुली गुर्विणी पूपा पिष्टिका पूर्णपोलिका। चक्रिणी फेणिका मालपूड़ा श्रीरामपूरिका ॥ ५ ॥ सौवीरवटकं माष वटकंशमचक्रिका। मोदकं मिष्टभोगञ्च नवनीतं स शर्करम् ॥ ६ ॥ वटकाक्ता रसाला च पायसं साज्यचन्द्रकम्। कृशरा पुष्पकं सूपं दधिदुग्धं सुमिष्टकम् ॥ ७ ॥ पायसं शैलचन्द्राग्रं दुग्धसारं घनावृतम्। सौगन्धिमण्डकं शुद्धं दधिदुग्धसितायुतम् ॥ ८ ॥ मांसोदनं मीनरसं विविधं शाकव्यञ्जनम्। आम्रनिम्बुकसन्धानं कल्कं स लवणार्द्रकम् ॥ ९ ॥ भ्रष्टं सतीनं चणकं मद्रमांस समकुष्ठकम्। भ्रष्टवीजं फलानाञ्च चर्वणं भ्रष्टतण्डुलम् ॥ १० ॥ भर्जा गलन्तिका भ्रष्टं पर्पटं माषमुद्गयोः। नाना ऋतुफलं पक्वं मिष्टकन्दं सुखप्रदम् ॥ ११ ॥ दशाङ्गुलं कलिन्दं चानारसं लवलीफलम्। फानसं पनसं रम्भाफलकोलञ्च कर्कटीम् ॥ १२ ॥ वीजसारफलं चाम्र-

फलमाम्रेत्तरं फलम्। श्रीफलञ्च जम्बुफलं शृङ्गाटककशेरुकौ॥ १३॥ खर्जूरं पिण्डखर्जूरं तालं मधुफलं शुभम्। द्राक्षाफलं दाड़िमञ्च नारिकेलं च सेवकम् ॥ १४॥ अन्यानपि फलान्यत्र यानि चोक्तानि भैरव!। दातव्यानीष्टदेवार्थे मुद्रा-रूपाणि शाक्तिकैः॥ १५॥ चतुःषष्टिमिता मुद्रा देव्यार्चनविधौ वरा। इति॥ अथाचारादर्शः। विप्रेभ्यस्त्वत्र तद्देयं ब्रह्मणे यन्निवेदितम्। वैष्णवं सात्वतेभ्यश्च भस्माङ्गेभ्यश्च शाम्भवम्॥ १॥ सौरं मगेभ्यः शाक्तेभ्यस्तापिने यन्निवेदितम्। स्त्रीभ्यश्च देयं मातृभ्यो यत्तु किञ्चिन्निवेदितम्॥ २॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो यत्तु दीनेषु निक्षिपेत्। इत्येतैः प्रमाणैः शक्तिसम्बन्धियत्स्वं तत्सौभाग्यवतीभ्यः स्त्रीभ्य एव देयम्। ऐशान्यां पात्रान्तरे क्षिपेत्। तत्र पात्रे चण्डेश्वरीं समभ्यर्च्य। ॐ चण्डेश्वरो महादेवो निर्माल्यैश्चणकादिभिः। लेह्य चोष्यान्नपानादिनिर्माल्यं स्रग्विलेपनम्। निर्माल्यभोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया। इदं निर्माल्यं श्रीचण्डेश्वर्य्यै नमः इति पठन् तस्यै दद्यात्। ततो नैवेद्यम्। उच्छिष्टचाण्डाल्यै नमः इति पठन् तस्यै दद्यात्। ततो नैवेद्यं स्वयं भुञ्जीत। अथ तन्त्रसारान्त-र्गत कालीतन्त्रे॥ महाकालं यजेद् यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्। तस्य ध्यानम्॥ महाकालं यजेद्देव्याः दक्षिणे धूम्रवर्णकम्। बिभ्रतं दण्डखट्वाङ्गौ दंष्ट्रा भीम-मुखं शिशुम्॥ व्याघ्रचर्मावृतकटीं तुन्दिलं रक्तवाससम्। त्रिनेत्रमूर्द्धकेशञ्च मुण्डमाला विभूषितम्॥ २॥ जटाभारलसच्चन्द्रखण्डमुग्रज्वलन्निभम्। देव्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालं प्रपूजयेत्॥ ततस्तन्नैवेद्यम्॥ किञ्चिदुच्छिष्टचाण्डा-लिन्यै नमः॥ इत्यैशान्यां दिशि दत्वा शेषमिष्टेभ्यो दत्वा किञ्चित् स्त्रीकृत्य-पादोदकं पीत्वा निर्माल्यं शिरसिविधृत्य यथेच्छं विहरेदिति॥ चक्रं विलिख्य-देहस्थं धारयेत् कालिकातनुः॥ काल्यैनिवेदितं यद्यत् तदन्नं भक्षयेच्छिवे॥ १॥ दिव्यदेहधरो भूत्वा कालीदेहे स्थिरो भवेत्॥ नैवेद्यनिन्दकान् दुष्टान् दृष्ट्वा नृत्यन्ति भैरवाः॥ २॥ योगिन्यश्च महावीरारक्तपानोद्यता प्रिये!। मांसास्थि-चर्मणोद्युक्ता भक्षयन्ति न संशयः॥ ३॥ तस्मान्न निन्दयेद्देवीं मनसाकर्मणा गिरा॥ अन्यथा कुरुते यस्तु तस्य नाशोभविष्यति॥ ४॥ इति॥ अथ कालिका-महाभागवतम्॥ निर्माल्यं शिरसा यस्तु कामाख्यायाः प्रधारयेत्॥ सदैव पूज्य-तामेत्यविरहेद्भैरवो यमः॥ १॥ न तस्य विद्यते भीतिः कुत्रापि धरणीतले॥ भयदाः प्रपलायन्ते भयात्तस्य सुदूरतः॥ २॥ प्रसादं येन केनापि दत्तं देव्या महा-मुने॥ प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्रकार्य्याविचारणा॥ ३॥ उत्तमोऽपि मुने वर्णो

न्यूनवर्णादवाप्यवै। प्रसादं भक्षयेद्भक्त्या नत्वा च शिरसा पुनः॥ ४॥ विभूतिं समवाप्नोति कैवल्यं तत् प्रसादतः। तत्र श्राद्धकृतं येन पितृणां तृप्तिमिच्छता॥५॥ गयाश्राद्धं कृतं तेन सहस्राब्दं न संशयः। लौहित्ये तु कृतं स्नानं प्रयतः साधकोत्तमः॥ ६॥ पुरश्चर्य्यं नरः कृत्वा सिद्धिमन्तो भवेत् ध्रुवम्। अव्याहताज्ञः स भवेत् महेश्वर इवापरः॥ ७॥ भूचरः खेचरत्वं च प्राप्नुयात्तत्प्रसादतः। अथ भैरवजामले पूजाखण्डे भगवत्यानिर्माल्यमहात्मे सप्तदशपटले॥ भैरव उवाच॥ श्रीदुर्गापूजनं देवश्रुतं तवमुखाम्बुजात्। चतुष्षष्ठ्युपचारेण सहितं बलिपूर्वकम्॥१॥ तत्प्रसादस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामिसाम्प्रम्। वदस्व परमेशान कृपास्ति यदि चेन्मयि॥ २॥ भैरव उवाच॥ दुर्गाप्रसादमाहात्म्यं दुर्लभं भुवनत्रये। न कस्यापि मया प्रोक्तं तवस्नेहाद्वदामितत्॥ ३॥ पुराविष्णुमुखाद्देव दुर्गापूजन योगतः निमन्त्रिता महेशेन कैलाशभवनं ययुः॥ ४॥ दृष्टस्तैर्देवदेवस्य मन्दिरे पूजनं महत्। शिवेन कृतवान् पूर्वं विविधैरुपचारकैः॥ ५॥ प्रसादं लेभिरे देवा यन्नशिष्टं सुधार्पितम्। शम्भुदत्तमहादेव्या मुक्त्यर्थं भवबन्धनात्॥६॥ प्रणम्यशिरसा सर्वे ब्रह्माविष्णु स वासवाः। भक्षणं कृतवं तस्ते भक्तिभावेन चेतसा॥७॥ तत्क्षणादेवशुभगी त्यक्त्वा स्वं स्वं कलेवरम्। शिवरूपं समासाद्य परं पदमवाप्नुयुः॥ तस्य माहात्म्यमतुलं सम्यग् जानाति वै शिवः। तदहं ज्ञातवान् रुद्रः परिप्रश्नेन सेवया॥ ८॥ रुद्रस्याहं मया ज्ञातं तपसा योगकर्म्मणा। पुरारुद्रमुखोद्गीतमहं यच्छ्रुतवान् शुभे॥२०॥ तदहं कथयिष्यामि लोकानां हितकाम्यया। यस्य श्रवणमात्रेण नरो मुच्येत पातकात्॥ ११॥ एकदा रुद्रभवने स्वयमागतवानहम्। रुद्राणी सहितं रुद्र दृष्ट्वा नत्वा च सादरम्॥ १२॥ अवोचद्वचनं त्वेदं भक्त्या गम्भीरया गिरा। भगवन् सर्वतत्वज्ञ सृष्टिसंहारकारक॥१३॥ भगवत्या प्रसादस्य माहात्म्यं वक्तुमर्हसि। श्रोतुकामस्य भक्तस्य श्रद्दधानस्य मे प्रभो॥ १४॥ कालाग्निरुद्रोवाच॥ किमाश्चर्य्यं त्वया प्रोक्तं लोकनिस्तारकारकम्। प्रसादस्य च माहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षमः॥ १५॥ शिवो जानाति तत्वेन नान्यो वेत्ति कदाचन। मया यच्छ्रुतवान् पूर्वं शिववक्त्रविनीर्गतम्॥ १६॥ तदहं वर्णयाम्यद्य तवस्नेहेन भैरव। गोरोलोके पुरारासमण्डले शिवसन्निधौ॥ १७॥ यदुक्तं भगवत्यं वा प्रसादगुणवर्णनम्। शृणु सर्वे शिवगणा मम नैवेद्यभक्षणात्॥ १८॥ सद्यो मुक्तिं गमिष्यन्ति देवासुर नरादयः। यज्ञदान तपस्तीर्थास्तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः॥१९॥ शिवा ऊचुः॥ नैवेद्यस्य प्रसादस्य नामभेदोऽथवा पृथक्॥ एतद्ब्रूहि महेशानि!

श्रोतुकामावयं यत: ॥ २० ॥ गौर्य्युवाच ॥ निवेदनं यद्भवति मन्त्रपूतेन मुद्रया। नैवेद्यं तद्विजानीयात् प्रसादस्तु स कथ्यते ॥ २१ ॥ कालकेय गणादैत्या: पुरा विष्णुमुखान् सुरान्। जित्वा रणमुखे सर्वान् स्वर्गं वुभुजिरे मुदा ॥ २२ ॥ तदा नारायणो देव गत्वा कैलासमन्दिरम्। प्रणम्यशङ्करं देवमिदमाह समादरात् ॥२३॥ विष्णुरुवाच ॥ कथं जेष्यामिदैत्यानां बलं ह्येवं मदोत्कटम्। तदुपायं वदविभो यदि जानासितत्वत: ॥ २४ ॥ शिव उवाच ॥ दैत्यानां बलनाशय ह्युपायं यदि पृच्छसि। विनां वा पूजनं कर्म नान्योपायोस्तिकेशव ॥ २५ ॥ पुरा त्रिपुरसंहारे पूजयित्वा जगन्मयीम्। निर्माल्यशिरसा धृत्वा प्रसादं भुञ्जवानहम् ॥२६॥ तेनानन्तवलं प्राप्य त्रिपुरं नाशितं मया। मृत्युञ्जयपदं प्राप्यस्थितवानचलो यथा ॥ २७ ॥ यदि मत्पदवीं प्राप्य दैत्यां जेतुं त्वमिच्छसि। तदां वा पूजनं कृत्वा प्रसादं भुंच्वसादरम् ॥ २८ ॥ अनायासेन दैत्यानां संहारस्त्वं करिष्यसि। प्रसादस्य प्रभावेन नात्र कार्य्या विचारणा ॥२९॥ गौर्य्युवाच ॥ श्रुत्वा शिवमुखाम्भोजाद्वचनं रोमहर्षणम्। उवाच च रमानाथ प्रणम्यगिरिजापतिम् ॥ ३० ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमाश्चर्य्यं वदसि भो प्रसादमहिमातुला। यस्मिं भुक्ते फलमिदं तथ्यं तवमुखोदितम् ॥ ३१ ॥ तन्माहात्म्यं वदमयि कृपया दीनवत्सल। श्रोतुमिच्छामि देवेश परं कौतुहलं हि मे ॥ ३२ ॥ शिव उवाच ॥ अम्बाप्रसादमाहात्म्यं को वा वर्णयितुं क्षम:। किञ्चिद्वच्यामि भो नाथ! त्वत्कृपावशतोऽप्यहम् ॥ ३३ ॥ एकदा मम कैलासे दुर्गापूजामखे शुभे ॥ भैरुण्डनामादैत्येश: सहसा समुपागत: ॥ ३४ ॥ तत्समोनास्ति पापात्मा त्रिषु लोकेषु माधव ॥ ब्रह्महत्या कृता तेन सहस्राणि दुरात्मना ॥ ३५ ॥ स्त्रीहत्या बालहत्या च गुरुहत्या विशेषत:। सुरोधनन्दिनाद्वारे भैरुण्डस्तत्रतस्थिवान् ॥ ३६ ॥ सम्प्राहनं दिनं वीरगच्छामि शिवसन्निधौ। मा विघ्नं कुरुयात्रायां स्वयमिच्छसि चेत् शुभम् ॥ ३७ ॥ नन्दीतमाह दैत्येन्द्रं पापिनो ये दुरा सदा:। मुक्तिचित्ते च कैलासेन तेषां गमनं भवेत् ॥३८॥ इति संवदतो द्वारे नन्दिभैरुण्डदत्ययो:। प्रसादं तं च निर्माल्यं धृत्वा शिरसि किङ्करा: ॥ ३९ ॥ विसर्जनार्थं गङ्गायां समाजग्मुस्तदैव हि। तेषां मस्तकसम्भाराद्दैवेनावपतत्तत: ॥ ४० ॥ विल्वपत्रं सुधायुक्तं पवनेन बलीयसा। तत् संस्पर्शेन दैत्येशो मुक्तोऽभूत् सर्वपातकात् ॥ ४१ ॥ शिवरूपधरो भूत्वा जगाम मम सन्निधिम्। निर्माल्यं घ्राणमासाद्य गणनाथ त्वमाप्तवान् ॥ ४२ ॥ सदा-सैकजटो नामा कैलासे न्यवसत् सदा। निर्माल्यभारवाहायी सर्वे शिव स्वरूपिण:

॥ ४३ ॥ देव्यानिर्माल्यमाहात्म्यं लवमात्रं मयोदितम्। नान्तोऽस्ति विस्तरेणास्य किं वदामि रमापते ॥ ४४ ॥ गौर्य्युवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य शिवस्य परमात्मनः। केशवः कृतकृत्योऽभूत् नत्वा शिवपदाम्बुजौ ॥ ४५ ॥ वैकुण्ठमगमद्देव समारुह्य खगोपरि। देवीपूजा कृता तेन यथोक्त विधिपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ भुक्त्वा प्रसादं दुर्गायाः कालकेय गणान् हरिः। संग्राममूर्द्ध्नि संहत्वा चेन्द्राय स्वर्गमाददत् ॥ ४७ ॥ कालाग्निरुद्र उवाच ॥ प्रसादस्य च माहात्म्यं श्रीगौरीवदनाच्छ्रुतम्। शिवेन रासमये भक्तिभावेन चेतसा ॥ ४८ ॥ प्रणम्य गौरीचरणे कैलासभवने ययौ। तन्माहात्म्यपुराकाले शिववक्त्राच्छ्रुतं मया ॥ ४९ ॥ निर्माल्यस्य प्रसादस्य नैवेद्यस्य च भैरवः। एकमेव हि माहात्म्यं तेषां भेदो न विद्यते ॥ ५० ॥ निर्मलं देहधारीणां पापं भवति येन च। तन्निर्माल्यं समाख्यातं जीवानां मुक्तिसम्पदम् ॥ ५१ ॥ निर्माल्यं भक्तिभावेन ये तु भच्चन्ति मानवाः। साचात्ते शम्भुसदृशा जीवन्मुक्ता न संशयः ॥ ५२ ॥ भैरव उवाच ॥ एवं मया श्रुता भद्रे! प्रसादमहिमातुला। मुक्तिदा सर्वजीवानां पुरारुद्रमुखोदिता ॥ ५३ ॥ नोक्ता कस्यापि देवेशि! तव स्नेहात्प्रकाशितम्। नराणां मुक्तिकामार्थं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥ इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे पञ्चमस्तरङ्गः ॥

अथ षष्ठस्तरङ्गः ॥ तत्राधुना केवलवाममार्गानुरोधेन तन्त्ररीत्यैव कालिका नैवेद्यप्रकारमाह। तत्र कैलासतन्त्रे पूर्वखण्डे। वलयः पञ्चदेवानां श्रुता विस्तरतो मया। इदानीं श्रोतुमिच्छामि यन्मे मनसि वर्त्तते ॥१॥ रवेर्गणपतेर्विष्णोर्देवदेवस्य शूलिनः। पूजोपहारं यत्प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ २ ॥ तत्र मे संशयो नासीत् यथा तथ्यं सुरार्च्चने। पञ्चतत्त्वं विना देवि! पूजनं विफलं भवेत् ॥ ३ ॥ तत्कारणं वद विभो यदि जानासि तत्त्वतः। इदं रहस्यं परमं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४ ॥ शिव उवाच ॥ शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्। न कस्यापि मया प्रोक्तं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५ ॥ एकदा कालिका लोके चक्रपूजनकर्म्मणि। निमन्त्रितो हि गतवान् संशयाविष्टचेतसा ॥ ६ ॥ मद्याम्बुधिं मांसशैलं मत्स्यराशिं सुदुर्वहम्। मुद्राणां समवेतानामसंख्यानां महत्तरम् ॥ ७ ॥ कालिकापूजनार्थाय मया दृष्टं महेश्वरि! पञ्चमी शक्तिसहितमपूर्वं परिकल्पितम् ॥ ८ ॥ महद्विस्मयमापन्नं हृदये पश्यतो मम। प्रणम्य कालिका देवीं कृताञ्जलिपुरःसरम् ॥ ९ ॥ पृच्छेयं वक्तुयत्नेन संशयोच्छेदनाय च। श्वेतामादिप्रकृतेश्चिरं यन्मे हृदिस्थितम् ॥ १० ॥ कारणं पञ्चतत्त्वानां ब्रूहिमां दीनं

वत्सले। पञ्चतत्त्वेन या पूजा तव प्रियतमा हि चेत्॥ ११॥ नान्योपहारवलिभिः सन्तुष्टत्वं महेश्वरि!। सन्देहभञ्जनार्थायमया तुभ्यं निवेदितम्॥ १२॥ आदिप्रकृतिरुवाच॥ पञ्चतत्त्वाख्यबलिना या पूजा क्रियते नरैः। विधिना भक्तिभावेन सा मे सन्तोषकारिणी॥ १३॥ इदं रहस्यं नोवाच्यं पशूनां सन्निधौ क्वचित्। तवप्रियार्थं वक्ष्यामि भक्तिमानसि शङ्करः॥ १४॥ आदिकल्पे सुरेशान ब्रह्मणा कल्पिता वलिः। पूजार्थं पञ्चदेवानां पृथग्भावेन शाश्वती॥ १५॥ जवाकुसुमसद्रक्तचन्दनैर्धूपदीपकैः। पायसेन वलिं दद्यात् सूर्य्याय शुभमिच्छता॥ १६॥ जातीयूथिमल्लिकाभिर्विल्वपत्र स्रग्चन्दनैः। गणेशपूजनार्थाय मोदकं च प्रकल्पयेत्॥ १७॥ माधवी मालती कुन्द तुलसी श्वेतचन्दनैः। भक्तिमानर्चयेद्विष्णुं नवनीतैः स शर्करैः॥ १८॥ धत्तूरं शतपुष्पञ्च दूर्वाविल्वदलानि च। केशरं कुसुमं दद्याच्छिवपूजनकर्म्मणि॥ १९॥ शष्कुली मोदका पूपं दधि दुग्धं सितायुतम्। नानोपहारसहितं शङ्कराय निवेदयेत्॥ २०॥ अथाम्बा पूजनार्थाय नैवेद्यं यत्प्रकल्पितम्। न जग्राह महाकाली मन्त्रपूतमपि प्रभो॥ २१॥ नाभूत् प्रसन्ना शर्वाणी यजने परमेष्ठिना। धाता सञ्चिन्तयामास तदा मनसि विस्मयम्॥ २२॥ एवं सञ्चिन्त्यमाने तु द्रुहिणे कमलासने!। आकाशवाणी त्वभवत् ब्रह्मणो ज्ञानहेतवे॥ २३॥ त्वयोपचारदेवार्थे ब्रह्मणाकल्पितं शुभे॥ तत्र मे प्रीतिरत्यन्तं नास्त्येव कमलासन॥ २४॥ पञ्चतत्त्वेन वलिना यो मामर्चितुमिच्छति। तस्मै किं किं न दास्यामि चतुर्वर्गफलप्रदम्। २५॥ ब्रह्मोवाच॥ पञ्चतत्त्वं न जानामि ब्रूहि मे जगदम्बिके!। किं नामधेयं तत्त्वानां कुतो जातस्तवार्चने॥ २६॥ श्रुता विधिमुखादेवं वागुवाचा शरीरिणी। पञ्चतत्त्वं प्रवक्ष्यामि मम प्राणाधिकं विधे!॥ २७॥ मद्यं मांसं तथा मत्स्य मुद्रामैथुनमेव च। एतैर्मामर्चयेद्भक्त्या तस्य तुष्टामि सर्वदा॥ २८॥ मद्यं विष्णुर्विधिर्मांसं रुद्रो मत्स्यस्ततःपरम्॥ मुद्रां त्वमीश्वरं विद्धि मैथुनञ्च सदाशिवः॥ २९॥ नामान्येतानि तत्त्वानां पञ्चप्राणोद्भवानि ते। इत्युक्त्वा सहसा वाणीं तत्रैवान्तरधीयत॥ ३०॥ आदिप्रकृतिरुवाच॥ एवं श्रुत्वा ततो धाता विस्मयं परमं ययौ। तदैव ब्रह्मणो देहात् पञ्चतत्त्वं समुल्लसत्॥ ३१॥ प्राणेन मदिरा जाता ह्यपानेनाप्यजः स्वयम्। समानेन तथा मत्स्य उदानेन च चर्वणम्॥ ३२॥ व्यानेन शक्तिसम्भूता ब्रह्मणः पुरतस्तदा। यजनार्थं समुत्पन्नं ज्ञानवानसि वेधसः॥ ३३॥ ततस्तु पूजिता देवी विधिना विधिपूर्वकम्। प्रत्यक्षा समभूत् तत्र प्रसन्ना जगदम्बिका॥ ३४॥

देव्युवाच॥ वरं ब्रूहि प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते। पूजयाप्यनयादेव प्रसन्नाहं सदा त्वयि॥ २५॥ ब्रह्मोवाच॥ प्रसन्ना यदि मे देवि! वरमेकं प्रयच्छ तत्। पञ्चतत्त्वेन ये भक्त्या पूजयिष्यन्ति मानवाः॥ २६॥ तेषां वरं ददत्वद्य धर्म्मकामार्थमुक्तिकम्। त्वयि लीना भविष्यन्ति जीवन्मुक्ता स देव ते॥ २७॥ आदिप्रकृतिरुवाच॥ तथेत्युक्त्वा भगवती सहसान्तर्दधे शिव। तदा प्रकृतिर्लोकेऽस्मिन् पूजनं पञ्चतत्त्वकैः॥ २८॥ समुत्पन्नं महेशानि! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि। श्रुत्वा कालीमुखाम्भोजाद्वचनं रोमहर्षणम्॥ २९॥ कृत्यकृत्योऽस्मि गिरिजे नात्र कार्य्या विचारणा। इति श्रुत्वा तदा देवी कृताञ्जलिपुटा सती॥ ४०॥ प्रणम्य शङ्करं देवं स्वकं भवनमन्वगात्। इति॥ अथ कैलासतन्त्रे। श्रीशिव उवाच॥ पञ्चतत्त्वेन यः पूजां करोति विधिपूर्वकम्। तस्मै श्रीकालिकादेवी ददाति वरमीप्सितम्॥ १॥ यो निन्दति विमूढ़ात्मा देव्या नैवेद्यमुत्तमम्। मोहाद्वा कामतो देवि! स याति नरकं ध्रुवम्॥ २॥ तस्मान्ननिन्देन्मतिमान् दृष्ट्वा श्रुत्वा च कर्हिचित्। निन्दनात् सर्वथा सोऽपि योगिनीनां भवेत्पशुः॥ ३॥ नैवेद्यनिन्दकं दृष्ट्वा नृत्यन्ती योगिणी गणाः। रक्तपानोद्यताः सर्वा मांसास्थिचर्म्मणोद्यताः॥४॥ क्रोधेन महताविष्टा निन्दकं भक्षयन्तिताः। कुलनाशकरा देवी मनसापि न निन्दयेत्॥ ५॥ कालिकायास्तु नैवेद्यमपरं शृणु सुन्दरि!। यैरर्चिता महाकाली चतुर्वर्गं प्रयच्छति॥ ६॥ नैवेद्यस्याभिधेयानि शृणु सावहितानवे। यस्य ज्ञानं विना सर्वा पूजा भवति निष्फला॥ ७॥ शष्कुली गर्भिणी पूपा पिष्टिका पूर्णपोलिका। चक्रिणी फेणिका मालपूडा श्रीरामपूरिका॥ ८॥ सौवीरवटकं माषवटकं रामचक्रिका। मोदकं मिष्टं भोगञ्च नवनीतं स शर्करम्॥ ९॥ वटकान्ता रसाला च पायसं साज्यचन्द्रकम्। कशरा पुष्पकं सूपं दधिदुग्धं सुमिष्टकम्॥ १०॥ पायसं सैलचन्द्राख्यं दुग्धसारं घनावृतम्। सौगन्धिमण्डकं शुद्धं दधिदुग्धसितायुतम्॥ ११॥ मांसोदनं मीनरसं विविधं शाकव्यञ्जनम्। आम्रनिम्बुकसन्धानं कल्कं चाराम्लमाद्रकम्॥ १२॥ सुकन्दलसुनारिष्टसन्धानमपि संस्कृतम्। भ्रष्टं सतीनं चणकं भद्रमांसमकुष्टकम्॥ १३॥ भ्रष्टवीजं फलानाञ्च चर्वणं भ्रष्टतण्डुलम्। भर्ज्जा गलन्तिका भ्रष्टपर्पटं माषमुद्गयोः॥ १४॥ नाना ऋतुफलं पक्वं मिष्टकन्दं सुखप्रदम्। दशाङ्गुलं कलिन्दञ्च नारासं लवलीफलम्॥ १५॥ फानसं पनसं रम्भाफलं कोलं च कर्कटीम्। वीजसारं फलं चाम्रफलमाम्रेतरं फलम्॥ १६॥ श्रीफलं च जम्बुफलं शृङ्गारकमशेरुकौ। खर्जूरं

पिण्डखर्जूरं तालं मधुफलं शुभम् ॥ १७ ॥ द्राक्षाफलं दाड़िमं च नारिकेलं च सेवकम्। नीचूफलं पीचफलमङ्गारकफलं तथा ॥ १८ ॥ कामरङ्गं च नारङ्गं पिच्छं दामफलं तथा। खोरटं तिलगर्दञ्च चेमकं वाकुलं फलम् ॥१९॥ महाम्र-फलकं मोहनफलं जन्तुफलं शिवम्। इत्यशीति प्रसंख्यानि नैवेद्यानि यथाक्रमम् ॥ २० ॥ कथितानि मया भद्रे कालिका प्रीतिहेतवे। नोक्तान्यन्यानि यान्यत्र तानि देयानि दैशिकैः ॥२१॥ अथ कुलार्चनदीपिकायाम् ॥ देव्यै निवेदितं यद्यत् तच्छेषं भक्षयेद्बुधः। दिव्यदेहधरो भूत्वा देव्याः पार्श्वचरो भवेत् ॥ २२ ॥ अथ समयाचारतन्त्रादौ ॥ अनिवेद्य न भुञ्जीयान् मद्यं मांसादिकं च यत्। अनिवेद्य-तु यो भुङ्क्ते समहापातकी भवेत् ॥ तथा कुब्जिकायाम्॥ मद्यं मांसं च मत्स्यं च तथा मुद्रादिकानि च। भुक्त्वा निवेदितं देव्या प्रायश्चित्तं समाचरेत्। अन्न-तोयादिकं यद्यद्भुनक्ति च नराधमः। मलमूत्रसमं तस्य भोजनं नात्र संशयः॥ फलमूलादिकं यत्ताम्बुलमौषधादिकम्। अनिवेदितभुञ्जीयात् यथाहाराय कल्पते॥ यथा तान्त्रिकवामपथिमद्यादिपञ्चमकाराणां यज्ञादिविषये विधानं तथैव तेषां पञ्चानां वेदेऽपि यज्ञादिषु ग्रहणं दृश्यते। तत्राह। यजुर्वेदे एकोन-विंशत्यध्याये सर्वत्र स्पष्टं तत्र कांश्चिन्मन्त्राणाह। ब्रह्मक्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुते आसुतो मदाय शुक्रेण देवदेवताः पिपृग्धिरसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥ टीका। काण्ड [ १९, २, १० ] उत्तरस्यां पयो वेतसेऽजाविलोम-पवित्रेण ब्रह्मक्षत्रमिति। अजमेषलोमकृतपवित्रेण वेतसपात्रे उत्तरदिशि पयः पुनाति। ब्रह्मक्षत्रमिति मन्त्रेणेत्यर्थः सुरा सोमदेवत्यात्रिष्टुप् आद्यो द्वादशकः द्वितीयस्त्रयोदशार्णः। अन्त्या वैकादशार्णौ तेन त्र्यधिका। हे देवसोमशुक्रेण शुद्धेन वीर्य्येण त्वं देवताः अग्न्याद्याः पिपृग्धिप्रीणी हि पुनरसेन घृतादिना सहितमन्नयजमानाय धेहि देहि। ततः सोमो भवान्। सुतोऽभिसुतः सन् ब्रह्म-ब्राह्मणं क्षत्रं क्षत्रियं तेजः कान्तिमिन्द्रियसामर्थ्यं पवते जनयति पवति जन-नार्थः यज्ञादेव सर्वोत्पत्तेः। सोमे उपचर्य्यते। आसुतः सुरया तीव्रीकृतः सन् भवान् मदाय च भवति। ईदृशसामर्थ्यं युक्तस्त्वं देवान् यजमानं नाभीष्टेन प्रीणीहीत्यर्थः ॥५॥ नाना हि वां देवहितꣳसदस्कृतं मासꣳसृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एषमामाहिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥ का० [ १९, २, २० ] स्थालीभिः सौराग्नाना हि वामिति व्यत्यासम् नाना हीति मन्त्रेण मृण्मयस्थालीभिः त्रीन् सुराग्रहान् गृह्णाति। व्यत्यासमित्यर्थः आदा-

अश्विनापयो ग्रहं गृहीत्वा साद्याश्विनसुराग्रहस्य ग्रहणासादने ततः सारस्वतौ पयोग्रहसुराग्रहौ तत ऐन्द्रौपयः सुराग्रहौ क्रमेण वा। उपयामयोनी अत्रापि पृथक् प्रथमे नाना हीति पठित्वोपयामगृहीतोऽस्य श्विनं तेज इति ग्रहणमेषते योनिर्मोदायत्वे विसादनम्। द्वितीये नाना हीत्यन्ते उपयामगृहीतोऽसि सारस्वतं वीर्य्यमिति ग्रहणमेषते योनिरानन्दायत्वेति सादनम्। तृतीये नानेत्यन्ते उपयामगृहीतोऽस्यैन्द्रं बलमिति ग्रहणमेषते योनिर्महसत्वेति साद्गमिति सूत्रार्थः। सुरासोमदेवत्या जातौ हे सुरासोमौ हि यस्मात्कारणाद्वायुवयोर्नाना पृथक् सदः स्थानं कृतम्। सुरापयसोर्द्वे वेदी भवतः कीदृशं सदः देवहितं देवानां हितं पथ्यं यद्वा देवैर्हितं स्थापितम् अतः कारणात् परमे उत्कृष्टे व्योमन् व्योम्नि व्योमवद्विशालेह वनस्थाने युवमा संसृजाथां संसर्गं मा कुरुतम्। आहवनीये पयो हूयते दक्षिणाग्नौ सुरा हूयते अतो न संसर्गः सृजविसर्गे लुङ् एवं द्वौ प्रत्युक्त्वा सुरामाह हे सुरे त्वं सुरा असि कीदृशी शुष्मिणी शुष्मं बलमस्या अस्तीति बलवती ततस्त्वां पीत्वा मत्तो भवति एष सोमः शान्तः अतः त्वां योनिमाविशन्ती प्रविशन्ती सती सोमं माहिंसीः अनुदात्तो माशब्दः पादपूरणः। आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः। रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रिः सुरासुता ॥ १४ ॥ किञ्च मासरमातिथ्यरूपमातिथ्येऽष्टे स्वरूपं ध्येयम्। व्रीहिश्यामाकौदनाचामयोः शष्पतोक्मलाज नग्नहु चूर्णैः संसर्गो मासरं पूर्वमुक्तम्। सर्जत्वगादिषड्विंशतिवस्तून्येकीकृतानि दग्नहुः पूर्वोक्तः। स महावीरस्य धर्मस्य रूपं ध्येयम् तिस्रो रात्रीः कालाध्वनोरिति द्वितीया [ पा० २, ३, ५ ] त्रिरात्रपर्य्यन्तं सुरा आसुता अभिषुता पूर्वोक्तं सर्वमेकपात्रं कृत्वा स्वा द्वीक्षत्वेति मन्त्रे यद्वर्त्ते त्रिरात्रं स्थापनम्। एतदुपसदासुपसत्संज्ञानामिष्टीनां रूपम् ॥ १४ ॥ सुरावन्तं बर्हिषदꣳसुवीरं यज्ञꣳहिन्वन्ति महिषामनोभिः दधानाः सोमदिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः का [ २९, ३, ८ ]। सुरावन्तमिति जुहोति अध्वर्य्युस्त्रीनपि पयोग्रान् सहैव जुहोतीत्यर्थः। एवं सौत्रामण्याः सोमसम्प्रतिपाद्यप्रकृतमनुसरति। चतस्रस्त्रिष्टभोऽश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्याः। महिषामहान्तः ऋत्विजो यज्ञं सौत्रा महिसंज्ञकम्। हिन्वन्ति वर्द्धयन्ति प्रापयन्ति वा किं भूतं यज्ञं बर्हिषदꣳबर्हिषि सीदन्तीति देवायत्र सबर्हिषत्तम्। तथा सुरावन्तं सुरा विद्यते यत्र स सुरावान् तम्। सुरावान् वा एष बर्हिषद्यज्ञोयत्सौत्रामणीति [ १२, ८, १, २ ] श्रुतेः सुवीरं शोभना वीरा यत्र शोभनत्विजम्। कीदृशाः महोषा

नमोभिरन्नैर्नमस्कारैर्वा सहदिवि स्वर्गे वर्त्तमानासु देवतासु सोमं दधानाधारयन्तः तत्र यज्ञे इन्द्रं यजमानाः यजन्तः सन्तो वयं मदेम हृष्येम किं भूतावयं स्वर्काः शोभनोऽर्कोऽर्चनं मन्त्रा वा येषां ते स्वर्काः यद्वा शोभनोऽर्कोऽन्नं येषां ते स्वर्काः इत्यर्को वै देवानामन्नमन्नं यज्ञो यज्ञेन नमन्नाद्येन समर्द्धयतीति ।[ १२, ८, १, २ ] श्रुतिः अर्को देवो भवति यदेनमर्चयन्ति अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति अर्कमन्नं भवत्यर्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति संवृतः कतुकिन्नेति यास्कः [ निरु० ५, ४ ] महिषशब्दो यद्यपि महन्नामसुपठितस्तथाप्यत्र ऋत्विग्वाचकः महिषा नमोभिरिति ऋत्विजो वै महिषा इति [ १२, ८, १, २ ] श्रुतिः ॥ ३२ ॥ समुद्राय शिशुमारानालभते पर्य्यन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् । वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥ त्रीन् शिशुमारान् जलचरजन्तून् समुद्रायालभते । त्रीन् मण्डूकान् भेकान् पर्य्यन्याय । त्रयाणां मत्स्यानां मध्ये द्वौ अद्भ्यः । अथ तृतीयेऽवकाशे एकं शिष्टं मत्स्यमद्भ्यः । त्रीन् कुलयान् जलजान् मित्राय । त्रीन् नाक्रान् नक्रा एव नाक्रास्तान् जलचरान् वरुणाय सोमाय हंसानालभते वायवे वलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥ त्रीन् हंसान् सोमाय । तिस्रो वलाकाः वकपत्नो वायवे । अथ चतुर्थेऽवकाशे । त्रीन् क्रुञ्चान् पक्षिणः इन्द्राग्निभ्याम् । त्रीन् मद्गून् जलकाकान् मित्राय । त्रीन् चक्रवाकान् वरुणाय ॥ २२ ॥ अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषाश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥ त्रीन् कुटरून् कुक्कुटानग्नये । ततस्त्रयाणामुलूकानां मध्ये एकमुलूकं वनस्पतिभ्यः । अथ पञ्चमेऽवकाशे द्वौ उलूकौ काकवैरिणौ । त्रीन् चाषानग्नीषोमाभ्यां त्रीन् मयूरानश्विभ्याम् । त्रीन् कपोतान् मित्रावरुणाभ्याम् ॥२३॥ सोमाय लवनालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥ त्रयाणां लवानां लावकानां मध्ये द्वौ सोमाय । अथ षष्ठेऽवकाशे एकं लवं सोमाय कौलीकान् पक्षिणः त्वष्ट्रे । तिस्रो गोषादीः गवां सादयित्रीः पक्षिणीः देवानां पत्नीभ्यः तिस्रः कुलीकाः पक्षिणीः देवजामिभ्यः देववधूभ्यः जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः त्रीन् पारुष्णसंज्ञान् गृहपतयेऽग्नये ॥ २४ ॥ अह्ने परावतानालभते रात्र्यैसीचापुरहोरात्रयोः सन्धिभ्यः चतूर्मासेभ्यो दात्यौहान् सं वत्सरायमहतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥ अथ सप्तमेऽवकाशे त्रीन् पारावतान् कलरवानह्ने तिस्रः सीचापुः पक्षिणीः रात्र्यै तिस्रो जतूः

पात्राख्याः पक्षिणीः अहोरात्रयोः सन्धिभ्यः चीन् दात्यूहान् कालकण्ठान् मासेभ्यः त्रयाणां महतां सुपर्णानां मध्ये एकं संवत्सराय। अथाष्टमेऽवकाशे द्वौ महान्तौ सुपर्णौ संवत्सराय॥ २५॥ भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवैक-शान्। दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः॥ २६॥ भूम्यै आखून् मूष-कान् त्रीन् पाङ्क्तान् मूषकजातिविशेषानन्तरिक्षायकाशान् तद्भेदानेव दिवे त्रीन् नकुलान् दिग्भ्यः। तत्र द्वौ अष्टमे। अथ नवमे एकम्। चीन् वभ्रुका-नवान्तरदिशाभ्यः॥ २६॥ वसुभ्य ऋश्या नालभते रुद्रेभ्यो रुरुनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान् साध्येभ्यः कुलुङ्गान्॥ २७॥ त्रीनृष्यान् वसुभ्य ऋष्या-दयो मृगविशेषाः। रुद्रेभ्यो रुरुन् त्रीन्। न्यङ्कूनादित्येभ्यः। अथ दशमेऽवकाशे त्रीन् पृषतान् विश्वेभ्यो देवेभ्यः। त्रीन् कुलुङ्गान् साध्येभ्यः॥ २७॥ ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र उष्ट्रान्॥२८॥ परस्वतः मृगविशेषानीशानाय त्रीनगौरान् मृगान् मित्राय त्रीन् महिषान् वरु-णाय तत्रैकं दशमे। अथैकादशेऽवकाशे त्रीन् गवयान् गोसदृशानरण्यपशून् बृहस्पतये। त्रीन् उष्ट्रान् त्वष्ट्रे॥ २८॥ प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन् आलभते वाचेप्लुषींश्चक्षुषे मशकान्। श्रोत्राय भृङ्गाः॥ २९॥ प्रजापतये पुरुषान् हस्तिनः त्रीन्। चीन् प्लुषीन् वक्रतुण्डान् वाचे तन्मध्ये द्वौ प्लुषी एकादशे। अथ द्वादशे-ऽवकाशे एकं प्लुषीम्। त्रीनमशकान् चक्षुषे। त्रयो भृङ्गाः श्रोत्राय नियोज्याः॥ २९॥ प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्योमेषो यमाय कृष्णो मनुष्य राजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयीक्षिप्रश्येनाय वर्त्तिकानीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारोहिमवते हस्ती॥ ३०॥ प्रजापतये च वायवे च एको गोमृगः गवयः एक आरण्यो मेषो वरुणाय एकः कृष्णोमेषो यमाय एको मर्कटो मनुष्यराजाय॥ एको रोहिदृष्यः शार्दूलाय एकागवयी ऋषभाय तदाख्य देवाय॥ अथ त्रयोदशावकाशे एकावर्त्तिका क्षिप्रसेनाय देवाय एकः कृमिः कीटः नीलङ्गोः नीलङ्गवे शिशुमाराः एको जलचरः समुद्राय हस्ती हिमवते॥ मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशङ्कं को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताः पुष्करसादस्त्वाष्ट्रा वाचे क्रुचः॥ ३१॥ मयुः प्राजापत्यः गुरङ्गवदनः किन्नरः प्रजापति दैवतः उलो मृगविशेषः हलिक्ष्णः सिंहविशेषः वृषदो विड़ालः ते त्रयो धात्रे एकः कङ्कवकः दिशन्दिग्भरः॥ एकाधुङ्क्षापक्षिणी आग्नेयी अग्निदैवत्या। कलविङ्कः चटकः। लोहिताहिः रक्तवर्णसर्पः। पुष्करसादोपुष्करे सीदतीति

कमलभची पचिविशेषः ते चयः त्वष्ट्राः त्वष्टु देवताः। अथ चतुर्दशेऽवकाशे एकः क्रुञ्च वाचे ॥ ३१ ॥ सोमाय कुलङ्ग आरण्योऽजो न कुलः शकाते पौष्णाः क्रोष्टा-मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्दन्यङ्कुः कुक्कुटस्तेनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥ कुलुङ्गः कुरङ्गो हरिण एकः सोमाय आरण्यां वनजोऽजच्छागः न कुलः शकाः शकुन्तिः ते त्रयः पौष्णाः पूषदेवत्याः। क्रोष्टा शृगालो मायोर्देवस्य। एको गौरमृगः इन्द्रस्य पिद्दोमृगविशेषः न्यङ्कुः अपि कुक्कुटः स एव ते त्रयोऽनुमत्यै। चक्रवाकः। प्रतिश्रुत्कायः ॥ ३२ ॥ शौरीवलाकाशार्ङ्गः सृजयः शयाण्डकस्तेमैत्राः सरस्वत्यैशारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥ बलाकावकस्त्री सूर्यदेवत्या। शार्ङ्गः पचिविशेषः ॥ अथ पञ्चदशेऽवकाशे सृजयः पचिविशेषः। शयाण्डकोऽपि ते मैत्राः मित्रदेवत्याः पुरुषवाक् मनुष्यवद्वादिनीशारिः शुको सरस्वत्यै श्वावित्सेधभौमी भूदेवत्या शार्दूलो व्याघ्रोवृकः चित्रकः। पृदाकुः सर्पः ते त्रयो मन्यवे। पुरुषवाक् शुकः सरस्वते समुद्राय। सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदाते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलजः आन्तरिचः प्लवोमद्गुर्मत्स्यस्ते न दीपतये द्यावा पृथि-वीयः कर्मः ॥ ३४ ॥ सुपर्णः गरुत्मान् पार्जन्यः पर्जन्याय जातिः आडीवाहसः दाविदाकाष्ठकुट्टः ते त्रयः पचिविशेषाः वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये वाचो वाण्याः पतये इति बृहस्पतिविशेषणम् ईदृशाय बृहस्पतये पैङ्गराजः पचिविशेषः ॥ अथ षोड़शेवकाशे अलजः पचिविशेषः आन्तरिचः अन्तरिचदेवतः प्लवः जलपची मुद्गः कारण्डवः मत्स्य ते नदीपतये ॥ कुर्मकच्छपः द्यावा पृथि-वीयेः द्यावा पृथिवीदेवतः ॥ ३४ ॥ पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधाकालकादार्वा-घाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः। सावित्रीहꣳसोवातस्य नाक्रोमकरः कुलीपत-यस्तेऽकूपारस्य ह्रियैशल्यकः ॥ ३५ ॥ पुरुषमृगः पुंमृगः चन्द्रमसः। गोधा-कालकापचिविशेषः। दार्वाघाटः सारसः ते वनस्पतीनाम्। कृकवाकुः ताम्र-चूड़ः सावित्रः सवितृदेवतः हंसः वातस्य नाक्रः मकरः कुलीपयः ते त्रयो जल-चरविशेषाः अकूपारस्य समुद्रस्य मध्ये दीषोड़शे ॥ अथ सप्तदशेऽवकाशे एकः कुलीपयः अकूपारस्य शल्यकः। श्वाविड्ढ्रियै देव्यै ॥ ३५ ॥ एण्यह्नो मण्डूको मूषिकातित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णोरात्र्या ऋचोजतूः सुषिली-कात इतरजनानां जह्नकावैष्णवी ॥ ३६ ॥ एणी मृगी अह्नः आलभ्य मण्डूको मूषिकातित्तिरिः ते त्रयः सर्पाणाम्। लोपाशो वनचरविशेषः आश्विनः अश्विनो

दैवतः। कृष्णो मृगः रात्रेः ऋक्षः भल्लूकः जतूः सुषिलीका एतौ पक्षिविशेषौ ते त्रयः इतरजनानां देवानाम्। हजका गात्रसङ्कोचनी वैष्णवी विष्णुदेवत्या॥२६॥ अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासाङ्कश्यपो रोहितकुण्डुणाचीगोलत्तिकातेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः॥ २७॥ अन्यवापः कोकिलाख्यः पक्षिविशेषोऽर्धमासानां पशुः अथाष्टदशेऽवकाशे। ऋश्यो मृगविशेषः मयूरः वर्हीसुपर्णोगरुत्मान् ते गन्धर्वाणां पशवः॥ रुद्रः जलचरः कर्कटसंज्ञः अपां पशुः। काश्यपः कच्छपः मासां मासानां रोहित ऋष्यः। कुण्डृणाची वणचरी विशेषा। गोलत्तिरिकापि ते त्रयोऽप्सरसाम्। असितः कृष्णः पशुर्मृत्यवे॥ २७॥ वर्षाह्वऋतूनामाखुः कशोमान्य। लस्ते पितॄणां बलाया जगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यैवरुणायारण्योमेषः॥२८॥ वर्षाह्वः वर्षाभूः भेक ऋतूनाम्। आखुः मूषकः कशः मान्यालश्च तद्विशेषौ ते त्रयः पितॄणाम् अथैको न विंशे। अजगरो महासर्पः बलाय। कपिञ्जलो वसूनाम्। कपोतः उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै। आरण्योमेषो वरुणाय॥ २८॥ श्वित्र आदित्यामुष्ट्रो घृणीवान्। वार्ध्रीनसस्ते मत्यौ अरण्याय सृमरो रुरूरौद्रः क्वोऽपिः कुटरुर्दात्यौ हस्ते वाजि वाजिनां कामाय पिकः॥ २९॥ श्वित्रः श्वेतः पशुरादित्यानाम् उष्ट्रः दीर्घग्रीवः घृणीवान्। तेजस्वी पशुविशेषः संहितायां घृणिशब्ददीर्घः वार्ध्रीनसीकण्ठेस्तनवानजः ते त्रयो मत्यै देव्यै। सृमरो गवयोऽरण्योय देवाय। रुरुः मृगः रौद्रः रुद्रदैवतः क्वपिः पक्षिविशेषः। अथ विंशेऽवकाशे। कुटरुः कुक्कुटः दात्यौहः कालकण्ठः ते त्रयो वाजिनां देवानाम्। पिकः कोकिलः कामाय॥ २९॥ खड्गो वैश्वदेवः श्वाकृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षस्ते रक्षसामिद्राय सूकरः। सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पकाशकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः॥ ४०॥ इति माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयिसंहितायां चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

खड्गो मृगविशेषो। विश्वदेव दैवतः। एकः कृष्णः श्वासारमेयः द्वितीयकर्णो लम्बकर्णो गर्दभः तृतीयस्तरक्षुः मृगादनः ते त्रयो रक्षसां पशवः सूकरः इन्द्राय सिंहो मारुतः मरुद्दैवतः। कृकलासः सरटः पिप्पकापक्षिणी शकुनिः पक्षी ते त्रयः शरव्यायै एकः मृगविशेषो विश्वेषां देवानां पशुर्भवति विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं वियुनज्मीति योज्यः एवं षष्ठ्यधिकं शतद्वय मारण्यापशवः उक्ताः। अत्र द्वाविंशतिरेकादशिनः सप्तविंशत्यधिकानित्रीणि शतानि अश्वादयः सौर्य्यान्ताः षष्ठ्-

धिकं शतद्वयं कपिञ्जलादयः पृषतान्ताः आरण्याः पशवः सर्वेमिलित्वाषट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति श्लोकाश्च षट्शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य यज्ञस्य नवभिश्चाधिकानि चेति। तेष्वारण्याः सर्वे उत्सृष्टव्या न तु हिंस्याः॥ ४०॥ इति श्रीमान् महीधरकृते वेददीपे मनोहरे॥ गतोऽध्यायश्चतुर्विंशो देवता पशुवाचकः॥ २४॥ इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥ आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकरभूषिते॥ कुशास्तरणसंस्तीर्णे रामः सन्निषसादह॥ १७॥ सीतामादाय हस्तेन मधुमैरेयकं शुचिपाययामास काकुत्स्थऽशचीमिव पुरन्दरः॥ १८॥ मांसानि च सुमृष्टानि फलानि विविधानि च॥ रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन्॥ १९॥ उपानृत्यंश्चराजानं नृत्यगीतविशारदाः॥ अप्सरोरगसङ्घाश्च किन्नरी परिवारिताः॥ २०॥ दक्षिणारूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशङ्गताः उपानृत्यं तकाकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः॥ २१॥ मनोभिरामारामास्तारामोरमयतां वरः॥ रमया मासधर्म्मात्मा नित्यं परमभूषिताः॥ २२॥ स तया सीतया सार्द्धमासीनो विरराजह॥ अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा॥ २३॥ एवं रामो मुदायुक्तः सीतां सुरसुतोपमां रमया मासवैदेही महन्यहनि देववत्॥ २४॥ वाल्मीकीये उत्तरकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥ ३९॥

युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात्काननौकसः धन्योराजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदाम्वरैः॥ २४॥ एवमुक्त्वा ददौ तेभ्यो भूषणानि यथार्हतः॥ वस्त्राणि च महार्हाणि स स्रजे च नरर्षभः॥ २५॥ ते पिवन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिङ्गलाः॥ मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च॥ २६॥ एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा॥ समुहूर्त्तमिवते सर्वे रामभक्त्या च मे निरे॥ २७॥ रामोऽपि रेमेतैः सार्द्धं वानरैः कामरूपिभिः। राक्षसैश्च महावीर्य्यैर्ऋक्षैश्चैव महाबलैः॥ २८॥ एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शिशिरः सुखम्। वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानाञ्च सर्वशः॥ २९॥ इक्ष्वाकु नगरे रम्ये परां प्रीतिमुपासताम्। रामस्य प्रीतिकरणैः कालस्तेषां सुखं ययौ॥ ३०॥ वराहपुराणे। मार्गमासं वरं छागं शासं स मनुयुज्यते। एतान् हि प्रापणे दद्यात् मम चैतत् प्रियावहम्॥ ११॥ युञ्जानो वितते यज्ञे ब्राह्मणे वेदपारगे। भागो ममास्ति तत्रापि पशूनां छागलस्य च॥ १२॥ माहिषं वर्जयेत् मद्यं क्षीरं दधिघृतं ततः। वर्जयेत्तत्र मांसानि यजुषा वैष्णवोऽश्नुते। परम्पाय समपि वर्ज्यानि तन्मांसं

चेतकः खुरे ॥ १३ ॥ पच्चिणाञ्च प्रवच्यामि ये प्रयोज्या वसुन्धरे। ये चैव मम चैत्रेषु उपयुज्यन्ति नित्यशः ॥ १४ ॥ लावकं वार्त्तिकञ्चैव प्रशस्तञ्चकपिञ्जलम्। एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः। मम कर्मणि योग्याये ते मया परिकीर्त्तिताः ॥ १५ ॥ यस्त्वेतत्तु विजानियात्कर्मकर्त्ता तथैव च। नापराध्नोति स नरो मम चोक्तं वचः प्रिये ! ॥ १६ ॥ ते च भोज्याश्च मङ्गल्या मम भक्तसुखावहाः। ततोयष्टव्यमेवं हि य इच्छेत् सिद्धिमुत्तमम् ॥ १७ ॥ य एतेन विधानेन यजिष्यन्ति वसुन्धरे। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं ममैव क्रतकर्मिणः ॥ १८ ॥ इति वराहपुराणे भगवच्छास्त्रे प्रापण द्रव्यकर्मखभोज्यनियमविधिर्नाम ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

तथाच मनुस्मृतौ ॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्येन च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ एतादृशानि श्रुति स्मृति पुराणेतिहा सोक्तानि वाक्यानि मद्यमांस पराणि दृश्यन्ते एतयोर्निन्दाकरणे तेषां श्रुत्यादीनां निन्दा न भवति अपि तु भवत्येव अतएवेति निन्दकानां वैष्णवानां वचनानि दर्शयामहे ॥ रुद्रः काली गणेशश्च कुष्माण्डा भैरवादयः मद्यमांसाशिनश्चान्ये तामसाः परिकीर्त्तिताः ॥ शुद्धानामपि देवानां या स्वतन्त्रार्चनक्रिया ॥ सा दुर्गतिं न यत्येव वैष्णवं वीतकल्मषं तं विना पुण्डरीकाक्षं कोर्चयेदितरान् सुरान् ॥ नारायणं परित्यज्य योन्यदेव मुपासते। स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्रीपुरुषाधमम् ॥ निर्माल्यमितरेषां तु यदन्नाद्यं दिवौकसाम्। उपभुज्यनरो याति ब्रह्महत्या न संशयः ॥ नान्यदेवं नमस्कुर्य्यात् नान्यदेवं निरीक्षयेत्। नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यस्यायतनं विशेत् ॥ देवतान्तरनैवेद्य भोजनं प्रतिषिद्धयते। सौरशाक्तादि नैवेद्य भुक्तौ कामादकामतः ॥ १ ॥ तत्र तत्र निवन्धेषु प्रायश्चित्तं प्रपञ्चते। शिवनिर्माल्यसंसर्गनिषेधः सुतरां मतः ॥ २ ॥ इत्यादिनिषेधवाक्यानि वैष्णवोक्तानि विध्यविध्युभयपराणि यानि तु श्रुति स्मृत्युक्तानि निषेधवचनानि तान्यविधिपराणि तत्तु विधिपराणि ये तूभयनिन्दकास्ते नास्तिकाः ये तूभयग्राहकास्ते म्लेच्छा अविधिं परित्यज्य विधिग्राहका ह्यास्तीकाः निषेधवचनानि यथा मद्यमपेयमदेयमग्राह्यम्। ब्राह्मणो मदिरां पीत्वा ब्राह्मण्या देवहीयते ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महातिपातकान्याहुस्तत् संसर्गी च पञ्चमः ॥ ब्राह्मणो न च हन्तव्यः सुरापेया न च द्विजैरित्यादिनिषेधविधानमुक्तम् ॥ तथा देवी पुराणेऽपि मद्यपानं द्विजातीनां गर्हितं पातकं न हि ॥

प्रायश्चित्ती भवेत् स्पृष्ट्वा पीत्वा तु नरकं व्रजेत्॥ तारासुधार्णवे च॥ मद्यं पीत्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्या देवहीयते॥ रुद्रयामले वेदत्यागान् मद्यपानाच्छूद्रदारानिषेवणात्॥ तत्क्षणाज्जायते विप्रश्चाण्डालादपि गर्हितः॥ कालीकुलार्णवे॥ सुरावैमलमन्नानां पूरीषमलमुच्यते। तस्मात् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥ सुरादर्शनमात्रेण कुर्य्यात् सूर्य्यावलोकनम्। तत्समं घ्राणमात्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्॥ कुब्जिकातन्त्रे च॥ भुक्त्वा मत्स्यं च मांसं च स्पृष्ट्वा हेतुं च भैरवीम्। त्रिरात्रो पोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥ श्रीक्रमे च॥ न दद्यात् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कदाचन॥ इति

इति निर्म्माल्यरत्नाकरयोत्तरार्द्धे षष्ठस्तरङ्गः।

---

## अथ सप्तमस्तरङ्गः।

अथ मांसनिषेधवा०॥ विचक्ष्युरपि अव्यवस्थितमर्थ्या दैर्विमूढैर्नास्तिकैः परैः संशयात्मभिरपरैर्हिंसामनुवर्णिता सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मामनुरब्रवीत्। कामचाराद्विहिंसन्ति वहिर्वेद्याः पशुन्यथेति मनुरपिना कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्॥ न च प्राणिवधो धर्मस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्। समुत्पत्तिं च मांसस्य वधवन्धौ हि देहिनाम्॥ प्रसमीक्ष्यनिवर्त्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ इति॥ समुत्पत्तिं चेति शुक्रशोणितपरिणामात्मिकां समुत्पत्तिं घृणाकरीं विज्ञाय प्राणिनां बधवन्धौ क्रूरकर्मरूपौ विज्ञाय निरूप्यविहितमांसभक्षणादपि निवर्त्तेत॥ किमुताविहितमांसभक्षणादिति मांसनिराभक्षणानुवाद इति तत्रैव यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते॥ मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत्॥ इति मांसभक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्॥ स तन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिण इत्यपि तत्रैव वर्षे वर्षे श्वमेधेन यो यजेत् शतं समाः मांसानि च नखादेद्यस्तयोः पुण्यफलं सममिति॥ तत्रैव ध्यायति यत्कुरुते धृतिं वध्नाति यत्र च॥ तदवाप्नोत्ययत्नेन मुनिर्मांसविवर्जनात्॥ इति योगीश्वरोऽपि॥ सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं यथा॥ गृहेऽपि निवसन् विप्रो सततं मांसविवर्जनात्॥ इति भीष्मोऽपि॥ न हि मांसं तृणात्काष्टादुपलाद्वापि जायते॥ हत्वा जन्तून् भवेन्मांसं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्। एकस्य क्षणिकीतृप्तिरन्यः प्राणै-

विमुच्यते ॥ अहो मांसस्य दौरात्म्यं प्रत्यक्षमिह दृश्यते ॥ इति अन्यच्च ॥ यूपच्छित्वा पशुं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ यद्येव गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते ॥ इति अन्यच्च ॥ यत्र प्राणिवधो धर्म्म अधर्मस्तत्र कीदृशः ॥ ब्राह्मणो यत्र मांसाशी चण्डालस्तत्र कीदृशः ॥ इति भारतेऽपि ॥ प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया । अल्पदोषमिति ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥ इति स्पष्टमेव वैधहिंसायामपि पापस्मरणम् ॥ यमोऽपि सर्वेषामेव मांसानां महान् दोषस्तु भक्षणे निवर्त्तने महापुण्यमिति प्राह प्रजापतिरिति ॥ भक्षणेन महान् दोषो निवृत्यापुण्यमुच्यते अन्यत्रापि ॥ विधियज्ञात् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैरिति ॥ मन्त्रवर्णोऽपि यत्पशुर्मायुऽमक्रतोरोवापयद्भिराहतः अग्निर्मातस्मादेन स इति संज्ञापनादेनो दर्शयति तस्मात् ब्राह्मणैः पायसादिभिरेवयष्टव्यं तदुक्तं नमो ब्राह्मणयज्ञाय ये च यज्ञविदोजनाः स्वयज्ञं ब्राह्मणं हित्वा क्षत्रयज्ञमिहस्थिताः यदेव सुकृतं हव्यं तेन तुष्यन्ति देवता नमस्कारेण हविषास्वाध्यायैरौषधैस्तथेति विचख्युरपि विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् इति विष्णुत्वेनैव सर्वदेवता जानन्ति अतएव सर्वयज्ञेष्वित्युक्तं एतेनेदं स्वातन्त्र्येण विष्णुयागविधायकमित्यपास्तं यो याजयति प्रति वा गृह्णाति याजयित्वा प्रति गृह्यवायश्च त्रिःस्वाध्यायं वेदमधीयीतेति ऋत्विजां प्रायश्चित्तश्रवणाच्च मनुरपि कुर्य्याद्घृतपशुं सङ्गे कुर्य्यात्पिष्टमयं पशुं नत्वेव तु वृथाहं तुं पशुमिच्छेत्कदाचनेति सङ्गे यज्ञे वृथा अनयैव रीत्याया गोपपतौ पशुवधो वृथेति भावः फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानाञ्च भोजनैर्न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ भागवतेऽपि । मुन्यन्नैस्तु यथा प्रीतिस्तथा न पशुहिंसया ॥ पशुयज्ञैर्यक्ष्यमाणान् दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति एषमाकरुणो हन्यादयज्ञोऽसुतृप्ताभ्रुशः तस्मात् यथोपपन्नेन मुन्यन्नेनैव धर्म्मवित् सन्तुष्टो अहरहः कुर्य्यात् नित्यनैमित्तिकीः क्रिया इति क्वचित् द्रव्ययज्ञैरिति पाठः तत्रापि द्रव्यं पशुः तत्रैव स्थलान्तरे भगवद्वाक्यं हिंसायां यदि रागस्स्यात् यज्ञे एव न चोदनाहिंसा विहारा ह्यालभ्यैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ॥ यजन्ते देवता यज्ञैरिति हिंसायां तत्फलं मांसभक्षणे तथाच निर्णयसिंधौ ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्माण्डं बलिकर्मणि श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥ अन्यच्च ॥ माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानतेति ॥ अतएव योगसूत्रे एषां शुक्लकृष्णत्वादिना व्यवहारा कृतः भगवद्गीतासु च अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं भवत्यत्यागिनाम्प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ॥ इति यत्तु अशुद्ध-

मिति चेन्न शब्दात् इति ब्रह्मसूत्रं तस्यायमर्थः अशुद्धमेवेति चेन्न शब्दात्॥ धर्म्माधर्म्मयोः शब्दमात्रगम्यत्वात् वैधहिंसायां धर्म्मस्याप्युक्तेर्न साधर्म्म एव॥ अल्पपापत्वादेववैधहिंसा न दोषा येति मीमांसकानामुद्घोषः॥ अतएवाल्पपापस्याल्पायुष्ट्वादिकं फलमुक्तं स्थावरभावोद्भिसर्वथाऽशुद्धस्यैव कर्म्मणः फलमिति व्यासाशयः उक्तयोगभाष्यीय व्यासवचनानुरोधात् अतएव करणरूप महानिष्टसाधनेऽपि सहगमनवेणीप्रवेश सर्वाङ्गाहुत्यङ्कसर्वस्वारयज्ञादौ च प्रवृत्त्युपपत्तिः पुरुषस्य प्रत्यवायेऽपि यागस्य सङ्गत्वाच्चतेः। अतएव रामायणे वाल्मकीये बालिबधे कृतेऽपि भगवतः पापश्रवणम्॥ न च स्वर्गेऽपि महिषासुरादिजन्यदुःखस्वीकारे यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमन्तरा अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वः पदास्पदमित्यनेन विरोध इति वाच्यं यत आद्यपादेनैहिकदुःखेनासम्भिन्नमित्यनेनैहिकदुःखे सम्भिन्न दुःखनिरासः अन्यथा॥ सकलदुःखाभावस्याद्यपदेनैव प्रतिपादनैः सिद्धेऽधिकस्य वैयर्थ्यापत्तेः अभिलाषोपनीतमित्यनेन् विषयसम्पादननिरासः स्वर्गेऽपि असरस एनं जाया भूत्वोपशेरतेरित्यादिना वैषयिक एव भोग इति स्पष्टमेकः पूर्वपरयोरिति सूत्रे भाष्य एवं च विजातीय सुखत्वमेव स्वर्गत्वं तस्मात् स्वर्गेऽपि महिषासुरादिदुःखमस्त्येवेति सूचितं यद्वा स्वनान्तरीयकावश्यं भाविदुःखाजन्यदुःखानकाधर्म्मानारब्धदेहोपभोग्यत्वमेव तत्॥ मरणान्तप्रायश्चित्ते सहगमनादौ च पापमल्पं पुण्यं त्वधिकमिति दिक् श्येन फलीभूतस्य शत्रुबधस्य द्वेषतः प्रवृत्तिविषयत्वाभावेन हि स्यादिति निषेधविषयत्वं पूर्णमेव यज्ञान्तः पातिबधस्यैव मन्वादिभिरल्पपापजनकत्वबोधनात्॥ अतएव तज्जन्यपापेवलविद्वेषवतां शिष्टानां न निष्क्रान्तप्रवृत्तिः श्येनस्तु मरणानुकूलव्यापारो न तादृशहिंसामरणोद्देशेन प्रवृत्तस्य श्रौतविध्यबोधितस्तदनुकूलव्यापारस्यैव तादृशहिंसात्वात्। तस्मात् स्वेनैव वीर्य्येण निगृह्णीयादरीन् द्विजः श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्य्यादित्यविचारयन् क्षत्रियो बाहुवीर्य्येण तरेदा पदमात्मन धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजातय इति वदता मनुना श्रौतस्यैवास्यनुष्ठानमिति बोधितम्॥ श्रुतीस्तु तद्बोधिताभिचारकर्म्मणोत्यर्थः कूपादौ विनष्टे गविकूपकर्त्तुर्हिंसकत्ववारणाय मरणोद्देशेनेति एवञ्च मृगाद्युद्देशेन क्षिप्तनाराचेन ब्राह्मणबधेऽपि न तत्क्षेप्तुर्ब्रह्महन्तृत्वं तथा काशीमरणोद्देशेन कृत शिवपूजादेर्न हिंसात्वं यदा मे मरणं भवेत् तदा काश्यामेवेति मरणस्य काश्यधिकरणकत्वकामनया तदा चरणेऽपि मरणकामनया तदनाचरणाया दृष्टद्वारकत्वविशेषणं वदन्तः॥ परास्ताः मरणोद्देशेन कृतस्य तु हिंसा-

त्वश्रवश्रौतविध्यबोधितेत्युक्तेस्तन्त्राद्युक्ताभिचाराणां हिंसा त्वं भवत्येव श्येनादौ शिष्टानां विज्ञानन्तु श्येनादवधो वधाच्च नरकं इति प्रतिसन्धानेनेति बोध्यम्। श्येनानुष्ठानकाले रिपून् हन्तीति प्रयोगो गौण एव उपपातकेष्वभिचारगणनं तु श्रौतेतराभिचारपरम्। एवञ्च श्येने कृते प्रयोगादिना रिपोर्मरणे श्येनकर्त्तुर्न किञ्चिदपि प्रायश्चित्तम्। शत्रोर्मरणे तु तत्तस्य प्रयोजनकर्त्तृत्वात् प्रयोजकस्य यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तावदेव न सम्पूर्णं मरणजनकरोगादिकं प्रति अन्यकर्त्तृक-खड्गपातादिकं प्रति वा श्येनस्य हेतुताया वेदबोधितत्वात्। श्येनवधप्रयुक्तमल्प-त्वन्तु भवत्येव तान्त्रिकाभिचारकर्तुर्मरणासिद्धौ तद्वधप्रयोजकत्वप्रयुक्तमुपपातक-प्रयुक्तञ्च प्रायश्चित्तं भवत्येव कृतेऽभिचारे दैवादमरणे तूपपातकप्रयुक्तमेव ब्राह्मण विषये तु अभिचारस्य मन्वादिस्मृतौ निषेधात् श्येनादिश्रौताभिचारकरणेऽपि प्रायश्चित्तम्। तद्विषये भट्टाश्रयि श्येनो विहितत्वादिष्टसाधनत्वाच्च धर्म्म एव तत्-फलवैरिबधस्त्वनर्थहेतुत्वादधर्म्म एव इति प्रतिपन्नाः परे तु एवं सति चोदनालक्षणो-ऽर्थो धर्म्म इति सूत्रार्थपदमेव सन्ति व्यर्थं स्यात्। निषिद्धकलञ्जभक्षणादितु न चोद नालक्षणमिति तद्वारणस्यान्यथैव सिद्धेः तस्मात् श्येनो विहितत्वान्नाधर्म्मः नापि धर्मो नरकसाधनत्वादिति प्रतिपन्ना इति दिक् यत्तु दोषप्रतिपादकानि वाक्यानि स्वकर्त्तृकहिंसापराणि इति प्रतिपादकानि तु अनायासक्रयादिलब्धमांसपराणि तदुक्तं नो हन्यान्नो मतिं दद्यात् हतं यच्च न पश्यति। तन्मांसं शाकवद्ग्राह्यं न दोषो मनुरब्रवीत्। इति व्यवस्थामाहुस्तत्र। अनुमन्ता विशसिता तथा च क्रयविक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च षड़ेते घातकाः स्मृताः। निर्देशे नानुमन्ता च विशस्ता शासना तथा। हनने न तथा हन्ता धनेन क्रयिकस्तथा। विक्रयी च पणा दानात् संस्कर्त्ता तु प्रवर्त्तनात्। धनेन चोपभोगेन वध वेधेन चात्यय। त्रिविधस्तु बधो ज्ञेयो भोक्ता तत्रातिरिच्यते। घातकाः षट् समाख्याताः भोक्ता तत्र च सप्तमः। क्रेतारं व्रजते पादो पादो भोक्तारमेव च। घातकं व्रजते पादः पादश्चक्रन्यतस्त्वयः। खादको घातकः क्रेता त्रयस्तुल्याः प्रकीर्त्तिताः॥ इत्यादि-वचनविरोधात् यत्तु गोविन्दराजेनेत्यस्य क्रीत्वा विक्रयीत्यर्थमाश्रित्य न विरोध इत्युक्तं तत्र अद्धेयम् हननेत्युत्तरश्लमवचनविरोधात् केचित्तु निषेधवाक्यानि विन्ध्यदक्षिणपराणि विधायकानि तूत्तरपराणि तदुक्तम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे भागे मांसभुक् पतितो भवेत्। विन्ध्यस्य चोत्तरे भागे खादन्मांसं न दोषभाक्॥ इति वदन्ति तदपि चिन्त्यम् उक्त मिथिलापुरनिवासि याज्ञवल्क्यादिवचनविरोधेनं

यथा विन्ध्यस्य दक्षिणे मांसभुक् पतितो भवेत् तथा किमुत्तरे न दोषभाक् भवतीति दृष्टान्तपरत्वात् । नञ ईषदर्थकत्वाद्वा किञ्च । मत्परो वार्षिकान् मासान् यो मांसं नात्तिमानवः । चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्त्तिमायुर्यशोबलम् । तथा । कौमुदन्तु विशेषस्तु शुक्लपक्षं नराधिप । वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते । इत्यपरार्के भारतवचनम् । अहिंसा परमो धर्म्मः सर्वप्राणिभृताम्बर । तस्मात् प्राणिभृतः सर्वानहिंसा ब्राह्मणः क्वचित् । इति व्यासोक्त भारते यमोऽपि । भुनक्ति यत्र मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम् । हितानाञ्च मृतानाञ्च यथा हन्ता तथैव सः ॥ इति निर्णयसिन्धौ पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे । नित्यं नियमिताहारो गुरुदेव द्विजार्चकः । क्षारक्षौद्रञ्च लवणं मधुमांसानि वर्जयेत् ॥ अन्ये तु विधायकानि युगान्तरपराणि निषेधकानि कलिपराणि तथा च स्मृतिः । अक्षता गो पशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ निगमेऽपि । अग्निहोत्रं गवालम्भ सन्न्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ एवञ्च पञ्चेत्युपलक्षणं तथा च वृहन्नारदीये । समुद्र यात्रा स्वीकार कमण्डलुविधारणे । द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वाणप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्य्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ महाप्रस्थानगमनं गोवधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यान्याहुर्मनीषिणः ॥ इति एतेन सन्न्यासं पलपैतृकमिति वचननिर्मूलमिति, वदन्तः श्राद्धकाशिकाकाराः परास्ताः न च । यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदा प्रवर्त्तते । सन्न्यासं चाग्निहोत्रञ्च तावत्कुर्य्यात् कलौ युगे ॥ इति वचने चकारेण पलपैतृकस्यापि परिग्रह इति वाच्यम् । चत्वार्य्यब्दसहस्राणि चत्वार्य्यब्दशतानि च । कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदात्रेता परिग्रहः । सन्न्यासश्च न कर्त्तव्यो ब्राह्मणमविजानता ॥ इति वचनेन चकारेति निषेधसिद्धेः चकारेण तद्ग्रहणे मानाभावे तु पूर्वेण तद्ग्रहणे मानाभावः तस्मादिदानीं मांसं न भक्ष्यमेवेति स्थितमित्याहुः तदपि न युगान्तरेष्वेवोक्त गीतादिवाक्यसत्त्वात् । किञ्च यन्मूलकोऽयं सर्वोऽप्युपद्रवस्तस्य जैमिनेरेव सर्वज्ञत्वेन मानम् । तथा हि मार्कण्डेयपुराणे स्मर्य्यते व्यासशिष्यो जैमिनिर्भारते विषयेषु केषु चित्पदार्थेषु सन्दिहानो मार्कण्डेयं पप्रच्छ स च सर्वज्ञान् विन्ध्याचलनिवासिनश्चतुरः पक्षिणः पृच्छेत्युक्तवान् तस्यायमाशय व्यासशिष्योऽप्ययम् अशुद्धचित्ततया व्यासोक्तं न साधु मन्यते सर्वफलदमीश्वरं तत्त्वेन न मन्यते

तथा देवतिर्य्यगादीनां व्यासोक्तमधिकारं न मन्यते असम्भवादनधिकारं जैमिनि-रिति व्यासोक्तः अतोऽस्थिरश्वासिष्यो भूत्वा तेषां ज्ञानाधिकारे ज्ञाते सर्वत्रव्या-सोक्ते विश्वस्तो भवेदिति तस्माद्देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् इति यत् स्मर्य्यते तज्जिह्वालोलुपात् प्रवृत्त्यर्थम् यत्तु केचिदाहुर्निषेधो ब्राह्मण-विषयः विधिस्त्वन्य विषयः तथा च मनुः। मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रिय-वैश्ययोः। मधुप्रदानं शूद्रस्य सर्वेषामविरोधी यत्॥ अतएव वने वसतां रामा-दीनां मांसभक्षणस्मरणं तथा च रामायणे। तत्र मेध्यान् मृगान् हत्वा हुत्वा भुक्त्वा च ते त्रयः। इति तदपि मन्दं क्षत्रधर्म्मे स्थितो जन्तूनवधीन्मृगयादिभि-रिति भागवतविरोधात् रामादीनां मांसभक्षण स्मरणन्तु तेषामन्नाप्राप्तौ न दोषावहं तस्मादुक्तवचनेन राजादीनां जिह्वालोलुपतया तेषां प्रवृत्त्यर्थमेव तत्र विधानमिति मन्तव्यं किञ्च भारते। यो हि वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत् सुदारुणम्। यश्चैव वर्जयेन्मांसं समं वा स्यान्न वा समम्। ये वर्जयन्ति मांसानि मासशः पक्ष-शोऽपि वा। तेषां हिंसा निवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते॥ बृहस्पतिः। रोगार्त्तो व्याधितो वापि यो मांसं नात्त्यलोलुपः। फलं प्राप्नोत्ययत्नेन सोऽश्वमेधफलस्य तु॥ नन्दीपुराणे। यो नरः कार्त्तिके मासि मांसन्तु परिवर्जयेत्। संवत्सरस्य लभते फलं मांसस्य वर्जनात्॥ चतुरो वार्षिकान् मासान् यो मांसं परिवर्जयेत्। चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्त्तिमायुर्यशोबलम्॥ गयायान्तु तपो घोरे यच्छाब्द-शतमाचरेत्। एवंविधाय परमान्याल्लोकानप्राप्नुयान्नरः॥ लोकानि तानि चा-प्नोति सदा मांसस्य वर्जनात्। तथा। यदि वा न समर्थः स्यात् सदा मांसस्य वर्जने। वर्जयेदयने मुख्ये कृतसर्गस्मृतिर्नरः॥ चतुर्थी चाष्टमी चैव द्वादशी च चतुर्दशी। तथा। पञ्चपर्वाणि वर्ज्यानि षडशीति मुखानि च। संक्रमं वापि सूर्य्यस्य विषुवे वापि वार्षिकी॥ इति वचनान्याचारचिन्तामणौ सम्वर्त्तः। ब्रह्म-चारी तु यो श्नीयात् मधुमांसं कथञ्चन। प्राजापत्यन्तु कृत्वासौ मौञ्जीहोमेन शुध्यति॥ अत्रिः जग्ध्वा मांसमभक्ष्यञ्च सप्तरात्रं यतानिति सद्यः पतति मांसे-नेति रत्नलघ्वत्रिः। आरम्भयज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैरिति शङ्खः। मधुमांसाञ्जने श्राद्धं नृत्यं गीतञ्च वर्जयेत्। हिंसां परापवादं चेति। आहिता-ग्निस्तु यो विप्रो सत्स्यमांसानि भक्षयेत्। कालरूपी कृष्णसर्पो जायते ब्रह्म-राक्षसः॥ विष्णुः अहिंसा सत्यमस्तेयमिति वशिष्ठः सर्वेषां सत्यमक्रोधो दान-महिंसेति मधुमांसं परिवर्जयेदिति च बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यं छागं नो हन्तुमर्हथ

इत्यादिवचनान्यपि प्रतिषेधकानि द्रष्टव्यानीति दिक् तस्मात् सिद्धहिंसायामपि प्रायश्चित्तमिति सिद्धान्तः तदेतदसहमाना विधिवादिनः पुनराहुः वैधहिंसायामपि प्रायश्चित्तमिति तावदयुक्तं न दोषो हिंसायामाहवे अहिंसान् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः अग्नीसोमीयं पशुमालभेतेत्यादि श्रुतेः तस्मादयज्ञे बधो बध इति मनूक्तेश्च यत्तु आलम्भनमत्र न बधः किन्तु स्पर्श इति नागेशेनोक्तं तदति तुच्छम् उष्ट्रमालभेत तमश्नीयादित्यादिवाक्यशेषविरोधात् लोके व्यवायेति श्लोकव्याख्यायां स्वयमपि तथैवोक्तत्वेन पूर्वापरस्वोक्तिविरोधाच्चेति निरूपितं मञ्जुषालङ्कारे यत्तु नञ ईषदर्थकत्वमन्यथा घटोऽघट इति वधबोधकत्वाभिया लक्षणापत्तिरिति मञ्जूषायामुक्तं तत्तुच्छतमम् निवृत्तिपदार्थको नञ इति सूत्रे ञ सूत्रस्थभाष्याल्लाघवाद्बहुप्रयोगाच्च नञोऽभावार्थकतायाः सर्वसम्मततया ईषदर्थे लक्षणापत्तेस्तत्रापि सत्त्वात् तदाहुरभियुक्ता अभावो वा नञर्थोऽस्तु भाष्यस्य हि तदाश्रयात् इति किञ्च ईषदर्थे लक्षणीयामपि घट ईषद्घट इति वाक्यवत् बोधकत्वभिया बधपदेन पापजनकं लक्षयित्वा बध ईषत्पापजनक इत्यर्थो वाच्यः तथा च वधपदस्य लक्षणा उभयमते समाना न ईषदर्थे लक्षणाप्रयुक्तगौरवं तवातिरिच्यते न चाहिंसा परमो धर्म्म इति ब्रह्माण्डपुराणादिविरोध इति नागेशोक्तं युक्तमिति वाच्यं तेषामौडुम्बरी सर्वावेष्टयितव्येति वत् श्रुतिविरोधेनाप्रामाण्यात् तदुक्तं मीमांसाभाष्यवार्त्तिककारैः गीतामन्त्रार्थवादैर्वाकल्पतेऽनर्थहेतुता प्रत्यक्षश्रुतिबाधत्वात् साम्यार्थत्वेन वारितेति अन्यार्थत्वेनोक्तस्मृतिरौदुम्बरीस्मृतिवदप्रामाण्यम् अतएव प्रत्यक्षश्रुतिबाध्यत्वादित्युक्तमिति भावः यत्पशुरित्याद्यर्थवादस्तु न स्वार्थे प्रमाणमिति न्यायरत्नाकरकृतस्तु ननु विहितापि सानर्थहेतुरिति गीतामन्त्रार्थवादेतिहासपुराणेभ्योऽवगम्यते तथा हि भगवद्गीतासु श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाद्ज्ञानयज्ञपरन्तपेति हिंसायोगादेव विधियज्ञस्य निन्दा तथा मन्त्रवर्णोऽपि तत्पशुर्मायुमकृतोरोवाय यद्भिराहतः अग्निर्माहतः अग्निर्मातस्मादेन स इति संज्ञयानानो दर्शयति तथान्यपि वचनान्याह गीतेति प्रत्यक्षया श्रुत्या हिंसाविहितत्वात्तद्विरोधत्वात्तथा तेषामर्थवादमात्रत्वमिति व्याचष्टे काशिकाकारास्तु मन्त्रानुसारेणैव क्रतुगतानासर्म्मत्वमवगम्यते तथा हि सन्ति केवलमन्त्रार्थवादा यत्क्रतुवर्त्तिनो हिंसामपि निन्दन्ति यथा जपयज्ञस्तुतौ विधियज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैरिति हिंसांगत्वेनैव विधियज्ञनिन्दा स्मर्य्यते आह गीतेति प्रत्यक्षेऽत्र श्रुतिबाधः क्रतौविधानदर्शनात् अन्यत्र तीर्थेभ्यः इति च श्रुतेः। यज्ञार्थे

पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा। यज्ञोस्य सूत्यलोकस्य तस्माद्यज्ञे वधः इति चातोन्यपरतयाऽर्थवाद व्याख्याया यदा वक्ष्यति न हि निन्दानिन्दितुं कर्हि निन्दितादितरत्र तु प्रशंसितुमिति ब्रुवते वस्तुतस्तु जपयज्ञस्यैव प्राधान्ये बहुव्ययसाध्येऽश्वमेधादौ प्रवृत्त्यभावापत्त्याननुष्ठानलक्षणा प्रातिपत्तिः तस्मात् स्मृतयोऽन्यपरतयैव व्याख्येयाः यासां तु नार्थान्तरसम्भावना तासां तु प्रामाण्यमेव एवं चोक्तं स्मृतेरहिंसा परमो धर्म्म इत्यत्रैव नञ ईषदर्थकत्वं तथा चेषद्धिंसा यज्ञिया हिंसा परमो धर्म्म इत्यर्थं यत्तु हिंसापापमल्पं पुण्यं तु बह्वतस्तत्र प्रवृत्तिर्नागेशेरुक्तं तत्तुच्छम् उक्तरीत्या पापस्यैवाभावात्। यत्तु पापाद्वाधः सति विरोधे तदेव तु नोक्तरीत्येति तन्नमाहिंस्यादित्यनेन हिंसात्वावच्छेदेन पापस्य बोधिततया न दोषो हिंसायां पापाभावस्य बोधनेन विरोधस्य जागरूकत्वात् अतएव भट्टपादैरुक्तं प्रत्यक्षं श्रुतिबाध्यत्वादिति किञ्च ऋतौ भार्य्यामुपेयादिति श्रुत्यारितौ भार्य्योपगमनाभावे पापादिश्रुतिबोधितसन्न्यासे फलान्तरसत्त्वेऽपि प्रत्यवायापत्तिः त्वदुक्तरीत्याविरोधाभावात् यत्तुरितविव भार्य्यामेवोपेया देवेति त्रिविधोत्र नियम इत्युक्तं मञ्जुषायां तदापाततः परदारान्न गच्छेदिति श्रुतेर्वैयर्थ्यापत्तिरित्याहुः अपि च हवनीये जुहोति श्रुत्याऽहवनीयातिरिक्तस्थले होमे पापस्य बोधितया तया पदे जुहोतीति विशेषविधिना पुण्यस्य बोधनेऽपि त्वदुक्तरीत्याविरोधाभावेन बाधा भावापत्तौ सर्वत्रैव बाध्यबाधकभावविलोपापत्तिः किञ्च रषाभ्यां नोणः समानपदे इति सूत्रेण रेफषकारपरणकाराघटितप्रयोगस्य पापजनकतया बोधनेन पदान्तस्येति सूत्रे राणाकाराघटितप्रयोगस्य पुराय जनकबोधनेप्युक्तरीत्याविरोधाभावात् पापजनकत्वं दुर्वारमेवेति दिक् यत्तुस्वधर्ममित्याद्युपक्रम्यापि सुखदुःखे इति वदता भगवता तादृशस्य युद्धयज्ञादावपि पापमुक्तप्रायमिति नागेशेन निर्णीतं तदेनि स्थवीय उपक्रमाद्यबोधात् तथाहि स्वधर्ममपि चावक्ष्यनविकम्पितुमर्हसि धर्माद्धियुद्धाच्छ्रेयोन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते इत्युक्ता अथ चेत्वमिमं धर्म्यां संग्रामं न करिष्यसि ततः स्वधर्मकीर्त्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि इति हि अशोच्या नन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे इत्याद्युक्तं एवञ्च पूर्वमुत्तरमीमांसामते युद्धे पापाभावमुक्त्वा पूर्वमीमांसामतेनापीदानीं तदाह स्वधर्म्ममिति एवञ्च क्षत्रियस्य तवयुद्धाकरणे प्रत्यवाय इत्युक्तवता भगवता ब्राह्मणादीनामपि स्वधर्म्मयाज्ञिकहिंसाया अकरणे प्रत्यवाय इत्युक्तप्रायम् सिंहावलोकन न्यायेन तु वेदान्तार्थमेव दृढ़यन्नाह सुखदुःखे

इति नैतावतास्मिन्नपि पक्षे तत्त्यागीयुक्तः समुच्चय पक्षस्य भगवत् पूज्यपादानाम सम्मतत्वात् तत्तस्मान्नेदमपि साधकम् ॥ केचित्तु यदि सांख्यमते न वैधहिंसापि पापजनकेत्यनेनार्ज्जुनः पूर्वपक्षं कुर्य्यात्तदाप्याह सुखदुःखे इति एवं चेदं तुष्य तु न्यायेन भगवतोक्तं न तु वास्तविकत्वेन उक्तरीत्यासांख्यमतस्य श्रुतिविरुद्धत्वात् तदेतद् घनपत्राह एषा तेऽभिहितासाङ्ख्येन चैतत्पदेनोक्तं पूर्वपरामर्शनीयम् ॥ इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्त्तिचैतदोषम् इति कोशवलेनेषेमनेन सुखदुःखे इत्यादिश्लोकोक्तस्यैव परामर्शादतएवेयमिति नोक्तमग्रे च इमां श्रुणिवत्युक्तम् अतएव च युद्धाकरणे प्रत्यवायोप्युक्तः न चोक्तरीत्यास्वर्गस्याधिक्येन दुःखस्याल्पत्वेन च प्रवृत्तिरिति युक्तम् एवमपि राज्यफलस्याल्पत्वेने तदर्थं युद्धेऽप्रवृत्यापत्तौ हतोवाप्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे मह्हीमिति भगवद्वचनविरोधापत्तेः तत्र प्रत्यवाय कथनानुपपत्तेश्च न च राज्येऽपि सति तन्निवृत्युपापकं बहुपुण्यं भविष्यतीति वाच्यं गोब्राह्मणादिवधजन्यपापस्यैव जघन्यतया धर्मशास्त्रादवगमनात् इति प्राहुः यदपि कूपखानकन्यायशब्दौ विषयौ नतु हिंसानिषेधविधौ इति तन्न तत्र न म्लेच्छितवैनायभाषित वै इति श्रुत्यापशब्दोच्चारणे प्रत्यवाय बोधनात् किञ्च भाष्यविरोधोऽपि स्यात् तथाहि यस्य शायाभाष्ये उक्तमथवा कूपखानकवदेतद्भविष्यति यथा कूपखानकः कूपखनन वेलायां मृदायां शुभिश्चावकीर्णो भवति सोऽसुसज्जातासु तत एव तद्गुणमासादयति तेन स च दोषो निर्हण्यते भूयसा चाभ्युदयेन योगी भवति एवमिहापि यद्यपशब्दज्ञाने धर्मस्तथापि यस्त्वसौ शब्दज्ञानेन स्तेन स च दोषो निर्घातिष्यते भूयसा चाभ्युदयेन योगी भवतीति अनेन च स्पष्टमपशब्दज्ञानेऽधर्मादर्शितः यत्तु शब्दप्रमाणकाचयम् ॥ यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणं शब्दज्ञाने धर्ममाह नापशब्दज्ञानेऽधर्मम् इति भाष्ये उक्तं तत्वरुचिग्रस्तमथवेत्यादिना पक्षान्तरकथनादुक्तभाष्यविरोधाच्च नमेच्छित वै नापि भाषित वै इत्युक्त श्रुतिविरोधाच्च एवं सति यद्वैधपशुहिंसायामपि यत्किञ्चित्पापं भवति तद्धर्मेण नश्यतीति सम्यगेव वस्तु तस्तु तदेव नेत्यशुद्धमिति चेन्न शब्दादिसूत्रव्याख्यायां स्फुटीकरिष्यति इति यत्तु तत्र पापानङ्गीकारे शक्रादीनां महिषासुरादितोभयं न स्यात् ॥ इत्युक्तं तदापाततः यज्ञमध्यवर्त्ति हिंसाजन्यपापाभावेऽपि पापातरवाधेमानाभावेन तदुपपत्तेः यत्तु अध्वर इत्यादिनिरुक्तस्य मानत्वेनोपन्यसनन्तन्मुधैव तत्र हिंसापदस्य पापजनकपरत्वेन वैधहिंसायां पापाभावात् अन्यथाऽश्वमेधादीनां यज्ञत्वाभावापत्तौ महदनिष्टं स्यात् यथाच क्षत्रयज्ञपिहस्थितेत्यादिमुनिवचन-

विरोधापत्तिः यत्तु युधिष्ठिरादीनां प्रायश्चित्तकरणमेवं सति व्यर्थं स्यादित्याहुः तन्न ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यं परलोकस्य तद्वनं नास्ति चेत्तर्हिकाहानिरस्ति चेन्नास्तिकोहत इति न्यायेन तत्र पापाभावेऽपि प्रायश्चित्तकरणात् तत्र पापसत्त्वे भगवतः पूर्णस्य लीलया सगुणत्वमापन्नस्य सत्यज्ञानानन्दात्मकस्य श्रीकृष्णचन्द्रस्यार्जुनं प्रति तदुपदेशानुपपत्तेः तदकरणे ततः स्वधर्मं कीर्त्तिञ्च हित्वापापमवाप्स्यसीति प्रत्यवायकथनानुपपत्तेश्च अश्वत्थामाहतोनरोवाकुञ्जरोवेत्याद्यधर्मतोहतद्रोणादिवधजन्यपापपरिहारार्थं प्रायश्चित्तमिति परे यत्तु पातञ्जलभाष्ये यदि कथञ्चित्पुण्यपापगता हिंसाभवेत्॥ तदा तत्र सुखप्राप्तावप्येत्याहुः स्यादित्युक्तं तत्तु ज्ञानप्रसार्थमिति श्रुतिविरुद्धमर्थं समर्थयितुं नोत्सहते केचित्तु पापगता वैदिकीहिंसापुण्यापुण्यजनकाभवेत् तदा तत्र सुखप्राप्तौ जिह्वा सुखप्राप्तावपि तस्य वैधहिंसाजन्यस्वर्गादिवच्चिरकालिकत्वं तु स्यादित्यर्थः हिंसामात्रस्य पापजनकत्वे तु व्यभिचाराभावात् पापगतेति विशेषणं स्यात् न च स्वर्गस्यापि नाश्यत्वादिदमयुक्तं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यतेन स पुनरावर्त्तत इत्यादिना तस्य नित्यताया मीमांसकसम्मतत्वात् मतान्तरेऽपि व्योमादिवन्नित्यतानिर्वोधैव किञ्चैतत् सुचनायैवात्यायुरित्युक्तमन्यथा नित्यस्स्यादित्येववदेदिति व्याचक्षते यत्तु क्षत्रधर्मे स्थितेजन्तूनवधेन्मृगयादिभिरित्यादिभागवतस्य प्रमाणत्वेनोपन्यसनतदसत् क्षत्रधर्मेऽस्थितः ब्राह्मणानिवेद्येत्यर्थं इति केचित् अन्ये तु क्षत्रधर्मेस्थितोऽपि जन्तूनवध्यानित्यर्थं इति केचित् व्याचक्षते भागवतस्य च न व्यासकृतत्वमिति विवेचितमन्यत्र यत्तु आदिनायुद्धमिति नागोजिनोक्तं तत्तुच्छम्॥ ततः स्वधर्म्म इति गीताविरोधात् किञ्च मनुः आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितयुद्ध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यात्यपराङ्मुखाः॥ अन्यच्च गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिन मायान्तमपि वेदान्तगं रणे॥ जिघांसन्तं जिघांसी यान्न तेन ब्रह्महाभवे। नाततायि बधे दोषो हन्तुर्भवतिकश्च न॥ इत्यादि ततो निर्जित्यपरसेनानिच्चितिं धर्म्यमिति व्याख्यातं श्रीमधुसूदनाचार्य्यैः अथेति पक्षान्तरे इमं भीष्मद्रोणादिवीरपुरुषप्रतियोगिकं धर्म्यंहिंसादिदोषेणादुष्टमधर्मादनपेतमिति वा स च मनुनोक्तः न कूटैरायुधैर्हन्यात्युद्ध्यमानोरणेरिपून्॥ न कर्णिभिनोऽपि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः न च हन्यात्तत् स्थूलारूढं न क्लीवं नाकृताञ्जलिं न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनः न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधं नायुद्ध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतं नायुधव्यसनप्राप्तं

नार्त्तं नातिपरिक्षतम्। न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्निति सतां धर्ममुल्ल-ङ्घ्ययुध्यमानो हि पापीयान् स्यात् त्वन्तु परैराहतोऽपि सद्धर्मोपेतमपि संग्रामं युद्धं न करिष्यसि धर्म्मतो लोकतो वा भीतो परावृतो भविष्यसीति चेत् स्वधर्मं हित्वाऽननुष्ठाय कीर्त्तिम्। च महादेवादिसमागमनिवृत्त्याचरजन्यपापमेव केवल-मवाप्स्यसि न तु धर्मं कीर्त्तिं चेत्यभिप्रायः अथवा नेकजन्मार्जितं धर्मं त्यक्त्वा राजकृतं पापमेवाप्स्यसि इत्यर्थः यस्मात्त्वां परावृत्तमिति दृष्ट्वा अवश्यहनिष्यति अतः परावृत्त्यहतः स न चिरोपार्जितं निजसुकृतपरित्यागेन परोपार्ज्जितदुः-खभाङ्माभूदित्यभिप्रायः तथा च मनुः यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित् तत् सर्वं प्रतिपद्यते यच्चास्य दुष्कृतं किंचिदमुत्र समुपार्जितम्। भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य त्विति याज्ञवल्क्योऽपि राजासुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् इति यदुक्तं पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वै-तानाततायिनः एतान्न हन्तुमिच्छामिघ्नतो मे मधुसूदनेति तन्निराकृतं भवतीति एवञ्च पापमेवेत्यःदिशङ्कासमाधानाय सुखदुःखे इति पद्यमिति श्रीधरोक्तमपास्तम् अनेनैवोक्तयुक्त्या तस्य निराकरणायेति दिक् एवञ्चोक्तरीत्यान्यस्तशस्त्रभीष्मादि-वधजदोषनिराकरणाय युधिष्ठिरादिभिः प्रायश्चित्तं कृतमिति तत्त्वं यत्तु तस्मा-द्यास्याम्यहन्तातेत्यादिवचनोपन्यसनं तत्तु नास्तिकमतानुरोधे नैव त्रयीधर्ममिव यदि अधर्माढ्यं तर्हि धर्माढ्यं किं भविष्यति चिरम् नास्तिकतावैतस्यामास्तिकयोः कथायाम् कथमवकाशः परे तु तस्माद्यास्याम्यहन्तातदृष्ट्वेमं दुःखसन्निधिं त्रयीधर्म-मधर्माढ्यं किम्पाकफलसन्निभ इत्यस्यायमर्थः हे तात इमं दुःखसन्निधिमधर्माढ्यं संसारं दृष्ट्वा त्रयीधर्मं यास्यामीत्यर्थः तथैतज्जगद्बहुधाजन्मजन्मान्तरेप्यभ्यस्तमधर्माढ्यं मां मे शिवे यत्त्रयो धर्म्मत्रयसम्यक्प्रतिभातीत्यर्थे नाविरो धमाहुः यत्तु यथात्मन-स्तथान्येषामिति हारीतवचनं तस्यायमर्थः मनुष्यस्तज्जपादिनापि स्वर्गं गच्छति पशुस्तु न केनापि प्रकारेणेति तं यज्ञे हत्वा स्वर्गं प्रापयेदिति तथा च मनुः। औषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्च पक्षिणस्तथा। यज्ञार्थे निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितं पराम्। इति केचित्तु विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्व-पाके च पण्डिताः समदर्शिनः। इति भगवद्वचनानुरोधाद्द्वैतपरमेतद्वचनमित्याहुः अन्ये तु यज्ञातिरिक्तपरमे तत् तथाच मनुः या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चरा-चरे। अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ॥ इति वदन्ति यो हिंसकानि इत्यादिवचनं तदपि वैधहिंसातिरिक्तपरमुक्तवाक्यानुरोधात् यत्तु तस्माद्धिंसा न

यज्ञियेति वचनस्य यज्ञिया हिंसा केवलं धर्माय न भवतीति व्याख्यातं तदसत् पदद्वयाध्याहारे गौरवादुक्तश्रुतिविरोधाच्च तस्माद्यज्ञियापि हिंसा अधर्माय न भवतीति अन्या तु भवत्येवेति तदाशयः यत्तु अव्यवस्थितमर्य्यादैरित्यादिवाक्यं तस्यायमाशयः सर्वकर्मसुहिंसा न युक्ता विष्णुपूजनादौ तन्निषेधात् अतएवोक्तं विष्णुमेवाभिजानन्ति इति सर्वयज्ञेष्वित्यग्रिमपदस्य वैष्णवयज्ञेष्वित्येवार्थं इति केचित् वस्तुतस्तु पुराणेष्वंशद्वयमेकं वेदानुसारेण अपरञ्च तन्त्रानुसारितत्र वेदानुसार्य्यर्थः प्रमाणं वेदविरुद्धः शाक्तपुराणेषु मद्यपानादिरूपः वैष्णवेषु अहिंसादिरूपो न प्रमाणं किञ्च कालिकापुराणे वार्द्धीणसं विजानीयात् मम विष्णोरतिप्रिय इत्युक्तेर्वैष्णवेष्वपि न मांसत्यागः तस्मादिदं पद्यमेवं व्याख्येयं सर्वकर्मसु यज्ञेषु नास्तिकैः हिंसा समनुवर्णिता मनुस्तु अहिंसामोपहिंसां यज्ञिया हिंसामब्रवीत् इति यदपि नाद्यात्वेति मनुवचनं तद्वैधहिंसातिरिक्तपरम् तदाह। कुल्लूकभट्टः अविधिना मांसभक्षण निन्दानुवादोयमिति ननु चैव समुत्पत्तिं चेति युक्तं रचतेः समांसनिषेधोदुक्तर इति चेन्न धर्मार्थे युक्तेरकिञ्चित्करत्वात् तथाच मनुः श्रुतिस्तु वेदोविज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ससाधुभिर्वहिः कार्य्यो नास्तिको वेदनिन्दकः यत्तु यो यस्य मांसमश्नाति इति वचनं तु सामान्यं पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोरिति तदग्रे मनुनैवोक्तत्वात् मांसभक्षयितेति वचनं तदपि सामान्यमुक्तं विशेषवचनात् यत्तु वर्षे वर्षेऽश्वमेधेनेति मांसत्यागे फलस्मरणं तच्छाद्धयज्ञादिभिन्नविषयमिति निपुणतरमुपपादयिष्यामः यत्तु अहो मास इत्यादिभीष्मवचनं तदपि सामान्यं परे तु अहो मांसस्येऽत्वाकारं प्रश्लिष्या वैधमांसस्य दौरात्म्यमित्यर्थः वैधशब्दस्य शाक्तपार्थिवादित्वाल्लोपः यज्ञहतस्य तूच्छतेः यज्ञे हिंसितः पशुर्दिव्यदेहो भूत्वा स्वर्गलोकं यातीति श्रुत्यावबोधनात् यत्तु यूपं चित्वेति वचनं तदपि नास्तिकस्येत्याहुः अन्येतु यूपछेदादिकं कृत्वा यद्यस्वर्गरौरवं गम्यते हे नरदारकं स्वर्गं केन गम्यते इत्याहुः यत्तु प्राणवधोऽधर्म इत्याह तदपि विहितेतरविषयम् तथाच मनुः यज्ञार्थंब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्तामृगपक्षिणः भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा यज्ञायज्ञजग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृत अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसी विधिरुच्यते कृत्वा वा स्वयमुत्पाद्यपरोऽपकृतमेव वा देवान् पितॄंश्चार्चयित्वा खदन्मांसं न दोषभाक्॥ नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञो ना यदि द्विजः जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य

तैरचतैवश: न तादृशभ्भवत्येनो मृगंहन्तुर्यनार्थिनो यादृशं भवति प्रेत्य वृथा-मांसानि खादत: इति यत्तु प्रोच्चिताभ्युच्चितमिति भारतवचनं तस्यायमर्थ: अल्प-दोषम् अल्पदोषमपि नेत्यर्थ:। न च जन्ममासेऽनल्पदोषमिति स्यादिति वाच्यम्। अमानोना निषेधार्थ इति कोशादकारस्यापि निषेधार्थकताया: सर्वसम्मतत्वात् उत्तरपदत्वे इति वार्त्तिकप्रत्याख्याने भाष्येऽप्युक्तमितत् तथाच भारते हवैर्यत् प्रोच्चितं मन्त्रै: मौच्चिताभ्युच्चितं शुचि वेदोक्तेन प्रकारेण पितॄणां प्रक्रियासुच पितृदैवतयज्ञेषु प्रोच्चितं हविरुच्यते विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वासनदुष्यतीति काशिका क्रतस्तु विहितसङ्कल्पविषयमिदमित्याह यत्तु भक्षणेन महान्दोष इति यमवचनं यच्च भक्षणेन महान्दोष इति भारतवचनं यदपि न मांसभक्षणे दोष इति मनुवचनं तत्सर्वं श्राद्धादेरन्यविषयं तत्र विशेषविधि: तथाच मनु: नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नातिमानव:। सप्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशति॥ आमन्त्रितस्तु य: श्राद्धे दैवान्मांसं समुत्सृजेत्। यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरक-मृच्छति॥ न च नरकं स्वर्गमित्यर्थ इति वा वाच्यमुक्तमनुवाक्यविरोधात् तथा स्कन्दपुराणे, श्राद्धे मांसं यो न दद्यान्न चाश्नाति कुतर्कत:। नरकार्हावुभौ श्रौत स्मार्त्तधर्मस्य लोपनात्॥ वृद्धयाज्ञवल्क्योऽपि, विना मांसेन यच्छ्राद्धं क्रत-मप्यक्रतं भवेत्। क्रव्यादा: पितरो यस्मादलोभेह विशो यत:॥ जातूकर्णोऽपि दारवान्यो द्विजं श्राद्धे दद्यान्नो मांसमध्वरेदुरात्मा सदुराचारोवेदमार्गस्य दूषक: तत्रैव संवादे रोमाणि कूर्मपृष्ठे च नृणां चेच्छृङ्गसम्भव: व्योम्नश्चेन्मुष्टिनाघात: सास्थि चेद्गूत्तया वपु:। तदोपतिष्ठति स्कन्ददत्तं श्राद्धं निरामिषम्॥ तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन श्राद्धं देयं हि सामिषम्। इति उशना अपि, नियुक्तश्चैव य: श्राद्धे मांसं यो नैव भक्षति। यावन्ति पशुरोमाणि तावन्निरयमृच्छति॥ स्कान्दे निवे-शितस्तु य: श्राद्धे यज्ञे वापि द्विजाधम: मांसं नाश्नातिनिरयं याति वै पशुतां नर इति वृहस्पतिरपि रोगी नियुक्तो विधिवद्भूतविप्रो वरस्तथा मांसमद्याच्चतुर्ष्वेषा-परिसंख्याप्रकीर्त्तिता यस्तु यत्पशुरित्यादिमन्त्रवर्णा: सोऽपि भट्टपादोक्तरीत्या व्याख्येय: यत्तु नमो ब्राह्मणयज्ञायेति वचनं तत: पूर्वपक्षरूपं वक्ष्यमाण वच-नात्तत्तथाह वृहस्पति अभून्मांसं पुरोडाशे भक्ष्यामो मृगपक्षिणांपुराणेष्वेव यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रासवेषु च सौत्रामण्यान्तथा मद्यं श्रुतौ भक्ष्यमुदाहृतम् श्रुतौ च मैथुनं धर्मे पुत्रोत्पत्तिनिमित्तत: स्वर्गं प्राप्नोति नैवं तु प्रत्यवायेन पूज्यत इति मनुरपि वभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणां पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रा-

सर्वेषु चेति केचित् तन्मांसातिरिक्ते प्रशंसापरतया योजयन्ति यत्तु जया जयतीति प्रायश्चित्तं मांसभक्षणे बोधयतीत्युक्तं तदयुक्तं तस्या अयमर्थः यः प्रतिगृह्य आदावेव दक्षिणां गृहीत्वा या जयति स त्रिःस्वाध्यायमधीयीतेति नन्वेवं यागोत्तरप्रतिग्रहेन दोषोऽत आह या जयित्वेति एवञ्च यागोत्तरकालिकदक्षिणाग्राह्यपि दोषभाक् दक्षिणाग्रहणनिमित्तमेतत्प्रायश्चित्तम् न तु हिंसानिमित्तमिति भावः यत्तु कुर्य्याद्घृतपशुं सङ्गे इति मनुवचनं तत्र सङ्गे अयज्ञ इत्यर्थ एवं तथात्र वृद्धशातातपः मुन्यन्नामिषमध्वाज्यैरभावे प्रोक्तास्तु नः क्रमाद्विप्रादिभिर्वर्णैर्विधेयमिति सुश्रुम इति आमिषमत्र मांसातिरिक्तं प्राण्यङ्गचूर्णचर्मासु जम्बीरं वीजपूरकं अयज्ञशिष्टं मायादियद्विष्णोरनिवेदितम् दग्धामन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामनं इति रामार्चनचन्द्रिकायां पद्मपुराणोक्तं बोध्यम्। न तु मांसं परमान्नेन मांसेन शाकैर्मधुघृतादिभिः एतेन मुन्यन्नामिषमाध्वीकैर्विप्रादिजजघन्यजाः श्राद्धं विदधुरसतिद्रव्येषु चापरैरिति आत्रेयोक्तं व्याख्यातं यदपि मुन्यन्नैरिति भागवतवचनं तदपि अन्यत्र प्रशंसापरमिति केचित् अलाभपरमित्यन्ये अपरे तु पूर्वपक्षरूपमेतत् तथाच जावालिः, हिनस्ति यः पशून् श्राद्धमुद्दिश्यसनदोषभाक्। श्राद्धोपदेशतो हिंसापि श्राद्धे दुष्यति स्कन्दसंवादेऽपि पित्रर्थे देवतार्थे च यो हिनस्ति पशून् द्विजः। सयज्ञफलमाप्नोति ते च यान्ति परां गतिम्॥ स्वार्थमन्नं पचेद्यस्तु यो हिनस्ति वृथा पशून्। एकाकीमिष्टमश्नाति पश्चाद्याति सरौरवम्॥ भीष्मोऽपि, न हन्ति यः पशून् श्राद्धे हन्ति चात्मसुखेच्छया। कृष्णद्वैपायनः प्राह स्थावरत्वं सगच्छति॥ अत्रिरपि, मधुपर्केच सोमे च दैवे पित्रे च कर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेति कथञ्चनेति॥ यज्ञार्थे पशवो बध्याः पुत्रार्थे परयोषितः। गृह्यसूत्रमपि समांसो मधुपर्क इति मनुरपि मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्वार्थविद् द्विजः। आत्मानञ्च पशुञ्चैव गमयत्युत्तमां गतिम्॥ शङ्खेऽपि पितॄणां श्राद्धे प्रकाममुदकं दद्यात् सौवर्णेण पात्रेण राजतेनौदुम्बरेण खड्गपात्रेणेति सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण चेति अन्ये ते रूपकञ्च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति आर्द्रमांसं घृतं तैलं शूद्रस्यापि न दुष्यति। यजेत पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव चेति॥ आममांसं घृतं क्षौद्रस्नेहाश्च फलसम्भवाः। म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः॥ इति प्राहुः। व्यासोक्तत्वाभावादप्रमाणमिति परे यत्तु निर्णयसिन्धौ, ब्राह्मणे न सदा देयं

कूष्माण्डं बलिकर्मणि। इति वचनं तन्निर्मूलं सदा प्रदेयं छागाभावे देयमिति वार्थः तथाच तत्रैव छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वामनो हरं वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदं चेच्छुरिकादिनेति अनिष्टमित्यादिगीतावचनं तु नैतत्परं यत्तु अशुद्ध-मिति चेन्न शब्दात् व्यासस्तत्रस्य व्याख्यानमुक्तं मञ्जूषायाम् तच्छङ्करभाष्ये श्रीभाष्यमध्वभाष्यभास्करभाष्ये नीलकण्ठभाष्यादिविरुद्धं तथाहि अत्र शङ्कर-भगवत्पूज्यपादैरुक्तम् अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् यत्पुनरुक्तं पशुहिंसादियोगाद-शुद्धमाध्वरिकं कर्म तस्यानिष्टमपि फलमवमल्प्यते इत्यतो मुख्यमेवानुशायिनां ब्रह्मगदिजन्मास्तु तत्र गौणिकल्पनानर्थिकेति तत्परिह्रीयते न शास्त्रहेतुत्वाद्धर्मा-धर्मविज्ञानस्य अयं धर्मोऽयमधर्म इति शास्त्रमेव विज्ञाने कारणं अतीन्द्रियत्वात् तयोः अनियतदेशकालनिमित्तत्वाच्च यस्मिन् देशे काले निमित्तान्तरेष्वधर्मो भवति तेन शास्त्रोदितेन धर्माधर्मविज्ञानं कस्यचिदस्ति शास्त्राच्च हि सानुग्राहा-त्मको ज्योतिष्टोमो धर्म इत्यवधारितः सकथम अशुद्ध इति शक्यते वक्तुं ननु हिंस्यात् सर्वभूतानीति शास्त्रमेव भूतविषया हिंसामधर्मं इत्यवगमयति वाढ-मुत्सर्गस्तु सः अपवादोऽग्नीषोमीयं पशुमालभेतेति उत्सर्गापवादयोश्च व्यवस्थित-विषयत्वं तस्माद्विशुद्धं वैदिकं कर्म शिष्टैरनुष्ठीयमानत्वात् अनित्यत्वाच्च तेन तस्य प्रतिरूपं फलं नयाति स्थावरत्वं न च श्वादिजन्मवदपि व्रीह्यादिजन्मभवितुमर्हति तद्धिकपूपजातिचरणानधिकृत्योच्यते नैवमिह वैशेषिकः कश्चिदधिकारोऽस्ति अतश्चन्द्रस्खलस्खलितानां व्रीह्यासंश्लेषमात्रं तद्भावना च इत्युपर्य्यन्तदिति तथा माध्व-भाष्ये श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्य्यैः अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् हिंसारूपत्वा-त्पापस्यापि सम्भवाद् दुःखं च भवतीति चेन्न शब्दविहितत्वात् हिंसत्ववैदिकी या तु तयानर्थो ध्रुवं भवेत् वेदोक्तया हिंसया तु नैवानर्थः कथञ्चनेति भट्टभा-स्कराचार्य्यैरपि अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् अत्र सांख्यश्चोदयति ज्योतिष्टोमादि-कर्मा शुद्धं अग्नीषोमीयादिपशुहिंसायोगात् अधर्मव्यामिश्रितो व्रीह्यादिजन्म-मुख्यमेवानुशायिनामिति नेत्युच्यते शुद्धमेव कर्म कुतः शब्दात् शास्त्रप्रमाणक-त्वाद्धर्माधर्मयोः न हिंस्यात्सर्वभूतानीति विधिः सामान्यविधिः अग्नीषोमीयं पशुमालभेतेति विधिः विशेषसामान्यविधेर्विशेषविधिर्बलवान् यदाहवनीये जुहो-तीति विशेषविधिना बाध्यते तद्वाद्धहिंसावकाशत्वान्निरवकाशत्वात् क्रतुगत-त्वविधेरतो गौणमत्र जन्मेति भगवद्रामानुजाचार्य्यैरप्युक्तम् अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् नैतदस्ति यदन्याधिष्ठिते व्रीह्यादिशरीरे संश्लेषमात्रं भोक्तृत्वहेतुत्वभावात्

व्रीह्यादिभावेन जन्मेति भोक्तृत्वहेतुसद्भावात् स्वर्गो भोग्यफलमिष्टादिकर्मैवाशुद्धं पापव्यामिश्रमग्नीषोमीयादिहिंसायुक्तत्वात् हिंसा च न हिंस्यात्सर्वभूतानीति श्रुतिनिषिद्धत्वात्पापमेव न चात्राहवनीय उत्सर्गापवादः सम्भवति भिन्नविषयत्वात् अग्नीषोमीयमिति हिंसाविधिर्हिंसायाः क्रतूपकारकत्वं बोधयतीति न हिंस्यादिति तु हिंसायाः प्रत्यवायफलत्वम् अथोच्यते अग्नीषोमीयाविधितः प्रवर्त्तेन तद्विषयं निषेधविधिरास्कन्दति रागप्राप्ता विषयत्वात्स्यति मैवं इहापि रागप्राप्तेरविशिष्टत्वात् स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ कामिनः कर्त्तव्यतया यागाद्युपदेशात् यागादेः स्वर्गसाधनत्वमनवगम्यफलेरागत एव यागादौ प्रवर्त्तते अग्नीषोमीयादिष्वपि तेषां फलं साधनभूतस्वयागादेरूप कारकत्वं शास्त्रादवगम्यते रागादेव प्रवरागात् प्रवर्त्तत इति न कश्चिद्विशेषः तथाच नित्येष्वपि कर्मसुवर्णानां स्वधर्मानुष्ठाने परमपरमिति सुखमित्यादि वचनात् फलसाधनत्वमवगम्यरागादेव प्रवृत्तिरिति तेषामप्यशुद्धिहेतुत्व अत इष्टादीनां पापमिश्रत्वे "नाशुद्धियुक्तानां स्वर्गेनुभाव्यम् फलं स्वर्गेनुभूयहिंसा कर्मफलं व्रीह्यादिस्थावरभावेननानुभूयेतस्थावरभावश्च पापफलं शरीरजैः कर्मदोषैर्यातिनान्तर इति अतो स्थावराव्रीह्यादिभावेन भोगानुशायिनो जायन्त एव तत्रकृतः शब्दात् अग्नीषोमीयादेःसंज्ञपनस्य स्वर्गलोकप्राप्तिहेतुतया हिंसात्वाभावशब्दात् पशोर्हिंसंज्ञपननिमित्तंशब्दमाजन्तिह्वियज्ञे हिंसितापशुःस्वर्गलोकं यातीति शब्दार्थंकुर्वन्तिशरीर ऊर्द्ध्वं लोकमेतीत्यादिकाः अतिशयिताभ्युदयसाधनभूतो व्यापारोल्पदुःखदोषो न हिंसाप्रत्युत्तरचणमेव न वाउ एतन्म्रियसेनरिष्वेदेवा इहेविपथिभिस्सुगेभिः यतो सतेसुकृतो यत्रते ययुः तत्रत्वादेवस्सवितादधात्विति चिकित्सकंच तादात्विकाल्पदुःखकारिणमपि रचकमितिवदन्तिपूजयन्ति च तज्ज्ञा इति एवमेवनीलकण्ठादि भाष्याण्यपीत्यास्तांविस्तरः विवेचितं वैवहुधाततन्नाष्य व्याख्यातृभिर्वाचस्पतिमिश्रादिभिः यत्तुरामस्य वालिवधेप्रायश्चित्तस्मरणं तत्तस्य सन्मुखभूत्वाहतत्वादितिबोध्यं यत्तुवेदविरुद्धेतन्त्रसिद्धाभिचारं कर्म तत्र वेदतुल्यमेवप्रायश्चित्तम् अतएव जपहोमैर्द्विजात इत्युक्तं अश्वव्याश्रुतीरथर्वाङ्गीरसी इत्यनेनैव गतार्थत्वादि व्यर्थमेवस्याद्वेदविरुद्धंतु पूर्वोक्तमेव प्रत्युतवेदाज्ञोल्लङ्घनप्रत्युक्तमधिकं यत्तु परेस्थित्यादिनोक्तं तदपि न अर्थपदस्य वैदिकीयचोदनालाभायसार्थक्यादित्याहुः यत्तु दोषप्रतिपादकातिस्वकर्द्धकहिंसापराणि विधायकानि तु अनायासलभ्यपराणि नहन्यादिति वचनानुरोधातत्र क्रित्वा वा स्वयमुत्पाद्यपरोपकृतमेववादिमान्

पितॄंश्चार्चयित्वाखादन्मांसं न दुष्यति नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोनापदिद्विजः जग्ध्वाह्यविधिना मांसप्रेत्यतैरद्यते वस इति मनुवचनात् यत्तु नोहन्यादिति तत्संन्यासिविषयम् यत्तु अनुमन्तेत्यादि वचस्तद्विहितेतरपरम् तथामनुः क्रीत्वा वा स्वयमुत्पाद्यपरोपहृतमेव वा देवान् पितॄंश्चार्चयित्वाखादन्मांसं न दुष्यतीति असंस्कृतान् पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन मन्त्रैस्तु संस्कृतान् दद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः न भक्षयति यो मांसं विधिंहित्वा पिशाचवत् सलोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयि तुमिच्छति अनभ्यर्च्यपितॄन्देवांस्ततोन्योनास्त्यपुण्यकृत आचारचिन्तामणौ वशिष्ठः पितृतिथि पूजामेव पशून् हिंस्यात् अन्यत्र तु दोषस्तथाचारचिन्तामणौ याज्ञवल्क्यः वसेत्सनरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः समितानिदुराचारो हन्त्यविधिना पशून् तत्रैवमनुः यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोहमारणं वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्यजन्मनिजन्मनि इति न मांसमद्यात्पुरुषार्थसाधनं वृथा पशुघ्नः परमेतिदुःकृतं न जीवदानात्परमास्तिपावनं तथाच हिंसाविमुखाविपश्चित इति आचारचिन्तामणौ यत्तुदेशभेदेन व्यवस्थामाहुस्तदपि न सर्वत्रैवविधेः तथाच श्राद्धकायां वृद्धप्रचेता न युगानां न देशानां न विप्राणां द्विजोत्तमाः धर्मशास्त्रेषु वैभेदो दृश्यते मांसभक्षणे इति याज्ञवल्क्यादिवचनात्तत्रैव व्यवस्था तस्माद्विन्ध्यस्य दक्षिणे श्राद्धादेरन्यत्रदोषः उत्तरे तु देवार्चनेसति श्राद्धादेरन्यत्रापि न दोषः वस्तुतस्तु उत्तरे भक्ष्यं दक्षिणे न भक्ष्यं यत उत्तरे शीताधिक्यम्भवति न तु दक्षिणे इति प्रत्यक्षमूलिकाशङ्कां कश्चित्कुर्यात्तन्निरासयेदम् अमांस भुक्पतितो भवेदित्यर्थ उक्त वचनानुरोधात् यत्तु मत्पर इत्यादि वचनं तदपि श्राद्धादेरन्यत्र तत्राभक्षणे प्रत्य वा यस्मरणात् यत्तु अहिंसापरमो धर्म इति भारत वचनं तदपि अहिंसेद्विंसेत्यर्थकम् अग्रे च सर्वान् भक्ष्याभक्ष्यानित्यर्थ इति न विरोधः यत्तु भुनक्तिस्त्विति यमवचनं तदपि विहितेतरविषयं तथाच मिताक्षरायाम् स्मृतिः खड्गमासैः भवेद्दत्तभक्षयं पितृकर्मणि इति यत्तु निर्णयसिन्धौ नित्यं नियमिताहार इत्यपि पुराण वचनं तदपि ब्रह्मचारिणोऽविधविषयम् श्राद्धादौ तु ब्रह्मचारिणामपि विधानात् तथाच मनुः गृहेगुरौवारण्ये वा निवसन्नात्मवान् द्विजः नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् स्कान्देब्रह्मचारी यतिर्मांसंत्यजेत् स्त्री च पतिं विना श्राद्धवर्जमथान्योपि सत्याज्योपसंस्कृते इति एवंच सङ्कल्पितमांसस्यापि श्राद्धादौ भक्षणे न दोष प्रत्युता भक्षणेप्रायश्चित्तमेव उक्तमन्वादि वाक्यात् तस्माच्छ्राद्धादिभिन्ने मांसं न भोक्तव्य-

मिति संकल्पः कार्य्यः तथा च कार्ष्णाजिनः, श्राद्धादिवर्जयेन्मांसं न भोक्तव्यं कदाचन त्यजेच्चेदिति सन्ध्यायामिति एवंच श्राद्धादेरन्यत्रापि शरीरस्था शक्ता च विधिनापि मांसभक्षणेपि न दोषः तथाच मनुः प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानाञ्च काम्यया यथाविधिनियुक्तस्तुप्राणानामेवचात्ययेप्राणस्यान्नमिदंसर्वंप्रजापतिरकल्पयत्। स्थावरं जङ्गमञ्चैवं सर्वं प्राणस्य भोजनं॥ चराणामन्नमचरादंष्ट्रिणामथ दंष्ट्रिणः अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणाञ्चैव भीरवः नातादुष्यत्यदन्नाऽद्यान् प्राणिनो ह्न्य ह्न्यपि धात्रैव सृष्टाद्याश्च प्राणिनो तार एव चेति यत्तु कलिविषयो यन्निषेध इति तदपि न कलिविधायकवचनैस्तस्य पूर्वपक्षरूपत्वात् तथाच जातूकर्ण्यः मांसं युगेषु सर्वेषु यज्ञश्राद्धार्थमाहृत श्राद्धेषु नीयते तेन कलौ तच्च विशेषतः समन्तुरपि क्रुतकोऽपहताविप्राः कला वत् स्वनिरामिषम् तृप्तिं नेच्छन्तिपितरस्तस्य श्राद्धेकदाचन पैठीनसिः परमान्नं कालशाकं मधुमांसं घृतं पयः मुन्यन्नानितिलाविप्राः प्रकृत्या हविरष्टधा शस्तान्यष्टौ तु सर्वेषां युगेषु मुनिसत्तम पितॄणां देवतानाञ्च दुर्लभानि कलावतो इति तस्मान्मधुपर्के पशोर्वधः श्राद्धे श्मांसमिति प्रक्षेपेणाविरोधः सम्पादनीयः किंच मनुर्मांस भक्षणेविशेष विधिं स्मरतिहविर्य्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्पते पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वादत्तेमासेन प्रीयन्ते विधिवत्पितरो नृणां द्वौमासौ मत्स्यमांसेनत्रीन्मांसान्हारिते नच औरत्रेणाथ चतुरः शाकुने नाथ पञ्चवैषण्मासंछागमांसेन पार्षते नाथ सप्तवै अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण न वैव तु दशमासानितृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु सम्वत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसे नतु वार्द्धीणसस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकीकालशाकं महासल्काः खड्गलोहामिषं मधु आनन्त्यायैवकल्पंते मुन्यन्नानिच सर्वश इति मत्स्यावणं हरिणमांसं क्वचिद्धारिते नेति पाठः तत्र मध्यदेशे हारिल इति प्रसिद्धः उरभ्रोमेषः शकुनपक्षितित्तिरवर्त्तिकादयः छागोलोहितादिव्यतिरिक्तस्तत्रविशेषविधिः पृषतश्चित्रमृगःएणःकृष्णसारःरुरुस्संवरः श्रुतसम्बन्धते न मांसेन पायसो गव्येनेति सम्बन्धस्य बलीयत्वात् गव्येनेति पयसासम्वत्सरमित्युशनोवचनाच्च तथा अभक्ष्या इत्युपक्रम्यधेन्वनडुहावविति वशिष्टोक्तेश्च उक्तः पिवन्तिन्द्रियक्षीणं वृद्धं श्वेतमजापतिं वार्द्धीणसंविजानीयान्ममविष्णोरतिप्रिय इति कालीपुराणे पाठ इत्युक्तं मांसपीयूषलतायां श्राद्धचिन्तामणौ मिश्रास्तु वार्द्धीण सन्तुतं प्राहुः याज्ञिकाः पितृकर्मणि इति निगमे इत्युक्तं कृष्णग्रीवोरक्तशिराः श्वेतपक्षोविह-

क्रमः सर्वैवार्द्धीणस सः प्रोक्त इत्येषा नैगमीश्रुतिः इति नद्यादौ जलं पिबतो जिह्वा- कर्णौ च जलं स्पृशति सत्रिपिबः वार्द्धीणसो जलच्छाग इतिमेधातिथिः महाशल्काः रोहितादय इति श्राद्धचिंतामणिः यत्तु महाशल्काः शल्यक इति तन्न शल्लकश्चतुरो मासान् सप्तमासान् तुरुत्तुवै कालशाकश्च खड्गश्च लौहच्छागस्तथैवच महाशल्का- लिनो मत्स्याः पित्रॄंनन्त्यायकल्पिता इति यमवचन विरोधात् श्राद्धचिन्तमणौ विष्णुः तथा सप्तरौरवेणाष्टौ पार्षतेन नवगवयेनैकादशत्रिपिबेनाजेन अत्र त्रिपि- बोजः श्वेतादिभिन्नोग्राह्यः नातोमन्वादिभिर्विरोधः कालशाकं महाशल्काः विषाणवर्जाये खड्गा आसूर्यंस्तांस्तुभुञ्ज्महेविषाणवर्जः शृङ्गोत्पत्तेः प्राक् आसूर्यं दिनमित्यर्थः लोहोलोहितच्छागः छागेन सर्वलोहेनानन्त्यमिपैठीनसिवचनात्का- त्यायनः उगुस्तामेषा आलब्धाः शषाणि क्त्वा लब्धा वा स्वयं मृतानां वा आहृत्य पचेत् ये तु व्यासशिष्यमहातेजसो भगवतोजैमिन्द्मुनेरसर्वज्ञत्वमभिहित वत- स्तेतु स्वस्याति मूर्खतमत्वं प्रथयन्ति यदि प्रश्नेनासर्वज्ञत्वं स्यात्तदानारदौ अति- भगवतः कृष्णादेरपि प्रश्नस्य सकलगुणप्रसिद्धतया न कश्चिदपि सर्वज्ञस्यादिति भूपतिष्ठनास्तिकः यत्तु केचिदाहुर्निषेधो ब्राह्मणविषयो विधिस्त्वन्यविषय इति तदपि मन्दवभुबुद्धिपुरोडाशाः भक्ष्याणां मृगपक्षिणां पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मचत्रा- सवेषु चेति मन्वादि वाक्यविरोधात् ऋतौ च गच्छन् विधिवच्चजह्नतनिघ्नन् ब्राह्मणश्चवते ब्रह्मलोकात् इति वाशिष्टाच्चवतु यो हिः वर्षशतं पूर्णमिति महा- भारतवचनादिकन्तद्विहितेतरविषयमित्युक्तमेव प्राक् तथाच मनुः भक्ष्यभोज्यञ्च विविधम्मूलानि च फलानिच ह्यानिचैवमांसानि पानानिसुरभीनिचे ति। सुन्य- न्नानि पयःशाकं मांसं यच्चानुपस्कृतं; अचारलवणञ्चैव. प्रकृत्याहविरुच्यते स्वाविधं शल्लकं पोद्यो इरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः गौतमोपि ;पञ्चनखाः शशशल्लकगोधा- खड्गकच्छपाः याज्ञवल्क्योपि भक्ष्याः पञ्चनखाः गोधाश्वाविच्छपाशशस्त्र इति देवलोपि पञ्चपञ्चनखाभक्ष्याः धर्मतः परिकीर्त्तितः गोधाकूर्मशशखड्गौश्वाविच्छल्लक एवञ्च रामायणेपि शशका शल्लकीगोधाकूर्मः खड्गीच पञ्चमः पञ्चनखाभक्ष्या अभक्ष्या वानरानरा एवं वचनात् एनस्यापि बोद्धव्यानिग्रंथगौरवभयान्न लिखिता नीतिदिक् एवञ्च सन्यासीनापि भिक्षायां मांस भोक्तव्यमेव ब्रह्मचारीयतिर्मांस मित्यादि वचनात् यस्य ब्रह्मचर्य्यादेव सन्यासं गृहीतवान् तस्याभक्षणेपि पुण्यमेव तथाच सतप्यति तपस्तत्र यजनेच ददातिच मधुमांसनिवृत्तोयः प्रोवाचेदं बृह- स्पतिः यावज्जीवतु जो मांसं विषवत्परिवर्जयेत् वशिष्टो भगवान् वाह स्वर्गलोकं

स गच्छति भगवान् जैमिनिरपि ब्रह्मचर्य्यमपास्यैव योऽकृत्वादारसंग्रहम् सन्न्यसेन्नाधिकारः स्वान्मांसेविविधिवदन्यत इत्यादिकं तत्परतया व्याख्यातं यस्तु गृहात्सन्न्यसेत् तु अर्थितः कामं भक्षयेत् अन्यत इति जैमिनिवचनात् इदन्तु तत्वं विहितमांसानामविधिनापि भक्षणे न दोषः यत्पुनर्नाद्यादविधिना मांसमित्यादि मनुवचनादिकं तन्निषिद्धचतुर्दश्यादि विषयकमन्यथा सामान्येनैव निषेधेसिद्धे चतुर्दश्यादिषु पृथक्निषेधवैयर्थ्यं स्यात् न च तासु श्राद्धादावपि न भोक्तव्यमित्यर्थं तत् श्राद्धादावभक्षणे प्रायश्चित्तस्मरणात् अतएव तद्योगेषु पुण्यस्मरणं श्राद्धादौ वर्जनस्य कृष्णाजिनिनिषिद्धत्वादिति तस्मात् ब्रह्मचारी वा सन्यासी वा श्राद्धादाववश्यं भक्षेत् किमुत गृहस्थः एवं स्थिते यानि निषेधवाक्यानि तान्यविहितपराणि तथाच स्कन्देश्वर संवादे यत्र यत्र निषेधो हि श्रूयते मांसभक्षणे जिह्वालान् प्रतिदोषोयं न तूक्तविधिमाश्रितान्निति वस्तुतस्तु बौद्धादिवञ्चितानामपि वेदमार्गे प्रवृत्यर्थं हिंसानिषेध इति विभावनीयं एवं स्थिते मांसस्य भक्ष्यत्वेके भक्ष्याः केऽभक्ष्याः इतीदानीं निरूप्यते तत्रादौ ग्राम्येषु श्राद्धादौ छागमेषमहिषाभक्ष्याः उक्तमनुवाक्यात् यज्ञोपि महिषं छागमौरभ्रमिति तत्र छाग सर्वैभक्ष्य मेषोऽपि सर्वोऽपि भक्ष्य इति बहवः मैथिलास्तु यो यस्य मांसमश्नाति इति मनूक्तयुक्त्याविड्भक्षकत्वात् सर्वेन भक्ष्याः किन्तु पार्वतीया एवेत्याहुः महिषस्तु लोकविगर्हणादभक्ष्य इत्याचार चिन्तामणिः नैपालदेशेतु तमपि भक्षयन्ति यद्यपि महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियाय प्रकल्पयेत्तदुक्तं तथापि अभक्ष्या इत्यनुवृत्तौ धेन्वनुडुहाविति वशिष्टोक्ते वाजसनेयि यागे ऋत्विक परन्तत् कलौ गोमेधनिषेधाच्चेति अपि एवञ्चोष्ट्रमूषकमार्जाराखुनकुलग्राम्यशूकर गोमानुषादय उष्ट्मेधादेरन्यत्र भक्ष्या अन्येपि ग्राममात्रचरानुष्ट्राः पशूनामिति वशिष्टः देवलोपि आखुमूषकमार्जार नकुल ग्राम्यशूकरान् न भक्षयेदेकचरा न ज्ञातांश्च मृगद्विजान् इति वचनात् इति ग्राम्यपशूनाम्भक्ष्याभक्ष्यनिरूपणम् अथारण्यानां तन्निरूप्यते कृष्णसारेणरुरुपृषत ऋष्यहरिणशूकरश्वाविच्छल्लकखड्गशशकन्यङ्कु कृष्णा गवयादयो भक्ष्या तथाचमनुः श्वाविधं शल्यकं सेधाखड्गकूर्मशशांस्तथा भक्ष्याः पञ्चनखेष्वाहु ब्रह्मचलेषु सर्वदा अपरार्के हारितः ग्राम्यारण्यानां पशूनामश्नन्ति अरण्यजातेषु हरिणखड्गरुरुपृषत ऋष्यन्यं कुमहारण्य वासिनो वराहाः तथा शशक शल्यकेत्यादि वशिष्टः श्वाविकृल्लककच्छप गोधापञ्च नखेषु भक्ष्याः खड्गिन्यग्राम्यशूकरे च विवदते इति श्वाचिच्छेधाशल्लसेधासदृशो मध्यदेशे साही

इति प्रसिद्धः अविः तत्रैव मेढा इति प्रसिद्धः इत्याचार चिन्तामणौ शम्बर इत्यन्ये पृषतश्चित्रमृगः ऋष्यो मृदुशृङ्गो ऐक इति प्रसिद्ध इत्याचार चिन्तामणपरा-कौन्यं कुः सम्बरसदृशो निश्शृङ्गः यद्यपिनीलगवयस्यैव वशिष्ठेन निषेधात् कृष्णग-वयस्य भक्ष्यत्वमवगम्यते तथापि वाग्दुष्टस्यापि निषेधात् लोके च तस्य नीलगाय इति शब्देन प्रसिद्धेरभक्ष्यत्वमित्याहुः वनशूकरस्तु सर्वोपिभक्ष्य इति सर्वोऽभक्ष्या इत्यनुवृत्तौ उभयतो दन्ता अलेमानः केशिन एकशफाः कलविङ्कचक्रवाकहंसा इति गौतमोक्ते एकशफवराहोऽभक्ष्यः किन्तु वन्योद्विशफ एवेत्येक महारण्य-वासिनो वराहाश्चेति हारितोक्तेरेकशफ एव भक्ष्यः अन्यथारण्यवासिन इत्येवं वदेत् वशिष्टोप्यग्रामशूकरे चेत्यनेन विवादमुक्तवान् इति मैथिलाः अथाभक्ष्याः पशवस्तथाच देवलः अभक्ष्यापशुजातीनां गोखरोष्ट्राश्च कुञ्जराः सिंहव्याघ्रचर्मश-रभाः सर्पाजगरतार्क्ष्यका श्वशृगाल मृगद्वीपिगोलानृमर्कटानभक्षयेदेकचरान-ज्ञातांश्च मृगद्विजानिति अथभक्ष्यपक्षिणः तत्र शङ्खः तित्तिरिंच मयूरञ्च लावकञ्च कपिञ्जलम् वार्द्धीणसं वर्त्तकञ्च भक्ष्यानाह यमः सदा मयूरस्तृणमयूरः तथाच बौधायनः पक्षिणस्तित्तिरकपोत कपिञ्जल लावकढण मयूर इति कपोतो वन-कपोतः अन्यस्य निषेधात् तथाच स एव पारावतकपोतो ऽभक्ष्याः पक्षिणोमताः हारीतः वर्त्तकतित्तिर मदारवार्द्धीण सक्रञ्च कपिञ्जलान् वर्त्तकोवटेर इति प्रसिद्धः मदारस्तृण मदारः कपिञ्जलो गौरतित्तिरः घृतकुम्भसमास्तत्र शनालो-र्भक्षयिष्यति इति रामायणीयोपदेशाच्छनालिरपि भक्ष्याः अन्येपि शिष्टाचारा-दभक्ष्याः अभक्ष्योग्रामकुक्कुट इत्युक्तेर्वनकुक्कुटो भक्ष्य इति महाभाष्याद्वनकुक्कुटोपि भक्ष्यः तथा भक्ष्याः पक्षिणः तत्र मनुः क्रव्यादान् शकुनीन् सर्वान् तथा ग्रामनि-वासिनः अनिर्दिष्टांश्चैकशफान् टिट्टिभांश्च विवर्जयेत् कलविङ्कञ्च हंसञ्च चक्राङ्गं ग्रामकुक्कुटं सारसं रज्जुबालञ्च दात्यूहं शुकशारिके प्रतुदान् जालपादांश्च कोयष्टि-भकविष्किरान् निमज्जतश्च मत्स्यादान् सौतं वल्लरमेवच वकञ्चैव बलाकांच काकोलं खञ्जरीटकं क्रव्यादा आममांसभक्षका गृध्रादयः ग्रामनिवासिनः पारा वतादयः अनिर्दिष्टानेकशफान् श्वादीन् अश्वमेधादौ तु तेपि भक्ष्या एवेति भावः टिट्टिभः प्रसिद्धः कलविङ्कश्चटकस्तस्य जातिशब्देन निषस्तुभयवासित्वेनप्लवः जल-कुक्कुट इति मिताक्षरा हंसः प्रसिद्धः चक्राङ्गश्चक्रवाकः यद्यपि जालपादनिषेधे-नैवाप्यनयोर्निषेधस्सिद्धस्तथापि आपद्यन्येषां भक्ष्यत्व प्रतिपादनाय तयोः पृथु-गुक्तिरिति कूमभट्टः ग्रामकुक्कुटमित्यत्रग्रामपदम् आरण्यस्य भक्ष्यत्वप्रतिपा-

दनायेत्यपि सः दात्युहश्चातक इति मिताक्षरा प्रत्युद्य्यभक्षयन्ति प्रतुदाः दार्वा-घाटादय जालपादाः राजहंसादयः नखविस्कराः श्येनादयः लावकमयूरादीनां भक्ष्यत्वात् निमज्ज्यये भक्षयन्ति वकवलाकेय भट्टः खञ्जरीटस्तु प्रसिद्धः काकालों द्रोणकाक इति कुलूखञ्जनः याज्ञवल्क्योपि क्रव्यादपक्षिदात्यूह शुकप्रतुदटिट्टि-भान् सारसैकचरान् हंसान्सर्वांश्च ग्रामवासिनः कोयष्टिमद्गुचक्राह्वबलाका नखविस्करान् कलविङ्कश्च काकोलं कुवरं वहुरोमकञ्जालपादान् खञ्जरीटान् अज्ञतांश्च मृगद्विजान् चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव चेति मग्नः पानीय काकिकेतिरभसः कुरर उत्क्रोशः मिताक्षरायान्तु रज्जुदालकमिति पठित्वा वृक्ष कुक्कुटं इति व्याख्यातं चाषाः किकीटिवयः देवलः बलाका हंसदात्यूह भृङ्गराजकचक्रकाः उलूक कवूतरश्येन गृध्र कुक्कुटवायसाः चकोरको किलोत सा शकुश्चाष मद्गुरो कङ्कसारस गोलासशतपत्रप्लवंगमाः पारावतकपोती च अभक्ष्याः पक्षिणो स्मृता इति भृङ्गराजो घुस्याटो धनुकुश्चा इति प्रसिद्धः काको-लोहित पक्षः भासो गृध्र विशेषः प्लवन्नेवगच्छकः प्लवङ्गमः अथभक्ष्यमत्स्या भक्ष्य अपिहिमत्स्याः स्युः सिंहतुण्डकरोहिताः तथापाठीनराजीवास्सशल्काश्चमृगद्विजाः मनुरपि पाठीन रोहिता वाद्यौ नियुक्तौह व्यकव्ययोः राजीवान् सिंहतुण्डाश्च स शल्कश्चैव सर्वशः शंखः राजीवान् सिंह तुण्डाश्च सशल्काश्च तथैवच पाठीनरो हितौ चापि भक्ष्यामत्स्येषु कीर्त्तिताः भक्ष्या इत्यनुवृत्तौ वौधायनः मत्स्याः सहस्र जश्विलवनवमिहहच्छिरसः चिलचीमसफररोहितराजीवाः सिंहतुण्डः सिंहमुखः रोहितः रोह इति प्रसिद्धः पाठीनः सहस्र दंष्ट्रः यस्तु पठन्तिजपतेजोह्वरामः तस्याः पाठीनस्तु विशेषत इति तच्चिशूलं ब्रह्मचारी विषयकत्वा यत्तु शाचः पाठीनरोहितो देवपित्र्यादिकर्मणि नियुक्तावेवादनीयौ युक्तौ हव्यकव्ययोरिति मनुवाक्यात्तदसत् नियुक्तावित्यस्य प्रशक्तावित्यर्थः मांसलतायान्तुप्रशस्तौ हव्यकव्य योरिति पठितम् तथाच याज्ञवल्क्यादयः सामान्येनोक्तवन्तः गोधाकूर्मावपिभक्ष्यौ अथाऽभक्ष्यामत्स्यादयः तथा चापस्तम्बः अभक्ष्यामत्स्यानां शर्पशीर्षास्तदवः क्रव्या-दायेवान्ये विक्रतास्याः इयमनुष्यशिरसः यमः मत्स्यांश्च शक्तान्वेदाध्यायीविव-र्जयेत् तथाचारचिंतामणौ अभक्ष्यमकरसर्पसरीसृपच मङ्गर मयूरचर्मिक नक्र-कर्कटशिशुमाराचये चान्येहयकर्णकाः उभयकाश्याः हारीतोपि वरीमत्स्य-कण्ठकशंखः शुक्तिकपर्दिकान् पीत्वानवोदकश्चैव पञ्चगव्येन शुद्धतीति देवलः शंबूकौजलसुक्तिश्च शिशुमारः स्तवङ्गमः मत्स्याश्च विकृताकाशन्नैव भक्ष्या जलौ-

कम्र इत्यादि सर्पशीर्षस्सर्पतुल्यमस्तकं वामीनादिः मृदवोमकराः क्रव्यादाः नक्रादयः सर्पोदुदुकः सरीसृपो जलौकामयूरोऽत्रजलचरो मयूरसदृशः क एन इति प्रसिद्धः जलशुक्तिः स्ववङ्गमो मण्डुक इति इदमत्रतत्वं ये तु विहितास्तेषां श्राद्धादौ दानन्तु पुण्यजनकं ये चाविहितास्तेषां प्रायश्चित्तजनकञ्च न विहिता नापि निषिद्धास्तेषामपि भक्षणे दोषाभावः तदुक्तं महाभाष्ये भगवत्पतञ्जलि-मुनिनायच्च पुनर्नशिष्टैर्नप्रतिषिद्धं नैव तद्दोषाय भवति नाभ्युदयाय तथा हिक्कितं हसितं कण्डुयितं इति पश्याम इत्यलं बहुनेति शिवम् यो रामानुज वञ्चनो-त्पथगतान्निर्जित्यवादे मृगान् ॥ मध्वान् शूकर तुल्यकानथच यो जिल्वापरा-न्वन्नभान् ॥ निम्बार्कासुगतादिनास्तिक कुलञ्जित्वान्यपाखण्डिनः। वेदान् सिन्धुगतानिवोद्धमगमच्छ्रीमान् कवीन्द्रो बुधः इति मांसमीमांसा कवीन्द्रात्मज-मुनीन्द्र विरचितं तत्र विस्तरतया द्रष्टव्यम्।

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे सप्तमस्तरङ्गः।

---

## अष्टमस्तरङ्गः।

यानिशक्तिपूजायां तन्त्र प्रतिपादितानि वचनानिवेदा प्रविरुद्धानिग्राह्यानि विरुद्धानि त्याज्यानि अतएव मुक्तिखण्डे चतुर्थोऽध्याये स्कन्दपुराणे सूतसंहि-तायां तथापियोंशो वेदमार्गेण न विरुध्य तिसोंशप्रमाणमित्युक्तं केषाञ्चिदधिका-रिणाम् वेदविरुद्धांशेप्रामाण्यं किं इत्याशंक्य माधवः यज्ञवैभव खण्डे द्वाविंशेऽध्याये सूतः अथातः संप्रवक्ष्यामि मार्गं प्रामाण्यनिर्णयं श्रद्धयासहिता युयंशृणुध्वं मुनि-सत्तमाः वेदाश्च धर्म्मशास्त्राणि पुराणं भारतं तथा वेदाङ्गानुपवेदांश्च तथा न्यानागमानपि कापालं ना कुलं वामतेषां भेदान् द्विजर्षभाः तथा पाशुपतंसोम भैरवप्रमुखागमान् एतेषामेवोपभेदाश्च शतशोथ सहस्रशः विष्णागमां स्तथा ब्राह्मान् बुद्धार्हाद्यागमानपि लोकायतं तर्कशास्त्रं बहु विस्तार संयुतं मीमांसा मतिगम्भीरां सांख्ययोगौ तथैवच अनेक भेदभिन्नानि तथा शास्त्रान्तराणि च निर्ममेशङ्करः साक्षात् सर्वज्ञ संग्रहेण च प्रसादा देवरुद्रस्य ब्रह्मविष्णादयस्सुराः

सिद्धविद्याधरा यक्षाराक्षसाद्यास्तथैवच मुनयश्च मनुष्याश्च यथा भार्गद्विजो-
तय: तान्ये विवस्तरेणैव संग्रहेणैव वापुन: कुर्वन्तियानि नामानि कथितानि
महर्षिभि अधिकारि विभेदेन नैकस्यैव सदाद्विजा: तर्कैरेतैर्हि मार्गास्तु नहं
तव्याद्विजातिभिरित्यादि अधिकारीति उदितेजुहोत्यनुदितेजुहोत्यिनुदितेजुहो-
तीत्यादि विरुद्धार्थं प्रतिपादकानां श्रुतीनामिवाधिकारिभेदेन विरोधा भावात्
प्रामाण्यमि वंशतर्कैरेते मार्गा न हन्तव्या न वाध्या: स्मृत्यादिभिस्तु वाध्या एवेति
माधव: स्वतन्त्रानागमा: सर्वेनिर्मला: परिकीर्त्तिता: अधिकारिविशेषेण प्रवृत्ता-
नात्र संशय: ब्रह्माविष्णुमहादेव प्रमुखै: परिकीर्त्तिता: आगमाद्यानयानैयादिशा
नैवान्यथा वुधा इति मानवपुराणे तत् किञ्चित् स्त्री शूद्रप्रति लोमाद्यास्तंत्रमात्रा-
धिकारिण: न तेषां वैदिके मार्गे प्रवेशो विहितोहित: पाञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य
वक्ताहं स्वयमेव हि मन्मुखा देवलं श्रुत्वानारद्याद्यामहर्षय: लोके प्रकाशयिष्यन्ति
मद्भक्तेषु च नान्यथेति विष्णुरहस्ये सप्तमेऽध्याये श्रीहयग्रीववाक्ये मद्भक्त कृतपरि-
संख्याया शूद्रादीनामेव पञ्चरात्राधिकार: सौम्यरूपास्तु रामाद्यास्तेषां मन्त्रं
यथा रुचि: शूद्रादिश्वपचान्तेभ्य: उपदेश्याविमुक्तये इति तत्रैव अष्टमेऽध्याये
तेषामेव तन्त्रेष्वधिकारश्रवणात् अतएव पाद्मे कुमारिकाखण्डे हरिदासराजान-
मुपक्रम्यविष्णु: शूद्रास्तपस्विनोमुख्यामुद्रा तिलकधारिण इति ननु वेद प्रमा-
णत: कस्तत्रांश इति चेच्छृणुकरी तु शम्भुस्त त्रैव मदीयं वाक्यपालनं स्वयं विधा-
तुस्त्वं ब्रह्मनाम्नां कुरुजगद्गुरो कर्त्तुं शास्त्रविशेषञ्च वेदाङ्गं सुमनोहरं अपूर्वं
मन्त्र निकरै: सर्वाभीष्टफल प्रदै: स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युक्तं पूजाविधिक्रमैरिति
एवञ्च मन्त्रस्तोत्रध्यान पूजादीनां श्रुति स्मृति सहायत्वादविरुद्धत्वं अतएव
यद्यपि भगवतो एभिगमनादि लक्षणमाराधनमर्चन श्रवणमनन्यचित्ततयाभि-
प्रियते तदपि न प्रतिषिध्यते श्रुति स्मृत्योरीश्वरप्रधानस्य प्रसिद्धत्वादिति भाष्य-
मसंगतं आगमाद्युक्त आचारो ग्राह्यो वेदानुकूलतोविरोधेन तस्य न ग्राह्य: उक्तञ्चे
दंस्फुटं किलेति भगवत् पूज्यपादोक्ते:तन्त्राविरुद्धांशेकोधिकारी चेदास्तिक-
मात्रस्याधिकारात् उक्तं हि देवी भागवते सप्तमस्कन्धे तत्र वेदाविरुद्धांशो युक्त
एव क्वचित् क्वचित् वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् सर्वथा वेदभिन्ना-
र्थेनाधिकारीद्विजो भवेत् तत्र वेदेति तन्त्रेष्वित्यर्थ: तत्र वेकादशे वेदा-
विरोधिचेत् तन्त्र तन्त्रमानं न संशय: प्रत्यक्षं श्रुतिविरुद्धं यत्तत् प्रमाणं भवेन्न-
ेचति महाकाल संहितायां च शिव: वेदाविरोधिर्योंशस्तु सैवग्राह्योद्विजोत्तमै:

अधिकारी बहुलाद्याप्यनेकाम्रोऽत्रकथ्यते इति द्विविधत्वञ्च वायुसंहितायां शैवागमोऽपि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च स स्मृतः श्रुतिसारमयः श्रौतः स्वतन्त्र इतरो मतः इति श्रौतो ग्राह्यस्तु वैदिकैरिति च तत्रैव एवञ्च सिद्धं वेदविरुद्ध-स्याप्रामाण्यम् किञ्चात्र भवाने वणपथेन प्रष्टव्यो यद्येवंशंखादिधारणस्य महत्वं भगवतोभिप्रेतं तर्हि परमप्रियार्जुनाय तत्सुलभोपायं विहाय कथं वर्ण धर्मावह्नाया सासाध्याश्चोक्ताः कथञ्च महत् कष्टसाध्यं ज्ञानञ्चोक्तं भारते भागवते च परमानन्यभक्तसुह्रदं प्रतिनोक्तमिति तस्मात् सत्यभयंसुखं विधाय पलायतां लज्जाचेदिति परामर्शः अन्यथा भगवत परमेश्वरस्य वञ्चकता-पत्तिः तस्माद्दैत्यान् वेदोक्तधर्मेभ्यः प्रध्यावनायैव पञ्चरात्रादयस्तंत्राः इति वक्ष्य-माण न्नह्म वैवत्तक लयापि स्वीकर्त्तव्यं अधर्मत्वञ्च वेदप्रणिहितोधर्मोह्यधर्मस्तद्वि-पर्य्ययः वेदोनारायणः साक्षात् स्वयं भूरिति शुश्रुम: इति वेदेनविहितो धर्मः वेद प्रमाणकः इति अनेन यो वेद प्रमाणकः स धर्मः इति वृहन्नारदीये भागवते षष्ठस्कन्धे प्रथमाऽध्याये वेदप्रण हीतो धर्मोह्य धमस्तद्विपर्य्ययः ॥ २ ॥ यो वेदा प्रमाणकस्सोऽधर्म इति स्वरूपं प्रमाणं चोक्तं यथाह जैमिनिः चोदना लक्षणो धर्मः इति व्याख्यातञ्च भट्टपादैः इयमेकेन सूत्रेण श्रुत्यर्थाभ्यां निरुप्यत इति इयं धर्माधर्म समुदायं चोदनार्थमाह वार्त्तिक कारः प्राप्यतेहमिति ज्ञानं येन शब्देन जायते स चोदनोच्यते शब्दः प्रवर्त्त न फलामर्तिरिततद्विपर्य्ययः वेदाप्रमा-णको धर्म इत्यर्थः विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमाच्छलः अधर्मशाखान्यञ्चेमाः धर्मज्ञो धर्मवसजेदिति तत्रैव तल्लक्षणं चोक्तं धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मो-न्यथोदितः उपधर्मस्तुपाखण्डोदंभो वा शब्दभिच्छलः यस्त्विच्छयाक्तः पुम्भि राभासो वा पृथगिति श्रीधरोक्तेः देवी भागवते सप्तमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशा-ध्याये श्रुति स्मृतीभ्यां मुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्त्तितः अन्य शास्त्रेषु यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते सर्वज्ञात्सर्वसक्तोश्च मतो वेद समुद्धत अज्ञानस्यमना भावाद-प्रमाणा न च श्रुतिः स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वेव विनिर्गतः मन्वादीनां स्मृतीनाञ्च ततः प्रमाण्यमिष्यत इति धर्म साधनमाह याज्ञवल्क्यः पुराण न्यायमीमांसाधर्म-शास्त्राभ मिश्रताः वेदाः स्थानानिविद्यानां धर्मस्य स्थानान्न दृशेति एवञ्च पाखण्ड मतस्याधर्मत्वं सष्टमे वोक्तम् तन्निराकरणञ्च देवीभागवते यो वेदधर्मसुझि-त्यधर्ममन्यं समाचरेत् राजाप्रवासयेद्देशान् निजा देतान धर्मिणः ब्राह्मणा नैव-सम्भाष्याः पंक्तिर्वाह्यान च द्विजेरिति कौर्मेप्येकादशेध्याये न च वेदा इते किञ्चि-

च्छास्त्र धर्मोपधायकं योन्यत्तरमतेसोतन सम्भाष्योद्विजातिभिः यानि शास्त्राणि इहलंतेयोगे स्मिं विविधानि तु श्रुतिस्मृतिविरुद्धानिनिष्ठातेषां हितामसीति विमोहकत्वस्य हेमाद्रौ श्राद्धकाण्डे ब्रह्मवैवर्त्ते शम्भुरुवाच नग्नादीन् भगवन् सम्यक् ममाद्यपरिपृच्छतः आचचसर्वथा सर्वान् विस्तरेण यथायथं एव मुक्तो महातेजा बृहस्पतिरुवाचतम् पुरादेवासुरे युद्धे निर्जितेष्वसुरेष्वथ पाखण्डाधिस्तता: सर्वेष्वेतेसृष्टास्वयंभुवा तपश्चरस्तुसर्वेषु असुरेषु जयार्थिषु विष्णुः सुदुस्तरोमायामास्थायसुरचोदिता मोहयामा स योगात्मा तपो विघ्नेभ्य तत् प्रभुः सबुद्धान् बुद्धिरूपेण तानुवाच महासनाः शक्याद्ये तु सुराः सर्वे युष्माभिरिति दर्शनैः बौद्धधर्मं स मास्थाय शाक्यास्तेतु वभूविरे यानुवाचार्हं नेमं मेयू यं भूत्वा च मद्विधाः ज्ञानेन सहितोधर्मतेनार्हन्त इति स्मृताः कुश्रावक निर्ग्रन्थाः सिद्धपुत्रास्तथैवच एते सर्वेपि चार्हन्तो विज्ञेया दुष्टचारिणः त्रयी क्लेशसमुत्सृज्य जीवन्तेत्यब्रवीतयान् जीवका नाम तेजाताः सर्वधर्मवहिष्कृता: याज्ञ्छु त्वारित्य वध्वोक्ति धर्मान् वैप्रत्यपाद यत् कापिलास्तेपि संप्रोक्ताः कपिलो हि दिवाकर चरध्वं या तु याचेदेमच्छासनमतिधुतिचरकास्तेपि विज्ञेया अधर्मचरणाच्छठाः सत्व सर्वेषु भूतेषु भगवानिति चाब्रवीत् सात्वतास्तेपिविज्ञेया उक्ताभगवतास्ततेविड्भच्चकास्वये केचित्कपालकृत भूषणाः शैवापाशुपतास्वान्येपाश्च रात्रास्तथापरेतथान्येच दुरात्मानः सर्वेऽप्यसुरदेवताः पाशब्देन त्रयीधर्मः पालताजगतः स्मृतः तं खण्डयंति यस्मात्तेपाखण्डास्तेन हेतुना अत्र अन्नाद्भवंति भूतानि पर्य्यन्यादन्न सम्भवः यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः [illegible]र्मब्रह्मोद्भवं विद्धीति स्मृत्यः यज्ञानां वेदमन्त्रमूलकत्वात् तेषां जगत्पालकत्व[illegible]ष्टमेवत्यर्थः ततस्तेकर्मणावद्धा इहासम्यग्व्यवस्थिताः अकर्मणा मोहजनकत्वेन वेदविरुद्धकर्मणा इहलोके असम्यक्श्रौतस्मार्त्तकर्मा नष्टत्वेन स्थिताः असुरेभ्यः पुनर्जाता भावितास्तेन कर्मणा निरयं प्राप्य तैरेव कर्मभिर्भाविता पुनः एतेनपंच रात्रादीनांमोहकत्वं तदाश्रयण शीलानां नरकगामित्वञ्च स्पष्टमेव एतेन्येच त्रयीवाह्याः सर्वेनग्नादयो मता इति निषेधकर्माणि परित्यज्य विधिकर्माणि ग्राह्यमित्यलं प्रक्तिविषये ।

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे अष्टमस्तरङ्गः समाप्तः ।

---

# अथ नवमस्तरङ्गः ।

रमानाथं देवं सकल जगतां रचणपटुम् । भजेद्दन्देवेशं सुरवरनतं भक्त सुखदम् सदा सिद्धैस्सेव्यभ्भवभयहरब्बिष्णु मनघम् वसन्तं वैकुण्ठे पशुपतिवरा लब्ध विभवम् ॥ अथ विष्णोर्विषयम् तत्र विष्णुपुराणम् विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगदत्रैव चाखितम् स्थितिसंयमकर्त्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः पराशर उवाच अविराय शुद्धाय नित्यायपरमात्मने सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥ १ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यंत कारिणे ॥ २ ॥ एकानेक स्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः । अव्यक्ताव्यक्तरूपायविष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ ३ ॥ सर्गस्थिति विनाशानां जगतोयो जगन्मयः । मूलभूतो नम स्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ ४ ॥ अपचय विनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् । सर्वत्रासौ समस्तञ्च वसत्यजेति वैयतः ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिःपरि पठ्यते ॥ ॥ ६ ॥ तद्ब्रह्मपरमन्नित्य मजमचयमव्ययम् एकस्वरूपञ्च सदाहेया भावाच्च निर्मलम् ॥ ७ ॥ अथलैङ्गोत्तरार्द्धम् शृणुभूप यथान्यायं पुण्यं नारायणात्मकम् । स्मरणं पूजनञ्चैव प्रणामोभक्तिपूर्वकम् ॥ ८ ॥ प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य सममुच्यते य एकः पुरुषः श्रेष्टः परमात्मा जनार्दनः यस्मात् ब्रह्मा ततः सर्वं समाश्रित्यैव मुच्यते धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं विदितं मया ॥ ३ ॥ अथकालिकोप पुराणस्य चतुर्विंशोऽध्यायः प्रलीने ब्रह्मणि परे जगतां प्राकृतोलयः समस्तजगदाधारमव्ययन् यत्परातरम् ॥ २१॥ तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य दिवारात्रञ्चय दभवेत् । तत्परं नामतस्यार्द्धम् परार्द्धमभिधीयते जगत्स्वरूपी भगवान् परमात्माच्चयोऽव्ययः । स्थूलास्थूल तमः सूक्ष्मादयस्तु सूक्ष्मतमो मतः ॥ २२ ॥ न तस्यास्ति दिवारात्रि व्यवहारो न वत्सरः किन्तु पौराणिकैः पूर्वैरस्माभिरपि तादृशैः ॥ २४ ॥ सृष्टिप्रलय वोधार्थं कल्पते तदहर्निशं स एवरात्रिः सदिवा सवर्षः सवैचिति सृष्टिकरोहरस्य स विष्णुरूपीपुरुषः पुराणःतस्मिन्समस्तञ्च विभाति तदवत् ॥२५॥ ततो ब्रह्मणिलीने तु परमात्मनिशाश्वते जगत्सर्वं क्रमेणैव तद्रूपत्वापगच्छति ॥ २६ ॥ ब्रह्मणा शतवर्षान्ते तद्रूपी जनार्दनः । जगदन्तं स्वयं कृत्वा परमेष्ठी नमेति वै ॥ २७ ॥ प्रथमं

सविता सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा। तीव्रैः करैः शोषयित्वाजलं सर्वं ग्रहीष्यति॥३८
शुष्कावृत्वा स्तृणगणाः प्राणिनः पर्वतास्तथा चूर्णीकृताविशीर्णास्युर्दिव्य वर्षशते न तु॥ ३९॥ ततो द्वादशसूर्यस्य रश्मयः प्रवला भृशम् अभवन् द्वादशादित्याजगज्ञोग्योपन्नं स्थिताः॥ ४०॥ रश्मिद्वारेण सकलं सूर्य्यास्ते भुवनानि च प्रदहन् पृथिवीन्याश्च मेदिनी चोष्णताङ्गता॥ ४१॥ ततो विनष्टे सकले स्थावरे जङ्गमे तथा आदित्यरश्मितो देवरुद्ररूपी जनार्दनः॥ ४२॥ निःसृत्यप्रसार्य्यन्तः पातालतलमुन्नतः। सप्तपाताल संस्थांस्तु नागगन्धर्वराक्षसान्॥ ४३॥ देवानृषींश्च शेषांश्च जघानवरशूल धृक् एवं स्वर्गे च पाताले पृथिव्यां सागरेषु च॥ ४४॥ ये प्राणिनस्तान् समस्ताञ्जघान स जनार्दनः। ततो मुखान् महावायुं रुद्रश्च सृष्टवान् स्वयम्॥ ४५॥ सोव्याहतगतिर्गाढ़ं संसार भुवनत्रये। यावद्वर्षशतं वायुर्भ्रमन् भुवनगर्भगः॥४६॥ सर्वमुत्सारयामास यत्किञ्चित् तूलराशिवत् समस्तं तत्समुत्सार्य्य जगद्वर्त्तिं समन्ततः॥ ४७॥ विवेश द्वादशादित्यान् स वायुर्जवनाधिकः प्रविश्य मण्डलं तेषां तेजोभिः सहमारुतः॥ ४०॥ महामेघान् समारेभे रुद्रेण प्रति योजितः। ततस्ते प्रेरिता मेघास्तेन वातेन वेगिना॥ ४८॥ रुद्रेणाप्यतिरौद्रेण पर्य्यावत्रुर्नभः समम्। संवर्त्ताख्या महामेघा भिन्नाञ्जन चयोपमाः॥ ५०॥ केचिद् धूम्राः शोणवर्णा शुक्लाश्चिताश्च भीषणाः। केचिच्च पर्वताकाराः केचिन्नागसमप्रभाः॥ ५१॥ प्रासादसदृशाः केचित् क्रौञ्च वर्णाश्च भीषणाः गर्जन्तस्ते महामेघा वर्षाणामधिकं शतम्॥ ५२॥ ववृषु स्तोनयो लोकान् प्लावयन्तो महास्वनाः। रथचक्रप्रमाणेन धारापातेन वै दृढ़म्॥ ५३॥ धारासारेण महता पूरितं भुवनत्रयम्। अभ्रु वस्थानमासाद्यतो यराशौ स्थिते ततः॥ ५४॥ समुखादसृजदवायुं रुद्ररूपीजनार्दनः। तेनैव वायुनाक्षिप्ताः मेघाः संवत्सराच्छुतम्॥ ५५॥ अव्याहतगतेनाशुविध्वस्ता अभवंस्ततः। नष्टेषु तेषु मेघेषु जनो लोकादिकं पुनः॥ ५६॥ रुद्रस्त्वा ब्रह्मभुवनं ध्वंसयामास निर्दयः। विध्वस्तेषु समस्तेषु भुवनेषु विशेषतः॥ ५७॥ विनष्टे ब्रह्मलोके च रुद्रोगाहादशारुणान् सगत्वा द्वादशादित्यान् वेगेन महता हरिः॥ ५८॥ अग्रसद्धांति जज्वाल तैर्गर्भस्थै दिवाकरैः। ततो ब्रह्माण्डमासाद्य रुद्रःकालान्तकोपमः॥ ५९॥ चूर्णी चकार सकलं मुष्टिनायं महावलः। चूर्णी कुर्वस्तु ब्रह्माण्डं पृथिव्यपि विचूर्णिता॥ ६०॥ तोयानि च समस्तानि सदभ्रेयो गतो हरिः यद ब्रह्माण्ड वहिस्तोयं स्थितं पूर्वं समं ततः॥ ६१॥ यद्दाभ्यन्तर्गतं तोयं

तत्सर्वं चैकतां गतम् एको भूतेषु तोयेषु सर्वव्यापिषु सर्वतः ॥ ६२ ॥ ब्रह्माण्ड खण्ड पूर्णौघः प्लवन्नासीत् सनैरिव। ततः पृथिव्यास्सारंतु गन्धं तन्मात्रकं क्रमात् ॥ ६३ ॥ अम्भोजग्राह सकलं विनष्टा पृथिवी ततः पुनः स रुद्रस्तेजांसि गर्भस्थानिस्वकायतः ॥ ६४ ॥ निःसारयामास पुनः पुञ्जोभूतानि भीषणः। तानि तेजांसि सकलं जगृहुः सर्वतः स्थितम् ॥६५॥ अन्तर्वहिश्च ब्रह्माण्डात् तेजो यच्चान्यतोगतम्। जगद्गतं सर्वतेजोगृहीत्वा चैकतोज्वलन् ॥६६॥ रौद्रब्रह्माण्डखण्डानि तेजोऽप्यन्यद्दहज्जले दग्धा ब्रह्माण्डचूर्णानि तेजांस्यु ज्वलितानि च ॥६७॥ जलेभ्यो रसतन्मात्रं सार भूतं ततो ग्रहीत् गृहीत साराश्चा आपः प्रनष्टास्तेजसा ततः ॥ ६८ ॥ अप्सुनष्टासु तत्तेजः प्रविश्याथ सदागतिः। एको भूतो महाभागोरूपन्तन्मात्रमग्रहीत् ॥ ६९ ॥ गृहीते रूपतन्मात्रे तेजांसि सकलान्यथ विनष्टानि ततो वायुः प्रवलो भूद्वारितः ॥ ७० ॥ महास्वनं ततो वायुमासाद्याग्निरिवज्वलन्। रुद्रः सङ्क्षोभयामास तदाकाशं स्वयं ततः ॥ ७१ ॥ तेन सङ्क्षुब्धमाकाशमग्रहीत्मरुतस्ततः तद्गतं स्पर्शतन्मात्रं ततो नष्ट प्रभञ्जनः ॥७२॥ नष्टे वायौ ततो रुद्र आकाशात् सारमग्रहीत् शब्द तन्मात्रकं तस्मिन् गृहीतेविगतं वियत् ॥ ७३ ॥ नष्टेन भसितद्रुद्रो सौकाये ब्राह्मे तदा विशत् ब्राह्मं तदाकुलं कायं निराधारं निराकुलम्॥ ७४ ॥ विवेशवैष्णवे कायेशङ्खचक्रगदाधरे ततः शौरिर्महातेजा कायं तत्यां च भौतिकम् ॥ ७५ ॥ शङ्खचक्रगदा शार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् स्वशक्त्या संजहाराशु सारमादाय सर्वतः निराधारं निराकारं निःसत्त्वन्निरवग्रहम्। आनन्दमयमद्वैतद्वैतहीनविशेषणम् ॥ ७७ ॥ न स्थूलं न च सूक्ष्मं यज्ज्ञानं नित्यं निरञ्जनम्। एकमासीत् परं ब्रह्म स्वप्रकाशं समं ततः॥७८ नाह्नो न रात्रिर्नवियन्न पृथिवी नासीतमोज्योतिरभून्न चान्यत् श्रोत्रादि बुद्ध्याद्युपलभ्यमेकं प्राधानिकंब्रह्मपुमांस्तदासीत् ॥७९॥ एवंयावत्स्थितासृष्टिस्तावत्कालमसृष्टिकम्। आसीदेकं परं तत्वं ततः सृष्टिः प्रवर्त्तते। प्रकृतौ संस्थितो यस्मात् सर्वतन्मात्र सञ्चयः अहङ्कार महत्तत्वं गतो यत् प्राकृतोलयः॥ ८१ ॥ प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतं प्रलयन्तु तत् तस्मात् प्राकृत संज्ञोयमुच्यते प्रतिसञ्चरः ॥८२॥ अयं वः कथितो विप्राः प्राकृताख्यो महालयः। आदिसृष्टिं शृणुध्वेमां कथ्यमानाम्मयापुनः॥ ८३ ॥ इति कालिका पुराणे पञ्चविंशत्तमोऽध्यायः २५॥ अथ कैलाससंहिता रुद्रमूर्त्तेः सहस्रांशाद्विष्णोरेवाभवज्जनिः स वामदेव चक्रात्मा वारितत्वैक नायकः ॥ १ ॥ रमाशक्तियुतोवामे सर्वरक्षाकरो महान् अस्यैव

वासुदेवादि च तुष्कं व्यष्टितांगतम् ॥ २ ॥ वासुदेवोऽनिरुद्धश्च ततः संकर्षणः परः प्रद्युम्नश्चेति विख्यातं स्थितिचक्रमिदं परम् ॥ ३ ॥ स्थितिः सृष्टस्य न गतस्तत् कर्तृ यांश्च पालनम् आरब्धकर्मभोगांतं जीवानां फलभोगिनाम् ॥ ४ ॥ विष्णोरेवेदमाख्यातं कृत्यं रक्षाविधायिनः स्थितानपि तु सृष्ट्यादि कृत्यानां पञ्चकं विभोः ॥५॥ अपि प्रद्युम्नमुख्यास्ते देवतास्तवकीर्त्तिताः। स्थिति चक्रमिदं ब्रह्मन् प्रतिष्ठारूपमुत्तमम् ॥ ६ ॥ जनार्दनाधिष्ठितञ्च परमं पदमुच्यते। एत देवपदं प्राप्यविष्णुपादप्रसेविनाम् ॥ ७ ॥ वैष्णवानामिदं चक्रं सालोक्यादिपदप्रदम्। बृहन्नारदीये येनेदमखिलंजातं ब्रह्मरूपधरेण वै तस्मात्परतरोदेवो नित्यं इत्यभिधीयते १८ ॥ रक्षां करोतु यो देवो जगतां परमः पुमान्। तस्मात्परतर यत्तदव्ययं परमं पदम् ॥ १९ ॥ अक्षरोनिर्गुणः शुद्धः परिपूर्णः सनातनः यः परः काल रुद्राख्यो योगिध्येयः परात्परः ॥ २० ॥ परमात्मापरानन्दः सर्वोपाधि विवर्जितः। ज्ञानैक वेद्यः परमः सच्चिदानन्द विग्रहः ॥ २१ ॥ सदेवः परमः शुद्धः सत्वादि गुणभेदतः मूर्त्तित्रयं समापन्नः सृष्टिस्थित्यंत कारणम् ॥ २४ ॥ यस्यायुतांयुतांशांशा ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः तेनेदमोट्टशं व्याप्तं जगदेतच्चराचरम् ॥ २५ ॥ योऽसौ ब्रह्माजगत्कर्त्तायन्नाभिकमलोद्भवः। स एवानन्दरूपात्मातस्मान्नान्यः परात्मवान् ॥ २६ ॥ निष्कामो वासकामोवा कुर्य्यात् कर्म यथाविधि। आश्रमाचारहीनस्तु पतितः प्रोच्यते बुधैः ॥ २७ ॥ सदाचार परो विप्रो बर्द्धते ब्रह्म तेजसा तस्य विष्णुस्तुष्टः स्यात् स इहा मूत्रपुरायभाक् ॥

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे नवमस्तरङ्गः।

## दशमस्तरङ्गः।

विष्णुपूजननिर्माल्यविषयः। योगवत्त्वात् शिवस्यापि सर्वमन्त्रार्थतोचिता। उत्तमाधमपूजायां यस्तु मन्त्रविकल्पनात्। तत्तन्मन्त्रैराद्य पूजे कुर्य्युः शैवे तथान्तिमे ॥ विष्णुदिदेवता सर्वा शिवेन शेषतयैव तु पूज्यापूज्यविधानज्ञैः न स्वतन्त्रतयेव हि। तोड़लतन्त्रे शैववैष्णव दौर्गार्कगाणपत्येन्द्रसम्भवाः शादौशिवं

पूजयित्वा पश्चादन्यम्प्रपूजयेत् आदौ लिङ्गं पूजियित्वा यदि चान्यम्प्रपूजयेत् तत्फलङ्कोटिगुणितं सत्यं सत्यं न संशयः॥ २॥ अन्यदेवं पूजयित्वाशिवं पश्चा-दयजेत्। यदि तस्य पूजाफलं सर्वं भुज्यते यचराचसैरिति॥ अग्निष्टोम सहस्रैस्तु वाजपेयशतैरपि यत् फलं लभते देवि विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ह्वदिरूपं मुखेनामनैवेद्यमुदुरेहरेः पादोदकञ्च निर्म्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः। स्कान्देऽपि तुलसीमाहात्म्ये मध्यकरुणावलात् विष्णुनैवेद्यमाहात्म्यंशतानन्देनभाषितं नैवेद्य मन्नं तुलसी विमिश्रं विशेषतः पादजलेनसिक्तं योऽश्नाति नित्यं पुरतोमुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिदानं तुलसीदलमिश्रेण हविषा पूरितोदरे जपेदष्टाक्षरं मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् अपि पापप्रसक्तोवाकृतघ्नोनास्तिकोपिवासद्यश्शुद्धमवाप्नोति विष्णुलोकं सगच्छति तस्मिन् पुराण एवैकादशी प्रकरणे पुनः विष्णु नैवेद्य माहात्म्यं स्पष्टतया समीरितम् कृत्वाचैवोपवासन्तु योऽश्नातिद्वादशीदिने नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनं श्रीमत्भागवतेऽप्येवमुद्धवेन महात्मना विष्णू-च्छिष्टं विष्णुमाया जयोपायंतयेरितं त्वयोपभुक्तं स्रग्गन्धवासोलङ्कार चर्चितं उच्छिष्टभोजिनो मायास्तव मायां जयेमहि अन्यत्रापि महाविष्णुपूजकानां हिताय तु विष्णूच्छिष्टादिमाहात्म्यं शौनकेन प्रदर्शितं द्विजशिष्टञ्च यत् किञ्चित् भोज्यं तच्च विशेषतः काले परिमितं श्रद्धया भुज्यते केशवार्पितम् नैवेद्य भोजनं विष्णोः श्रीमत्पादाम्बुधारणम् निर्म्माल्यधारणञ्चेति प्रत्येकं पातका पहम् यद्यद्वस्त्रान्नपानादि चित्तार्थं तत्तदेव तु विष्ण्वर्पितं भजेन्नित्यं क्लेशप्रत्याहर-न्नपि सते विष्णूर्पणे भोगान् भुञ्जानोपि विमुच्यते अयं शिशु सुखः पन्था उक्तश्चतुर सेवितः विषयत्वेनैव विषयाः ख्याता यान्तियदर्पणात् तदेवास्ततताः भोक्ता कोऽन्यः सेव्यो हरेर्नृणाम् आघ्राणं यद्धरेर्दत्तं धूपोच्छिष्टस्य सर्वतः तत् भव व्यालदष्टानान्तस्यकर्म्मविषापहम्॥ विष्णुदेहपरास्पृष्टंमाल्यंपापहरं शुभं यो नरः शिरसा धत्ते स याति हरिमञ्जसा॥ विष्णोर्निवेदितञ्चान्नं योऽश्नातिभुविमानवः सयातिपरमं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्। नारायणस्य नैवेद्यं विप्रहत्याविना शनम्। तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ कणनिपातनात्। स्कान्दे कृत्वाचैवोपवासन्तु योऽश्नाति द्वादशीदिने नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम्॥ वशिष्ठः उच्छिष्टभोजनान्दासाम् विष्वक्सेनादिकांस्तथा दत्वा शेषन्तु भुञ्जीयान्नैवेद्यं स्वयमेवहि। योर्चयेत् केशवं नित्यं स याति परमाङ्गतिम्। गौतमाचारसूत्रे शालग्रामशिलातोयं यः पिवेत्तस्य तु पुनस्तन्यपानं न विद्यते श्रीभागवते न०

स्कं० च० ४ श्लो० १८ ॥ सवैमनः कृष्णपदारविन्दयोः वचांसि वैकुण्ठगुणानु वर्णनेकरौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिञ्चकाराऽच्युतसत्कथोदये मुकुन्दलिङ्गालय दर्शने दृशौ तद्भृत्य गात्रस्पर्शेङ्गसङ्गमम् घ्राणञ्चतत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसना तदर्पिते पादौ हरेः चेत्रपदानुसर्पणे शिरोहृषीकेशपदाभिवन्दने कामञ्च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकपदाश्रितादिभिरिति ॥ पाद्मे शङ्खोदकं हरेर्भुक्तं निर्माल्यं पादयोर्जलं चन्दनं धूपशेषस्तु ब्रह्महत्यापहारकः धूपञ्चारार्त्तिकं विष्णोः कराभ्यां यस्तु वन्दिते कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदं स्कान्दे विष्णुमूर्द्धि स्थितं पुष्पं शिरसायोवहेन्नरः अपर्य्युषितिपापःस्याद्यावद्युगचतुष्टयम् गौतमीतन्त्रे अष्टमाध्याये श्लो० १ गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमनं हरेः भक्त्या प्रदक्षिणं चैव पादयोःशोधनं पुनः पूजार्थम्पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनंहरेः करयोः सर्वशुद्धिनामियं शुद्धिर्विशिष्यते तन्नाम कीर्त्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्त्तनम् भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते तत्कथाश्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम् श्रोत्र-योर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते पादोदकस्य निर्माल्यमालयोरप्यि धारणम् उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरौ पुनः घ्राणञ्च गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन विशुद्धिः स्यादलं तस्य घ्राणस्यापि विधीयते पत्रपुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगा-र्पितम् तदेकम्पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे विष्णुपादो-दकं पीत्वा शुद्धिमाप्नोति तत्क्षणात् स्नानपादोदकं वापि पिवन् शिरसि धारयेत् पुण्यपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् विष्णुगात्रेण संस्पृष्टं पत्रं वा पुष्पमेव वा शिरसाधारयेऽद्योवैसयाति हरिमञ्जसा पादोदकं पिबेन्नित्यं चक्राङ्कित शिलाहरेः प्रक्षालयति तत्तोयं ब्रह्महत्यादिकं हरेत् पीतेपादोदके-विष्णोर्वैष्णवानां विशेषतः तत्र नाचमनं कुर्य्यात् यथा सोमेद्विजोत्तमैः तीर्थ-प्रसादस्वीकारानन्तरं वैष्णवोद्विजः न हस्तक्षालनं कुर्य्यान्न तत्राचमनक्रियाम् । पद्मपुराणे संसारमलपं कस्य विष्णुपादोदकं विना । प्रक्षालनं न पश्यामि कल्प कोटिशतैरपि ॥ श्रीविष्णुपादतीर्थे हि कोटिजन्माघनाशनं । तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ विन्दु निपातनात् ॥ परमाणुसमं तीर्थं यावत् सम्पततेभुवि ताव-द्वर्षसहस्राणि पतन्ति नरके नरा ॥ स्कान्दे पादोदकं पिबेद्यो वैशालग्रासमुद्भवं पञ्चगव्यसहस्रैस्तु प्राशितैः किं प्रयोजनम् ॥ शालग्राम शिलातोयं यः पिबे-द्बिन्दुनासमं । मातुः स्तन्यं पुनर्नैवसपिबेन्मुक्तिमान्नरः ॥ अशौचं नैव विद्येत सूतकेम्रतकेऽपि च । येषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये प्रकुर्वते ॥ अन्तकाले च

यस्येदं दीयते पादयोर्जलम्। सोऽपि सद्गतिमाप्नोति सदाचारवहिष्कृतः॥ सोपि पूतो भवत्याशु सद्यः पादाम्बुधारणात्। चान्द्रायणात्पादकृच्छ्रादधिकं पादयोर्जलम्॥ अपेयं पिवते यस्तु भुंक्ते यश्चाप्यभोजनम्। अगम्यागमनो यो वै पापाचारश्च यो नरः॥ अगुरुं कुङ्कुमं वापि कर्पूरं चानुलेपनम्। ममपादाम्बुसंस्पृष्टं तद्वैपावन पावनम्॥ दृष्टि पूतन्तु यत्तोयं भवेद्वै विप्र सत्तम। तद्वैपापहरं नृणां किं पुनः पादयोर्जलम्॥ नारदपञ्चरात्रे। विष्णुपादोदकोच्छिष्टं भुञ्जते ये च नित्यशः। पश्यन्ति च शिलाचक्रम् पूजां कुर्वन्ति नित्यशः॥ जीवन्मुक्ताश्च ते धन्या हरिदासाश्चभारते। पदे पदेऽश्वमेधस्य प्राप्नुवन्ति फलंध्रुवम्॥ न हि तेषां परा भूताः पुण्यवन्तो जगत्त्रये। तेषाञ्च पाद रजसा तीर्थं पूतं तथा धरा॥ तेषाञ्च दर्शनं स्पर्शं वाञ्छन्ति मुनयः सुराः। पुरुषाणां सहस्रञ्च पूतं तज्जन्ममात्रतः॥ इति पञ्चदशाध्याये श्लो २। स जज्ञे शूद्रयोनौच पितुः शापेन दैवतः। विष्णुप्रसादं भुक्त्वा च वभूव ब्राह्मणः सुतः॥ नवमाध्याये श्लो १०॥ यावन्नर्चं भवेत्पुंस स्तावद्दद्याज्जनार्दने। नैवेद्यं यत्तु भक्ष्यञ्च तथादिक् चतुर्विधम्॥ एकादशाध्याये १८। शालग्रामशिलातोयं न पीत्वा यस्तु मस्तके प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते॥ १८॥ विष्णोः पादोदकं पीत्वा कोटिजन्माघ नाशनम्। तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ विन्दुनिपातनात्॥ १९॥ अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। विष्णोः पादोदकं पुण्यं शिरसाधारयाम्यहम्॥ हत्यां हन्ति तदंघ्रिजापि तुलसीस्तेयञ्च तोयं पदे नैवेद्यं बहुन्नपान जनितं गुर्वङ्गनासंगजं श्रीशाधीनमतिः स्थितिर्हरिजनैस्तत्सङ्गजं किल्बिषं शालग्रामशिला र्चनस्य महिमा लोकेषु वलवत्तरः॥ इति पाद्मे। रमाब्रह्मादयो देवाः सनकाद्याः शुकादयः। श्रीनृसिंह प्रसादोयं सर्वेगृह्णन्तु वैष्णवाः॥ स्कान्दे। कोटिचान्द्रायनश्चैव मासो पोषण कोटिभिः। तत् फलं प्राप्यते तस्माद्विष्णोर्नैवेद्य भक्षणात्। भागवते॥ शय्याशनाटनस्थान स्नान क्रिड़ोत्सवादिषु कथंत्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि त्वयोपभुक्तस्रगन्धवासोलंकार चर्चितः॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तवमायां जये महीति॥ स्कान्दे॥ मार्गशीर्षमाहात्म्ये दशमाध्याये ३२। पश्चाच्छेषं मयादत्तं शिरस्याधाय सादरं एवं ब्रूयात्ततो वत्स मम पूजां प्रवर्त्तयेत् मन्त्रहीनं क्रियाहीनमित्यादि। चतुर्दशाध्याये ३०। तीर्थयज्ञाधिकफलं कलिदोष विनाशनम्। ममोच्छिष्टं सुगतिदमपि दुष्कृतकर्मणाम्। आगम कल्पद्रुमे षट्पञ्चाशत्पटले पञ्चदेवता पूजायाम् पार्वत्युवाच। नैवेद्यं पञ्चदेवानां श्रोतुकामास्मि

शङ्कर। यस्य ज्ञानं विना सर्वा पूजाभवति निष्फला॥ १॥ विष्णोर्वक्ष्यामि नैवेद्यं नवनीतं स शर्करम्। दधिदुग्धं पायसञ्च भक्तं सूपं सव्यं जनं॥ ६॥ सुभक्त्याविष्णवे दद्यात् धर्मकामार्थं सिद्धये। पूजाफलमवाप्नोति वैष्णवोनात्र-संशयः॥ ७॥ वराह पुराणे ११८ अध्याये। वराह उवाच। येन मन्त्रेण संयुक्तो ममप्रापणकं नयेत्। समन्त्रीह्री ततो गृह्यपयसा सहसंयुतम्॥ परमं तस्य शाकानि मधूकोदुम्बरं तथा। एतेचान्ये च वहवः शतशोथ सहस्रशः॥ कर्मण्याश्च एतेषां ये मया परिकीर्त्तिताः॥ ५॥ कर्मरायानि च शाकानि वीजानी हि वसुन्धरे। व्रीहीणांच प्रवक्ष्यामि उपयोग्यानि माधवे। एकाग्र-मान संज्ञत्वा प्रापणं शृणु सुन्दरि॥ ६॥ धर्मविल्लिकशाकञ्च सुगन्धं रक्तशालीकौ दीर्घं शालि महाशालि वरकुङ्कुममाचिकौ॥ ७॥ आमोदाशिव सुन्दर्यौं शिरी काकुलशालिकाः। विविधं यावकान्नञ्च ज्ञेयान्येतानि कर्मणि॥ ८॥ कर्मण्या-सुद्गमाषाते तिलकङ्ग कुलित्थकाः। गवेधुकं महामोहं मकुष्ट मथवां द्विजाम्॥ श्यामाकमिति चोक्तानि कर्मण्यानि वसुन्धरे। एतानि प्रतिगृह्णामि यच्च भाग-वतं प्रियम्॥ मार्गमासंवरं छागं शासं समनु युज्यते एतान् हि प्रापणे दद्यान्मम चैतत् प्रियावहम्॥ ११॥ युञ्जानो वितते यज्ञे ब्राह्मणे वेदपारगी। भागो ममास्ति तत्रापि पशूनां छागलस्य च॥ १२॥ माहिषं वर्जयेन्मह्यं चीरं दधि-घृतं ततः वर्जयेत्तत्र मांसानि यजुषा वैष्णवोऽश्नुते परं पाय समपि वर्ज्यानि तन्मासं चेतकः खुरे॥ १३॥ पक्षिणाञ्च प्रवक्ष्यामि ये प्रयोज्या वसुन्धरे ये चैव मम चेत्रेषु उपयुज्यन्ति नित्यशः॥ १४॥ लावकं वार्त्तिकञ्चैव प्रशस्तञ्च कपि-ञ्जलम्। एतेचान्ये च वहवः शतशोथ सहस्रः॥ मम कर्मणि योग्या ये ते मया परिकीर्त्तिता॥ १५॥ यस्त्वे तत्तुविजानीयात्कर्मकर्त्ता तथैवच नापराध्नोति स नरो मम चोक्तं वचः प्रिये॥ १६॥ तेच भोज्याश्च मङ्गल्याःमम भक्त सुखावहाः ततो यष्टव्यमेवं हि य इच्छे त्सिद्धिमुत्तमाम्॥ १७॥ य एतेन विधानेन यजि-ष्यन्ति वसुन्धरे। प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं ममैव कृतकर्मणः॥ १८॥ इति वराह भगवच्छास्त्रे प्रापणद्रव्यकर्मण्यभोज्यनियमविधिर्नाम ऊनविंशत्यधिकशततमो-ऽध्यायः॥ पूर्वं शिवे अर्पयित्वातत्पश्चात् विष्णवे दत्वा तत्सताशं विष्वक्सेनाय निवेद्यस्वयमश्नीयात्। विष्वक्सेनाय वैदद्याच्छेषं नैवेद्यमुत्तमम्। उच्छिष्ट-भोजनोऽप्येते एतेषामवधारयेत्॥ एतादृशानि निवेदितानि पदार्थानिश्रौतस्मा-र्त्तधर्मस्थितान् पञ्चदेवोपासकानां ग्राह्यमेव तत् विरुद्धान् चतुस्सं प्रदायान्तर्गत

वैष्णवग्रन्थलिखितान् तद्विधित्वात् नैवेद्यानि त्याज्यानि स्पष्टमेव सर्वनिबन्धकारान् वैष्णवविरुद्धान् स्मृतिधर्मं प्रतिपादकान् दृश्यन्ते ॥

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे दशमस्तरङ्गः समाप्तः ।

---

## अथ एकादशस्तरङ्गः ।

यानि आधुनिकवैष्णववचनानि द्रष्टव्यानि महोपनिषदि एक एव नारायण आसीत् न ब्रह्मा न द्यावा न पृथिवी सर्वेदेवाः सर्वेपितरः सर्वे मनुष्याः विष्णुनाऽशितमश्नन्तिविष्णु घ्रातं जिघ्नन्ति विष्णुनापि तं पिबन्ति विष्णुनारसि तं रसयन्ति तस्मात् विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षयेयुरिति सारसंग्रहे। पद्मपुराणे विष्णोर्नैवेद्यकं भुक्तं मुनिभिर्मोक्षकांक्षिभिः अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्। हारीते ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः पावनं भगवद्भुक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनमिति। भरद्वाजः यो न दद्याद्धरेर्भुक्तं पितॄणां श्राद्धकर्मणि अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं तु सह द्विजैः विष्णोर्निवेदितं नित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धविः पितृभ्यश्च विशेषेण सर्वमानंत्यमश्नुते विष्णवे कल्पितं चान्नं दद्याज्ज्ञतेभ्य एव च वैश्वदेवं ततः कुर्य्या श्राद्धकर्मादिकं ततः। तथा। हरिभुक्तशेषं तद्दद्यात्पितॄणांच दिवौकसां तदेवजुहुयादग्नौ भुञ्जीयाच्च स्वयं नरः यदा लभेत सिद्धान्नं भुञ्जीत प्रोक्ष्यमेव तत्। विष्णुभुक्तमिति ध्यात्वा सात्विकस्तु विशेषतः। मात्स्ये । विष्णोर्नैवेद्यशेषेण वैश्वदेवं ततश्चरेत्। अग्नौ ध्यात्वा तु महोजं जामदग्न्यं महाद्युतिं तदग्नौ वैश्वदेवञ्च मम प्रीत्यै चरेद्बुधः॥ ये देवास्तत्र तिष्ठन्ति वैश्वदेवे तु कर्मणि। सर्वेष्वपि च मां ध्यायेत् सर्वकार्य्यार्थसिद्धये। तथा व्याहृतहोमेषु चतूरूपं स्मरेत्ततः॥ अनिरुद्धश्च प्रद्युम्नः सङ्कर्षणस्तथैव च। वासुदेवस्तथाऽत्र चतूरूपं प्रकीर्त्तितम्॥ ब्रह्मोवाच। छिन्धिसर्वज्ञ देवेश ! संशयं मे महत्तरम्॥ विष्णोर्नैवेद्यशेषेण वैश्वदेवं कथं चरेत्॥ इत्युक्तं तु त्वया पूर्वं त.त्र मे संशयो महान्। त्वदर्पितान्नं देवेश ! देवानामुचितं नृणाम्॥ भक्तानां मोक्षदं यस्मात् तस्माद्ग्राह्यन्तु मन्मुखैः। त्वदर्पितं तु नैवेद्यं कथं त्वं पुरुषोत्तम॥ गृह्णासि भो त्वधिष्ठाने त्वदुच्छिष्टं यतः पुरा॥ श्रीहंस उवाच। साधु साधु महाभाग !

शृणुष्व कमलोद्भवः। त्वयापृष्टं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वाव हितो भव यथाग्नौ संस्कृताज्यं वा प्रागग्नावेव हूयते। मदर्पितं प्रगृह्णामि यज्ञहोम द्विजातिषु॥ सर्वस्वं मां समुद्दिश्य स्ते स्मृताः काम कौशलाः। अयोग्यं तु यथा होमेघृतं संस्कार वर्जितम्॥ ऋते समर्पणं प्राज्ञ यज्ञादौ विफलं भवेत्। अहं यदि न गृह्णामि तेषान्तु ग्रहणं कुतः॥ भक्तानां मोदनार्थाय गृह्णामिकमलासन। तस्मान्नि-वेदितान्नं हि ददतां नास्तिपातकम्॥ पितॄन् देवान् तथाविप्रानुद्दिश्य पुरुषर्षभ मम नैवेद्यशेषेण यजन्ति च मदर्पणम् प्रतिमायामर्पितं तन्नार्पयेत् प्रतिमान्तरे अधिष्ठानेषु देवेशते यान्ति ह्यधमन्तमः। अग्निविप्राद्यधिष्ठानेष्वर्चयेतमदाज्ञया पञ्चरात्रे। यः श्राद्धकाले हरिभुक्तशेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानाम्। तेनैव पिण्डांश्च तिलैर्विमिश्रास्तत्कोटिकल्पं पितरः सुतृप्ताः विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते श्राद्धे होमे तथाभक्ष्ये उप-हारे तथैवच। न दूष्यं वैष्णवान्नञ्च पचेद्भक्त्या यथा विधिः॥ वोपदेवः। विष्णो-र्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते॥ पितृशेषन्तु यो दद्याद्धरये परमात्मने। रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिन इति स्कान्दात्। पितरः सर्वमनुष्या विष्णुनाशितमश्नन्तीति श्रुतेः यः श्राद्ध-काले हरिभुक्त शेषं ददाति भक्त्या पितृदेवतानां तेनैव पिण्डास्तुलसीविमिश्रा-नाकल्प कोटिपितरस्तु तृप्ताः। ब्राह्मोक्तश्चेति वशिष्ठः। उच्छिष्टभोजनं दासान् विष्वक्सेनादिकांस्तथा दत्वाशेषन्तु भुञ्जीयान्नैवेद्यं स्वयमेव हि। योऽर्चयेत् केशवं नित्यं स याति परमां गतीम्। तद्भक्षणं विहितम्। पवित्रं विष्णुनैवेद्यं सुरसिद्धर्षिभिः स्मृतम्। अन्यदेवस्य नैवेद्यं भुक्त्वा चान्द्रायणम् चरेत्। गौतम तन्त्रे। अथ द्वादशधा शुद्धिर्वैष्णवानामिहोच्यते। गृहोपसर्पणञ्चैव तथानु-गमनं हरेः। भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयोः शोधनं पुनः। पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः। करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते। तन्नामकीर्त्ति-नञ्चैव गुणानामपि कीर्त्तनम्। भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते तत्कथा श्रवणञ्चैव तस्योत्सव निरीक्षणम्। श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते। पादोदकस्य निर्माल्यमालयोरपि धारणम्। उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरौ पुनः। आघ्राणगन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपो धन विशुद्धिः स्यादनं तस्य घ्राणस्यापि विधीयते। पत्रपुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितत्। तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत्। महोपनिषदि विष्णुनात्तमश्नन्ति विष्णुनाघ्रातं जिघ्रन्ति

ल्लिष्णुनारसितं रसयन्ति तस्माद्विद्वांसो विष्णूपह्नतं भक्षयेयुरिति एवमन्यत्र कुङ्कुमं चन्दनश्चैतत् कर्पूरमनुलेपनम् विष्णुदेहपरास्पृष्टं तद्वैपावन पावनमिति। तथा शेखर संहितायाम्। उपभुक्तस्य सर्वस्य गन्धपुष्पादिकस्य च। स्नानादंवुयुक्तस्य दधिक्षीरादिकस्य च। दूषणं न प्रोक्तव्यं शब्देरप्रतिपत्तिजैः निर्माल्यबुद्धया देवीदं पावनं दूषयन्ति ये। ते यान्ति नरकं मूढ़ास्तत् प्रभावापलापिनः। तथा भारतेऽपि। हृदिध्याय हरिं तस्मै निवेद्यान्नं समाहितः। मध्यमा नामिकांगुष्ठैर्गृहीत्वान्नमितः पुनः। प्राणाय स्वाहाचेत्य पानाय व्यानाय च ततः परम्। उदानाय सुदानाय समानाय स्वाहेति जहुयात् क्रमात्। तथा भारते। पञ्चरात्र विदोमुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः। प्रायेण भगवद्भुक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनम्। तथाचाह भगवान् शौनकः। नैवेद्यं स्वयमश्नीयादिति एवं भरद्वाजेऽष्टमाधिकारे नानिवेद्य हरेः किञ्चित्समश्नीयाच्च पावनम्। तत्रैव द्वितीयरात्र द्वितीयाध्याये कृष्णानुग्रहतो विद्वांल्लब्ध्वाच जन्मभारते न भजेत् कृष्णपादाब्जं तदत्यन्त विड़म्बनम् असार्थकं तस्य जन्म वृथा तद्गर्भयातना निष्फलं तच्छरीरञ्च नश्वरम् व्यर्थजीवनम्। जीवन् मृतो हि पापी स चाण्डालादधमोऽशुचिः भुंक्ते नित्यमभक्ष्याप्य निवेद्यो हरेरहो। विण्मूत्र कृमिभक्षञ्च नित्यं भुंक्ते च शूकरः। न हि कृमिमभक्षञ्च भुंक्ते स सूकराधमः। अभक्ष्यं ब्राह्मणानां तद निवेद्यं हरे रहो। अन्नं विष्ठाजलं मूत्रं यद्विष्णोर निवेदितम्। नित्यं पादोदकं भुंक्ते नैवेद्यंच हरेर्द्विज। तन्मन्त्र ग्रहणं कृत्वा जीवन्मुक्तो हि भारते। तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा। सर्वाण्येव हि तीर्थानि पवित्राणि च नारद। स एव शुद्धः सर्वेषु सद्योमुक्तोमहीतले पदेपदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितम् फलम्। तत्रैव प्रथमरात्रद्वितीयाध्याये सनत्कुमार नारदौ प्रति ब्रह्मदेवः। ब्राह्मणानाम् स्वधर्मश्च सततं कृष्णसेवनम्। नित्यं ते भुञ्जते सततस्तन्नैवेद्यं पादोदकम्। न दत्वा हरये यस्तु यदिभुंक्ते द्विजाधमः। अन्नं विष्टासमम् मूत्रं समं तोयं विदुर्बुधाः। भुंक्तेऽस्वभक्ष्यं लोकश्च म्लेच्छश्च स्वपचाधमः। विप्रो नित्य मभक्ष्यञ्च भुंक्ते च पतितस्ततः। तथास्कान्दे मार्गशीर्षमाहात्म्ये। अनर्पयित्वा यो भुंक्ते ह्यन्नपानादिकंच यत्। शुनोविष्टासनं चान्नं पानञ्च मदिरासमम्। तस्मात्समर्पयेत् पुत्र अन्नपानादि चौषधम्। भक्षयेत्परया भक्त्या अशुचेः शुचिकारणम्। तत्तत्काल भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम्। विष्णोर्निवेदितं नित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धविः। पितृभ्यश्च विशेषेण

सर्वमानन्त्यमश्नुते। विष्णवे कल्पितं चान्नं दद्याद्भक्तेभ्य एव च। वैश्वदैवं ततः कुर्य्यात् श्राद्धकर्मादिकं ततः। नैवेद्यभक्षणे विचारग्रन्थे गारुडे। अनिवेदितमश्नाति शङ्खचक्रगदाभृतः। षष्टिवर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः। तथानृसिंह परिचर्य्यायां ब्रह्माण्डे। पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानादि चौषधम्। विष्णुर्पितं हि भोक्तव्यं यदाहाराय कल्पितम्। अनिवेद्य प्रभुञ्जानः सप्तकल्पानि नारकी। गीतायामपि। यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम्। शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। स्कान्दे मार्गशीर्षमाहात्म्ये। यदुक्तं भवताब्रह्मन् भोक्तव्यं किं शृणुष्व तत्। भोक्तव्यं मम चोच्छिष्टं मम भक्तिपरायणैः। पवित्रीकरणं पुत्र पापिनामपि मुक्तिदम्। ममाशनस्य शेषञ्च यो भुनक्ति दिने दिने। यत्तुपद्मपुराण सम्बन्धि सारसंग्रहस्य वचने। विष्णोर्नैवेद्यकं शुद्धं मुनिभिरित्युक्तं। तदविचारतर रमणीयम् तत्र मुनिभिः शुद्धं शोधितं न तु भुक्तं शोधनमशुद्धस्यैव न तु शुद्धस्य तथाच पूर्वशुद्ध मधुनापि भोक्तव्यमित्य प्रतीतिरशुद्धेर्निवृत्तिमात्रं बोधितमिति भावः। यच्च रामानुजीयवल्लभीय संग्रह ग्रंथेषु। इदानीं आधुनिक साम्प्रदायिकस्य वचनानाम् खण्डनम्। ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोप्य भिक्षुकः। पावनं भगवद्भुक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनमिति हारितः। पञ्चरात्र विदोमुख्यास्तस्य गेहेमहात्मनः। प्रायेण भगवद् भुक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनमिति भारतस्य। अथच। अनर्पयित्वा यो भुंक्ते अन्नपानादिकञ्च यत्। शुनो विष्टा समं चान्नं पानञ्च मदिरासममिति। स्कान्दे तथा। अनिवेदितमश्नाति शङ्खचक्रगदाभृते। षष्टिवर्षं सहस्राणि विष्ठायाम् जायते कृमिरिति गारुड़। इत्यादि वचनं परस्परविरुद्धम् अग्रे बहुषु भक्षेषु सत्सु प्रथमे भोजनम् भगवद् भुक्तं द्वितीयादिकं तदभुक्तमेव भोक्तव्यमित्यायातं हारितात्। तथा अनिवेदितभोजनात् षष्टिवर्षकृमिभवनं गारुड़ात्। अनर्पितान्नपानयोर्मदिरा विष्टादि समत्वम्। स्कान्दाच्च एवम् विधानाम्बहुनां वचनानां अबोधजनित मद्यमदपायिभिः कल्पितत्वं स्पष्टमेव प्रतिभातीति तत्वम्। तथा विष्णोर्निवेदितं नित्यं देवेभ्यो जुहुयाद्धविः पितृभ्यश्च विशेषेण सर्वमानन्त्यमश्नुते। विष्णवे कल्पितं चान्नम् दद्याद्भक्तेभ्य एवच। वैश्वदेवं ततः कुर्य्यात् श्राद्धकर्मादिकं ततः। इति आध्वनिकवैष्णवीय संग्रहग्रंथवचनानि तथा नान्यदेवं नमस्कुर्य्यात् न विशेच्छिवमन्दिरं। नान्यदेवं कथालापं न कुर्य्यान्मन्त्र संग्रहमित्याद्यपि तदीया

एव तथाच यन्मते। अन्यदेवस्य मन्दिरे प्रवेशस्य कथालापस्य अन्यदीय-मन्त्रसंग्रहस्य नमस्कारमात्रस्य च निषेधः। तन्मते एव विष्णोर्निवेदितोत्तरं हवन पितृकर्मवैश्वदेवादिकं विधानं कुत्प्रभावेऽपि चित्रत्ववत् त्वात् वयं वैष्णवा इत्यभिमानमदान्नैरुभय विधानानामेव वचनानां कल्पितत्वमेव प्रतिभाति स्पष्ट-मपचतया सुधियाविचार्य्यम्। तदाह भगवान् आश्वलायनः वैश्वदेवं पुराकृत्वा नित्येचाभ्युदये तथा स्वभीष्टदेवतादिभ्यो नैवेद्यंच निवेदयेत्। अकृत्वा वैश्व-देवेतु नैवेद्य' यो निवेदयेत्। तदन्नं न च गृह्णन्ति देवाविष्णुदयो ध्रुवम्। इति एवञ्चैतस्मादपि विष्णोर्निवेदितोत्तर वैश्वदेवादि विधानमसमंजसं द्योतयति स्पष्टमिति। यत्तु आश्वलायनः दानाध्ययन देवार्चाजपहोम व्रतादिकम् न कुर्य्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात्। यच्चोक्तमद्धोप निषच्छ्रुतौ वल्लभ-रामानुजीयौ स्व स्व मताभिमतौ परस्पर विरुद्धमुक्तवन्तौ तच्छृणु वल्लभीयैः स्व ग्रंथे एक एव नारायण आसीत् न ब्रह्मानद्यावा पृथिवी सर्वेदेवाः सर्वे पितरः सर्वे मनुष्याः इत्यधिकं रामानुजीय ग्रंथेतु विष्णुनाघ्रातं जिघ्रन्ति विष्णुनारसि तं रसयन्ति इत्येतावन्मात्रम् न हि एक श्रुतौ न्यूनाधिकत्वं सम्भवतीत्येकस्मिन्न-ह्नम् अन्यदीय पूर्वकालिकाद्यत नमद्धोपनिषदादौ तच्छ्रुतेर्गन्धलेशोऽपि दुर्लभः। इत्यपरम्। वल्लभीयैरेक नारायणस्य सद्भावत्वं ब्रह्मणो द्यावा पृथिव्योरसद्-भावत्वम् तृतीयम् सर्वे देव पितृमनुष्याः विष्णुना अशितमश्नन्तीति वल्लभीयाः। तस्माद्विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षयेयुरिति रामानुजीयास्तेषां मते सर्वेषामधिकारः अपरेषां ये केचिद्विद्वांसः केचिज्ज्ञातीया अपि न तु वर्णाश्रमिणः एवञ्च वर्णधर्म-रहितत्वं तद्भक्षणम् इत्यायातं तस्माद्विरोध चतुष्टयात् सा श्रुतिः कल्पितेति स्पष्टम्।

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे एकादशस्तरङ्गः समाप्तः।



## अथ द्वादशस्तरङ्गः ।

तत्र पादोदकस्य माहात्म्यं जानात्येव हि शङ्करः । इतिवैष्णवाभिमानाच्च-पारम्पर्य्यागतलौकिकींगाथामनुरुन्धाना आहुस्तद्वूलिप्रक्षेपमात्रं तथाहि गङ्गाया विष्णुपादोदकत्वाच्छिवेन शिरसा धृतत्वात्तन्माहात्म्यज्ञःशिवइति तेषामाशयस्तद-विचारितरमणीयम् तत्रगङ्गायाः प्रथमोत्पत्तिमाह । शिवपुराणेसनत्कुमारसंहि-तायामेकादशेऽध्याये शतकोटिसहस्राणांयोजनानांप्रमाणतः । तत्रोपपीठन्देवस्य-यत्र युक्तः शिवोऽव्ययः ॥ तस्योन्नतशुभेनेत्रे सितासितसमप्रभे । सङ्गावप्रभा वेणादौ उमा चैव यशस्विनी ॥ वामनेऽत्राच्च निष्क्रान्ता उमा देवी चसुव्रता । वामपार्श्वोपविष्टा च तस्मात् वै वामलोचना ॥ दक्षिणान्नयनान्मुक्तो जलविन्दु सितप्रभा । सा च सर्वेषु लोकेषुगता भूर्भुवः स्वरादिकम् ॥ उपस्था ये मां गां प्राप्ता तस्मात् गङ्गेति चोच्यते । नेत्राभ्यां प्रथमं जाता गङ्गेति द्विजसत्तमाः ॥ अथवाल्मीकिये त्रिंशत्सर्गे द्वितीयगङ्गोत्पत्तिमाह यामेरु दुहिता रामतयोर्माता सुमध्यमा । नाम्ना मेना मनोऽज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया तस्या गङ्गेय-मभवज्ज्येष्ठा हिमवतः सुता । उमा नामा द्वितीया भूत्कन्या तस्यैव राघव । अथज्येष्ठासुरा सर्वे देवकार्य्यचिकीर्षया ॥ शैलेन्द्रं वरयामासुः गङ्गा नाम नदी-शुभाम् । ददौ धर्मेणहिमवान् तनयां लोकपाविनीम् ॥ स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलक्यहितकाम्यया । प्रतिगृह्य त्रिलोकार्थं त्रिलोकहितकाङ्क्षिणः ॥ गङ्गामादाय ते गच्छन् कृतार्थें नान्तरात्मना । या चान्या शैलदुहिता कन्यासीद् रघुनन्दन ॥ उग्रं सुव्रतमास्थाय तपस्तेपेतपोधना । उग्रेण तपसायुक्तं ददौ शैलवरः सुताम् ॥ रुद्राय प्रतिरूपाय उमां लोकनमस्कृताम् । एते ते शैल-राजस्य सुते लोकनमस्कृते ॥ गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमा देवी च राघव । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा त्रिपथगामिनी । खं गता प्रथमं तात गङ्गागति सतां वर । सुरलोकसमारूढ़ा विपापा जनपावनी ॥ इति वाल्मीकीये ३५ सर्गः अस्य तिलकम् । यामेरुदुहिता मेना नाम सा तयोः कन्ययोर्मातेत्यन्वयः तस्यां मेनायां ज्येष्ठा हिमवतः सुता कुटिला नाम सा इयं गङ्गा भवतीत्यर्थः । तस्यैव हिमवतः देवकार्य्यं वक्ष्यमाणं भव वीर्य्यधारणम् त्रिपथगां स्वर्गभूपातालमार्गगाम् इदं वर्त्तमानाय देशेन वरणम् चास्याः शिवभार्य्यात्वायः धर्मेण कन्यादानधर्मेण

स्वच्छन्दपथगामपि वर्त्तमानोपदेशेन स्वेच्छामात्रेण प्रवाहादिवायुमार्गगमनशीलां त्रिलोकार्थं तारकतो भीतस्त्रिलोकरचकपुत्रोत्पत्त्यर्थम् आगच्छत् ब्रह्मलोकम्। तत्र ब्रह्मशापवशाज्जलरूपताप्राप्तिरित्यादिवामनपुराणोक्तदिशा-मध्ये उक्तम् वामनपुराणवृत्तान्तस्य प्रायेणात्र प्रत्यभिज्ञानात् एवं हि तत्राख्यायिका उमा ज्येष्ठा कुटिला नाम हिमवत् कन्यादेवैः शिववीर्य्यधारणाय हिमवन्तं प्रार्थिता तेन दत्तया तया सह देवा ब्रह्मलोकं गत्वा ब्रह्मणे निवेदितवन्तः ब्रह्मणा चासामर्थेऽयं तद्धारणे इत्युक्ता अवश्यं धारयामीति कथितवाक्यावज्ञानेन ब्रह्मणा जलरूपा भवेति शप्ता तत्रैव ब्रह्माण्डोर्द्ध्वकटाहे जलरूपेण लग्ना स्थिता तस्यामेवाग्निना शिववीर्य्यं चिप्तमिति। अथ सगरादिकथोत्तरभगीरथतपस्तुष्टा यथागता तदाह। ततः सुरगणैस्सार्द्धमुपगम्य पितामहः। भगीरथं महात्मानं तप्यमानमथाब्रवीत्॥ भगीरथमहाराजं प्रीतस्तेहं जनाधिप। तपसानेन सन्तुष्टवरं वरय सुव्रत॥ तमुवाच महातेजासर्वलोकपितामहः भगीरथो महाबाहुः कृताञ्जलिपुटः स्थितः यदि मे भगवन् प्रीतो यद्यस्ति तपसः फलम्। सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमाप्नुयुः॥ गङ्गायाः सलिले क्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम्। स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे च प्रपितामहाः॥ देव या चेह सन्तत्ये नावसीदेत् कुलञ्चनः। इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः॥ उक्तवाक्यन्तु राजानं सर्वे लोकं पितामहः। प्रत्युवाच शुभां वाणीं मधुरां मधुराक्षराम्॥ मनोरथो महानेष भगीरथमहारथ। एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्द्धन॥ इयं हैमवती ज्येष्ठा गङ्गा हिमवतः सुता। तां वै धारयितुं राजन् हरस्तत्र नियुज्यताम्। गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवी न सहिष्यते॥ तां वै धारयितुं राजन्नान्यं पश्यामिशूलिनः। तमेवमुक्त्वाराजानं गङ्गांचाभाष्यलोककृत्॥ जगाम त्रिदेवं देवैः सर्वैस्सह मरुद्गणैः॥ इति वालमीकीयेद्विचत्वारिंशस्सर्गः देव देवेगते तस्मिन्सोऽङ्गुष्ठाग्रनिपीड़िताम्। कृत्वावसुमतीं रामवत्सरंसमुपासतः॥ अथसंवत्सरे पूर्णे सर्वे लोकनमस्कृतः। उमापतिः पशुपती राजनमिदमब्रवीत्॥ प्रीतस्तेहं नरः श्रेष्ठकरिष्यामि तव प्रियम्। शिरसा धारयिष्यामिशैलराजसुतामहम्॥ २॥ ततो हैमवतीज्येष्ठा सर्वलोकनमस्कृता। तदा सातिमहद्‌रूपं कृत्वा वेगञ्च दुस्सहम्॥ आकाशादपतत् राम शिवे शिवशिरस्युत। अचिन्तयच्च सा देवी गङ्गा मपरमदुर्धरा॥ विशाम्यहं हि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम्। तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान् हरः॥ तिरो भावयितुं बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा।

सा तस्मिन् पतिता पुण्या पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि॥ हिमवत् प्रति मे राम जटा मण्डलगह्वरे। सा कथं चिन्महीङ्गन्तु नाशक्नोद्यत्नमास्थिता॥ नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्ततः। तत्रैवावभ्रमद्देवी संवत्सरगणान् बहून्॥ तामपश्यन् पुनस्तत्र तपः परममास्थितः। स तेन तोषितश्चासीत्त्पन्तं रघुनन्दनः॥१०॥ विससर्ज ततो गङ्गां हरो विन्दुसरः प्रति तस्यां विसृज्यमानायां सप्तस्रोतांसि जज्ञिरे॥ ११॥ ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च। तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मु र्गङ्गाशिवजला शुभाः॥ १२॥ सुचक्षुश्चैव सिता च सिन्धुश्चैव महानदी। तिस्रश्चैताः दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः॥ १३॥ सप्तमी चान्वगातासां भगीरथरथं तदा। भगीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः॥ १४॥ प्रायादग्रे महातेजा गङ्गा तं चाप्यनुव्रजत्। गगनाच्छङ्करशिरस्ततो धरणिमागता॥ १५॥ असर्पतजलं तत्र तीव्रशब्दपुरःकृतम्। मत्स्यकच्छपसङ्घैश्च शिशुमारगणैस्तथा॥ १६॥ पतद्भिः पतितैश्चैव व्यरोचतवसुन्धरा। ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षसिद्धगणास्तथा॥ १७॥ विलोकयं तस्तांतत्र गगनाद् गाङ्गतां तदा। विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तदा॥ १८॥ पारिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्रवेष्टिताः। तदद्भुतमिमं लोके गङ्गावतरमुत्तमम्॥ १९॥ दिदृक्षवो देवगणा-समीयुरमितौजसः। सम्पतद्भिः सुरगणैस्तेषां चाभरणौजसा॥ २०॥ शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम्। शिशुमारोरगगणैर्मीनैरपि च चञ्चलैः॥ २१॥ विद्युद्भिरिव विक्षिप्तैराकाशमभवत्तदा। पाण्डरैः सलिलोत्पीडैः कीर्यमाणैः सहस्रधा॥ २२॥ शरदाभ्रैरिवाकर्णं गगनं हंससंप्लवैः। क्वचिद्द्रुततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम्॥ २३॥ विनतंच क्वचिद्भूतं क्वचिद्याति शनैः शनैः। शलिलेनैव;सलिलं क्वचिदभ्याहतं पुनः॥ २४॥ मुहुरूर्द्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः। तच्छङ्करशिरोभ्रष्टं भ्रष्टं भूमितले पुनः॥ २५॥ व्यरोचत तदा तोयं निर्मलं गतकल्मषम्। तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः॥२६॥ भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः। शापात्प्रपतिता ये च गगनाद् वसुधातलम्॥ २७॥ कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः। धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः॥ २८॥ पुनराकाशमाविश्य स्वाल्लोकान् प्रतिपेदिरे। मुमुदे मुदितो लोकस्तेन तोयेन भास्वता॥ २९॥ कृताभिषेको गङ्गायां बभूव गतकल्मषः। भगीरथो हि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः॥ ३०॥ प्रायादग्रे महाराजतं गङ्गापृष्टतोऽन्वगात्। देवाः सर्षिगणाः सर्वे

दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ३१ ॥ गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः । सर्पाश्चाप्सरसो रामं भगीरथ रथानुगाः ॥ ३२ ॥ गङ्गामन्वगमन् प्रीताः सर्वे जलचराश्च ये । यतो भगीरथो राजा ततो गङ्गा यशस्विनी ॥ ३३ ॥ जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुतकर्मणः ॥ ३४ ॥ गङ्गासंप्लावयामास यज्ञवाटं महात्मनः । तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धो जह्नुश्च राघव ॥ ३५ ॥ अपिबत्तु जलं सर्वं गङ्गायाः परमाद्भुतम् । ततो देवाः सगन्धर्वाः ऋषयश्च सुविस्मिताः ॥ ३६ ॥ पूजयन्ति महात्मानं जह्नुं पुरुषसत्तमम् । गङ्गां चापि नयन्ति स्मदुहितृत्वे महात्मनः ॥ ३७ ॥ ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत् प्रभुः । तस्माज्जह्नुसुता गङ्गा प्रोच्यते जाह्नवीति च ॥ ३८ ॥ जगाम च पुनर्गङ्गा भगीरथरथानुगा । सागरं चापि सम्प्राप्ता सा सरित् प्रवरा तदा ॥ ३९ ॥ रसातलमुपागच्छत् सिद्ध्यर्थं तस्य कर्मणः । भगीरथोऽपि राजर्षिर्गङ्गामादाय यत्नतः ॥ ४० ॥ पितामहान् भस्मकृतानपश्यद्गतचेतनः । अथ तद्भस्मनां राशिं गङ्गा सलिलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ प्लावयेत् पूतपाप्मानः स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तमाः ॥ इति वा०रा०॥४२॥ स गत्वा सागरं राजा गङ्गायानुगतस्तदा । प्रविवेशतलं भूमेर्यत्र ते भस्मसात् कृताः ॥ १ ॥ भस्मन्यथा प्लुते राम गङ्गायाः सलिलेन वै । सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ तारितानरशार्दूलदिवं जाताश्च देववत् । षष्टिपुत्रसहस्राणि सगरस्य महात्मनः ॥ ३ ॥ सागरस्य जलं लोके यावत् स्थास्यति पार्थिवः । सगरस्यात्मजाः सर्वे दिविस्थास्यन्तिदेववत् ॥ ४ ॥ इयं चदुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति । त्वत्कृतेन च नाम्नाथ लोके स्थास्यति विश्रुताः ॥ ५ ॥ अथापय्यादीक्षितोक्तं गङ्गाभ्रमनिवारणम् ॥ गङ्गाधारणमपकर्षहेतुरिति प्रलपतो वालीशम् प्रति बोधयति गङ्गाधृता न भवता शिवपावनीति नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः संरक्षणाय जगतां करुणातिरेकात् कर्मद्वयं कलितमेतदनन्यसाध्यम् । गङ्गाधारणं तावदनन्यसाध्य । इति महाभारते भगीरथं प्रति गङ्गावचनेनावगतम् करिष्यामि महाभागवचस्तेनात्र संशयः । वेगं तु मम दुर्धार्य्यं पतन्त्या गगनाच्युतम् ॥ न क्षमस्त्रिषु लोकेषु कश्चिद्धारयितुं नृप । अन्यत्रविबुधाश्रेष्ठान्नीलकण्ठात् महेश्वरादिति ॥ रामायणेऽपि तं प्रति ब्रह्मवचनेनावगतम् गङ्गायाः पतनं राजन् पृथिवीं न स हिष्यते । तां वै धारयितुं वीरनान्यं पश्यामिशूलिनः ॥ भागवते तु कोऽपि धारयितुं वेगं पतन्त्या मे महीतले । न चेद्भूमितलंभित्वा नृपयास्येरसातलमिति ॥ पृष्ठवतीगङ्गाम्प्रतिभगीरथवचनेना-

प्यवगतम् इति ॥ धारयिष्यन्वतीवेगं रुद्रस्त्वात्माशरीरिणांयस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तं तुष्विति इदञ्च गङ्गाधारणं न केवलं भगीरथपितामहोत्तारणार्थं किन्तु गङ्गावेगाद्भूधारणपरिहारेण जगत् संरक्षणार्थमपि सर्वोपकारकाद्यागस्त्यनिपीतस्यसमुद्रस्यपरिपूर्णेनतदर्थमित्यपिभारते समधिगतम् तत्रत्यारण्यपर्वणिअगस्त्यनिपीतस्यलोकपावनतयासर्वोपकारकस्यपरिपूरणोपायःपृष्ठः आगतान्देवान्प्रति ब्रह्मणा भगीरथः स्वपितामहोत्तारणाय गङ्गामानेष्यति तया च समुद्रस्य परिपूरणं भविष्यति विगतज्वराभवथेत्युक्तमिति प्रपञ्चितम् एवमन्यसाध्यं गङ्गाधारणं जगत् संरक्षणार्थं शिवेन कृतमिति न तु स्वस्यापि पावनी गङ्गेति तद्धारणं कृतं तथा कालकूटविषं मधुरमिति नास्वादितं किन्तु जगत् संरक्षणार्थमेव एवमिदमपीति दृष्टान्ततया सम्प्रतिपन्नकालकूटग्रसनोदाहरणं तद्धि जगत् संरक्षणार्थमिति शिवपुराणादिप्रसिद्धमेव भागवतेऽपि तथोक्तं तत्र हि कालकूटप्रादुर्भावानन्तरं तदुग्रवीर्यं दिशिदिश्युपर्य्यधोविसर्पदसह्यवीर्य्यभीताः प्रजादुद्रुवुरं ह्यशेश्वरा रक्ष्यमाणाः शरणं सदा शिवमिति उक्त्वा तत्तत् प्रसादनार्यं त्रिमूर्त्यतीर्णं निस्त्रैगुण्यशिवाभिधानपरब्रह्मरूपपरमात्मतत्वतया तस्य कैलासवासिनः श्रीकण्ठरुद्रस्य शिवविभूतिविशेषस्य प्रजापतिभिः कृतैस्तोत्रैः कालकूटसंहरणमिदंब्रह्मादीनामप्यसाध्यम् अतस्त्वदेकशरणावयमागता इति विज्ञापयितुमुक्तम्। न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चिवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यं ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं नयद्ब्रह्म निरस्तभेदमिति गुणविशेषोपाधिकब्रह्मविष्णुरुद्रभेदरहितं तत् समष्टिरूपपरमशिवात्मकमित्येतान्निरस्तभेदमित्यनेनोच्यते एवं लोकोपकारार्थं शिवेन कृतगङ्गाधारणमपि यदि विष्णुपाद्या स्यात् तदा यच्छौचनिसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दं इत्या पञ्चशब्दाक्षरश्रवणपरितुष्टानां कूपमण्डूकानांप्रलपितस्य कियानप्यवकाशः स्यात् इदन्तु धारणं भगीरथप्रसादितायाश्चतुर्मुखलोकस्थिताया हैमवत्या एव गङ्गाया इत्येतद्विभज्य दर्शयति गङ्गापि नैव भविता कश्चिमंधा विन्मूर्ध्ना धृता मधुरिपोश्चरणाच्चरन्ति किन्तु प्रसादनपराय भगीरथायदत्त्वा वरं शतधृतेः सदनात्क्षरन्ति द्विविधा गङ्गा एका हिमवतः कन्यका ब्रह्मलोके प्रवहन्ती केनचिदंशेन ब्रह्मलोकाद्भूलोकं भगीरथेन नीता अन्या तूर्द्ध्वप्रसारि त्रिविक्रमस्य भगवच्चरणप्रभावात् सत्यधः पतन्ती केनचिदंशेन व्योम्निस्थिता देवानां विहारोपयोगिन्यंशान्तरेण मेरोरुपरि

ब्रह्मपुर्य्यांस्ततस्तु दिक्षु प्रवाहानिलेन चतुर्धा विभक्ता निपत्यप्राच्यादिसमुद्रान् प्रविष्टा तथा हि वामनपुराणे श्वेता पद्मपत्राक्षीनीलकुञ्चितमूर्धजा। श्वेतमाल्यां वरधराकुटिलानाम चापरा॥ इति उमाया ज्यायसी हिमवत् सुतां प्रस्तुत्योक्तं दिवाकरैश्च रुद्रैश्च वसुभिश्च तपस्विनि। कुटिलाद्ब्रह्मलोकन्तु नीता शशिकरप्रभाम्॥ अथोचुर्देवताः सर्वाः किं प्रियं जन इष्यते पुत्रं तत्तारकवधं ब्रह्मन् वाख्यातुमर्हसी ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्नेयं शक्ता तपस्विनी शार्वं धारयितुं तेजो वराकीमुच्यतामियम् ततस्तु कुटिला क्रुद्धा ब्रह्माणं प्राह नारद तथा यतिष्ये भगवन् यथा शार्वं सुदुर्धरं धारयिष्याम्यहं तेजः तथैव शृणु सत्तम। तपसाहं सुतप्तेन समाराध्यजनार्दनम्॥ यथा हरस्य तद्वीर्य्यं धारयिष्ये पितामह। तथा देव करिष्यामि सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ततः पितामहः क्रुद्धः कुटिलामतिदारुणं भगवानादिशद्ब्रह्मसर्वेशः समहामुने। यस्मान्मद्वचनं पापेनस्थितं कुटिले त्वया। तस्मान्मच्छापनिर्दग्धा त्वमप्यापो भविष्यसि॥ इत्येवं ब्रह्मणा शप्ता हिमवद्दुहिता मुने। आपो मयीं ब्रह्मलोके प्लापयामासवेगिनी॥ तामुत्थितजलान् दृष्टावबन्धप्रपितामहः। ऋक्सामाथर्वयजुभिर्वाङ्मयैर्वन्धनैर्दृढैः॥ सावहासं स्थिता ब्रह्मन् तथैव गिरिकन्यका। आपो मयो प्लावयन्ती ब्रह्मणो विमलाजटा॥ इति अत्र गङ्गैव कुटिलेति नामान्तरेणोक्ता। एते वै शैलराजस्य सुते लोकनमस्कृते॥ गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमादिवीचराघवेति रामायणे हिमवत् सुतायामुमा ज्येष्ठायां कुटिलापदस्थाने गङ्गापददर्शनात् अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवतार्थचिकीर्षया। शैलेन्द्रं वरयामासुः गङ्गां त्रिपथगां नदीम्॥ ददौ धर्मेणहिमवान् तनयां लोकपावनीम्। स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्य हितकाम्यया॥ प्रतिगृह्य ततो देवा त्रैलोक्य हितकातराः। गङ्गामादाय वै गच्छन् कृतार्थेनां तरात्मना॥ इत्युदाहृत वामनपुराणोक्त कुटिला वृत्तान्तस्य गङ्गायामेव रामायणे संक्षिप्यप्रतिपादनाच्च। अत्र हि देवतार्थचिकीर्षयेति वरयामासुरिति धर्मेति च उक्त्या तारकवधादिरूपदेवकार्य्यचिकीर्षयासेनान्या उत्पादनाय शिवस्य भार्य्यार्थे तामेव कन्या शिवस्य धर्मं प्रजार्थं वृणीमहेति वरसम्बन्धिकर्तृककन्यावरणप्रकारेण वरयामासुः सोऽपि कन्या दानधर्मेण ददावित्यर्थः। प्रतीयते अतो वामनपुराणोक्त छायापङ्क्तिदर्शनात्तामादाय ब्रह्मणोंतिकंनिन्युरित्यर्थोऽयाह्यः तदनन्तरं ब्रह्मशापानदीरूपप्राप्तिस्त्रिपथगा नदीमित्यनेन सूचिता इदं हि विशेषणं न प्राचीनतदीयरूपकीर्त्तनपरं भगवन्

श्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीं। त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गतानदनदीपतिम्॥ इति रघुनाथपृष्ठेन विश्वामित्रेण त्रिपथगा रूपप्राप्ति वर्णनो पोद्घातत्वेनास्याः कथायाः वर्त्तमानत्वात् प्रागेव त्रिपथगा रूपसद्भावे देवैरिदानीं नियमत्वोत्तययोगाच्च किन्तु भाविनीं संज्ञामाश्रित्येदं विशेषणं शैलेन्द्रो हिमवत् नाम धातूनामाकरो महान् तस्य कन्याद्वयं रामरूपेणाप्रतिमं भुवि इत्युपक्रमादतिसौन्दर्य्यशालितया शिववीर्य्यधारणक्षमतां विचिन्त्य कन्यारूपेण ब्रह्मलोकं नीतेत्येवार्थो ग्राह्यः। अथ त्रिपथगामिनिवत् नदीमित्येतत् तदापि भाविनीं संज्ञामाश्रित्य नदीरूपप्राप्तिर्वामनपुराणोक्तब्रह्मशापेन त्रिपथरूपप्राप्तिर्नदीत्वं प्राप्य ब्रह्मलोके स्थिताया तस्या भगिरथानुरोधात् भुव्यवतरेण पातालप्रवेशेन चेति हृदिनिधाय त्रिपथगा रूपप्राप्तेः पृष्ठत्वात् सैव नवतिसर्गं प्रपञ्चिता नदीरूपं प्राप्य ब्रह्मलोके स्थितित्वपृष्ठत्वान्न प्रपञ्चिता सिद्धवत्कृत्य तत्र तत्र सूचिता यद्वह्निना शिववीर्य्यं निचीते सेनान्युत्पत्तिमलभमानान् ब्रह्मसमीप गतान् देवान् प्रति इत्यामाकाशगां गङ्गा यस्यां पुत्रः हुताशनः जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिंदमं ज्येष्ठा शैलेन्द्रदुहिता जनयिष्यति तं सुतम् उमायास्तद्बहुमतं भविष्यति न संशयः इति ब्रह्मणो वचने इयमाकाशगङ्गेति विलोक एव सन्निहिताकाशगतत्वेन गङ्गा निर्दिष्टा परञ्च भगीरथेन गङ्गावतरणार्थं ब्रह्मणमुद्दिश्य तपः कृतमित्युक्तं यच्च प्रसन्नेन ब्रह्मणा वरं ददातुमागतेन इयं हैमवती गङ्गा ज्येष्ठा हिमवतः श्रुतेति ब्रह्मलोकात् समागतैव गङ्गा इयमिति निर्दिष्टा। एतैर्लिङ्गैर्गङ्गाया नदीरूपप्राप्तिर्ब्रह्मलोके स्थितिश्च सूचिता एवं तावत् वामनपुराणोक्ता कुटिलगङ्गैवेति रामायणानुसारेण अवगम्यते किञ्च वामनपुराण एवाग्निमोपाख्यानानुसारेणाप्यवगम्यते अग्रे हि शिववीर्य्यनिपीतवह्निं प्रस्तुत्यैवमुपाख्यायते यत्पीतं हुताशनस्कन्नं शुक्लं पिनाकिनः तेन क्रान्तो भवेद्ब्रह्मन् मन्दतेजा हुताशनः। वैश्वानरस्ततस्तूर्णं ब्रह्मलोकं जगाम सः॥ सगच्छन् कुटिलां देवीं ददर्श पथिपावकः। तां दृष्ट्वा प्राह कुटिलां तेज एतत् सुदुर्धरम्॥ महेश्वरेण सन्त्यक्तं निर्दह्येहं वरानने।। तस्मात् प्रतीच्छपुत्रोऽयं भवदीयो भविष्यति॥ इत्यग्निनोक्तास्मित्वा तु कृत्वा स्वं वपुरुत्तमम्। प्रक्षिपात्मांभसि प्राज्ञेत्येवमाह महापगा॥ ततो विसृष्टं तद्देवी शार्वं तेजो प्रपूरयत्। हुताशनोऽपि भगवान् कामचारी जगाम सः॥ पञ्चवर्षसहस्रान्ते कुटिलाः ज्वलनोपमा। धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणस्थानमागता॥ तां दृष्ट्वा अब्जजन्मानामन्तर्वर्त्तीं महायशाः।

दृष्टापप्रच्छकेनायं तव गर्भः समाहितः॥ सा चाह शाङ्करं यत्तच्छुक्रं पीतं हि वह्निना। तदशक्ते न ते नाद्य निक्षिप्तंमयि सत्तमाः॥ पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्याः पितामह। गर्भस्य वर्त्तते कालो नावपद्येत् कर्हिचित्॥ तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छत्वमुदयं गिरिम्। तत्रास्तियोजनशतं रौद्रं शरवणं महत्॥ तत्रैनं क्षिपसुश्रोणी विस्तीर्णगिरिसानुनि। दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति॥ सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं कुटिलां गिरिमागमत्। आगत्यगर्भं तत्याज सुखेनैव महामुने॥ सा तु सन्त्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहसागमत्। आपोमयी ब्रह्मशापात् सञ्जाता कुटिला सतीति॥ एवं वह्निविसृष्टशिवधारणत्वोक्त्यापि कुटिला गङ्गेति निश्चीयते रामायणे पुराणान्तरेषु च गङ्गाया वह्निना शिववीर्य्यं विसृष्टमित्यैककण्ठे य न प्रतिपादनात् एवं तावत् आद्या हिमवती गङ्गा ब्रह्मशापान्नदीत्वं प्राप्ता भगीरथानुरोधात् भुवं प्राप्ता सति त्रिपथगा यतोऽसप्रमाणमुपपादिता अन्या तु विष्णुपदीगङ्गा क्वचिदूर्द्धप्रसारितत्रिविक्रमचरणाम्बुजसंचालनार्थं सत्यलोकस्थितब्रह्मकमण्डलुनिसृतजलरूपा वर्णिता अन्यत्र तच्चरणनिर्भिण्णोर्द्धाम् उच्छिद्रनिसृतवहिर्जलरूपा प्रतिपादिता वामनपुराणे तु विष्ण्वङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहे भेदिते परात् कुटिला विष्णुपादान्तात् पपात कुटिला ततः तस्माद्विष्णुपदीत्येव नामाख्यातिरभून्मुने इति तत्रोर्द्ध कपालपर्य्यन्तप्रसरद्विष्णुपादाग्रनिर्भिरणा कुलीभूतब्रह्मलोकप्रवहत् कुटिला जलरूपोक्ता सर्वोपसंहारे त्रिविधजलरूपैषा पर्य्यवस्यति सा च विष्णुपदानिर्गतैव मेरोरुपरिनिपत्यत देवसागरं प्राप्तेति प्रतिपादितं महाभारते सभापर्वणि तच्छिद्रा स्यन्दिता तत्र पादाभ्रष्टाय निम्नगा ससार सागरं सा शुपावनी सागरं गमेति कूर्म्मपुराणे तु सा विष्णुपदी व्योम गङ्गाजातेत्युक्तम् अथांड़भेदात्पतच्च शीतलं महाजलं तत् पुण्य क्तञ्चिस जुष्टं प्रवर्त्तते चापि सरिद्वरा तदा गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्थेति देवानां विहारार्थं केनचिदंशेन व्योम्निच्छता अवशिष्टा सागरे पतितेत्युभयानुरोधेन योज्यः एवञ्च या हैमवती गङ्गा सा भगीरथानुग्रहार्थं शिवेन शिरसा धृता न विष्णुपदीति न वालिशानामत्र शङ्कावकाशः। अथ ब्रह्मवैवर्त्तपुराणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः। श्रीकृष्णोवाच। एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः। सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम्॥ व्याघ्रचर्माम्बरधरो नागयज्ञोपवीतकः। स्वर्णाकारजटाधारमर्द्धचन्द्रञ्च सन्दधत्॥ त्रिशूलं पट्टिशकरो विभ्रत्खटाङ्गमुत्तमम्। सारत्नसार-

रचितस्वरयंत्रकरो मुदा ॥ वाहनादवरुह्याशु भक्तिनम्रात्मकन्धरः। प्रणम्य कमलाकान्तं वामे चोवास भक्तितः ॥ ४ ॥ आजग्मुर्मुनयः सर्वे सुराः ब्रह्मादयस्तथा। आदित्या वसवो रुद्रा मनवाः सिद्धचारणाः ॥ ५ ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य तं शिवं सर्वे सुराश्च नम्रकन्धराः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र सङ्गीतं शङ्करो जगौ। ज्ञात्वातीवसुतालञ्च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ आवयोश्च गुणाख्यानं रासमम्बन्धिसुन्दरम्। समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥ ८ ॥ यत्र कण्ठैकतानेन चैकमानेन चारुणा। पदभेदविरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥ ९ ॥ गमकेनातिदीर्घेण मदेन मधुरेण च। भवेति दुर्लभं स्पष्टं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥ १० ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः पुनः पुनः। तदेव श्रुतिमात्रेण प्रापुः सर्वे विचेतनाः ॥ ११ ॥ बभूवू रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये। रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधाढ्हरिपार्षदाः ॥ १२ ॥ नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिवः स्वयम्। जलपूर्णं च वैकुण्ठं दृष्टास्तोहमीश्वरि ॥ १३ ॥ गत्वा मूर्तीर्विनिर्माय सर्वांश्च तादृशीरिति। तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत् स्ववाहनभूषणा ॥ १४ ॥ तत्स्वभावास्तन्मनस्कातत्तद्विषय मानसाः। स्थानं निर्मायपरितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि ॥ १५ ॥ तदधिष्ठातृ देवीच आजगाम स्वमालयम्। शरीरजासुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा ॥ १६ ॥ वेदोक्तश्च तदेवास्याः कलां नार्हतिषोऽशीम्। भगीरथेन चानीता तेन भागीरथीस्मृता ॥ १७ ॥ गमागतास्रोतसोऽशात्तङ्गा तेन प्रकीर्त्तिता। जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुनापीयकोपतः ॥ १८ ॥ तस्य कन्या स्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्त्तिता। भीष्मस्स्वयं वसुर्जातस्तस्यां सा तेन भीष्मसूः ॥ १९ ॥ धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा। ममाज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी ॥ २० ॥ प्रधानधारया स्वर्गे सा च मन्दाकिनी स्मृता। योजनायुतविस्तीर्णा प्रस्थे च योजना स्मृता ॥ २१ ॥ क्षीरतुल्यजलाशश्वदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी। वैकुण्ठात् ब्रह्मलोकञ्च ततः स्वर्गं समागता ॥ २२ ॥ स्वर्गाद्धिमाद्रिमार्गेण पृथिवीमागतामुदा। साधारालकनन्दाख्यालवणोदेन निश्चिता ॥ २३ ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशा बहुवेगवती सती। पापिनां पापशुष्केऽन्धं दग्धुं पावकरूपिणी ॥ २४ ॥ अहो सगरवंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी। वैकुण्ठगामिनी सा च सोपानरूपिणी वरा ॥ २५ ॥ गङ्गां प्राप्यानुषङ्गेण स्नातिचेत्सतो नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यते ॥ २६ ॥ कलौ पञ्चसहस्राब्दं स्थितिस्तस्याश्च भारते। तस्याश्च

विद्यमानायां कः प्रभावः कलेरहो ॥ २७ ॥ कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम। तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कलेः ॥ २८ ॥ अथ तस्यैव प्रकृतिखण्डे षष्ठोऽध्यायः। चकार नैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्। सस्मिता तिसकामा च स कटाक्षं पुनःपुनः ॥ १८ ॥ विभुर्जहासतद्वक्त्रं निरीक्षणयुतं मुदा। क्षमां चकार तत् दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैवसरस्वती ॥ १९ ॥ बोधयामास तां पद्मा सत्त्वरूपा च सस्मिता। क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥ उवाच गङ्गां भर्तारं रक्तास्यारक्तलोचना। कम्पिता कोपवेगेन शश्वत् प्रस्फुरिताधरा ॥ २१ ॥ सरस्वत्युवाच। सर्वत्र समता बुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीः प्रति। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीताखलस्य च ॥ २२ ॥ ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर। कमलायाञ्च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयि प्रभो ॥ २३ ॥ गङ्गायाः पद्मया सार्द्धं प्रीतिश्चापि सुसंमता। क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥ २४ ॥ किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम्। निष्फलं जीवनं तस्यायापत्युः प्रेमवञ्चिता ॥ २५ ॥ त्वां सर्वेशं सत्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः। ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव ॥ २६ ॥ सरस्वतीवचःश्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्। मनसा स समालोच्य प्रजगाम बहिः सभाम् ॥ २७ ॥ गते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुषा। रागाधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥ २८ ॥ हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम्। अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २९ ॥ मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ। किं करिष्यति ते कान्ति ममैव कान्तवल्लभे ॥ ३० ॥ इत्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशं गृहीतुमुद्यता। वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥ ३१ ॥ शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती। वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यति न संशयः ॥ ३२ ॥ विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि। सन्तिष्ठसि सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥ ३३ ॥ शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशापचुकोप न। तत्रैव दुःखितातस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥ ३४ ॥ अत्युद्धताञ्च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना। उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां च पद्मलोचना ॥ ३५ ॥ गङ्गोवाच। त्वमुत्सृज महोग्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति। वाग्दुष्टा वागधिष्ठात्रीदेवी यं कलहप्रिया ॥ ३६ ॥ यावतीयोग्यतास्यास्र यावती शक्तिरेव वा। तया करोतु वादञ्च मया सार्द्धं सुदुर्मुखी ॥ ३७ ॥ स्वबलं यन्ममबलं विज्ञापयितुमर्हति। जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥ ३८ ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै-

शापं ददाविति। सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह ॥ ३९ ॥
अधो मर्त्यं साप्रयातु सन्ति तत्रैव पापिनः। कलौ तेषाञ्च पापांशं लभिष्यति
न संशयः ॥ ४० ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती। त्वमेव यास्यसि
महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥ ४१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह।
चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ ४२ ॥ सरस्वतीं करे धृत्वा वासया
मास वक्षसि। बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा रहस्यं
तासाञ्च शापस्य कलहस्य च। उवाच दुःखितास्ताश्च वाक्यं सामयिकं विभुः ॥
४४ ॥ श्रीभगवानुवाच। लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे। अयो
निसम्भवाभूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥ ४५ ॥ तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वञ्च
लभिष्यसि। मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूड़स्य कामिनी ॥ ४६ ॥ भूत्वा पश्चाच्च
मत्पत्नी भविष्यति न संशयः। त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥ ४७ ॥
कलया च सरिद्भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मवती
भव ॥ ४८ ॥ गङ्गे यास्यसि पश्चात् त्वमंशेन विश्वपावनी। भारतं भारतीशापात्
पापदाहाय देहिनाम् ॥ ४९ ॥ भगीरथस्य तपसा तेन नीतासिपुरस्कारात् नाम्ना
भागीरथीपूताभविष्यसि महीतले ॥ ५० ॥ मदंशस्य समुद्रस्य जायाजाये ममा-
ज्ञया। मत्कलांशस्य भूपस्य शान्तनोश्च सुरेश्वरि ॥५१॥ गङ्गाशापेन कलया भारतं
गच्छ भारती। कलहस्य फलं भुंक्ष्वसपत्नीभ्यां सहोच्यते ॥ ५२ ॥ स्वयञ्च
ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनीभव। गङ्गायास्तु शिवस्थानमत्रपद्मैव तिष्ठतु ॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गायास्यतिभारतम्। पूतंकर्त्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु
मद्गृहे ॥ ५४ ॥ तत्रैव चन्द्रमौलेश मौलिं प्राप्यातिदुर्लभम्। ततः स्वभावतः
पूताप्यतिपूताभविष्यति ॥ ५५ ॥ कलांशांशेनत्वं गच्छ भारते। कमलोद्भवे
कमलावतीसरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी ॥ ५६ ॥ अथ विष्णुर्हि पाशसरता
कटाहे भेदिते वरात्। कुटिला विष्णुपादान्तात्प्रयाता कुटिला ततः।
तस्माद्विष्णुपदीख्यातेति वामनपुराणोक्तेरेव ब्रह्माण्डोर्द्ध्वकटाहे लग्नेति
ज्ञायते पतनसमये च ब्रह्माण्ड ब्रह्म जलेन सहैव पतितं तज्जलं
ब्रह्मणाकमण्डलुधृतं वाह्यजलञ्च शिवानन्दवाष्पजातं नारायणात्मकमिति
कामिकासंहितादौ स्पष्टं ततो भगवतापदारोपणे तेनैव कमण्डलुजलेन तत्पाद-
प्रक्षालनं कृत्वा तद्जलकमण्डलावेवचिक्षम् शङ्करसंहितोक्तरीत्या गौरीविवाहो-
त्तरं लीलया गौर्य्याःपाणिभ्यां शिवनयनाच्छादने कृते शिवेन ललाटनेत्रं प्रका-

श्रितम् ततोभयाद्गौरीपाणीस्वेदजलं स्रुतं तदपि ब्रह्मणाकमण्डलौस्थापितमित्यत्रोह्यम् गौरी विवाहकथनेन सूचितश्च भगीरथप्रार्थनया च ब्रह्मरूपः सर्वपवित्रं जलसमूहस्तस्मैदतः सर्वमुत्राजलमुपक्रम्य पुराणेषु भगीरथसम्बन्धश्रवणात् इत्येतावता गङ्गोत्पत्तिमभिधाय तद्विषयकविवेकमाह तत्राष्टौ शिवपुराणोक्तरीत्यापरशिवदचनेत्रात् गङ्गोद्भूता। सैव गङ्गा हिमाचलस्य पुत्री गङ्गा कुटिलेति नामध्यामासीत् सा शिवाय हिमाचलाद्देवैः प्रार्थिता ब्रह्मलोकं प्राप्ता तत्र शिववीर्य्यग्रहणसमर्थेति पृष्टा सति साहङ्कारेण ब्रह्माणमाह समर्थोऽस्मीति तदहङ्कारेण ब्रह्मशापाज्जलत्वमगमतपुनश्च सैव कपिलशापदग्धसगरात्मजानुद्धर्त्तुं भगीरथतपस्तुष्टब्रह्मदेवाज्ञया भुवमवततारपृथिव्यास्तद्धारणा सामर्थ्याद् भगीरथतपस्तुष्टशिवेन शिरसि धृतेत्येवतदुत्पत्तिः श्रीमन्महर्षिवाल्मीकिनाप्रदर्शिता यच्च ब्रह्मवैवर्त्तान्तर्गतकृष्णखण्डप्रकृतिखण्डयोरुक्तं वैकुण्ठे कदाचिच्छिवगायनात् सर्वे देवा जलभावं गताः तथा प्रकृतिखण्डे विष्णोः पत्न्यः गङ्गालक्ष्मीसरस्वत्यस्तिस्रः परस्परशापात् तिस्रो जलत्वं गताः इति तत् परस्परविरोधादुपेक्ष्यम् न हि विरुद्धयोरेकाधिकरणवृत्तित्वं सम्भवति। अथ च सा उभयविधा अलकनन्देति नाम्ना स्वर्गे भुवि प्रसिद्धा अद्यापि वदरिकाश्रममार्गे तनाम्नैव ख्याता सा शिवमस्तके कदापि नायाता यदि च हठादेवप्रोच्यते भगीरथनीतायामेव प्रविश्य सापि शिव भाले गता तदविचारितम् भागीरथ्यां लीनत्वात् स्वरूपस्याभावतातत्रारोहणस्य सुतराम भावः यच्च विष्णुपदीत्येवं प्रोच्यते तदाकाशे स्थितत्वात् तन्मार्गेणागमनात्तत्पदवोध्यव्यवहारः वियद्विष्णुपदं वात्वित्यमरात् ये च विष्णुपदीगङ्गायाः शिवशिरसि धारणात् तन्माहात्म्यं शिवो जानातीतितिवक्ष्यसुः प्रथमतो गङ्गायाः विष्णुपदीत्वाभावाच्छिवशिरसि धारणं तस्याः कथं स्यादिति हेतोः यदि विष्णुपादोदकप्रीत्या शिवेन शिरसि धृतमिति चेत्तर्हि भगीरथप्रार्थनाया वैयर्थ्यात्तत् प्रार्थनातः प्रागेव विष्णुमहत्वेन कुतो न धृतेति प्रश्नरोत्तराभावप्रतीतेः अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः जघन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा इति मुण्डब्राह्मणे० ॥ अथ गरुड़पुराणे कृष्णवाक्यम्। वेदस्मृतिपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः विड़म्बकश्च तस्यैव तत्सर्वम् काकभाषितम् इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः वाक्यं छन्दो निबन्धे नकाव्यालङ्कारशोभिताः चिन्तया दुःखितामूढ़ाः तिष्ठन्तिव्याकुलेन्द्रियाः अन्यथा

परमं तत्त्वं जना क्लिश्यन्ति चान्यथा अन्यथा शास्त्रसद्भावोऽव्या कुर्वन्ति चान्यथा कथयंत्युन्मुनीभावं स्वयं नानुभवन्ति च अहङ्कारताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः पठन्ति वेदशास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम् न जानन्ति परं तत्वं दर्वीपाकरसं यथा शिरो वहति पुष्पाणि गन्धं जिघ्रतिनासिका पठन्ति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः न तत्वमात्मसंस्थं ज्ञात्वा मूढ़ः शास्त्रेषु मुह्यति गोपः कुक्षिगतेच्छागी कूपे पश्यति दुर्मतिः संसारमोहनाशायशाब्दबोधो न हि क्षमः न निवर्त्तेत्तु तिमिरं कदाचिद्दीपवार्त्तया प्रज्ञा हीनस्य पठनं यथान्धस्य सुदर्पणम् अतः प्रज्ञा वतां शास्त्रं तत्त्वज्ञानस्य साधकम्।

## इति निर्म्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे द्वादशस्तरङ्गः।

---

## अथ त्रयोदशस्तरङ्गः।

अथ विष्णोर्नैवेद्यविषयमाह ब्रह्मवैवर्त्ते तुष्टावगूढ़ैः स्तोत्रैश्च प्रणम्यभक्तितो मुदा। अवशेषं ददौ तस्मै सन्तुष्टो भक्तवत्सलः॥ ४॥ प्राप्तमात्रेण तत्रैवभुक्तं तेनैव किञ्चन। किञ्चिद्गरक्षबन्धूनां भक्षणाय च दुर्लभम्॥ ४॥ सिद्धाश्रमे च यद्दत्तं गुरवे शूलपाणिने। भक्त्युद्रेकाच्च तत्सर्वं भुक्तञ्च प्राप्तमात्रतः॥ ६॥ भुक्त्वा सुदुर्लभम्वस्तु न नर्त्तप्रेमविह्वलः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्ग साश्रुनेत्रोमुदान्वितः॥ ६॥ गायन्ममगुणान्भक्त्या सुकण्ठः पञ्चवक्त्रतः। रागभेदैकतानेन ताल-मानेन सुन्दरम्॥ ८॥ पपातडमरूहस्ताच्छृङ्गञ्च व्याघ्रचर्म च। स्वयन्निवर्त्यं पश्चाच्चरूदन् मूर्च्छामवापह॥ ९॥ अतीवकमनीयन्तत् रूपन्ध्यात्वैकमानसः। सहस्रदलमध्यस्थं मांपश्यन् हृत्सरोरूहे॥ १०॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवी दुर्गादुर्गार्त्ति नाशिनी। मुदाजगाम शीघ्रं तत्प्रसन्नवदनेक्षणा॥ ११॥ रूदन्तं मूर्च्छित-न्दृष्ट्वानिपतन्तञ्च भक्तितः। प्रहस्य वार्त्तां पप्रच्छकुमारं शूलपाणिनः॥ १२॥ सर्वन्तां कथयामास कुमारः सम्पुटाञ्जलिः। श्रुत्वाचुकोपसादेवी शिवं प्रस्फु-रिताधरा॥ १३॥ तां शप्तुमुद्यतां देवी मुत्थाप्य च त्रिलोचनः। बोधयामा-सविविधं तुष्टावसंपुटाञ्जलिः॥ १४॥ श्रुत्वामनोहरं स्तोत्रं न शशापशिवं शिवा।

दुष्टचक्रे तदुच्छिष्टमभक्ष्यं विदुषामपि ॥ १५ ॥ न लोकानां प्रभावश्च तपः सौभाग्यतेजसाम्। ब्रह्माण्डेसर्वसंहर्त्ता च कम्पे पार्वतीभये ॥ १६ ॥ उवाच तं जगन्माता नीतिसारं परंवचः। गणप्रसुः सकोपा च रक्तपङ्कज लोचना ॥१७॥ अहो तपः प्रभावश्च तेजश्च न जीविनाम्। स ब्रह्माण्डस्य संहर्त्ता च कम्पेशैल-कन्यका ॥ १८ ॥ पार्वत्युवाच। त्वं पौष्टाजगतां पाता ममैवच विशेषतः। ब्रह्माचतुर्णां वेदानां जनकश्च स्वयं प्रभुः ॥ १९ ॥ मुक्तिप्रदाता भक्तानां दाता च सर्वसम्पदाम्। त्वं चेत्करोषि दुर्नीतिं को वा धर्मञ्च पातिवै ॥ २० ॥ सदा ते परिपाल्याहं पोष्याभक्त्या च किङ्करी। वञ्चिता कर्मदोषेण हरनिर्माल्यभक्षणे ॥ २१ ॥ किञ्चिच्छुद्धं हिरण्येन किञ्चिद्वस्तु च वायुना। किञ्चित्प्रक्षालनेनेव सर्वं विष्णोर्निवेदनात् ॥ २२ ॥ विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्याः सर्वदेवताः। पितरोऽतिथयश्चैवमिति वेदेषु निश्चितम् ॥ २३ ॥ अनिवेद्यमभक्ष्यञ्च नैवेद्य-मुदरेहरेः। त्वक्लाकरोति यो भक्त्या पार्षदः प्रवरोभवेत् ॥ २४ ॥ अमृतं सर्वं वस्तुनामिष्टसारं सुदुर्लभम्। विष्णोर्निवेदितान्नस्य कलांनार्हतिंषोड़शीम् ॥२५॥ हन्त्यकालिकमृत्युं तदमृतं मूढ़रञ्जनम्। नैवेद्यञ्च हरेरेव हरितुल्यं करोत्यहो ॥ २६ ॥ यहच्छया तं नैवेद्यं यो भुङ्क्ते साधुसङ्गतः। षष्टिवर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसः फलम् ॥ २७ ॥ यो निवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः। किं वार्त्ता तस्य कर्त्तव्या स हरेस्तेजसासमः ॥ २८ ॥ श्रुतं पुरात्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि। अहं वेदविधातान किमहं वक्तुमीश्वरम् ॥ २९ ॥ सुचिरञ्च तपस्तप्त्वा मया लब्धास्त्वमीश्वरः। त्वया विष्णोः प्रसादेन वंचिताहं कथं प्रभो ॥ ३० ॥ यतो न दत्तनैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाधुना। अतोमत्तो गृहाणैतत्फल-मेव महेश्वर ॥ ३१ ॥ अद्य प्रभृतिये लोका नैवेद्यं भुञ्जतेतव। जन्मैकं सार-मेया भविष्यन्त्येव भारते ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा पार्वतीमाता चरोद पुरतो विभोः। दृष्टिः पपात तत्कण्ठे नीलकंठो बभूवह ॥ ३३ ॥ तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम्। तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनये न चकारह ॥ ३४ ॥ करेण चक्षुषोर्नीरं संमृज्य च पुनः पुनः। बोधयामासविविधैर्नीतिवाक्यैः मनोहरैः ॥ ३५ ॥ परितुष्टा च सा देवी भर्त्तारं समुवाचह। कले वरश्चत्यक्ष्यामि नैवेद्येन विना हरेः ॥ ३६ ॥ विभर्त्तिंदेहं सततं तव सौभाग्यवर्द्धनम्। कथं वहामि सौभाग्यरहितञ्च कलेवरम् ॥ ३७ ॥ अपूर्वं तव नैवेद्यं जन्ममृत्युजरापहम्। कृतं दुष्टञ्च यत्तस्मात् पश्य देहं त्यजामि च ॥ ३८ ॥ लिङ्गोपरिचयद्दत्तं तदेवा

ग्राह्यमीश्वर । सुपवित्रं भवेत्तस्य विष्णोर्नैवेद्यमिश्रितम् ॥ २८ ॥ एकादश्या-मनाहारं गृहीविप्रस्य भारते । स च तिष्ठति वैकुंठे यावद्वैब्रह्मणोवयः ॥ १४ ॥ गृहीणां शैवशाक्तानामिदमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्म-चारिणाम् ॥ १५ ॥ नित्यं नैवेद्यभोजीयः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः । नित्यंव्रतो-पवासानां जीवन्मुक्तः फलं भवेत् ॥ १६ ॥ अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः । पीतशेषजलंचैव गोमांससदृशं मुने ॥ २५ ॥ यत्तु ब्रह्मवैवर्त्ते सनत्कुमारो वैकुंठा-द्विष्णोर्नैवेद्यमादाय रुद्रं दत्तवान् रुद्रश्च भक्त्या तदभक्षितवान् ततश्च रुद्रो मूर्च्छितः सन् पार्वत्यावलोकितः । तया चैवं शप्तः हे रुद्र तव निर्माल्यमभक्ष्यं भवेत् । पुनश्चप्रसन्नया शिवया स्वशापोद्धरणं प्राह रुद्र निर्माल्यविष्णुनिर्माल्येन सह पवित्रत्वमुक्तमिति तदसत् प्रथमतः विष्णुनिर्माल्यस्य रुद्रभक्षणं विरुद्धं विष्णोरुद्रस्य सहस्रांशात् विष्णुपेक्षयरुद्रस्यैव पूज्यत्वात् यदि तु तुष्यद्दुर्जनन्या-येनैवमपि भवेत्तदप्यसत् यस्य निर्माल्यभक्षणात् रुद्रस्यापि मूर्च्छितत्वं स्वीय निर्माल्यस्याभक्ष्यत्वं चेति विपरीत फलत्वात् पतिपत्न्योरपि परस्परविरोधाच्च यच्च तत्रैव पुराणे विष्णोर्नैवेद्यप्रशंसनाय शैवशाक्तादिगृहस्थानामेकादश्यान्निराहारत्वं वैष्णवैस्तु तद्दिनेऽपि तन्निवेदितभक्षणस्य नित्यविधित्वात्तन्निवेदितं भक्षणीय-मेवेति तदप्यसत् सर्वपुराणमतैनैकादशीव्रतस्य वैष्णवैर्नित्यकर्त्तव्यतैवविधानात् अधुनापि वैष्णवेषु तथैव प्रचाराच्च तद्ब्रह्मवैवर्त्तोक्तं कल्पितमेवैवाभाति सिद्धान्तः उक्तविषये मानमाह परमापदमापन्नोहर्षेवासमुपस्थितेनैकादशी त्यजेत् यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवीति स्कान्दः । वैखानसाद्यागमोक्त दीक्षा युक्तोऽपि वैष्णव इति यच्च ब्रह्मवैवर्त्ते अनिवेद्यहरेरित्यादि तच्च परस्परपदविरोधादुपेक्ष्यम् तथाहि हरेरनिवेदितभुक्तशेषस्यपीतशेषजलादिवत् गोमांससदृशत्वं कथितं तत्रानिवेदितभुक्तशेषयोः परस्परविशेष्यविशेषणभावः स चासम्भव अनिवेदितत्वे सति भुक्तशेषत्वाभावः भुक्तशेषत्वे सत्यनिवेदितत्वाभावः एवञ्चोभयतः पाशरज्जु-वत् तदङ्गीकर्त्तुंव्याकुलाय मानत्वेनोपेक्ष्यम् यच्च तत्रैव भक्ताभक्तसाधारणेन विष्णोर्निवेदितग्राह्यमिति गदितम् तदप्यसत् अभक्तनिषेधसद्भावात् तदाह सनत्कुमारसंहितायां निवेदितं तु यद्द्रव्यम् पुष्पम् फलमथापि वा निर्माल्य-मिति तत्प्रोक्तं तत् प्रयत्नेन वर्जयेत् न चोपजीवेद्द्वेशं न निर्माल्यानि भक्षये-दिति वचनम् तत्रैव विष्णुरहस्ये । मन्त्रपूतं हि नैवेद्यं निषिद्धाय ददाति यः । सिद्धोऽपि पातकीनित्यमाहरुचस्तु किं पुनः ॥ १ ॥ अथ महाभारते अन्त्यजायं

तु यो यद्यात् विष्णुशेषं हविः स्वयम्। निरयं सुमहाघोरं रौरवं प्राप्नुयान्नरः॥
१॥ भगवद्भक्तिहीनस्य नैवेद्य विषमुच्यते। भगवद्भक्तियुक्तस्य तदेव चामृतं
भवेत्॥ २॥ अथ वाराहः विष्णूच्छिष्टं न दातव्यं नोभक्ताय कदाचन। दाता
प्रतीग्रहीता च उभौ नरकभागिनौ॥ अथ शिवशेषं सर्व्वे देवा भुञ्जन्तिनेतर-
शेषं शिवोभुनक्तिसर्व्वदेवापेक्षया तस्य प्रथमपूज्यत्वाभिधानात् तदाह वाल्मीकिः
उत्पपाताग्निसङ्काशं हलाहलमहाविषम्। तेन दग्धं जगत्सर्व्वं सदेवासुर-
मानुषम्॥ १॥ अथ देवामहादेवं शङ्करं शरणार्थिनः। जग्मुः पशुपतिं रुद्रं
त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः॥ २॥ एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः। प्रादुरासीत्
ततोत्रैव शङ्खचक्रधरोहरिः॥ ३॥ उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमानेतु यत्पूर्व्वं समुपस्थितम्॥ ४॥ तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो
हि यत्। अग्रपूजामिहस्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभोः॥ ५॥ इत्युक्त्वा च सुर-
श्रेष्ठ गुरुस्तत्रैवान्तरधीयत। देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वावाक्यं तुशार्ङ्गिणः॥ ६॥
हालाहलं विषं घोरं सञ्जग्राहामृतोपम्। देवाविसृज्यदेवेशो जगाम भगवान्
हरः॥ ७॥ तथैवान्यत्रापि आगमेप्यादौ शिवं पूजयित्वा पश्चादन्यं प्रपूजयेत्।
अन्यथा मूत्रवत्सर्व्वं गङ्गातोयं भवेद्यदि॥ ८॥ एवं विधानि बहूनि वचनानि
पूर्व्वार्द्धे निगदतान्यत्रैव संवर्त्तागमेपञ्च दशपटले तवातिगर्व्वः सञ्जातः सात्विकेन
गुणेन यत्। देवैः सम्मानितोवापि तं हरिष्यामि साम्प्रतम्॥ १॥ रमेश तव
नामानि सहस्राणि शतानि च। संस्मरिष्यन्तियेमर्त्याः फलं प्राप्स्यति नैव ते॥२॥
शिवपूजां पुरोहित्वा तवार्च्चां यः करिष्यति। वृथा पूजाभवेत्तस्य दरिद्रत्वं स
गच्छति॥ ३॥ सत्यं ब्रवीमिमहाक्यं शृणुष्वैकं समाहितः। देवतानां सभा-
मध्ये ब्रह्मलोके मनोहरे॥ ४॥ वारम्वारं तव हरेमर्त्येजन्मभविष्यति गर्भसंकठ-
मासाद्य कालेन ग्रसितोभव॥ ५॥ इति शप्तामहारुद्रो विष्णुं त्रैलोक्यपालकाम्
अन्तर्धानं जगामाशु देवानां पश्यतां तदा शास्त्रतत्त्वा वाधशून्या आधुनिका
वैष्णवाभिमानितयापाखण्डखण्डितधियः प्रायशो विष्णोर्निर्वेदितमेव भक्षयन्ति
नेतरदेवानां सर्व्वपूज्यशिवस्य तुद्वेषात् स्वयं न भक्षयन्ति अपि तु अगृहस्थैः गोसां
ईपदवाच्यप्रभृतिभ्यस्तत् देयमितिवदन्ति विष्णुनिवेदनोत्तरं शिवं निवेदयन्ति
स्वीयविशेषणहेतोः अद्यापिसम्बापुरीयन्त्रनिर्म्मित दृष्टसूत्रपुस्तकेषु शैवसम्बन्धि-
मध्यपिण्डं पत्नीं प्राशयेत् रुद्रं ललामविष्णुं यो निमकल्पयेदित्यादि च सन्द-
भागाभावसदभावात् अन्यत्रपुस्तकेषु तद्भागस्याद्यापि वर्त्तमानत्वात् अत-

स्त्वादृशानां किं वक्तव्यम् एवं यत्र तत्र शैवविषयं निष्कास्याधुनिकपा खण्ड्-भारदूषितं तत्तद्ग्रन्थमाधुनिकाः कुर्वन्ति नात्र चित्रम्। पूर्वैर्महर्षिभिर्भविष्यत् विषये तथैवोक्तत्वात् तद्यथा श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं भृगुः प्राहाथ सादरम्। ते भक्ता कतिधा ब्रह्मन् तेषां रूपं वदस्व मे॥ १॥ ब्रह्मोवाच। शृणुष्वत्वं समासेन कथयास्यद्यतेऽनघ। वैष्णवावैष्णवत्वेन विष्णुसम्बधिसंमते॥ १२॥ ते वै वैष्णवसंज्ञाश्च नेतरेषां कदाचन। प्रदाने वैष्णवे धर्मे संप्रदायेति च त्रिधा॥३॥ चतुर्णां मार्गसम्बन्धाद्वैष्णवत्वं च सिद्ध्यति। संप्रदाय विभागेन चतुर्द्धा तन्निरूप्यते॥ ४॥ ततः कलियुगे स्याद्वै संप्रदाय चतुष्टयम्। भविष्यति न सन्देहो जीवोद्धरणहेतवे॥ ५॥ ते सर्वे वैष्णवा ज्ञेया न च भक्ता कदाचन। भक्तास्ताः गोपिका ज्ञेया प्रेमानन्दैकसङ्गताः॥ ६॥ चतुराचार्य्यदास्येन ते स्वयं हरिरेव च। मोक्षमैश्वर्य्यकस्यास्य सिद्धान्ताचार्य्य एव हि॥ ७॥ सौनक उवाच आचार्य्यं यत्तु कथितं चतुर्णां कलिमध्यतः। सर्वे ते वैष्णवाः कस्मात् पूर्णः कस्मात्र मे वद॥ ८॥ ब्रह्मोवाच। शृणुध्वं मुनयः सर्वे पूर्णाचार्य्यकलेवरम्। ते लिङ्गे गौड़देशे च व्रजे कृष्णवपुस्त्रयम्॥ ९॥ ते लिङ्गे वल्लभः कृष्णः गौड़े चैतन्यरूपकः। हितस्वराधिकारूपं व्रजे कृष्णवपुस्त्रयम्॥ १०॥ राधिका वल्लभः कृष्णः स एव हितरूपकः। पञ्चगौड़ाग्रगरायाश्च संभविष्यन्ति वै कलौ॥ ११॥ वंशेऽस्मिन् वंशरूपात्मा वंशविस्तारहेतवे। हरिवंश इति ख्यातो भविष्यति कलौ मुने॥ १२॥ नामद्वयं च सर्वेषां भविष्यति कृतस्त्रयः। हितश्च हरिवंशश्च नाम्ना कलिमलापहम्॥ १३॥ हरिवंशप्रभावेन राधिका वैभवं कलौ। दर्शयिष्यति लोकेऽस्मिन् वृन्दारण्यविलासिनी॥ १४॥ हितरूपेण भक्तानां सोपकारेण संयुतः। दर्शयन् मम भक्तानां हितं कृष्णं जगत्त्रये॥ १५॥ कृष्णभक्ता व्रजे सर्वे कृष्णलीलाप्रकाशिकाः। राधिका रसरासस्य लीलाभक्ताभवन् मुने॥ १६॥ वल्लभः गोकुलस्थानां गोपीकानां च भार्गवः। स एव द्विजरूपेण सेवार्थे संभविष्यति॥ १७॥ नित्यं वृन्दावने लीलायः करोति सदा वहिः। कलौ चैतन्यरूपेण गौड़देशे भविष्यति॥ १८॥ एवं सर्वावताराणामाचार्य्यरूपमेव च। रामानन्दः स्वयं रामो वैराग्यादनुसम्भवः॥ १९॥ माध्वः ब्रह्मा शिवो विष्णुः निंवार्कः सनकस्तथा। शेषो रामानुजो नाम कलाविह भविष्यति॥ २०॥ इति भार्गवोपपुराणे भविष्यकथने नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥ सौरः अष्टमाध्यायः सूतोवाच। चतुर्ष्वपि च वेदेषु पुराणेषु च सर्वदा। श्रीमहेशात्परो

देवो न समानोऽस्ति कश्चन ॥ १ ॥ ब्रह्माविष्णुर्बलारातिस्सर्वे यस्य वशे स्थिताः। उत्पत्तिः सर्वदेवानां स एव ध्येय उच्यते ॥ २ ॥ नास्ति शम्भोः परो धर्मो नास्त्यर्थः शङ्करात्परः। शिवादन्यत्सुखं नास्ति मोक्षो नैव हरात्परः ॥ ३ ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः। तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ ४ ॥ श्रेष्ठत्वं ब्रह्मणो येन ध्येयत्वं येन शार्ङ्गिणा। विष्णुत्वं येन शक्रस्य तस्मादन्यः परो न हि ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः। केचिल्लोका महेशानं त्यक्त्वा केशवकिङ्कराः। तत्र किं कारणं सूतवदसंशयनाशक ॥ ६ ॥ अन्ते काले स्मरन्त्येव प्रायेण गरुड़ध्वजम्। विद्यमाने शिवे विष्णोः प्रभौ श्रीपार्वतीपतौ ॥ ७ ॥ सूत उवाच। यदा यदा प्रसन्नोभूद्भक्तिभावेन धूर्जटिः। विष्णुनाराधितो भक्त्या तदासौ दत्तवान् वरान् ॥ ८ ॥ त्वत्तःपरं प्रभुं नैव प्रायेण ज्ञास्यति स्फुटम्। विरलाः केचिदेतद्वै निष्ठां वेत्स्यन्ति तत्त्वतः ॥ ९ ॥ हेतुना तेन विप्रेन्द्राः शिवं जानन्ति केचन। प्रायेण विष्णुनामानि गृणन्ति वरदानतः ॥ १० ॥ विष्णोः स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्। शम्भुप्रसाद एवैष नास्ति कार्य्या विचारणा ॥ ११ ॥ यः शम्भुं तत्वतो वेत्ति स तु नारायणः स्वयम्। यस्तु नारायणं वेत्ति स शक्रो विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ य इन्द्रं वेत्ति देवेशं लोकपालो जलाधिपः। एवं सर्वाल्लोकपालान् जानन्ति स इहामरः ॥ १३ ॥ देवान् जानाति जष्टव्यान् स ऋषिर्वेदवित्स्वयम्। ऋषीन् यो वेत्ति सम्यक्त्वात् स एव ब्राह्मणोत्तमः ॥ १४ ॥ सर्वदेवमयं विप्रं यो जानाति स वेदवित्। रहस्यं वेत्ति वेदस्य स एव हरवल्लभः ॥ १५ ॥ जन्मादिकारणं शम्भुं विष्णुं ब्रह्मादिपूर्वजम्। न जानन्ति महामूर्खाः विष्णुमाया विमोहिताः ॥ १६ ॥ एतस्मिन् निह्नते किं स्यात् भवन्ति बहवस्तथा। दयाशब्दं पुरस्कृत्य ह्यधर्मो विचरिष्यति ॥ १७ ॥ वेदवाह्याः प्रजा राज्ञा शासितुं नैव शक्यते। तदा तत्पापभागीस्यादित्याह भगवान् मनुः ॥ १८ ॥ सूत उवाच। त्यक्त्वा राज्यं तपस्तेपे ततो राजा प्रतर्दनः। सावित्रीमनसा ध्यात्वा नित्यमेकाग्रमानसः ॥१९॥ ब्रह्मोवाच। पुत्रप्रासोऽस्मि सन्तोषं वरं वरय सुव्रत। कथन्त्वं खिद्यसेचित्ते राज्यं त्यक्तं कुतस्त्वया ॥ २० ॥ राजोवाच। वेदाः प्रमाणं वक्त्येव जानात्येव च यत् प्रजाः। शङ्कामात्रं भवेन्नैव वेदप्रामाण्यगोचरम् ॥ २१ ॥ इति याचेवरं देव किमन्येन वरेण मे। याचे निष्कण्टकं राज्यं सप्तद्वीपावनीपतिः ॥ २२ ॥ सूत उवाच। एवमस्त्विति संप्रोच्य ब्रह्मान्तर्धानमाययौ। प्रतर्दनोऽपि राजर्षि

सन्तुष्टः पृथिवीपतिः ॥ २३ ॥ ततः प्रभृतितद्राज्ये सर्वो धर्मो व्यवस्थितः। वेदवेदाङ्गवेत्तारो ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ २४ ॥ अग्निहोत्राणि यज्ञाश्च यतयो ब्रह्मचारिणः। शैवानानाविधापुण्या वैष्णवाः शुभलक्षणाः ॥ २५ ॥ तस्य राज्ये महापुण्ये न पाखण्डीनहैतुकः। वर्णाश्रमाचारवतां क्रियाः सर्वास्तदा भवन् ॥ २६ ॥ एवं बहुतिकालेन गता ये दैत्यदानवाः। पापिष्ठा हीनकर्माणो म्लेच्छास्तेऽपि दिवं गताः ॥ २७ ॥ येषां तु सन्ततिः शुद्धं वेदमार्गं हि मन्यते। ते सर्वे नरकान् मुक्ता प्राप्ता एवामरावतीम् ॥ २८ ॥ कथं तेषां तु पितरो नरकेनिवसन्ति हि। तस्मिन् राज्ये समागत्य किं कुर्युर्यमकिङ्कराः ॥ २८ ॥ सूत उवाच। शृणुध्व ऋषयः सर्वे यदासीत् परमाद्भुतम्। स्वर्गगामिषु सर्वेषु व्यापाररहिते यमे ॥ ३० ॥ पूजिताः सर्वलोकेषु सर्वे देवावभूविरे। तदासौ धर्मराट्गत्वा शक्रलोकं महामनाः ॥ ३१ ॥ उवाच सर्वदेवानां पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः। यम उवाच। चतुराशीति लक्षाणां जीवनां या स्थितिः सदा ॥ ३२ ॥ तां नष्टामधुनावेद्मि यदि देवः प्रमाणवान्। यस्यां कीटादियोनौ यः स्थितो जीवोऽतिपापवान् ॥ ३३ ॥ नरके संयमिन्यां वा तत्पुत्रेण स उद्धृतः। श्राद्धदेवार्च्चनादीनि करोति श्रुतिनिश्चयः ॥ ३४ ॥ इन्द्र उवाच। अस्माकं हीनजीवानां को विशेषो यदा श्रुतिः। प्रमाणयतितत्त्वेन वयं देवा यदाज्ञया ॥ ३५ ॥ पुरोहित तव प्रज्ञा शोभना प्रतिभाति मे। पूर्वचार्वाक बौद्धादिमार्गाः सन्दर्शितास्त्वया ॥ ३६ ॥ तेन मार्गेण विभ्रान्ता वेदमार्गबहिष्कृताः। दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा कुरु द्विजोत्तम ॥ ३७ ॥ गुरुरुवाच। न चार्वाको न वै बौद्धो न जैनो जवनोऽपि वा। कापालिकः कौलिको वा तस्मिन् राज्ये विशेत् क्वचित् ॥ ३८ ॥ वेदाः प्रमाणमित्येवमन्यमानाः प्रजाः शुभाः। कथं सा चाल्यते तात न शक्यं हि मयाधुना ॥ ३९ ॥ विधिदत्तवरस्याहमुच्छेत्तुं शक्तिमान् कथम्। इन्द्रादय ऊचुः। दैत्यानां दानवानाञ्च दुर्दशानां भवो यदा ॥ ४० ॥ तदा शुक्रः स्वयं तेषां कृपया सोद्यमो भवेत्। तस्मात्त्वं विप्रशार्दूलकस्मादस्मानुपेक्षसे ॥ ४१ ॥ असाध्यं तव किं मत्त्वावयं तच्छरणं गताः। अस्माकं दुर्जनाः सर्वे वेदकर्मरताः कृताः ॥ ४२ ॥ तेषां व्यामोहनायत्वं कुरु यत्नं कृपानिधे। देवानां रक्षसां चैव दैत्यानां पापकर्मणाम् ॥ ४३ ॥ सूतउवाच। एवं ब्रुवत्सुदेवेषु बृहस्पतिरुदारधीः। उपायं चिन्तयामास सृष्टेः संरक्षणाय च ॥ ४४ ॥ गुरुरुवाच। शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे ममोपायं वदाम्यहम्। देवकार्य्यमित् यदि

भवेत् कपटी वैष्णवः स्वयम् ॥ ४५ ॥ शङ्खचक्राङ्कितततनुस्तुलसीकाष्ठभूषितः। ऊर्ध्वपुण्ड्रञ्च बिभ्राणो हरिनामाक्षरं जपन् ॥ ४६ ॥ देवतामात्रनिन्दी च शक्तत्वामतिमीश्वरे। शिवद्वेष्टा महापापप्रेरकः शिवनिन्दकः ॥ ४७ ॥ दम्भेन यदि तद्राज्ये शिवनिन्दा कृता भवेत् तदा तत्पूर्वजाः सर्वे नरकं यान्ति दारुणम् ॥ ४८ ॥ ततो देवेषु सर्वेषु न कश्चिदवदत्तथा। कथयन्ति स्म चान्योन्यं नैतत्कर्मास्ति सुन्दरम् ॥ ४९ ॥ कश्चाण्डालः शिवं ब्रूयात् साधारणेन विष्णुना। यस्य प्रसादाद्वैकुण्ठः प्राप्तवानीदृशं पदम् ॥ ५० ॥ सूत उवाच। ततः किन्नर-माहूय प्रोवाचेदं शचीपतिः। या हि किन्नरमायावी भूत्वात्वं वैष्णवो भुवम् ॥ ५१ ॥ तत्र गत्वा जनान् सर्वान् ब्रूहि कोऽस्ति शिवो महान्। एक एव महा-विष्णुर्नान्यो ध्येयः कथञ्चन ॥ ५२ ॥ एवं प्रच्छन्नरूपेणखिलामार्गंप्रदर्शय। शनैः शनैर्जना एवं भविष्यन्ति च हैतुकाः ॥ ५३ ॥ वेदः प्रमाणमित्येव वेदितव्यं त्वया सदा। परन्लोको महान् विष्णुः शिवस्तस्य च किङ्करः ॥ ५४ ॥ सूत उवाच। प्रेरितोऽसौ वला रातेर्नभीतो गच्छन् शनैः शनैः। दाम्भिकं रूपमास्थाय यथा साधुं वदेज्जनः ॥ ५५ ॥ सर्ववैष्णवचिह्नानि धृत्वा भ्रामति तत्पुरे। शिष्यान् करोति तान् पूर्वं वदेन्नान्यो न शङ्करः ॥ ५६ ॥ क्वचित् वदति न ध्येयो न मुख्य इति च क्वचित्। क्वचिदुत्कृष्टजीवोऽयं क्वचिच्छ्रीविष्णुकिङ्करः ॥ ५७ ॥ इति नानाविधैर्बुद्धिर्नराणां भेदिता यदा। तदा शिष्यैः परिवृतो राजगेहं विशत्यपि ॥ ५८ ॥ चालितो राजलोकोऽपि विरुद्धं नैव दृश्यते। विष्णुभक्तो महान् शान्तो वेदवेदाङ्गपारवान् ॥ ५९ ॥ उपायानान्यनेकानि हयांश्च स्यन्दनान्बहुः। लोकाः सर्वे ददत्येव गुप्तं पापं न दृश्यते ॥ ६० ॥ सूत उवाच एकस्मिन्समये विप्रा एकादश्यामुपोषिताः जनाः प्रातश्चक्रपाणिन्नम-स्कर्त्तुं गताः शुभाः ॥ ६१ ॥ तत्रोपविष्टः शिष्यैः स्वैर्वृत्तः स्वीयेन तेजसा न किं चिन्मन्यते विप्रं यो भस्माङ्कितभालवान् ॥ ६२ ॥ एतस्मिन्नंतरेराजाप्राप्तवान् श्रीप्रतर्दनः। वृतो बहुविधैर्विप्रैः कुशहस्तैः शुचिव्रतैः ॥ ६३ ॥ त्रिपुण्ड्र-धारिणः केचिदूर्ध्वपुण्ड्रधरास्तथा पठन्तः शिवसूक्तानिविष्णुसूक्तानिचापरे ॥६४॥ एतैर्बहुविधैर्विप्रैर्वृतोराजोपविश्यसः। उवाच वचनं युक्तं कोमलाक्षरसंयुतम् ॥ ६५ ॥ स्वामिन्नागतवान् साक्षाद्भगवान् हरिपार्षदः। वेदं पठतिविष्णोश्च भक्तस्तद्वेषधार्य्यपि ॥ ६६ ॥ वैष्णवाभास उवाच वेद एव परं श्रेयो वेदार्थी-दधिकं न हि प्रमाणं वेद एवैको विष्णुवाक् श्रुतिरेवच ॥ ६७ ॥ राजन् वेदार्थं

विज्ञाने वहवो मोहिताजनाः। शिवपूजारताःसन्तो नानादेवतपूजकाः॥ ६८॥ एकोविष्णुर्नद्वितीयो ध्येयः किं त्वितरैः सुरैः। क्रूरं चक्रूरकर्माणं शङ्करं मन्यते कथम्॥ ६९॥ त्वदीयाब्राह्मणा एते ऊर्द्धपुण्ड्राङ्किन्ताः शुभाः। तान् दृष्ट्वाप्रीति रत्यर्थं जायते नृपसत्तम॥ ७०॥ एतेत्रिपुण्ड्रभाला ये करुद्राक्षमालिनः। पठन्तः शिवसूक्तानि दृष्टावञ्ज्यं पतेद्दिवः॥ ७१॥ दम्भस्योपग्रहः कोऽयं किम्वा भस्माङ्गधारणम्। रुद्राक्षाः काश्चकोरुद्रः कानिसूक्तानि तस्य च॥ ७२॥ विष्णु-रेकः परोध्येयोनान्योदेवः कदाचन। तदीयायुधचिह्नानि पूज्योवैवैष्णवः सदा॥ ७३॥ राजोवाच अनादिनाप्रमाणेन वेदेन प्रोच्यते शिवः। विष्णोरप्यधिको विप्रसंपूज्यो न कथं भवेत्॥ ७४॥ शिवादिषु पुराणेषु प्रोच्यते शङ्करोमहान्। सर्वासुस्मृतिषु ब्रह्मन् शिवाचारेषु सर्वतः॥ ७५॥ नाना गमेषु पुण्येषु प्रोच्यते ह्यज ईश्वरः। कठोरं वाक्यमेतत्ते भातिचेतसि मेऽशनिः॥ ७६॥ वैष्णवा-भास उवाच नेकाशं मनसस्ते येऽर्चयन्तीह धुर्जटिम्। श्मशानवासोदिग्वासा ब्रह्ममस्तकधृग्भवः॥ ७७॥ सर्पहारः कथं सेव्यो विषधारीजटाधरः तस्मा-द्विष्णुः सदासेव्यः सुन्दरः कमलापतिः॥ ७८॥ राज उवच। नानारूपाणि रुद्रस्य केजानन्तिनराधमाः। त्वं वैष्णव इवाभासि वेदार्थं नैव वेत्सिरे॥७९॥ सूत उवाच चिन्तयित्वा ततोराजा विदुषो ब्राह्मणोत्तमान्। आहूय निर्णयं चास्यकरि-ष्यामीति तत्वतः॥ ८०॥ इति श्रीब्रह्मपुराणे श्रीसौरे सूतशौनकसंवादे शिवम-हिमादि कथनंनामाष्टात्रिंशोध्यायः॥ ३८॥ सूत उवाच गृहं गत्वास्थिरोभूत्वा यावदाह्वयतेद्विजान्। तावदेव कलिः पापो ब्राह्मणेषु विवेशह॥ १॥ कश्चि-द्राजानमाश्रित्यब्रूतेताद्दृशमेव हि। अन्योन्यासर्षयोगेन खण्डयन्तिपरस्परम्॥ २॥ मूकीभावाश्रिताः केचित्केचिद् याथार्थ्यवादिनः। यो यथावज्ञिततत्ताद्दृगित्थं केचिदथोचिरे॥ ३॥ इति कोलाहले वृत्तेराजचेतसिनिर्णये जाते लोके नास्ति-कतां वहवः प्रतिपेदिरे॥ ४॥ राजावेत्तिमहामूर्खं न तु मायाविनं द्विजं लोके तु भ्रान्तिमापन्ने राजाचिन्तापरोभवत्' ईश्वरं हन्तिदुष्टात्मावध्योयं ममशस्त्रतः परन्तु लोकोब्रह्मघ्नं मिथ्यामांतु वदिष्यति॥ ६॥ सूत उवाच एतस्मिन् समये प्राप्ते लोकपूर्वं पितामहः। स्वर्गादभ्रष्टाह्यनेकानि नरकाणि प्रपेदिरे॥ ७॥ येषां पुत्राश्च पौत्राश्च प्रतिपौत्रास्तथापरे। मातामहादि वर्गाश्च सखिसम्बन्धि-बान्धवाः॥ ८॥ शिवावगणनोद्भूतपातका यमलोकगाः। सुक्षतं भस्मतां यातं नद्याङ्गोदकं यथा॥ ९॥ एतस्मिन्नेवकालेतु कमला हृदयंगमः। सुप्त आक्रं-

न्दमकरोच्छोणितौघपरिप्लुतः ॥ १० ॥ लक्ष्मीर्दृष्ट्वाथ तद्रूपं विह्वलं भयविह्वला प्राप्तासर्थ्यं महाघोरा रुरोदभृशदुःखिता ॥ ११ ॥ लक्ष्मीरुवाच वेदान्तवेद्यपुरुषेश्वरदेवदेवत्रैलोक्यनाथ किमिदं त्वयिदृश्यतेद्य ॥ १२ ॥ आकारमात्ररहितः पुरुषः पुराणः। त्वय्येव विश्वमिहरज्जुभुजङ्गमात्रम् ॥ १३ ॥ शैलाः पतन्तिजलधिर्महतामुपैति सूर्य्योदयो हतरुचः पृथिवी पराणुः भूतानिचाच्युतविभो विलयं प्रयान्ति त्वद्रोममात्रमपि नैव चलेत् चणार्द्धम् ॥ १४ ॥ श्रीनारायण उवाच उक्तं त्वया तदपिलच्मि तथैव किंतु मत्स्वामिनोवगणना न हि शक्यते मे ज्ञात्वा विपूज्यतममूर्त्तिमिमाङ्गिरीशम्। नो मन्यते तदिहि वज्रसमं ममैव ॥ १४ ॥ लक्ष्मीरुवाच सर्वात्मा सर्ववित्कर्त्ता वक्ताधर्त्ताव्ययः प्रभुः। त्वं साक्षी सर्वलोकानां त्वतः परतरोऽस्तिकः ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच अस्तिसर्वं वरारोहेमयि तत्तथ्यमेव हि। श्रीमहेशवरात्लब्धं मदीयं न हि किञ्चन ॥ १६ ॥ एकः सृजति भूतानि मत्समानिकियन्त्यपि। तेत्त्वं वेत्थग्रहं देवि मदीयाः केचनापरे ॥ १७ ॥ वेदवेदाङ्गवेत्तृणां सहस्राणग्रजन्मनाम्। हननान्मुच्यते जीवो न तु श्रीशिव हेलनात् ॥ १८ ॥ गुर्वंगनागमनकृत् सदामद्यनिसेवकः। ब्राह्मणः स्वर्णहारी च कदाचिन्मुच्यतेजनः ॥ १९ ॥ स्त्रीघ्नोगोघ्नो नृपघ्नश्च तथा विश्वासघातकः। कृतघ्नो नास्तिको लुब्धः कदाचिन्मुच्यतेजनः ॥ २० ॥ न तु श्रीरुद्रसामान्यदर्शी मुच्येत् बन्धनात्। विरञ्चिविष्णुशक्रेभ्यः सर्वोत्कृष्टं न जायते ॥२१॥ विष्णुना यदि वातुल्यं मुच्यन्ते नैव जन्तवः स्वामी मदीयः श्रीकण्ठस्तस्य दासोस्मिसर्वदा ॥२२॥ लक्ष्मीरुवाच गच्छामस्तत्रवैकुण्ठ यत्रस्वाम्यस्तितेविभो। कैलासपर्वतेरम्ये प्रणमामः सदाशिवम् ॥ २३ ॥ सूत उवाच ततस्तौगरुडारूढौ गत्वाकैलासवर्त्तम्। नानाविधैस्तोत्रपदैः सन्तुष्टुवुश्च क्रतुःचणात् ॥ २४ ॥ ततो ब्रह्मादयोदेवा सिद्धास्तत्रागतागिरौ। रुद्रः कौतूहलप्रेचुः सर्वैस्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥ भवानीसहितस्तत्र गतो यत्र प्रतर्दनः। सर्वदेव विमानानां मध्येतिष्ठति शङ्करः ॥ २६ ॥ श्रीमहेश उवाच कथयन्तु कथं ह्येतेमिलिताः सर्वनिर्जराः। किं कार्य्यं किमपूर्वं वा राजा चिन्तातुरः कथम् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः स्वामिन्प्रतर्दनो राजाविधिलब्धवरोभवत्। वेदमार्गप्रवक्ता च स्वयं तस्य प्रवर्त्तकः ॥ २८ ॥ सृष्टिरचार्थमस्माभिः कपटं कृतमीश्वर। सर्वधातुश्च भवतो हेलनं कारितं सुरैः ॥ २९ ॥ तत्चमस्वमहादेव किन्नरोऽयं प्रवर्त्तितः। कल्पितो वैष्णवोऽस्माभिस्तवनिन्दापरायणः ॥ ३० ॥ सूत उवाच एतस्मिन्नेवकाले तु राजा वृत्तान्तमेयिवान्। तीव्रं खड्गं समादाय हत-

वान् किन्नरं क्रुधा ॥ ३१ ॥ तत्पक्षपातिनो येच तेषां शीर्षाणिकं धरात् । पृथक्
कृता निपक्षाद्याहतान्यश्वा अनेकशः ॥ ३२ ॥ न तं वारयते कश्चित् राजानं
पुराय चेतसम् । महादेवेन शमितः क्रोधस्तस्य महात्मनः ॥ ३७ ॥ ततः कोला-
हले शान्तेनन्दीकौतुकपूर्वकम् । युयो जहयशीर्षेतच्छरीराणि पृथक् पृथक् ॥३४॥
शीर्षाणिहयगात्रेषु सम्यक् संयोज्यबुद्धिमान् । उवाच वचनं तथ्यंदेवसंसदिशुद्धगीः ॥
३५ ॥ येन वक्त्रेण गिरिशोहेलितस्तन्मुखं हयः । मुद्राधारणगर्वेण हेलितस्तत्तनु-
र्हयः ॥ ३६ ॥

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे त्रयोदशस्तरङ्गः ।

---

## चतुर्दशस्तरङ्गः ।

ऋषय ऊचुः सूतभद्रं समाचक्ष्वसेवको यस्य माधवः श्रीमहेशस्य विष्णोश्च
तुल्यत्वं व्रुवते कथम् ॥ १ ॥ व्रुवन्तितुल्यतां केचिद्वैपरीत्येनकेचन । एकत्वं केचि-
दीशेन केशवस्य वदन्ति हि ॥ २ ॥ अत्रसिद्धान्तमर्य्यादां व्रुहितत्वेन सूतज ।
अवाधायेन चास्माकं शंशयो विनिवर्त्तते ॥ ३ ॥ सूत उवाच शृणवन्तु ऋषयः
सर्वेश्रुतिसिद्धान्तमुत्तमम् । महेशान्नपरं तत्वं सर्ववेदेषु गीयते ॥ ४ ॥ वैकुण्ठ-
प्रभृतीनान्तु महेशकृपयापुनः । महेशस्य च दासोयं विष्णुस्तेनानुकम्पितः ॥ ५ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सिद्धान्तोऽयं यथार्थतः । इन्द्रोपेन्द्रादयः सर्वे महेशस्यैवकिङ्कराः
॥ ५ ॥ वेदान्त वेद्यमीशानं पार्वतीरमणं प्रभुम् । यो जानाति स वैकुण्ठो दुःखहा
सर्वदेहिनम् ॥ ६ ॥ वैकुण्ठं मन्यते सम्यगीशानं स पुरंदरः । य इन्द्रं मन्यतेसर्व-
स्वामिनं स ऋषिर्मतः ॥ ८ ॥ स्वर्गलोकं समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालकः । अद्वैतं
शिवमीशानमज्ञात्वानैवमुच्यते ॥ ९ ॥ घोरेकलियुगे प्राप्ते श्रीशङ्करपराङ्मुखाः ।
भविष्यन्ति न रास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽव्रवीत् ॥ १० ॥ रुद्रक्रोधाग्निनिर्दग्धे
मन्मथे तस्य भार्य्यया । रत्याविलपते तस्य सखा योप्यति दुःखिताः ॥ ११ ॥
वसन्तादय आगत्य तामूचः किं विधीयते । सर्वलोकेशितुः शम्भोवराकावैरवांरणे ॥
१२ ॥ रतिरुवाच मन्यते घातकः सर्वैर्लोकपूज्योभवेदयम् । अत्र विघ्नः प्रकर्त्तव्यो

येन केनापि हेतुना ॥ १३ ॥ अस्यापकीर्त्तिर्वक्तव्या न चलेद्यदि किंचन। तेन मे दुःखशान्तिः स्यात् किञ्चिन्मात्रं न चान्यथा ॥ १४ ॥ वसन्तादय ऊचुः चतुर्दशसुविद्यासुगीयते चन्द्रशेखरः। वेदान्ता यच्च गायन्ति मुनयः संशितव्रताः ॥ १५ ॥ ब्रह्माद्या देवताः सर्वा इन्द्रोपेन्द्रादयस्तथा। न्यूनतां तस्य यो ब्रूते कश्चि चाण्डाल उच्यते ॥ १६ ॥ तेनतुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि गद्यते। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥ १७ ॥ तुल्यता यदि नो शक्या न्यूनता यास्तुकाकथा मित्रस्यानृरायमिच्छामः सङ्कटं प्रतिभाति नः ॥१८॥ सूत उवाच। विचार्य्यैवं तदा सर्वे सहासोहपुरःसराः, तपस्तेपुर्महाघोरं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ १९ ॥ कदाचित् भगवान् ब्रह्मा प्रादुरासीत् दयानिधिः। मोहोदंभस्तथा क्रोधो लोभस्ते सेवकाः कलेः ॥ २० ॥ पञ्चमो हेतुवादश्च अधुना सर्वयाश्रिताः। तानुवाच ततो ब्रह्मा व्रणीध्वं मनसेप्सितम् ॥ २१ ॥ यथा वाणी च भवतां तथा हंदातुमुद्यतः। मोहाद्या ऊचुः। अस्माकं परमं मित्रं कन्दर्पो नाशितः प्रभो ॥ २२ ॥ महादेवेन तेनास्य आनृण्यं कर्त्तुमुद्यताः। भविष्यामो वयं तात रुद्रपूजाभिनिन्दकाः ॥ २३ ॥ यदा न लभते पूजामस्तत्तचन्द्रशेखरः। ब्रह्मोवाच। अधुना न भवेदेवं भविष्यत्यशतच्चिरम् ॥ २४ ॥ भविष्यामः इति प्रोक्तं भवतो नान्यथा क्वचित्। ये भगवत् वशगा लोकास्तेभ्यः पूजा न धूर्जटेः ॥ २५ ॥ प्रार्थितोऽयं वरो दत्तो यथेष्टं कर्त्तुमर्हथ। सूत उवाच। इत्युक्त्वा तानथो ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत। सर्वे ते मन्त्रयां चक्रुः कलिना सह दुःखिताः ॥ २७ ॥ कलिरुवाच। भवद्भिरधुना नोक्तं भविष्याम इतीरितम्। ततो मत्समये प्राप्ते सर्वमेव भविष्यति ॥ २८ ॥ अस्त्वत्त इति यत् प्रोक्तं तेन चास्मद्वशे स्थिताः। निन्दाकराभविष्यन्ति नास्मान् योमन्यते न सः ॥ २९ ॥ लोभमोहादिसंयुक्ताः प्राप्ते च मयिदारुणे। हेतुवादं पुरस्कृत्य शिवभक्तिपराङ्मुखाः ॥ ३० ॥ सूत उवाच। ततः कलियुगे प्राप्ते सर्वे धर्मे विवर्जिते। म्लेच्छैर्ब्राह्मणधेनूनां विध्वंस न करे खरे ॥ ३१ ॥ अस्वाध्यायवषट्कारेजैनबौद्धादिसंकुले। ब्राह्मणे म्लेच्छमार्गस्थे शूद्रे ब्राह्मणघातिनि ॥ ३२ ॥ तदा वसन्तः कर्णाटकतैलङ्गादिकदूषकः। मधुनास्याचविधवा चैत्रे विप्राङ्गविष्यति ॥ ३३ ॥ गोलकः स तु पापिष्टः पद्मपादकमीश्वरम्। वेदान्तव्याख्यानरतं शिष्यत्वेनार्चयिष्यति ॥ ३४ ॥ शास्त्रं पूर्णं ततो धीत्य स्थित आह्निकवर्जितः। किमग्निहोत्रं को यागो हेतुमेवं करिष्यति ॥ ३५ ॥ गुरुराकरार्यं तद्वाक्यं ब्राह्मणो न भवेदयम्। इति निश्चित्य

तं दुष्टं वक्ष्यति सुततद्वचः ॥ ३६ ॥ गुरुरुवाच। को वर्णस्तव मे ब्रूहि यथार्थं वेददूषकः। कर्म ब्रह्मोद्भवद्देछानोत्पत्तिर्ब्राह्मणात्तव ॥ ३७ ॥ मधुरुवाच। ब्राह्मणादहमुत्पन्नो ब्राह्मण्याञ्चनसंशयः। सत्यं वदामिनो मिथ्याकथं मांपृच्छसि गुरो ॥ ३८ ॥ गुरुरुवाच। त्वन्माताकेनदत्तारेकास्य पुत्रीकदाकथम्। कस्मैदत्ता-च विधिनाकेनतद्ब्रूहिमाचिरम् ॥ ३९ ॥ मधुरुवाच। विधवा जननीनाथ ब्राह्मणेनतपस्विना गर्भिणीसम्भूत्तस्मादयं देहस्ततो भवत् ॥ ४० ॥ कपटेन यतःशास्त्रं मत्तोधीतं दुरात्मना। तेनसिद्धान्तमर्य्यादा कदाचिन्नास्फुरत्त्वियम् ॥ ४१ ॥ मधुरुवाच। भविष्यतिमहाभाग वचनं तवनान्यथा पूर्वपक्षोममहृदि-प्रादुर्भवतु निश्चलः ॥ ४२ ॥ गुरुरुवाच। भन्धतातवसिद्धान्ते पूर्वपक्षे च पाटवम्। भवत्वेव परंत्वेकं पापाः शिष्याभवन्तुते ॥ ४३ ॥ मोहात्सिद्धान्त-रहितालोभात्तेनृपसेवकाः। क्रोधात्कठिनवक्तारोदम्भाद्वेषेण सुन्दराः ॥ ४४ ॥ हेतु वादेनशास्त्राणि सर्वाणि नविदन्तिते। निरयेष्वे वघोरेषु गमिष्यन्त्यचिराच्चिरम् ॥ ४५ ॥ सूत उवाच। मधुनामा ततः प्राप्य शापं तं दुष्टबुद्धिमान्। बादरायण सूत्राणां व्याख्यानं सकरिष्यति ॥ ४६ ॥ मध्वाचार्य्यस्ततो भावाद्दाक्षिणात्यो महान् कलौ। तच्छिष्याः प्रतिशिष्याश्च नार्य्यावर्त्ते न चोत्कले ॥ ४७ ॥ न गौड़ेन च गङ्गायास्तीरे गोदावरी तटे। नार्बुदारण्यमध्ये च तत्प्रचारो भविष्यति ॥४८॥ यथा कलेर्भवेद्घोरः प्रचारो हि भवेत्। तथा तथा महाराष्ट्रे हैतुकाविरलाः क्वचित् ॥ ४९ ॥ ततोऽति दुष्टसमये महाम्लेच्छैस्तिरस्कृते। प्रच्छन्नः कुत्र-चित्पापी प्रचारं हि विधास्यति ॥ ५० ॥ पञ्चवर्षस्तुसंन्यासी पठित्वा दुष्टबुद्धि-मान्। शिष्योपशिष्यसंयुक्तो हेतुवादं करिष्यति ॥ ५१ ॥ तत्त्वं संसार इत्येव न वाध्यः सत्य एव हि। वदत्यतस्तत्त्ववादी मिथ्यावादी स उच्यते ॥ ५२ ॥ मिथ्याभूतः प्रपञ्चोयं मया निर्मित इष्यते मायावादिन इत्येते वस्तुतस्तत्त्ववादिनः ॥ ५३ ॥ सच्छास्त्रं जैमुनीयन्तु कर्मकाण्ड प्रवर्त्तकम्। गौतमीयन्तु सच्छास्त्रमी-श्वर प्रतिपादकम् ॥ ५४ ॥ पुंप्रकृत्योर्विवेकस्य बोधकं कापिलं मतम्। तथा वैशेषिकशास्त्रमीश्वर प्रतिपादकम् ॥ ५५ ॥ पातञ्जलं योगशास्त्रं शैवं तच्छास्त्रमिष्यते। वेदान्तशास्त्रमूर्द्धन्यमद्वैतं यच्च बोधयेत् ॥ ५६ ॥ वेदाः सर्वे षड़ङ्गास्तु पुराणानीतिहासकम्। स्मृतिश्चोपपुराणानि तथोप स्मृतयःशुभाः ॥५७॥ अन्योन्यं सर्वविद्यानां प्रामाण्यमधिकारतः। तात्पर्य्यञ्च पुमर्थेषु सर्वास्वेवं जगुः किल ॥ ५८ ॥ किञ्चिद्विरोधे सत्त्वेव न विरोधोऽस्ति तत्त्वतः। मन्यन्ते श्रीम-

४

ईशानं सर्वाख्येव परात्परम् ॥ ५९ ॥ पापिष्टागैवमन्यन्ते वेदमार्गवहिष्कृता। आचार्य्यं मधुनामानं वदन्तो विधवा सुतम् ॥ ६० ॥ प्रच्छन्नोसौ महादुष्टश्चार्वाको मधुसंज्ञकः। भविष्यति कलौविप्राः शिवनिन्दाप्रवर्त्तकः ॥ ६१ ॥ मोहात् सिद्धान्तवाह्यत्वं क्रोधाच्छास्त्रनिषेधनम्। लोभेन नृपतेः सेवादम्भादन्यप्रतारणम् ॥ ६२ ॥ गणिकामैथुनं कामाद्धेतुवादेन वादिता। भविष्यतिकलौ विप्राः षड्यिं तत्ववादिता ॥ ६३ ॥ पञ्चवर्षयतिं कृत्वाक्रमेणादायबालकम्। मठापत्यं विधास्यन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिकाः ॥ ६४ ॥ पारम्पर्य्यं मठस्यैव रक्षिष्यन्त्यभिरागिणः। भोगासक्ताश्च पापिष्टा दासीगमन कारिणः ॥ ६५ ॥ नाम्नासन्यासिनस्तीर्थे यानारूढ़ाः ससेवकाः। नरवाहनमारूढ़ाः शिखासूत्रवहिष्कृताः ॥ ६६ ॥ तत्पचपातिनोमूढ़ा गृहस्थाः शिवनिन्दकाः। मिथ्यावैष्णवमानेन ग्रस्तानिरयगामिनः ॥ ६७ ॥ वैष्णवावेशमात्रेण तन्तुमात्रेण वाड़वाः। वादिनः क्रोधमात्रेण विद्वांसो हेतुवादतः ॥ ६८ ॥ पठिष्यन्ति च शास्त्राणि केचिद्दूषण सिद्धये। स्वकीयं गोपयिष्यन्ति परकीये न- पण्डिताः ॥ ६९ ॥ सूत उवाच। महामोहादयः सर्वे रतिमाश्वास्य भामिनीम्। प्रोचुश्चश्लक्ष्णयावाचा तद्दुःखविनिवारकाः ॥ ७० ॥ मोहादय ऊचुः। रतेमाकुरुसन्तापमहं मोहः कलेः सखा। क्रोधश्चपत्युः परो बन्धुर्लोभमोहौ च देवरौ ॥ ७१ ॥ प्राप्ते कलियुगे पूर्णे मोहलोभादयोवयम्। वसन्तं मधुनामानमवतीर्णञ्च दक्षिणे ॥ ७२ ॥ समाश्रित्य ततो हेतु वादंकुटिल बुद्धयः। करिष्यामो यथा शक्यं शिवपूजानिवारणम् ॥ ७३ ॥ सूत उवाच। इति ते रतिमाश्वास्य यथागतमितोगताः। इति सर्वं समाख्यातं शिवनिन्दककारणम् ॥७४॥ इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरेसूतशौनकसंवादे महेशविष्णुतुल्यत्वकारणादिकथनं नामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ यथा माधवस्योत्पत्तिर्दर्शिता एवमेव भविष्यादि पुराणेषु निम्बार्कविष्णुरामानुजादीनामनेकेषां पाखण्ड पूरितधियां कलेरनुकूलवर्त्तिताधियामप्युत्पत्तिर्द्दष्टव्या अतस्तादृशमिथ्यावैष्णवाभिमान गलितमतिभिः श्रौतशिवोपास्य मार्गत्यागजनित पापान्नष्टीकृत चत्रियराज्यैरिदं लोकं मलिम्नापूरितमिवाभाति तादृशैरेव शिवनिर्माल्य भक्षणेदोषबुद्धिरुत्पादिता अधीरधियामिति भावः अद्यतनजयपुराधी शरामसिंह राज्ञः विष्णोर्विधिनिषेधयोः कागतिरितिप्रश्नस्योत्तरं दुर्जनकरिपञ्चानन सत्सिद्धान्त मार्त्तण्डेयल्लिखितं तदत्रदर्शयामि यथा सनत्कुमार संहितायाम् निवेदितन्तु यद्द्रव्यं पुष्पं फलमथापिवा। निर्माल्यमिति तत्प्रोक्तं तत्प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ १ ॥

तथा तत्रैव निर्माल्यं भक्षयित्वैवमुच्छिष्टमगुरोरपि मासं पयो व्रती भूत्वा जपन्नष्टाक्षरं सदा ॥ २ ॥ ब्रह्मकूर्चं ततः पीत्वा पूतो भवति मानवः। इति इन्द्रराते न चोपजीवेद्दै वैशन्न निर्माल्यानिभक्षयेत् तथान्यत्र न चोपयोगयोग्यानि निर्माल्यानि कदाचन। इति तथा संहितान्तरे निर्माल्यानि च नाश्नीयान्न जिघ्रेन्न च पाययेदितितथान्यच्च निर्माल्यञ्च निवेद्यञ्च भुक्त्वाचान्द्रायणं चरेदित्यभक्ष्यप्रकरणे निरूपितम् तदेव मनेकसंहितायां समाधिगतनिषिद्धस्य निर्माल्यस्य कथमुपयोग इति भवतः पूर्वपक्षः अत्राह कश्चित् नाड़िका दशकादर्वागुपयोगो न विद्यते। तथेन्द्रराते एव। दशनाद्यधिकं पूर्णं स्थापयेत्तु विचक्षणः। कालयोगसमुद्दिष्टो रात्रावह्नि चैव हि। कालयोगातिरिक्तन्तु निर्माल्यं परिचक्षते ततस्तदप्सु चैवाग्नौ क्षिपेद् भूमौ खनेद्वा इति नेदं युक्तम् नात्र निर्माल्यप्राशनादिप्रशस्यते किन्तु पूर्णपूजायां विनियुक्तस्य वस्तुनः नाड़िकादशके पूर्णे पश्चात्त्यागो विधीयते। सामन्येन निवेदितस्य पुष्पोदकक्षतक्षत्यतया निर्माल्यत्वेनायमयने प्राप्ते नाड़िका दशपूर्णं पूजाङ्गतया स्थापनं विधीयते दशनाद्यधिकं पूर्णं स्थापयेदिति अत्रोच्यते ईश्वरसंहितायाम्। दुर्लभो भगवद्भक्तो लोकेऽस्मिन् पुरुषस्तु सः। तत्रापि दुर्लभतरो भावो वै यस्य तत्त्वतः॥ पादोदकं प्रतिस्रुतं सिद्धान्ते च निवेदिते। स्रगादिकेवोपभुङ्क्ते उपभोगार्थमेव च॥ अतश्च भावहीना नाम भक्तानाञ्च षरसु खनिषिद्धं भगवन् मन्त्रष्टकपूतमखिलं जगत् इत्यनेन अविद्यालवोल्लसितजिह्वाग्राणामचेतसां सितासितं वचनं सकलं केन्दुविम्बवद्भाति येन पुनर्मूर्खास्तेषामेव निषेधबुद्धिरवतरतिवैष्णवाधिकारिभिस्सेव्यमानं हि अघौघविध्वंसनायालमिति ज्ञायते एवञ्च भगवद्विष्णुनिवेदितान्नाद्युपयोगः श्रुतिस्मृतिशतसमाधिगतः तथा भागवते त्वयोपभुक्तस्रगन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः॥ १ ॥ उच्छिष्टभोजनोदासास्तवमायां जयेमहीति। निर्माल्यभक्षयित्वेत्यादि निषेधवचनानां का गतिरिति चेत् उत्सर्गापवादन्याय एव गतिः माहिं स्यादिति सामान्यतः सिद्धहिंसानिषेधो हि अग्निषोमीयं पशुमालभेतेत्यादिविशेषतः प्राप्तवैदिकहिंसां परीत्यज्य लौकिकहिंसामवलंवते यथा प्रकृते निर्माल्यभक्षणनिषेधो विशेषतः श्रुति शततदुपबृंहण शत समधिगतविष्णु निवेदितान्न भक्षणमवलम्बते। इति रामानुजीयाः एतादृशा एव वल्लभीयाः भगवन्निवेदितवस्तूनां ग्रहणे विधिनिषेधयोः का गतिरिति प्रश्नस्योत्तरे दुर्जनकरिपञ्चाननसल्लिद्धान्तमार्त्तण्डे यल्लिखितं तदसङ्गतम्। तथा च सूतसंहितावाक्यम्। रुद्रेण भुक्तं निर्माल्यं न तथा

देवतान्तरैः। नैवेद्यं विष्णुना भुक्तं न तथा देवतान्तरैः॥ ३॥ निर्माल्यं च नैवेद्यं च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेदिति किञ्चित्समञ्जीयाञ्च पावनमित्यसामान्यवाक्यानां सामान्यविशेषवाधन्यायेन वाधादुक्तो वाधो यथा न हिंस्यात् सर्वभूतानि २ इति सामान्यवाक्यस्याग्निषोमीयं पशुमालभेतेति विशेषवाक्येन वाधः इति तद्वदत्रापीति साम्य मुक्तम् तन्नोपपद्यते तद्यथा न हिंस्यादित्यस्याविधिहिंसानिषेधे चारितार्थ्यमग्निषोमीयमित्यस्यविधिप्रयुक्तहिंसायां चारितार्थ्यमत्र तु निर्माल्यं चेति सामान्यवाक्येन सर्वदेवतानिवेदितसर्वस्वत्यागो विधिरिति तत्कर्मकाण्डविषयः न तूपासनाकाण्डविषयः उपासनायामावश्यकत्वं राजानं प्रति गीतसेनोक्तम्। गृहाणशाम्भवीं दीक्षां मोक्षार्थंसपियत्नतः। मोक्षस्तु न भवत्येव विना शांभवदीक्षया॥ १॥ नयस्य शांभवीदीक्षा तस्य मोक्षोऽपि दुर्लभः। सत्यं सत्यमिति प्राह यावालः खलु स आस्तिकः॥ यस्तु शांभवदीक्षायां संसक्तहृदयो द्विजः। तमर्चयन्ति सर्वेऽपि विष्णुब्रह्मादयः सुराः॥ इत्युपासनाकाण्डविषयः अत्र शिवरहस्यम्। पूर्वं तु पितैवोपदिशेत् मन्त्रं गायत्र्या सममेव हि इति कर्मकाण्डविषयः तत्रापि रुद्रनिवेदितग्रहणे सर्वाश्रमेऽपि द्विजातीनामधिकार एव पूर्वोदाहृतश्रुतिबलात् तदतिरिक्तपञ्चविधनिर्माल्यस्य अन्यदेवनैवेद्यादेश्च सर्वस्य त्याग एवेति कर्मकाण्डविषयः उपासनाकाण्डविषयस्तु तत्तत् प्रकरणे निरूपितंयत्तदवशात्तत्तद्देवोपासकैस्तत्तद्देवस्योच्छिष्टं ग्राह्यमिति तत्र मानं रुद्रयामलतन्त्रे। निवेदितञ्च यद्द्रव्यं भोक्तव्यं तद्विधानतः। तच्च चेद्भुज्यते मोहाद् भोक्तुमायान्ति देवताः॥ इति वचनात् स्वेष्टदेवस्य स्वभक्तैर्ग्राह्यमित्यायातम् सदेवस्तु शिवनिवेदनोत्तरमेव गृह्णाति तदुत्तरं तद्भक्तः तदाहोत्पत्तितन्त्रे। शाक्तो वा वैष्णवो वापि शैवो वा गाणपोऽथवा। शिवार्चनविहीनस्य कुतः सिद्धिर्भवेत् प्रिये॥ १॥ तत्रैव। अनाराध्यच मां देवी योऽर्चयेद्देवतान्तरम्। न गृह्णाति महादेवि शापं दत्वा व्रजेत् पुरम्॥ २॥ शिवार्चनविहीनोऽयः पूजयेद्देवतान्तरम्। विशेषतः कलियुगे सनरः पापभाग्भवेत्॥ इति अथ पराशर उपपुराणे पत्र पुष्पादिभिर्नित्यं भक्त्या वेदोक्तवर्त्मना लिङ्गे दिने दिने देवं पूजयेच्छिवसंज्ञकम्॥ तच्छेषत्वेन विष्णुश्च ब्रह्माद्यं देवतान्तरम्। अर्चयेद्भुक्तिमुक्त्यर्थं न स्वतन्त्रतया द्विजः॥ इति। न स्वतो वै हरिः पूज्यो न ब्रह्मा न पुरन्दरः। कुतोऽन्य देवताः सर्वाः ब्रह्मस्फूर्त्यस्तता बलात्॥ इति एवंविधिना ग्रहणं स्मारत वैष्णवैरेव ये च तन्त्रोक्ता वैष्णवास्तन्निवेदितन्तु तैरेव

ग्राह्यं नेतरैस्तत्रयानियानि विष्णुनिवेदितग्रहणविधायकवाक्यानि पूर्वमुदाहृतानि तानि तादृशवैष्णवविषयाण्येव तत्रापि सर्वस्वग्रहणे देवलकत्वं दुर्वारमिवातः प्रसादमात्रग्रहणं तदपि पावनधियान मोहाल्लौल्याद्वापि तत्र रुद्रेण भुक्तं निर्माल्यमिति विशेषवाक्येन सामान्यवाक्यवाधाद् रुद्रविष्णुनिर्माल्यनैवेद्ययोः निषेध एव सिद्धः तत्रापि रुद्रनिर्माल्यं स्थापितलिङ्गविषय एव न तु इष्टवाण-लिङ्गादिविषये तत्रापि विष्णोः स्वतन्त्रतया रुद्रपूजनमन्त्ररेणैव पूजने तु तन्निर्माल्यं तद्भक्तस्याभक्तस्य वोभयोरग्राह्यमेवेति निश्चितम् तदाह। पुरा दक्षमखे विष्णुः रुद्रं हित्वा स्वयं ययौ। ब्रह्मादिभिर्देवगणैःसहितो भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ तत्र पूजनमासाद्यचक्रपाणिः प्रजापतेः। सङ्कल्पं कृतवान् देवसभा मध्येऽभिमानत ॥ २ ॥ निमन्त्रितोऽहं दक्षेण यज्ञरक्षार्थमाशु च। तस्य रक्षां करिष्यामि यावद् बुद्धिबलोदयम् ॥ ३ ॥ यदि रुद्रगणाः यज्ञं नाशयन्ति तु कर्हिचित्। वारयामि सचक्रेण तान् सर्वान् रुद्रकिङ्करान् ॥ ४ ॥ कदाचित् कुपितो रुद्रः समेष्यति कपालभृत्। नाशयिष्यामि संग्रामे तस्मो गुणधरं शिवम्॥ ५ ॥ दधीचिर्वचनं श्रुत्वा विष्णोरद्भुतकर्मणः। शशाप विष्णुं तत्रस्थः कोपोद्रेकान् महामुनिः ॥ ६ ॥ शृणुतसर्वे सुरगणाः पश्य मे तपसः फलम्। प्रतिज्ञाया कृतानेन स्वाभिमानेन विष्णुना ॥ ७ ॥ निष्फला सा भवेत् क्षिप्रं मम शापान्न संशयः। एवं ये पूजयिष्यन्ति रुद्रं त्यक्त्वा नरा भुवि ॥ ८ ॥ नानोपहारबलिभिस्ते यान्ति पशुयोनिषु। निर्माल्यं विष्णुनैवेद्यं भक्षयिष्यन्ति मानवाः ॥ ९ ॥ ते गमिष्यन्ति निरयं मूढ़ा जन्मनि जन्मनि। सत्यं सत्यं विजानीयात् शिवपूजा वहिर्मुखाः ॥ १० ॥ इति शप्त्वा रुषा विष्णुं दधिचिर्मुनिसत्तमः। विज्ञापनार्थं रुद्रायकैलासभुवनं ययौ ॥ ११ ॥ इति महाकालसंहितायां दक्षयज्ञवर्णन प्रकरणे भैरवदेवीसंवादे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रह्लादस्य महासुर। कोपेन खड्गमादाय पुत्रं हन्तुं समुद्यतः महाकायसुभङ्गुर-पुनः पुनस्त्वं ब्रवीषि विष्णोर्भजनम् वरिष्ठम् तन्नाशयामि मम भ्रातृ-शत्रून् साक्षात् भवेत्से यदि दैवयोगात् कुत्रतेविष्णुरव्यक्तः सम्प्र दर्शयसत्वरम् नो चेत्मारयिष्यामि सत्यं जानीहिपुत्रक। प्रह्लाद उवाच। कुत्र संदर्शयिष्यामि तत् स तिष्ठति चराचरे। तवान्तरे मम हृदि यत्रतत्रैव कोपिचततोवाच महादैत्यस्तस्योयं वर्त्ततेपुरः अत्रतिष्टति चेत् ब्रूहितं हनिष्यामिसर्वथा। प्रह्लाद उवाच। जलेस्थले चान्तरिक्षे सर्वत्रपरिवर्त्तते दर्शयामि न सन्देहो ममभक्तिदृढ़ा

यदि इति सञ्चिन्त्यमनसासंस्मरन् विष्णुरव्ययम्। स्तम्भे चाह्वयामासमन्त्रेण विधिपूर्व्वकम्। ततो जगादपितरं स्तम्भेऽस्मिन् वर्त्तते प्रभुः सामर्थ्यं यदि चेत् तात पश्यविष्णुं परात्परं तथा कर्ण्यवचस्तस्य कोपाकुलित मानसः छेदयामास खड्गेन स्तम्भं स्फाटिकमुत्तमम्। तदेवसहसा तस्मान्नारसिंहेन मूर्त्तिना निस्ससार जगन्नाथो दैत्यनाशायकेवलम्। सिंहनादेन महता त्रैलोक्यसचराचरं कम्पयन् सहसातत्र घोरनादमथाकरोत् वैशाखे शुक्लपक्षेतु चतुर्दश्यां निशामुखे अवतारं नृसिंहस्य समभूत् स्तम्भ मध्यतः हिरण्यकस्य पुंदैत्यं संहारार्थं महेश्वरि प्रह्लादरक्षणार्थाय नारसिंहवपुर्हरिः। देव देव उवाच। एतस्मिन्नेवकालेतु भृगुपत्नीच रेणुका प्रदोषेसततं देवी करोति शिवपूजनं पुष्पं गृहीत्वाहस्ताब्जे, कूर्ममुद्रा समन्विते ध्यानं कृतवतीशम्भोर्लिङ्गे चावाहनाय च शतवज्रसमं नादं नृसिंहस्य श्रुतीरितम्। ध्यानभङ्गोभवेत्तस्या सिंहनादेन शैलजे। ध्यानभङ्गात्तदा देवी रुरोदभृशमातुरम् ततो मनस्विसन्ध्यात्वा ज्ञात्वा तद्विष्णुनाकृतम्। तदोवाच महाकोपात् भृगुपत्नीयशस्विनी मद्ध्यानभङ्गे यदि चेत् विष्णुनाध्रुतमन्युना पूजने देवदेवस्य विघ्नं सञ्चरितम् मम तस्यार्च्चन विधौविघ्नं सङ्करिष्यामिसर्व्वथा इति चित्ते समाधाय सापं तस्मै समाददत् न विष्णुपूजनं शस्तं भविष्यति कदाचन अद्यप्रभृतिये विष्णुं पूजयिष्यन्ति मानवा तेषां पूजा वृथा भूयात् विना शङ्कर पूजनम्। चन्द्रसूर्य्यौशृणु तं वैपरंशापंमयोदितम्। अग्राह्यं विष्णुनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्। नैवेद्यं चापि श्रीविष्णोर्भविष्यति युगे युगे। येभक्षयन्ति मनुजा स्तेयान्ति पशु योनिषु यदि भक्ति दृढ़ाविष्णोर्निर्माल्ये केशवस्य च शिवपादोदकं तत्र क्षिप्तासंप्राशयेत् सदा तदा श्रीपति निर्माल्यभक्षणे फलभागिनः भविष्यन्ति नराःसर्वे साक्षिणो वात्रदेवता। देव देव उवाच भृगुपत्नीति संशप्ता विष्णुनिर्माल्यभक्षणेत्वराजगामस्नानार्थं शापन्दत्वा च रेणुका। इति श्रीकालनिबन्धे श्रीविष्णुपूजाप्रकरणे देवीश्वर सम्वादे नृसिंहचरित्र वर्णने विष्णुनिर्माल्य निषेधोनाम षोड़शःपटलः। एवंचेत्यादि शापात् ये शुद्धा वैष्णवास्ते तु प्रथमं रुद्रं पूजयित्वातदुत्तरंते नैवोपकरणेन विष्णुं संपूज्यतन्निवेदितम् ततोग्राह्यम् तल्लक्षणमाह विष्णुपुराणे तृतीयांशे सप्तमाऽध्याये। यम उवाच। न चलति निजवर्णधर्मतोयः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ॥ १ ॥ न हरति न हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसन्तमेव हि विष्णुभक्तम् ॥ २ ॥ कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतोऽस्तु मोहे मनसिकृतजनार्दनं मनुष्यं सततमेव हि हरे-

रतीव भक्तम् ॥ ३ ॥ तृतीयांशेऽष्टमोऽध्यायः वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण पुरः पुमान् विष्णुराराध्यतेपन्यानान्यस्तत्तोषकारणम् तस्मात्सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः। आराध्यते स्ववर्णोक्तधर्मानुष्टानुकारिणा ॥२॥ ब्राह्मणः चत्रियो वैश्यः शुद्रश्च धरणीपते। स्वधर्मतत्परोविष्णुमाराधयतिनायन्यथा ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमेषु ये धर्माः शास्त्रोक्तानृपसत्तम। तेषु तिष्ठन्नरोविष्णुमाराधयति नान्यथा ॥ ४ ॥ अथ लिङ्गोत्तरार्द्धम् मार्कण्डेय उवाच। शृणुराजन् यथान्यायं यन्मांत्वं परिपृच्छसि यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायणः स्थितः ॥ १ ॥ विष्णुरेवहि सर्वत्र येषां वैदेवतास्मृता। कीर्त्तिमानेहरी नित्यं रोमाञ्चोयस्य वर्त्तते ॥ २ ॥ कम्पः स्वेदस्तथा चिषु दृश्यन्ते जलविन्दवः। विष्णुभक्तिसमायुक्तान् श्रौतस्मार्त्तप्रवर्त्तकान् ॥३॥ प्रीतो भवति यो दृष्टा वैष्णवोऽसौ प्रकीर्त्तितः। नान्यदाच्छादयेद्वस्त्रं वैष्णवो जगतोरणे ॥ ४ ॥ विष्णुभक्तमथायान्तं यो दृष्टा सन्मुखस्थितः। प्रणामादिकरोत्येवं वासुदेवे यथा तथा ॥ ५ ॥ सवैभक्त इति ज्ञेयः सजयीस्याज्जगत्त्रये। शुभाक्षराणि शृण्वन् वै तथा भागवतेरितः ॥६॥ अन्यभक्तसहस्रेभ्यो विष्णुभक्तोविशिष्यते। विष्णुभक्तसहस्रेभ्यो रुद्रभक्तोविशिष्यते। रुद्रभक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः। तस्मात्तु वैष्णवं चापि रुद्रभक्तमथापिवा ॥८॥ पूजयेत्सर्वप्रयत्नेन धर्मकामार्थं मुक्तये। एवं विधशुद्धविष्णुभक्तानां रुद्रमनिवेदयित्वा केवलविष्णवे एवनिवेदितं सन्नग्राह्यम् तत्र मानमाह श्रीमत्भागवते एकादशस्कंन्धे एकादशाध्याये तत्रोद्धव प्रश्नः। साधुस्तवोत्तमश्लोकमत्तः किंदृग्वद प्रभो भक्तिस्त्वय्युपयुज्येतकीदृशी सद्भिरादृता ॥१॥ एतत् प्रश्नोत्तरभक्तलक्षणावसरे यदुक्तं कृष्णे न तदत्रदर्शयामि अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्त्तितम्। अपिदीपावलोकं मेनोयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥२॥ इति निषेधवाक्येन विष्णुनिवेदितस्य शुद्रानां द्विजानां तद्भक्तानां ग्रहणाभावः समायातः यत्तु श्रीधरेण व्याख्यातं स्वयमन्येनवानिवेदितं न स्वीकुर्य्यात् एतच्च साधराणस्थावरविषयं रागप्राप्तविषयं वा भक्त्या तु ग्राह्यमेव षड्भिर्मासोपवासैस्तुयत्फलंपरिकीर्त्तितंविष्णोर्नैवेद्यसिद्धार्थे पुण्यं तद्भुज्यतांकलौ ॥१॥ हृदिरूपंमुखेनामनैवेद्यमुदरेहरेः। पादोदकञ्चनिर्माल्यं मस्तकेयस्यसोऽच्युतः ॥२॥ इत्यादिवचनेभ्यःयद्वाअन्यस्मैनिवेदितं मेनोप। युंज्यात्मह्यंननिवेदयेदित्यर्थःविष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदा नन्त्यायकल्पते ॥१॥ पितृशेषंतु यो दद्याद्धरये परमात्मनेरेतोदापितरस्तस्य भवन्तिक्लेशभागिनः इत्यादिवचनेभ्यश्च इति तन्न अत्र साधारणस्थावरविषयं न किन्तु सर्वस्वपरित्यागः

अयमभिप्रायः स्कान्दे दीपान्त उपचारः स्यात् नैवेद्यान्तञ्च पूजनमिति अपि दीपावलोकं मनोपयुंज्यान्निवेदितमिति दीपावलोकननिषेधेन सर्वोपचार निषेधः नैवेद्यग्रहण निषेधेन सर्वपूजापदार्थनिषेधः तस्मात्तत्साधारणस्थावरविषयमसङ्गतं यत्तुभक्त्याग्राह्यमित्युक्तं तदसत् श्रीकृष्णोक्तभक्तलक्षणतोऽन्यः कीदृशः सभक्तः यस्य तद्ग्रहणम् किञ्च यस्य गहणविधानं तद्भक्तलक्षणं विहाय यस्य न ग्रहणं तद्भक्तलक्षणनिरूपणात् कृष्णकथनस्योन्मत्तप्रलपितत्वापतिर्भवद्रीत्यातत्त्वा-पने इति स्पष्टम्। एवञ्चसम्मतेशुद्धवैष्णवानां निषेध एव ये च भवत्सम्मताग्रहण योग्या वैष्णवास्तान् दर्शयामः तत्र श्रीमत्भागवते द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः। किरातहूणाध्रपुलिन्द पुल्कसा आभीरकङ्काय वनाख्यसादयः येऽन्येचपापायदुपा-श्रयाश्रया शुद्धन्ति तस्मैप्रभविष्णवे नमः। तथा विष्णुरहस्ये नवमाध्याये नात्र-वर्णानि यस्यन्ते नाप्याश्रम निवासिनं विलोमैः प्रतिलोमैश्च तथा कुण्डैश्च गोलकैः। कर्त्तव्या विष्णुभक्तिश्च दीक्षा ग्राह्या तथा हरेः॥ इति सात्वतो व्रात्याद्वैश्यादित्यधिकृत्य पञ्चमः सात्वतो नाम विष्णोरायतनानि च पूजयत्या-ज्ञया राज्ञो यदि स्यात् संयतेन्द्रियः इति ब्रह्मपुराण एव दर्शितः एवमन्यत्रापि वैश्यात्तु जायते व्रात्यः सुधन्वाचार्य्य एव च। कारूषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥ षष्ठश्च सात्वतो नाम विष्णोरायतनानि च। पूजयत्याज्ञया राज्ञः स तु भागवतः स्मृतः॥ एवञ्चेत्यादि वचनैरनुलोमप्रतिलोमादिसङ्करजातीया-नामेव विष्णु निवेदितग्रहणाधिकारः न तु स्वे स्वे वर्णाश्रमे स्वस्वधर्मेण वर्त्तन-शीलानान्तदधिकारश्चेति सिद्धान्तः किञ्च द्विजातीनाम् यदिदीपावलोकनमात्र-स्यापि निषेधस्तर्हि तेषां नैवेद्यग्रहणेऽधिकार इति किमु वक्तव्यम् यत्तु भागवत-तिलके श्रीधरेणोक्तं कलौ भोक्तव्यमिति तेनैव यातं सत्ययुगादौ तस्य ग्रहणाभाव एवेति कलावपि तादृशवैष्णवैरेव न तु शुद्धवर्णाश्रमिवैष्णवैरिति तदत्र दर्शयन्नाह ब्रह्मवैवर्त्तेऽखिले काशीकेदारमाहात्म्ये शिष्यं प्रति गुरुः मुद्रा तथोर्द्ध्वपुण्ड्रञ्च यैरङ्गीकृतमादरात् गुरुं मुद्रा प्रदातारं तदीयानेव पूजयेत् तत्सम्प्रदायरहितान् विप्रानपि न पूजयेत्। धार्य्यञ्च तुलसीकाष्ठमूर्द्ध्वपुण्ड्रञ्च नेतरत्॥ पञ्च यज्ञं पितृश्राद्धं नित्यनैमित्तिकादयः। त्याज्याः सर्वाः सम्प्रदायास्त्वनुक्तमपि नाच-रेत्॥ स्त्रीणामपि न दोषोऽस्तिसम्प्रदायेषु सङ्गमात्। भाषाप्रबन्धास्त्वधिकावेदेभ्य इति निश्चयेत्॥ आचार्य्यात् पुत्रिकां कृत्वा चान्ते वैकुण्ठमावसेत्। भाले मृल्लेपनं कण्ठे तुलसीकाष्ठधारणम्॥ एतावतावयं सर्वे कृतार्था नात्र संशयः।

किं पुनर्विष्णु पूजादिसम्प्रदाय प्रबोधकाः॥ इति वैष्णवानां स्वमतोपदेशः तथा च परमेश्वरतन्त्रेऽपि। शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि पाखण्डानां चरित्रकम्। इत्यादि-वञ्चनाधर्माः स्वमतस्थापनेरताः। वर्णावर्णम् न पश्यन्ति शिष्य सम्पादनेरताः। दूषयन्ति जनान् सर्वान् शैवमार्गेषु संस्थितान्। निन्दन्ति भस्मरुद्राक्षान् दोष-दुर्युक्तिदर्शनात् वयं श्रेष्ठा वयं मान्या वयं चोत्तमधर्मिणः। इति सर्वान् बोध-यन्ति विष्णुसेवानिदर्शनात् विष्णु सेवामिषेणापि द्रव्योत्पादन तत्पराः भूषयन्ति हरेर्देहं नाना शृङ्गारभूषणैः तत्तीर्थं दीयते सर्वान् दर्शनार्थं समागतान् वीणा-मृदङ्गवाद्यादि संयुतागीततत्पराः एवं नानाविधं कर्मकारकाभक्तिदर्शकाः तप्तमुद्रा दिकं चिह्नं नानामत निदर्शकाः साधुत्वेनमन्यमानास्तपस्विवेषधारिणः महा-त्मानश्च विख्याता स्वात्मज्ञानपरांमुखाः ज्ञानमार्गं दर्शयन्ति भक्तिमार्गं सुबोधकाः बाह्यदृष्टिं समाश्रित्य दासभावे सदारताः बोधयन्ति जनान् सर्वान् दासभावो विमुक्तिदः भ्रमंति सर्वदेशेषु शिष्यसम्पादनोत्सुकाः तर्कविद्या सुकुशला लोक-विभ्रमकारिणः मोहयन्तिजनान् सर्वान् दाम्भिकाचारदर्शनात् वेदेतरेषु धर्मेषु संस्थिताभक्तिपूर्वकम् वेदोक्तं नाचरिष्यन्ति तुलसीकाष्ठधारिणः गोपीचन्दन लिप्ताङ्गा ऊर्द्धपुण्ड्ररताः सदा श्वेतमृदधारकाः किञ्चिन्नानामतविभेदकाः वयं-धन्यतमालोके तुलसीकाष्ठधारणात् यज्ञोपवीतवन्नित्यं धारयन्ति द्विजाधमाः दरिद्रा या च न रता द्रव्योत्पादनतत्पराः मोहयन्ति जनान् सर्वान् भक्तिमार्ग-प्रबोधनात् भाषासम्पादिताचारा वेदमार्गपराङ्मुखाः शूद्राधमावैस्वात्मानं मन्य-मानोद्विजाधिकम् कल्पिताचारनिरताः स्वेच्छाधर्मानुवर्त्तिनः द्विजादीनपि शिष्यत्वे कल्पयिष्यन्ति मोहिताः तामसाः क्रोधनिरतामूढ़ा पण्डितमानिनः केवलं विष्णु निरता अन्यदेवस्य निन्दकाः अन्यदेवार्चनद्वेषाः शिवनिन्दापरायणाः शिवा-र्चनेनरहिताः शिवव्रतपराङ्मुखाः वेदमार्गवहिर्भूताः शालिग्रामार्चनेरताः अव-सान क्रियाहीनादशगात्रविवर्जिताः ये सूतादि संस्काररहिता युक्तितत्पराः सर्वकर्मपरिभ्रष्टाः शिश्नोदरपरायणाः पाखण्डाः पण्डितम्मन्याः प्रोक्तास्तेवीर वैष्णवाः कल्पिताचारनिरताः श्रुतिस्मृतिपराङ्मुखाः स्वाभिमानविमूढ़ास्ते अत्याचारपरायणाः अधिकार विहीनावै वैष्णवाचारतत्पराः तेनाम धारकाः प्रोक्ता वैष्णवेषु द्विजोत्तमाः तत्वतो वैष्णवी दीक्षासंस्काररहिताश्चये वेषमात्रैक निपुणा धर्मव्यत्ययकारिणः वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाभ्रान्ताः पाण्डित्यदर्शकाः वर्त्तन्तेवैष्णवाभासाः श्रुतिस्मृतिविरोधकाः निन्द्यान्नात्याधमाश्चापि मन्यमाना

महात्मनाम् वीरवैष्णवसंज्ञाये पापभाजः पदे पदे तत्त्वती वैष्णवीदीक्षा विमुखा-पापमोहिताः शिवक्षेत्रेषु विमुखा अन्यक्षेत्रकृतादरा अभिमानरताः पापाः भवि-ष्यन्ति कलौयुगे एवं नानाविधाप्रोक्ताः पाखण्डावैष्णवेषु च पाखण्डसहितो यस्तु महापाप युतो हि सः पाखण्डरहितो यस्तु स वैष्णवसत्तमः पाखण्डवेदरहिताः कुम्भीपाके पतन्ति हि इत्येतादृशानां वैष्णवानां विष्णुनैवेद्यग्राह्यत्वम्। अन्येषां पूर्वोपपादितानां शुद्धवैष्णवानान्तु निषेध एवेति निश्चितम् यद्वा अन्यस्मै निवे-दितं मेनोपयुञ्ज्यात् मह्यं न निवेदयेदित्यर्थः इति प्रकारान्तरेण लापितेऽपि कथं चित् पूर्वार्द्धेऽत्रैव ग्रन्थे लिखितं रुद्रोपि निषद्वचनेन विरुद्धत्वादसङ्गतम् तदाह्योप-निषदि आनन्दनिर्भरेण शिवस्य नैवेद्यञ्च तद्ग्राहरन्नेव भक्षयति अतश्च शिव-निवेदितमेव विष्णुर्भक्षयतीति सिद्धम् यत्तु विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्त-रमिति तन्न यत्र देवतान्तर नमस्कार तन्मन्दिर प्रवेशनादिनिषिद्धं तत्रेतरदेवस्य तन्निवेदनान्नेन यजनंकूपाभावेपि कूपाज्जलमानीतमिति वदुज्ञेयम् तन्मतेन तत्रमानमाह नान्यदेवं नमस्कुर्य्यान्नविशेच्छिवमन्दिरं नान्यदेव कथालापं न कुर्य्यान्मन्त्रसंग्रहमिति यत्रेत्यादिनिषिद्धं तत्र पूजनं कथं भविष्यति तस्मात्तदङ्ग-देवता तदावरणान्तरगत तदवतारभूत देवतापूजनं भविष्यति नान्यदेवस्येति तत्रैवेदं वाक्यचरितार्थम् नान्यत्रेति यत्तुपितृभ्यश्चापि यद्देयमिति दर्शितं तद्विरु-द्धम् श्रौतस्मार्त्तधर्मस्थि पुरुषैर्वसुरुद्रार्करूपाणां पितृणां शिवतिर्माल्येनैव पिण्डादिकार्य्यम् न तु तन्निवेदनमन्तरा तत्र मानमाह श्राद्धकारिका उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं शव कर्पटं श्राद्धेसप्तपवित्राणि दौहित्र कुतपातिला इति यत्त विष्णोर्निवेदितान्नेन पितृश्राद्धं समाचरेदिति। तदसत् यतो वसुरुद्रार्करूपा एव पितरो विष्णुस्तु तत्र भृत्यवद्रक्षक एवातो भृत्याय निवेदितं प्रभुणा कथं ग्राह्यं न कथमपि रक्षकत्वेमानमाह अयं श्राद्धस्तु गोविन्दरक्षतां सर्वतो दिशीति ये पञ्चरात्राधिकारिणो वैष्णवास्तैः संकर्षणानिरुद्धादिरूपेभ्यः स्वपितृभ्यो विष्णो-र्निवेदितेन पिण्डं देयम् तन्मतम् श्रौतस्मार्त्तविरुद्धं पितृणां सङ्कर्षणादिरूपा-भावात् विष्णुश्राद्धाधिकारस्तु पतिता नामपमृत्युहतानां प्रायश्चित्ताधिकारिणां गरुड़पुराण प्रतिपादितानामिव वैष्णवधर्मविधिश्राद्धे केवलं वैष्णवानां निमन्त्रणं द्वादशनामभिश्च पूजनं तत्पंक्तिभोजनं तद्दानमात्रमेवं भूतदातृप्रतिग्रहीतार श्रशुचय एव तद्विषये एवविष्णोरुच्छिष्टस्य ऊर्द्धपुण्ड्रादेश्च चारितार्थ्यात् तथा विध-श्राद्धेत्रैवर्णिके तरवैष्णवानामेवाधिकारः न तु त्रैवर्णिकानाम् अतएव अपमृत्यु-

हतानानां नारायणबलिपर्णसरदाहं विनादाहादि क्रियानिषेधः तत्रादौ वैष्णव-श्राद्धं विहितम् तद्यथास्नानादिकं कृत्वा ततो गृहमागत्य तत्रत्रऽधिकाब्राह्मणाः अवनेजनपिण्डदानाचम्योदका वाहनस्वधावचनरहितं पावर्णश्राद्धविधिना विष्णु-श्राद्धं कुर्यात् तत्र सर्वेष्वपि द्विजेषु विष्णोरेव पूजनम् प्रथमं शिष्टैः संकल्पं कार्यम् देशकालादिसंकीर्त्य अङ्गीकृतप्रार्यश्चितांङ्गत्वेन विष्णु श्राद्धमहं करिष्ये इति संकल्प्यः शिलायांश्वेतचन्दनादिभिर्विष्णुं संपूज्य यथा शक्तिद्रव्यमादाय श्राद्धान्ननिष्क्रय-भूतद्रव्यं यथा नामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्योदातुमहमुत्सृजेत्तेन श्रीभगवान् पापहा विष्णुः प्रीयताम् ततोऽपमृत्युहतानां त्रैवर्णिकानां दाहादिक्रियाधिकारः तदधि-कारैर्नारायणबलिकर्मपर्णशरदाहंच कृत्वैकादशश्राद्धानिकुर्वीत तद्व्यवस्थागारुड़े दर्शिता अपमृत्युहतानामशौचदाहादिक्रियानिषेधात् तेषां विष्णु श्राद्धं तत्तद्भक्त-पूजनमात्रविधानञ्च यथाह निर्णय सिन्धौ वौधायनः कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं संविनिवेदयेत् अग्नौहुत्वातु तच्छेषं व्याहृतिभिः समाहितः यतीन् गृहस्थान् साधून् वा निमन्त्रद्वादशान् वरान् अभ्यर्च्यगंधपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः सम्भो-ज्यहव्येनानेन दक्षिणाञ्च निवेदयेत् त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मन्नं संयतेन्द्रियम् विष्णुं यथा तथाभ्यर्च्यपाद्यार्घैश्च विधानतः दद्यात्पुरुष सूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य्यभूतले भूर्भुवःस्वस्वधा युक्तैस्तस्तैर्दद्या-द्बलित्रयम् अत्र त्रयोदशद्विजश्रेष्ठमित्युक्त्वान्ये द्वादशत्रिदण्डिवैष्णवसाधवो ग्राह्याः तेऽद्यापिदक्षिणे श्रीरङ्गादितीर्थे रामानुजीयसंप्रदाये प्रसिद्धाः एवं वैष्णव-श्राद्धवत्तत्तर्पणमपि भिन्नमेवतदुक्तं हरिभक्तिविलासे सन्ध्योपासनकं कर्मपूर्वम् कृत्वा यथाविधिकृष्णपादोदकेनैव ततो देवादितर्पणम् तथास्कान्दे शिरसा विष्णु निर्माल्य-पादोकेनापि तर्पणम् पितॄणां देवतानाञ्च वैश्वदेवं समं मतम् इति तथा गारुड़े प्रेतकल्पे त्रिंशोऽध्यायः गरुड़ उवाच भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशङ्गताः कथं तेषां भवेन्मार्गः किं स्थानं कागतिर्भवेत् ॥१॥ किञ्च युक्तं भवेत्तेषां विधानं चापि कीदृशम् श्रीभगवानुवाच। तेषां मार्गस्त्रिधिस्थानं विविधं कथयास्यहम् ॥२॥ शृणु तार्क्ष्यपरं गोप्यं कृत्यं दुर्मरणे न यत् लङ्घनैर्येस्मृता इत्यादि दुर्मृत्यु हतानुक्त्वा तेन पापेन नरकान् भुक्त्वा प्रेतभागिनः इत्यनेन संदर्भेण ततो विधिमाह न तेषां कार येद्दाहं सूतकं नोदकक्रियाम् न विधानं मृताद्यञ्च न कुर्य्याद् ऊर्द्धदैहिकम् तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् सर्वलोकहितार्थाय शृणुपापभयापहम् ॥२॥ षण्मासं ब्राह्मणे दद्यात् त्रिमासं क्षत्रियेमृते। सार्द्धमासन्तु वैश्ये स्यात् सद्यः

शूद्रे विधीयते ॥ ३ ॥ गङ्गायामित्यादिभिः स्थलमुक्तम् कृष्णाग्रेकारयेद्विप्रैर्विधिं नारायणात्मकम् पूर्णे तु तर्पणं कार्य्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः सर्वौषधि कृतैश्चैव विष्णुमुद्दिश्यतर्पयेत् कार्य्यन्तु पुरुष सूक्तेन मन्त्रैर्वावैष्णवैरपि दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमितिस्मरेत् अनादिनि धनं देवं सततं प्रार्थयेत्सुधीःतत एकादश-श्राद्धान् कृत्वा यदन्यदपि तदपि तद्देवता योग्यब्राह्मणाय दद्यात् ऋग्वेदपाठके दद्याज्जातशस्य वसुन्धराम् यजुर्वेदमयेविप्रे गांचदद्यात् पयस्विनीम् सामगाय शिवोद्देशे प्रदद्याद्दस्त्रधौतकम् इत्यादि बहुविधिमुक्तमत्र पश्चात् पुत्तलं कार्य्यं सर्वौषधिसमन्वितम् पलाशस्य च वृन्तान्तं भागं कृत्वा च काश्यपेत्यादिभिः पुत्तलविधानमुक्तम् सर्वौषधियुतं प्रेतं पूजां कृत्वायथोचितम् साग्निकेनापि विधिना यज्ञपात्राणिविन्यसेत् शंनोदेवी पुनन्तुमि इमं मेवरुणेतिच प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालिग्रामशिलोदकैः विष्णुमुद्दिश्यदातव्या सुशीला गौपयस्विनी महा-दानानि देयानि तिलपात्रं तथैवच ततो वैतरणीदेया सर्वाभरणभूषिता कर्त्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मना प्रेतमोक्षं ततःकुर्य्याद्धरिविष्णुम् प्रकल्पयेत् अयं विष्णुरिति स्मृत्वा प्रेतं तं मृतमेवच अग्निदाहं ततःकुर्य्यात् सूतकन्तु दिन-त्रयम् दशाहान्तर्गताःपिण्डाः कर्त्तव्याविधिपूर्वकम् सर्वस्ववर्षविधिं कुर्य्यादेवं प्रेतः सुमुक्तिभाक् वैष्णवश्राद्धं पूर्वमुक्तम् निश्चितं पक्षिशार्दूलवर्षान्तेपिण्डमेलनम् सहपिण्डेकृतेप्रेतस्ततो यातिपराङ्गतिम् तन्नाम संपरित्यज्य ततः पितृगणोभवेत् इति प्रायश्चित्ताङ्गेन पतित व्रात्यापमृत्युहतानां वैष्णवश्राद्धविधानम् न तु श्रौत-स्मार्त्तधर्माधिकारिणामेतच्छ्राद्धाधिकारः यच्च वैष्णव संहितापञ्चरात्रशाण्डिल्य संहितान्तर्गतधर्माधिकारे पुरुषैरेव तत् कर्त्तव्यम् न तु श्रौतस्मार्त्ताधिकारिभि-स्तत्कार्य्यम् तत्राहमात्स्यः अष्टमाध्याये वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकालेतु धर्म-वित् एवं प्रतिमादि प्रतिष्ठापनेऽपि वर्ज्याः नैतद्दिशीलेन न नास्तिकेन न लिङ्गि-नास्थापनमत्रकार्य्यम् किम्भूतेन तर्हि श्रुतिस्मृतिपारगेण नित्यं गृहस्थधर्माभि-रतेन विप्रेणेति एवञ्चैवं विधैर्वैष्णव श्राद्धे तादृशानाम् तदधिकारः तत्र ग्रन्थेवसु-रुद्रादिरूपपितॄणां नाम मात्रस्यापि निषेधात् वसुरुद्रादिरूपपितृश्राद्धं विष्णु-निवेदितेन न कथमपि सम्भवतीतिस्पष्टतयाऽयातम् तथैवभारद्वाजसंहिताया मुक्तम् नातिसङ्गं परिचरेत् पित्रादीनथ वैष्णवान् रुद्रपितृदिगीशार्कतच्छक्ति-प्रसवादयः नित्यमभ्यर्चने वर्ज्याः कामोऽपि स्यान्नतन्मुख इति एवंच श्रुतिस्मृति-धर्माधिकारिणां वैष्णवश्राद्धनिषेधः पञ्चरात्रधर्माधिकारिणां वैष्णवानां श्रौतस्मा-

र्त्तविहित श्राद्धनिषेधस्तथा च परस्परविरोधादुभयोरैक्यकरणे सङ्करदोषः तस्मा-देवं महत्संकरदोषाच्छ्रौतस्मार्त्ताधिकारिणां विष्णुनिवेदितेन श्राद्धं न कार्य्यम् अतश्चपञ्चरात्रविहितधर्मः द्विजेतरविषयः तथा हि पुरा उपरिचरवसुसंज्ञकः महद्वसुः श्रियायुक्तः कश्चिद्राजा आसीत् तत्समये श्रीविष्णुरचितपञ्चरात्रधर्मो-गुप्तोवभूव तत्प्रमानं महाभारतवाक्यम् संस्थितेतु नृपे तस्मिन् शास्त्रमेतत्सनात-नम् अन्तर्धास्यति तत्सर्वमेतद्वः कथितं मयेति अद्यतनोपलब्धस्तु पञ्चरात्रधर्मः कल्पितत्वेन निन्दितत्वादग्राह्यः कल्पनायां मानमाह कूर्मपुराणे सात्वतो नाम-परमो विष्णुभक्तः प्रतापवान् महात्मादाननिरतो धनुर्वेदविदाम्बरः सनारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चनेरतः शास्त्रं प्रवर्त्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रितम् ॥ २ ॥ एवं विधवाक्यैः पञ्चरात्रागम अद्यः प्रमाणविषयः कश्चिनास्तीति गम्यते यच्च कल्पित मस्ति तदधिकारिणः कौर्मेकथिताः साम्बपुराणे च पञ्चरात्रं सात्वतमिति सात्वताः सङ्करजातीयाः एवमाचारादर्शेपि यथा कल्पितपञ्चरात्रधर्मोस्ति तथा वशिष्टसंहितायां दर्शितम् तथाहि तापादि पञ्च संस्कारा महाभागवतास्मृताः चक्रादिहेतिभिस्तप्तस्ताप इत्यभिधीयते संस्कारः प्रथमः प्रोक्तोद्वितीयः पुंड्रधार-णम् तृतीयो नामकरणं वैष्णवं पावनं परम् सार्थज्ञानं चतुर्थन्तु मन्त्रध्यानमुच्यते पञ्चमस्तुहरेः पूजापञ्चरात्रोक्तमार्गतः ॥ ३ ॥ तदीयार्चनपर्य्यन्तं हरेराराधनं स्मृतम्। इत्येवमादिसंस्कारैर्महाभागवतः स्मृतः ॥ ४ ॥ अन्ये त्ववैष्णवाः प्रोक्ता हीनास्तपादिवर्जिताः। तथाह्यवैष्णवाज्ञेयाः प्राकृताः पापकारिणः ॥ ५ ॥ वाद-शास्त्रेषु निपुणास्ते वै नरकगामिनः अवैष्णवत्वं विप्राणां महापातकसञ्ज्ञितम् ॥६॥ अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वकर्मसुगर्हितः रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डाली योनिमाप्नु-यात् ॥ ७ ॥ एतादृश पञ्चरात्र विहितधर्मं श्रौतस्मार्त्तविरुद्धत्वात्सद्भिर्त्यज-धर्मवत् त्याज्यमेवेति सिद्धम् एतादृशवैष्णवे यद्विष्णु निवेदितं तदप्यग्राह्यमिति च इति विष्णुविषयः।

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे चतुर्दशस्तरङ्गः।

## पञ्चदशस्तरङ्गः ।

तावत् सूर्य्यविषयः दिवानाथं देवं सकलजगतां दुष्कृत हरम् । तमीनङ्गमेशं श्रुतिपथगतप्रेरकवरम् । यजन्ते यं लोकाः दनुजसहिता- निर्जरवराः । भजेहं सर्वज्ञं कलि- मलहरं रुद्रवपुषम् ॥ तत्र साम्बपुराणम् तत्रापि द्वितीयोऽध्यायः सूत उवाच । वशिष्ठं स्वाश्रमासीन मृषिं राजा बृहद्बलः । रघुवंशोद्भवोऽपृच्छद्गुरुं निःश्रेय सम्परम् ॥ १ ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि परंब्रह्म सनातनम् । यस्मिन् न पुनरावृत्तिं प्राप्नुवन्तिमनीषिणः ॥ २ ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोथभिक्षुकः । य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतांकां यजेत्तु सः ॥ ३ ॥ कुतो ह्यस्यध्रुवः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसंपरम् । स्वर्गतश्चैव किं कुर्य्यादनेन च्यवतेपुनः ॥ ४ ॥ देवतानां हि को देवः पितॄणामपि कः पिता । यस्मात्परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि महामुने ॥ ५ ॥ कुतः सृष्टमिदं ब्रह्मन् विश्वं स्थावरजङ्गमम् । प्रलयंच कमभ्येति तद्भवान् वक्तु मर्हति ॥ ॥६॥ वशिष्ठ उवाच उद्यन् हि पश्यन् कुरुते जगद्वित्तिमिरं करैः नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो नराधिप ॥ ७ ॥ अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतो व्ययः तापयत्येषलोकां स्त्रीन् रश्मिभिरुल्बणैर्भ्रमन् ॥८॥ सर्वदेवात्मको ह्येष तपसां चानुभावनः । सर्वस्य जगतो नाथः कर्मसाक्षीविभावसुः ॥ ९ ॥ साक्षित्वेनैव भूतानि ते नैव सृजते पुनः । एकोभाति तपत्येषकर्षते च गभस्तिभिः ॥ १० ॥ एषधाताविधाता च भूतादि र्भूतभावनः । न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षय मण्डलः ॥ ११ ॥ पितॄणां हि पिता ह्येषदेवानामेषदेवता । ध्रुवं स्थानं भजन्नेष यस्य न च्यवते पुनः ॥ १२ ॥ सर्गकाले जगत्कृत्स्नमादित्यात् संप्रसूयते । प्रलये च तमभ्येति आदित्यं दीप्ततेजसम् ॥ १३ ॥ योगिनश्चान्ते सांख्याश्च देहंत्यक्त्वापुरातनम् । संशुद्धास्तु विशंत्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे ॥ १४ ॥ अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः वसन्त्याश्रित्यमुनयः संसिद्धा दैवतैःसह ॥ १५ ॥ गृहस्थाजनकाद्याश्च राजानो योगधार्मिकाः । बालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ वाणप्रस्थाश्च वर्णाश्चाभिक्षुः पञ्चशिखस्तथा योगमास्थायते सर्वे प्रविष्टाः सूर्य्यमण्डले ॥ १७ ॥ शुकोव्यासात्मजः श्रीमान् योगधर्ममवाप्यसः । आदित्य किरणान् पीत्वाह्य- पुनर्भवमास्थितः ॥ १८ ॥ शब्दमात्र श्रुतिमुखाद्ब्रह्मविष्णुशिवादयः प्रत्यक्षोऽयं

परोदेवः सूर्यस्तिमिरनाशनः॥ १९॥ तस्मादन्यत्रभक्तिर्हिमाकार्य्या शुभमिच्छ-
ताद्दृष्टेनवाध्यते यस्माददृष्टं नित्यमेव हि॥ २०॥ त्वयातः सततं राजन्नभ्यर्च्यो
भगवान्रविः। स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः॥ २१॥ इति
श्रीशाम्बपुराणे द्वितीयोध्यायः २। यः पिता सर्वदेवानां दैवतञ्चापि यः परम्।
यजंते देवतायन्तु पितृन् कान्यजते च सः॥ १॥ इति सञ्चिन्त्यमनसा तं देवं
नारदो व्रवीत्। नारद उवाच। वेदेषु च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयते॥ २॥
त्वमजःशाश्वतो धाता महाभूतमनुत्तमः। भूतं भव्यं भविष्यच्च त्वयि सर्वं प्रति-
ष्ठितम्॥ १०॥ चत्वारोह्याश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव च यजन्ते त्वामहरहर्नाना
मूर्त्तिंसमाश्रितम्॥ ११॥ पितामाता च सर्वस्य दैवतत्वं हि शाश्वतम्। यजसे
पितरं कत्वं देवञ्चापि न वेद्म हम्॥१२॥ अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम्।
त्वयिभक्तिमपिब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथा तथम्॥ १४॥ यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेय
मव्यक्तमचलं ध्रुवम् इन्द्रियैरिंद्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम्॥ १४॥ सह्यन्तरात्मा
भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते त्रिगुणव्यतिरिक्तोसौ पुरुषश्चेति विश्रुतः॥ १५॥
ह्यतेनैकात्मनां येन त्रैलोक्यमिदमात्मना। हिरण्यगर्भो भगवान् सवै बुद्धिरिति-
स्मृतः॥ १६॥ अशरीरः शरीरेषु सर्वेषु निवसत्यसौ। वसन्नपि शरीरेषु न सलि-
प्यति कर्मभिः॥ १७॥ ममान्तरात्मातवचये चान्ये देवसंज्ञिताः सर्वेषां साक्षि-
भूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्॥१८॥ सगुणोनिर्गुणोविश्वोज्ञान गम्यो ह्यसौ
स्मृतः। सर्वशः पाणिपादोऽसौ सर्वतोक्षि शिरोमुखः॥ १९॥ सर्वतः श्रुति-
मल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियमथोह्यसौ॥ २०॥ यथा
दीपसहस्राणि स च एकः प्रसूतये बुद्ध्यतेष यदात्मानं तदाभवति केवलः॥ २१॥
एकत्वं प्रलयेचास्य बहुत्वंच प्रवर्तनात्। नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावर-
जङ्गमम्॥ २२॥ ऋतेतमेकमीशानं भूतस्थावर जङ्गमम्। अक्षयश्चाप्यमेयश्च
सर्वगश्च स उच्यते॥ २३॥ तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम अव्यक्ताव्यक्त
भावस्थाः यासा प्रकृति रुच्यते॥ २४॥ तं योनिं ब्रह्मणोविद्धिनित्यं योऽसौ
मदात्मकः लोके च पूज्यते योऽसोदैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ २६॥ नास्तितस्मा-
त्परोह्यन्यः पितादेवोपिसात्विकः। आत्माहितः सविज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम्॥
२६॥ स्वर्गस्था अपि ये किञ्चित्तन्नमस्यंति देहिनः। तेतत्प्रसादाद्गच्छन्ति
तेनोद्दिष्टफलाङ्गतिम्॥ २७॥ तं देवाश्चाश्रमस्थाश्च नाना मूर्त्तिसमाश्रितः।
भक्त्यासंपूजयन्त्याद्यगतिश्चैषां ददाति सः॥२८॥ सहि सर्वगतश्चैवनिर्गुणश्चैव कथ्यते

एवं ज्ञात्वातमात्मानं पूजयामि सनातनम् ॥ २९ ॥ ये तु तद्भाविताल्लोका एक-
त्वञ्च समाश्रिताः। तमेव चैव ते सर्वे विशन्त्यव्ययमव्ययम् ॥ ३० ॥ एतदभ्यधिकं
तेषां यदेनं प्रविशन्त्युत। इति गुह्य समुद्देशस्तवनारदकीर्त्तितः ॥ ३१ ॥ अस्मद्भ-
क्त्यातु देवर्षेत्वयापि परमं श्रुतम्। सुरैर्वा मुनिभिर्वापि पुराणं येरिदं स्मृतम् ॥
३२ ॥ ते सर्वे परमात्मानं पूजयन्तिदिवाकरम्। इदमाख्यान मार्षेयं यन्मया
कीर्त्तितं तव ॥ ३३ ॥ न ह्यनादित्यभक्ताय त्वयादेयं कथञ्चन। यश्चैतच्छ्राव-
येन्नित्यं यश्चैतच्छृणुयान्नरः ॥ ३४ ॥ सं सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्रसंशयः।
मुच्येतार्त्तस्तथारोगान्मुने श्रुत्वा कथामिमाम् ॥ ३५ ॥ जिज्ञासुर्लभतेज्ञानं गति-
मिष्टान्तथैवच त्वरेणव्रजतेध्वानमिदं यः पठते पथि ॥ ३६ ॥ योयं कामयते
कामं सतं प्राप्नोत्यसंशयः। वशिष्ठ उवाच। एवमेतन्समाख्यातं नारदेन महात्मना
॥ ३७ ॥ मयापि च तवाख्यातं भक्त्याभानोरिदं नृप त्वया तत्सततं राजन्ना-
भ्यर्च्यो भगवान् रविः ॥ ३८ ॥ स हि धाताविधाता च सर्वस्य जगतो गुरुः।
इति साम्बपुराणे पञ्चमोऽध्यायः ५। नारद उवाच। विस्तरेणानुपूर्व्यां च सूर्यं
निगदितं शृणु ततः शेषान्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्वा विवस्वते ॥ १ ॥ अव्यक्तं कारणं
यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं प्रकृतिं चेति तमाहुस्तत्वचिन्तकाः ॥ २ ॥ गन्ध-
वर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्। यगद्योनी समुद्भूतं परब्रह्मसनातनम् ॥ ३ ॥
विग्रहः सर्वभूतानामव्यक्त मभवत्पुरा। अनाद्यं तमजं सूक्ष्मत्रिगुणं प्रभवाप्य-
यम् ॥४॥ असांप्रतमतिज्ञेयं तमाहुः परमं पदम्। तेनात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं
महात्मना ॥ ५ ॥ तस्येश्वरस्य प्रतिमाज्ञान वैराग्यलक्षणा धर्मैश्वर्यकृताबुद्धि-
र्ब्राह्मीतस्याभिमानिता ॥ ६ ॥ अव्यक्ताज्जायते तस्य मनसायदयदिच्छति चतु-
र्मुखस्य ब्रह्मत्वेकालत्वेचान्तकृद्भवः ॥ ७ ॥ सहस्रमूर्द्धापुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयं
भुवः सत्त्वं रजश्चब्रह्मत्वेकालत्वे च रजस्तमः ॥ ८ ॥ सात्विकं पुरुषत्वे च गुणा
वृतस्वयं भुवः त्रिधाविभज्यचात्मानं त्रैकाल्यं संप्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ सृजते ग्रसते चैव
वीक्षते च त्रिभिःस्वयम्। अग्रेहिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूते स्वयं भुवि ॥ १० ॥ आदि-
त्यात्त्वादि देवत्वादजातत्वादजः स्मृतः देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततःस्मृतः
॥ ११ ॥ सर्वसत्त्वाच्चलोकस्य अवश्यत्वाच ईश्वरः बृहत्वाच्चस्मृता ब्रह्मा
भूतत्वाद्भव उच्यते ॥ १२ ॥ याति यस्मान् प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः।
पुर्य्यान्तु शेते यस्माच्च तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ १३ ॥ नोत्पादनत्वात्पूर्वत्वात्सस्वय-
भूरिति स्मृतिः। हिरण्येन तु गर्भस्थो यस्माद्देवसमावृतः ॥ १४ ॥ तस्माद्धिरण्य-

गर्भेति सूर्य्यो देवो निगद्यते आपोनारा इति प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥१५॥ अयनन्तस्य तत्पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः। अरमित्यशेष सिद्धार्थे निपातः कविभिः स्मृतः। एकार्णवे पुरा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ १६ ॥ नारायणाख्यः पुरुषः सुष्वापसलिले तदा सहस्रशीर्षास्तु महान् सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिः सूर्य्याख्यतेजाः पुनरुच्यते रविः ॥ १८ ॥ आदित्य वर्णो भवनस्य गोप्ताह्यपूर्व एकः। पुरुषः पुराणः हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स इष्यते वै तमसः परस्तात् ॥ १९ ॥ इति श्रीसाम्बपुराणे पञ्चमोध्यायः। अथ नारद उवाच। आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं यदुनन्दन। भवत्यस्मात् जगत्सर्वं स देवासुर मानुषम् ॥ १ ॥ रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदेवौकसाम्। महाद्युति मताश्चैव तेजोऽयं सार्वलौकिकः ॥ २ ॥ सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः। सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥ ३ ॥ अग्नौचिप्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टे रन्नन्ततः प्रजा ॥ ४ ॥ सूर्य्यात् प्रसूयते सर्वं तत्रैव च प्रलीयते। भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निस्तौपुरा ॥ ५ ॥ यत्तं तद्ध्यायिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम्। अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ॥ ६ ॥ क्षणामूहूर्त्ता दिवसानिशापक्षास्तथैव च। मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च ॥ ७ ॥ तदादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या नविद्यते। कालादृतेन नियमो नाग्नेर्विहरणं क्रिया ॥ ८ ॥ ऋतूनामप्रतिभागाश्च पुष्पं मूलं फलं कुतः कुतश्च शस्य निष्पत्तिस्तृणौषधिगणाः कुतः ॥ ९ ॥ अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिविचेह च। जगत्प्रतापनस्तृते भास्करं वारितस्करम् ॥१०॥ नाहृष्या तपते सूर्य्योनाहृष्या परितुष्यति। नाहृष्यापरिसिद्धान्ते वारिणो दीयते रविः ॥ ११ ॥ वसन्ते कपिलः सूर्य्यो ग्रीष्मेकांच न सन्निभः। श्वेतोवर्षा सुवर्णेन पाण्डुः शरदिभास्करः ॥ १२ ॥ हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरेलोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः ॥ १३ ॥ ऋतुस्वभावजैर्वर्णै सूर्य्यः चेमे सुभिक्षकृत्। इति श्रीशाम्ब पुराणे सर्वव्यापकत्व वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः नारद उवाच। अथादित्यस्य नामानि सामान्यानीह द्वादश। द्वादशानपि पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः ॥ १ ॥ आदित्यः सवितासूर्य्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ॥२॥ रविर्द्वादशकश्चैव ज्ञेयः सामान्यनामभिः। विष्णुर्धात्ता भगः पूषामित्रेन्द्रो वरुणो यमः ॥ ३ ॥ विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्ज्जन्योद्वादशः स्मृतः। इत्येतेद्वादशादित्याः पृथक्त्वेन प्रकीर्त्तिताः ॥

४ ॥ अथ लिङ्गपुराणीय षष्टितमोध्यायः सूत उवाच। शेषाः पञ्चग्रहाज्ञेया ईश्वरा कामचारिणः। पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चन्द्रमाः स्मृतः ॥ १ ॥ शेषाणां प्रकृति सम्यग्वक्ष्यमाण निबोधत। सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ॥ २ ॥ नारायणं बुधं प्राहुर्देवज्ञान विदोजनाः। सर्वलोकप्रभुः साक्षाद्यमलोक प्रभुः स्वयम् ॥ ३ ॥ महाग्रहो द्विजश्रेष्टा मन्दगामीशनैश्वरः। देवासुरगुरु द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ॥ ४ ॥ प्रजापति सुतावुक्तौ ततः शुक्र बृहस्पती। आदित्य मूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः ॥५॥ भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं स देवासुरमानुषम् रुद्रेन्द्रोपेन्द्र चन्द्राणां विप्रेन्द्राग्निदिवौकसाम् ॥ ६ ॥ द्युतिर्द्युतिमता कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्। सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः ॥ ७ ॥ सूर्य्य-एव त्रिलोकेशो मूलं परमदैवतत्। ततः संजायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते ॥ ८ ॥ भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निसृतौ पुरा। अविज्ञेयो ग्रहो विप्रादीप्तिमान् सुप्रभोरविः ॥ ९ ॥ अत्र गच्छन्ति निधनं जायते च पुनः पुनः। क्षणामुहूर्त्तादि-वसाः निशापक्षाश्च कृत्स्नशः ॥ १० ॥ मासाः सम्वत्सराश्चैव ऋतवोथ युगानि च। तदादित्यादृतेह्येषा काल संख्या नविद्यते ॥ ११ ॥ कालादृतेन नियमो न दीक्षानाह्निकक्रमः। ऋतूनाञ्च विभागश्च पुष्पं मूलं फलं कुतः ॥ १२ ॥ कुतः शस्य विनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोऽपि च। अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिविचेहच ॥ १३ ॥ जगत्प्रतापसूतिभास्करं रुद्ररूपिणम्। स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशा-त्माप्रजापतिः ॥ १४ ॥ तपत्येषद्विजश्रेष्टा स्त्रैलोक्यं स चराचरम्। स एष तेजसां राशिः समस्त सार्वलौकिकः ॥ १५ ॥ उत्तमं मार्गमास्थाय रात्र्यहोभिरिदं जगत्। पार्श्वतोर्द्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥ १६ ॥ यथा प्रभाकरोदीपो ग्रहमध्येऽवलम्बितः। पार्श्वतोर्द्ध्वमधश्चैव तमोनाशयते समम् ॥ १७ ॥ तद्वत्सहस्र किरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः। सूर्य्योगोभिर्जगत्सर्वमादीपयति सर्वतः ॥ १८ ॥ रवेरश्मि सहस्रं यत्प्राङ्मया सं सुदा हृतम्। तेषां श्रेष्टाः पुनःसप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥ १९ ॥ सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च। विश्वव्यचाः पुन-श्चाद्यः सन्नद्धश्च ततः परः ॥ २० ॥ सर्वावसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्त्तितः। सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु दक्षिणाराशिमैधयत् ॥ २१ ॥ न्यगूर्द्ध्वधः प्रचारोऽस्य सुषुम्णा परिकीर्त्तितः। हरिकेशः पुरस्ताद्यो ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ॥ २२ ॥ दक्षिणे विश्वकर्मा च रश्मिर्वर्द्धयते बुधम्। विश्वव्यचास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः ॥ २३ ॥ सन्नद्धश्चतुयोरश्मिः स योनिर्लोहितस्य तु षष्ठः सर्वावसूरश्मि स

योनिस्तु वृहस्पतिः॥ २४॥ शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट्। एवं सूर्य्यं प्रभावेण नचत्र ग्रहतारकाः॥ २५॥ दृश्यन्ते देवताः सर्वाः विश्वश्चेदं पुनर्जगत्। न चीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नचत्रता स्मृता॥ २६॥ इति श्रीलिङ्गे महापुराणे पूर्वभागेषष्टितमोऽध्यायः ६०। अथ सौर प्रथमाध्याये मनुरुवाच। नमो नमो वरेण्याय वरदायां शुमालिने। ज्योतिर्मयनमस्तुभ्यमनन्ताया जितायच॥ १॥ नमो धर्माय हंसाय जगज्जन न हेतवे नरनारी शरीराय नमोमी दुष्टमायते॥२ प्रज्ञानायाखिले शायसमाख्यायत्रिमूर्त्तये। नमो व्याहृति रूपाय त्रिलचाया शुगामिने॥ ३॥ हर्य्यश्वाय नमस्तुभ्यं नमो हरितवाहवे एकलच द्विलचाय बहुलचायदण्डिने॥४॥ एक संस्थद्विसंस्थाय बहु संस्थायते नमः। शक्तित्रयाय शुक्लाय रवये परमेष्ठिने॥ ५॥ त्वं शिवस्त्वं हरिर्देवस्त्वं ब्रह्मात्वं वृहस्पतिः। त्वमोंकारो वषट्कारः स्वधास्वाहात्वमेव हि॥६॥ त्वामृते परमात्मानं न तत्पश्यामि दैवतम् एवं स्तुत्वा मनुः प्राह भगवन्तं त्रयीमयम्॥ ७॥ मुनिभिः सहधर्मात्मा सम्यग् दर्शनकाङ्चिभिः। मनुरुवाच। किं तच्छ्रेयस्करं तत्वं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्॥ कस्माद्विश्वमिदं जातं कस्मिन्वालयमेष्यति। कस्य ब्रह्मादयो देवा वशेत्तिष्ठन्ति सर्वदा॥ ८॥ तदेक मथवानेकमुभयं वा वद प्रभो। केनवा ज्ञायते सम्यग् यमश्च द्वतीतिवत्॥ १०॥ ज्ञाने तस्मिंस्तु किं रूपं तस्य ज्ञानं किमात्मकम्। चरितं तस्य किं तात किं तीर्थं तदधिष्ठितम्॥ ११॥ केषामनुग्रहस्तस्य तीर्थे निवसतां प्रभो। लचणञ्च पुराणानां व्रतानाञ्च क्रमो यथा॥ १२॥ वर्णानामाश्रमाणाञ्च वर्णाचारविधिः कथम्। श्राद्धं कथं वा क्रियते प्रायश्चित्तविधिः कथम्॥ १३॥ एतत्सर्वं हि भगवन् पृष्टं वक्तुमिहार्हसि। एवं मनोर्वचः श्रुत्वा भगवान् भास्करो द्विजाः। यत्पृष्टं तदशेषेण वक्तुं समुपचक्रमे॥ १४॥ इति श्रीब्रह्मपुराणोपपुराणे श्रीसौरे सूत शौनकसंवादे नैमिषारण्यप्रशंसादिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः। मुनय ऊचुः। भूयोपि कथयास्माकं कथां सूर्य्यं समाश्रितां न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तः सुखदां कथाम्॥ १॥ योयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभवोस्य कुतः प्रभो॥ २॥ ब्रह्मोवाच तमो भूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे प्रकृते र्गुणहेत्वर्थः पूर्वं बुद्धिरजायत॥ ३॥ अहङ्कारस्ततो यज्ञे महाभूतप्रवर्त्तकः वायुग्निरापखं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत॥ ४॥ तस्मिनण्डे त्विमेलोकाः सप्तचैव प्रतिष्ठिताः पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्राश्चैव सप्तभिः॥ ५॥ तत्रैवावस्थितोह्यासो दहं विष्णुर्महेश्वरः

विमूढास्तामसा सर्वंप्रध्यायन्तितमीश्वरं ततोधिष्णामहातेजा: प्रादुर्भूतस्तमोनुदः ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञात: सर्वदेवता: ॥ ८ ॥ श्रुत्वा च परमात्मानं सर्वे एव पृथक् पृथक् दिव्याभिस्तुतिभिर्देव स्तुतोऽस्माभिस्तदेश्वर: ॥ ९ ॥ आदि देवोसिदेवानामैश्वर्य्यात्परमेश्वर: आदिकर्त्ता सिभूतानां देवदेव दिवाकर ॥१०॥ जीवन: सर्वभूतानां देवगन्धर्वरक्षसां त्वं ब्रह्मात्वं महादेव: त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापति: ॥ ११ ॥ वायु: सोमश्च इन्द्रश्च विवस्वान् वरुणस्तथा त्वं काल: पालक: सृष्टि कर्त्ता हर्त्ता प्रभुस्तथा ॥ १२ ॥ सरित: सागरा: शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च प्रलय: प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्त सनातन: ॥ १३ ॥ ईश्वरात् प्रभवो विद्याविद्याया: परत: शिव: शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर: ॥ १४ ॥ सर्वत: पादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखं सहस्रांशु: सहस्राक्ष: सहस्रचरणे क्षण: ॥ १५ ॥ भूतादिर्भूर्भुवस्वश्च मह: सत्यं तपोजन: सर्वप्रदीप दीव्यं सर्वलोक प्रकाशकम् ॥ १६ ॥ त्वं निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्यते नम: सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभि: ॥ १७ ॥ स्तुतस्य परमं यस्तु यद्रूपं तस्य ते नम: वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् ॥ १८ ॥ सर्वदेवाधिदेवस्य यद्रूपं तस्यते नम: विश्वकृद्विश्वभूतञ्च वैश्वानरसुरार्चितम् ॥ १९ ॥ विश्वस्थितिमवेद्यञ्च यद्रूपं तस्यते .नम: अविज्ञेयमनालक्ष्य मध्यात्मगतिमव्ययम् ॥ २० ॥ अनादिनिधनञ्चैव यद्रूपं तस्यते नम: नमो नम: कारण कारणाय नमोनम: पापविमोचनाय ॥ २१ ॥ नमो नमस्ते दिति वन्दिताय नमोनमो रोग विनाशनाय नमोनम: सर्ववर प्रदायनमो नम: सर्वसुख प्रदाय ॥ २२ ॥ नमोनम: सर्वधनप्रदाय नमो नम: सर्वमतिप्रदाय.स्तुत: ,स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थित: ॥ २३ ॥ उवाच वाचाकल्याणाकोवरोव: प्रदीयतां देवा ऊचु: तवाति तेजसारूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत् ॥ २४ ॥ सहनीयं भवत्वेव हिताय जगत: प्रभो एव मस्त्विनिसो प्युक्तो भगवान्दिनकृद्विभु: ॥ २५ ॥ लोकानां कार्य्यसिद्ध्यर्थं घर्मवर्ष हिमप्रद: तत: सांख्याश्च योगाश्च येचान्ये मोक्षकांक्षिण: ॥ २६ ॥ ध्यायन्तो ध्यानिनां देवसुदयस्थं दिवाकरं सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकै: सर्वन्तु तरते पापं देवमर्कं समाश्रिता: अग्निहोत्राश्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहु दक्षिणा: ॥ २८ ॥ भानोर्भक्ति नमस्कारात् कलां नार्हन्ति षोड़शीं तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ ३० ॥ पवित्रञ्च पवित्राणां प्रपद्यध्वं दिवाकर: शक्राद्यै: संस्तुतं देवं ये नमस्यन्ति भास्करं सर्वकल्मषनिर्मुक्ता: सूर्य्यलोकं जयन्ति ते इत्यादि ब्रह्मपुराणे अध्याय: २८।

एवं सूर्य्यं प्रशंस्य तत् सृष्टिकालनिर्धारणमाह विष्णु ब्रह्मणोऽन्तरे सूर्य्यश्चतुर्व्यूहैः स्वसृष्टि सुखाद्यपालयति प्रत्यवसाने स्वयमेव हि अथास्य भक्तौ पिप्राक् शिवमभ्यर्च्य निवेद्य च ततस्तेनैव द्रव्येण सूर्य्यमभ्यर्च्य निवेद्य च स्वयमश्नीयात् रुद्रनिवेदनमन्तरानसूर्य्यमभ्यर्च्यान्न च निवेदन तद्भक्तैर्नापि कार्य्यं किमुत। इतर भक्तेनेति वाच्यम् परन्तु तच्छतांशञ्चण्डाय निष्काश्यैवस्वयमश्नीयान्नचण्डात् प्रागिति अत्रांशे मानमाहतोड़लतन्त्रे शैव वैष्णवदौर्गार्कगाणपत्येन्द्रसम्भवाः आदौ शिवं पूजयित्वापश्चादन्यं प्रपूजयेत् ॥ १ ॥ आदौलिङ्गं पूजयित्वा यदिचान्यं प्रपूजयेत् तत्फलं कोटिगुणितं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ २ ॥ अन्यदेवं पूजयित्वा शिवं पश्चाद्यजेद् यदि तस्य पूजाफलं सर्वं भुज्यते यचराचसैरिति गौतमी तन्त्रेऽपि च गणेशेवक्र तुण्डाय सूर्य्ये चण्डांश वेर्पयेत् विष्णौ तु विष्वक् सेनाय शिवे चण्डेश्वराय च १ शक्तुरुच्छिष्टंशेषिकायै दद्यादर्चनसिद्धये अथागमकल्पद्रुमेषट्पञ्चाशतंपटले पञ्चदेवता पूजायां सूर्य्यनिवेद्यवस्त्वाह कृत्वा तण्डुलचूर्णानिससिताज्यमधूनि च दद्यात् सूर्य्यायनैवेद्यं पायसान्नञ्च भूतये तथादेवी भागवते एकादशस्कन्धे नारायणनारदसम्वादे निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् राज यक्ष्माभि भूतश्च प्राशयेच्छान्ति माप्नुयात् रणवीरव्रत रत्नाकरेऽपि च सर्वोपचारैः सूर्य्यं संपूज्य पायसादिनैवेद्यञ्च दत्त्वा ब्राह्मणान् सदन्नेन सन्तर्प्य च दिवसस्य चतुर्थभागे स घृतमेकमेव ग्रासं भक्षयेत् अवशिष्टञ्चान्नं परित्यजेत् ब्राह्मणानुमत्या स घृतमेवावशिष्टमन्नं भुञ्जीत एवं प्रतिमासे शुक्लप्रतिपदिव्रतं कुर्य्यात् इति विधिवाक्यानि अथनिषेधविषयं साम्बपुराणे नारदः न द्विजाः परिगृह्णन्ति देवस्यात्मीकृतं धनम् विद्यते च धनं यत्र गुरुश्चायं प्रतिग्रहः देवचर्य्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते अविज्ञाय च कुर्वन्तिये क्रियालोभमोहिताः ॥ २ ॥ अपंक्तेयाभवन्तो इतिवै देवलकाद्विजाः अविज्ञानविधानेये ब्राह्मणा लोभमोहिताः ॥ ३ ॥ देवस्वमुपयोक्ष्यन्ति पतितास्ते भवन्ति हि मर्हितं मानवं शास्त्रमप्रशंसन्तिते द्विजाः ॥ ४ ॥ देवस्वं ब्राह्मण स्वञ्चयो लोभादुपजीवति स पापात्मा परेलोके गृध्रोच्छिष्टे न जीवति ॥ ५ ॥ इति सूर्य्ये निवेदित ग्रहणाधिकारिणोदर्शिता आचारादर्शे विप्रेभ्यस्त्वत तद्देयं ब्रह्मणेयन्निवेदितम् वैष्णवं सात्त्वतेभ्यश्च भस्माङ्गेभ्यश्च शाम्भवम् २। सौरमङ्गेभ्यः शाक्तेभ्यस्तापने यन्निनेदितम् स्त्रीभ्यश्च देयं मातृभ्यो यत्तु किञ्चिन्निवेदितम् ॥ २ ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो यत्तु दीनेषु निक्षिपेत्। इति

सूर्य्यस्य भक्ताः सौरास्तेऽपि पूर्वं शिवं निवेद्य तत आदित्यश्च निवेद्यततश्चण्डद्रव्यं वै निष्काश्यस्वयंभुजीरन्। अथ सूर्य्यभक्त लक्षणमाह साम्बपुराणे सप्तत्रिंशो ऽध्यायः। साम्बनारदसम्वादे कथञ्चक्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति भक्तिं श्रद्धां समाधिञ्च कथ्यमानां निबोधमे ॥ १ ॥ मनसो भावना भक्तिरिच्छा श्रद्धा च कथ्यते ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणु भक्तिविकल्पना ॥ २ ॥ तत्कथायां रमे-द्यस्तु सर्वभक्तः सनातनः नित्यन्तु तन्मनाश्चैव देवपूजारतं सदा ॥ ३ ॥ तत्कर्म्म कुर्व्वेद्यस्तु सर्वभक्तः सनातनः। देवार्थं क्रियमाणानि यः कर्म्माण्यनुमन्यते ॥ ४ ॥ कीर्त्तनाद्दाथरोमाञ्चीसर्वभक्त तरोनरः नाभ्यसूयेच्च तद्भक्तं न वन्याच्चान्य-देवताम् ॥ ५ ॥ आदित्यव्रतधारीच सर्वभक्ततरो नरः। एवं विधिक्रियाभक्तिः सदाकार्य्या विजानता ॥ ५ ॥ गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जिघ्रन्नश्नंश्च निमिषं तथा। यः स्मरेद्भास्करं नित्यं सर्वभक्त तरोनरः ॥ ७ ॥ भक्त्या समाधिनाचैव शुद्धेन मनसा तथा। क्रियते नियमो यैस्तु दानं वा यत्प्रदीयते ॥ ८ ॥ प्रतिगृह्णन्ति तद्देवामनुष्याः पितरस्तथा। पत्रं पुष्पं फलं तोयं भक्त्या यत्समुपाहृतम् ॥ ६ ॥ प्रतिगृह्णन्तितद्देवानास्तिकान् वर्जयन्ति च। भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचार संयुता ॥ १० ॥ इति सूर्य्यविषयः समाप्तः।

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे पञ्चदशस्तरङ्गः।

---

## षोड़शस्तरङ्गः।

अथ ब्रह्मविषयः। चतुर्मुखम् चिदानन्दम् लोकवीजं सनातनम्। सर-स्वत्यायुतन्देवं प्रणमामि पुनःपुनः ॥ १ ॥ जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवं निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिं गताः। तुष्टुवुः स्पष्टवर्णार्थैर्वचोभिः कमलासनम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः। त्वमोङ्कारस्याङ्कुराय प्रसूतो विश्वस्यात्मानन्त-भेदस्य पूर्वम्। सम्भूतस्यानन्तरं सत्त्वमूर्त्ते संहारेच्छोस्ते नमोरुद्रमूर्त्ते ॥ ७ ॥ व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिम्ना तस्मादण्डात् स्वाभिधानादचिन्त्यः। द्यावा-पृथिव्योरूर्द्ध्वखण्डाधराभ्यां ह्यण्डादस्मात् त्वं विभागं करोषि ॥ ८ ॥ व्यक्तं मेरौ यज्जनायुस्तवाभूदेवं विद्मस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति। व्यक्तं देवाजन्मनः शाश्वतस्य

द्यौस्ते मूर्द्धा लोचने चन्द्र-सूर्य्यौ ॥ ९ ॥ व्याला: केशा: श्रोत्ररन्ध्रा दिशस्ते पादौ भूमिर्नाभिरन्ध्रे समुद्रा: । मायाकार: कारणं त्वं प्रसिद्धो वेदै: शान्तो ज्योतिषा त्वं विमुक्त: ॥ १० ॥ वेदार्थेषु त्वां विवृण्वन्ति बुद्धा हृत्पद्मान्त: सन्निविष्टं पुराणम् । त्वामात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति सांख्यैर्यास्ता: सप्त सूक्ष्मा: प्रणीता: ॥११॥ तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता तस्यां तस्यां गीयसे वै त्वमन्तम् । दृष्टाभूत्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार देवैर्भावा: कारणै: कैश्चिदुक्ता: ॥ १२ ॥ सम्भूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे भूयस्तां तां वासनां तेऽभ्युपेयु: । त्वत्सङ्कल्पेनान्तमायाभिगूढ: कालो मेघो ध्वस्तसंख्याविकल्प: ॥ १३ ॥ भावाभावव्यक्तिसंहारहेतुस्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्त्तासि चात्मन् । येऽन्ये सूक्ष्मा: सन्ति तेभ्योऽभिगीत: स्थूला भावाश्चावृतारश्च तेषाम् ॥ १४ ॥ तेभ्य: स्थूलस्तै: पुराणै: प्रतीतो भूतं भव्यञ्चैवमुद्भूतिभाजाम् । भावे भावे भावितं त्वा युनक्तियुक्तं युक्तं व्यक्तिभावाद्विरस्य । इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्यस्त्राता गोप्ता नो भवानन्तमूर्त्ति: ॥ १५ ॥ विरिञ्चिममरा: स्तुत्वा ब्रह्माणमविकारिणम् । तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थ-सम्प्राप्तिप्रार्थनास्तत: ॥ १६ ॥ एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादं परमं गत: । अमरान् वरदेनाह वामहस्तेन निर्दिशन् ॥ १७ ॥ इति श्रीमत्स्यपुराणे १५४ ब्रह्मस्तुति: । पद्मपुराणे पञ्चमे सृष्टि खण्डे सृष्टिप्रकरणे द्वितीयाध्याये । पुलस्त्य उवाच । पर: पराणां परम: परमात्मा पितामह: रूपवर्णादिरहितो विशेषेण विवर्जित: ॥ ८७ ॥ अपि वृद्धि विनाशाभ्यां परिणामविजन्मभि: । गुणैर्विवर्जित: सर्वै: सभातीति हि केवलम् ॥ ८४ ॥ सर्वत्रासौ समस्थापि वसत्यनु यमोमत: । भावयन् ब्रह्मरूपेण विद्वद्भि: परिपठ्यते ॥ ८५ ॥ तंगुह्यं परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण संस्थितम् ॥ ८६ ॥ तं नत्वाहं प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिं चकारह । पूर्वं तु पद्मशयनादुत्थाय जगत: प्रभु: ॥ ८७ ॥ गुणव्यञ्जन सम्भूत: सर्गकाले नराधिप । सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधामहत् ॥ ८८ ॥ प्रधान तत्त्वेन समं तथा वीजादिभिर्वृतम् वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामस: ॥ ८९ ॥ त्रिविधोयमहङ्कारो महत्तत्वादजायत । भूतेन्द्रियाणां पञ्चानां तथा कर्मेन्द्रियैस्सह ॥९०॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एकैकस्य स्वरूपेण कथयामि यथोत्तरम् ॥ शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिर्वै समावृणोत् बलवानेव वायुस्तस्य स्पर्शोगुणो मत: ॥ ९२ ॥ ततो वायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्जह । ज्योतिरूपेण तं वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥९३॥ स्पर्शरूपस्तु वै वायुरूपमात्रं समावृणोत् ज्योतिषापि०

विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्जह ॥ ९४ ॥ संभवन्ति ततोऽम्भांसि रूपमात्रं समाहरणीत् विकुर्वाणा निचाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ ९५ ॥ संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धोमतो गुण:। तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥ ९६ ॥ एकादशमनश्चात्र देवावैकारिका: स्मृता:। त्वक् चक्षुर्नासिकाजिह्वाश्रोत्रमत्र च पंचमम् ॥ ९७ ॥ शब्दादिज्ञानसिद्ध्यर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै। पायूपस्थं हस्तपादौ कीर्त्तिता वाक् च पञ्चमी ॥ ९८ ॥ विसर्गशिल्पगत्युक्तिर्गुणदोषौ च कथ्यते आकाश वायु तेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ॥ ९९ ॥ शब्दादिभिर्गुणैर्वीरयुक्तानीत्युत्तरोत्तरैः। शान्ताघोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृता: ॥ १०० ॥ नाना वीर्य्यापृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना नाशक्नुवन् प्रजा: स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नश: ॥ १०१ ॥ समेत्यान्योन्य संयोगात् परस्य रसमाश्रयात् एक संहार लच्याश्च संप्राप्यैक्यमशेषत: ॥ १०२ ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च व्यक्तानुग्रहणे तथा महदादयो विशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्ति वै॥१०४॥ तत्क्रमेण विहत्तं तु जलवुद्‌बुद्वत्समम्। तत्राव्यक्त स्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपी जनार्दन: ॥ १०४ ॥ ब्रह्माब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थित:। मेरुरुल्वमभूतस्य जरायुश्च महीधरा: ॥१०५॥ गर्भोदिकं समुद्राश्च तस्याऽनृशस्य महात्मन:। तत्र द्वीपा समुद्राश्च सज्योतिर्लोक संग्रह: ॥१०६॥ तस्मिन्नण्डेऽभवन्वीरसदेवासुर मानुषा: वारिवन् ह्यनिलाकाशैर्हत्तैर्भूतादिना वह्नि: ॥१०७॥ वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा अव्यक्तेनाऽऽवृतो राजंस्तै: सर्वै: सहितो महान् ॥ १०८॥ एभिरावरणै: सर्वै: सर्वभूतैश्च संयुतम्। नारिकेल फलं यद्वद्बीजं वाह्यफलैरिव ॥१०९॥ ब्रह्मा स्वयञ्च जगतो विसृष्टौ सं प्रवर्त्तते सृष्टिंच यात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ॥११०॥ स संज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दन:। सत्त्वभुग् गुणवान् देवो ह्यप्रमेय पराक्रम: ॥ १११ ॥ तमोद्रेकच्च कल्पान्ते रूपं रौद्रं करोति च। राजेन्द्राखिलभूतानि भक्ष्यत्यतिभीषण: ॥११२॥ भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते। नागपर्य्यङ्कशयने शेते सर्वस्वरूपधृक् ॥११३॥ प्रवुद्धश्च पुन: सृष्टिं प्रकरोति च रूप धृक्। सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मक: ॥११४॥ स्रष्टासृजति चाऽऽत्मानं विष्णु: पाल्यञ्च पातिच। उपसंह्रियते चापि संहर्त्ता च स्वयं प्रभु: ॥११५॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। स एव सर्वभूतेशो विश्वरूपो यतोऽव्यय: ॥११६॥ सर्गादिकं ततोऽस्यैव भूतस्थमुपकारकम्। स एव सृज्य: स च सर्ग कर्त्ता स एव पाल्यं प्रतिपाल्यते गत: ॥११७॥ ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्त्तिर्ब्रह्मावरिष्ठो वरदो वरेण्य:।

इति तत्रैकदा भगवान् आदित्यो ब्रह्मसभां दृष्टा मर्त्यलोके मानुषरूपेण चरन् तज्जिज्ञासु नारदाय उपदिदेश वर्ष सहस्रसाध्यं व्रतं कृत्वा यथा नारदः सूर्य्यद्वारागत्वाददर्श तदाह महाभारते सभापर्व्वणि एकादशाध्याये। ततः स भगवान् सूर्य्यो मामुपादाय वीर्य्यवान्। आगच्छतां सभां ब्राह्मीं विपाप्मा-विगत क्लमः॥ १॥ एवं रूपेति सा शक्या न निर्देष्टुं नराधिप। क्षणेन हि विभर्त्यन्यदनिर्देश्यं वपुस्तथा॥२॥ न वेदपरिमाणं वा संस्थानं चापि भारत। न च रूपं मया तादृक् दृष्टपूर्वं कदाचन॥ ३॥ सुसुखा सा सदा राजन् न शीता न च घर्मदा। न क्षुत्पिपासेन ग्लानिं प्राप्यतां प्राप्नुवन्त्युत॥ ४॥ नाना रूपैरिव कृतामणिभिः सासुभास्वरैः। स्तम्भैर्नच धृतासातु शाश्वती न च साक्षरा॥ ५॥ दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभैः। अतिचन्द्रञ्च सूर्य्यञ्च शिखिनश्च स्वयं प्रभा॥ ६॥ दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम्। तस्यां स भगवानास्ते विदधद्देवमायया॥ ७॥ स्वयमेको निशं राजन् सर्वलोक पितामहः। उपतिष्ठन्तिचाप्येनं प्रजानां पतयः प्रभुम्॥ ८॥ दक्षः प्रचेता पुलहोमरीचिः कश्यपः प्रभुः। भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च गौतमोथ तथाङ्गिराः॥ ९॥ पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्दमस्तथा अथर्वांगिरसश्चैव वालखिल्यामरीचयः॥ १०॥ मनोऽन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं महीशब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो-गन्धश्च भारत॥ ११॥ प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत्कारणं भुवः। अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्य्यवान्॥१२॥ जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्त्तश्च्यवनस्तथा दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः॥ १३॥ सनत्कुमारो भगवान् योगा-चार्य्यो महातपाः। असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्ववित्॥ १४॥ ऋषभो-जितशत्रुश्च महावीर्य्यस्तथा मणिः। आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो देहवांस्तत्रभारत॥ १५॥ चन्द्रमाः सहनक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् वायवः क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एवच॥ १६॥ मूर्त्तिमन्तो महात्मानो महाव्रतपरायणाः। एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपस्थिताः॥ १७॥ अर्थोधर्मश्च कामश्च हर्षोद्वेषस्तपो दमः। आयान्तितस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः॥ १८॥ विंशतिः सप्तचैवान्ये लोक-पालाश्च सर्वशः। शुक्रो बृहस्पतिश्चैव बुधोङ्गारक एवच॥ १९॥ शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैवच। मन्त्रो रथन्तरश्चैव हरिमान् वसुमानपि॥ २०॥ आदित्याः साधिराजानो नामद्वन्द्वैरुदाहृताः। मरुतो विश्वकर्माच वसवश्चैव भारत॥ २१॥ तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ। ऋग्वेदः सामवेदश्च-

७

यजुर्वेदश्च पाण्डव ॥ २२ ॥ अथर्व वेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैवहि। इतिहासो
पवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ २३ ॥ ग्रहयज्ञाश्च सोमश्च देवताश्चापि सर्वशः ॥
सावित्री दुर्गतरणीवाणी सप्तविधा तथा ॥ २४ ॥ मेधा धृतिः स्मृतिश्चैव प्रज्ञा-
बुद्धिर्यशः क्षमा सामानि स्तुतिशास्त्राणि गाथाश्च विविधास्तथा ॥ २५ ॥ भाष्याणि
तर्कयुक्तानि देहवन्ति विशांपते। नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिक-
कारिकाः ॥ २६ ॥ तत्र तिष्ठन्ति तेपुराया येचान्ये गुरुपूजकाः क्षणालवामुहूर्त्ताश्च
दिवा रात्रिस्तथैवच। अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट्च भारत ॥ २७ ॥ संवत्सरा
पञ्चयुगमहोरात्रश्चतुर्विधः। कालचक्रञ्च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥२८॥ धर्म
चक्रं तथाचापि नित्यमास्ते युधिष्ठिर। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सुरसा विनता इरा ॥
२९॥ कालिका सुरभीदेवी सरमा चाथगौतमी। प्रभा कद्रुश्च वैदेव्यौ देवतानाञ्च
मातरः ॥३०॥ रुद्राणी श्रीश्च लक्ष्मीश्च भद्राषष्ठी तथा परा। पृथिवीगां गतादेवी
ह्रीस्वाहा कीर्त्तिरेवच ॥३१॥ सुरा देवी शची चैव तथा पुष्टिररुन्धती। संवृत्ति-
रासा नियतिः सृष्टिर्देवी रतिस्तथा ॥३२॥ एताश्चान्याश्च वै देव्य उपतस्थुः प्रजाप-
तिम्। आदित्या वसवो रुद्रामरुतश्चाश्विनावपि ॥३३॥ विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पित-
रश्च मनोजवाः। पितॄणाञ्च गणान्विद्धि सप्त वै पुरुषर्षभः ॥ ३४ ॥ मूर्त्तिमन्तो
वै चत्वारस्त्रयश्चाप्य शरीरिणः। वै राजाश्च महाभागा अग्निष्वाताश्च भारत ॥
३५ ॥ गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः। सोमपा एक शृङ्गाश्च
चतुर्वेदाः कलास्तथा ॥ ३६ ॥ एते चतुर्षुवर्णेषु पूज्यन्ते पितरो नृप। एतैराप्या-
यितैः पूर्वं सोमश्चाप्यायते पुनः ॥ ३७ ॥ एते ते पितरः सर्वे प्रजापतिमुपस्थिताः।
उपासते च संहृष्टा ब्रह्माणममितौ जसम् ॥ ३८ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च दानवा
गुह्यकास्तथा। नागाः सुपर्णा पशवः पितामहमुपासते ॥ ३९ ॥ स्थावरा
जङ्गमाश्चैव महाभूतास्तथा परे। पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदो यमः ॥ ४० ॥
महादेवः सहोमोत्र सदा गच्छति सर्वशः। महासेनश्च राजेन्द्र सदोपास्ते
पितामहम् ॥ ४१ ॥ देवो नारयणस्तस्यां तथा देवर्षयश्चये ऋषयो वालखिल्याश्च
योनिजाऽयोनिजास्तथा ॥ ४२ ॥ यच्च किञ्चित् त्रिलोकेऽस्मिन् दृश्यतेस्थाणु
जङ्गमम्। सर्वं तस्यां मयादृष्टमिति विद्धिनराधिप ॥ ४२ ॥ अष्टाशीति सहस्राणां
ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्। प्रजावताञ्च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव ॥ ४४ ॥ तेस्म
तत्र यथा कामं दृष्ट्वासर्वे दिवौकसः। प्रणम्य शिरसा तस्मै सर्वेयान्ति यथा गतम् ॥
४५ अतिथीनागतान् देवान् दैत्यान् नागां स्तथाद्विजान्। यक्षान् सुपर्णान् काले

यान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ४६ ॥ महाभागानमितधीर्ब्रह्मालोक पितामहः। दयावान् सर्वभूतेषु यथार्हं प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्यतु विश्वात्मा स्वयंभूरमितद्युतिः। सान्त्वमानार्थं सम्भोगैर्युनक्तिमनुजाधिप ॥ ४८ ॥ तथातै रूपपातैश्च प्रतिपन्निश्च भारत। श्राकुलासासभातात भवतिस्म सुखप्रदा ॥ ४९ ॥ सर्वतेजोमयीदिव्या ब्रह्मर्षिगण सेविता। ब्राह्माश्रिया दीप्यमाना शुशुभे विगत क्लमा ॥ ५० ॥ सासभा तादृशी दृष्टा मया लोकेषु दुर्लभा। सभेयं राजशार्दुल मनुष्येषु यथा तव ॥ ५१ ॥ एतामयादृष्ट पूर्वाः सभा देवेषु भारत। सभेयं मानुषे लोके सर्वश्रेष्ठतमातव ॥ ५२ ॥ इति श्री० महा० भा० सभा० प० लोक० पालसभाख्या० ब्रह्मसभा० व० अ० ११ अथ शिवपुराणे। विष्णोरेव सहस्रांशात् संवभूव पिताहः सद्योजात मुखात्मायः पृथिवी तत्त्वनायकः ॥ १ ॥ वाग्देवी सहितो वामे सृष्टिकर्त्ता जगत् प्रभुः। हिरण्य गर्भादस्यैव व्यष्टिरूपंच तुष्टयम् ॥ २ ॥ हिरण्यगर्भोथ विराट् पुरुषः काल एवचं। सृष्टिचक्रमिदं ब्रह्म पुत्रादि ऋषिसेवितम् ॥ ३ ॥ सृष्टिस्तु संहृतस्यास्य जीवस्य प्रकृती वहिः। ० श्रानीय कर्मभोगार्थं साधनाङ्गकलैः सह ॥ ४ ॥ संयोजनमितीदन्तुकृत्यं पैतामहं विदुः जगत् सृष्टावपि सुनेकृत्यानां पञ्चकं विभो ॥ ५ ॥ श्रग्निकालादयस्तत्र देवताः परिकीर्त्तिताः। निवृतिरूपमाख्यातं सृष्टिचक्रमिदं बुधैः ॥ ६ ॥ पितामहाधिष्ठितञ्च पदमेतद्विशोभितम्। एतदेव पदं प्राप्य ब्रह्मार्पितधियानृणाम् ॥ ७ ॥ पैतामहानामितिह्वि सालोक्यादि विमुक्तिदम्। श्रस्मिन्नपिच तुष्केच चक्राणां प्रणवोभवेत् ॥ ८ ॥ ब्रह्मभक्तैरपि पूर्वं श्रीशिवं संपूज्यपश्चातेनैव द्रव्येण ब्रह्माणं पूजयित्वापश्चाच्च स्वयमश्नीयात्। तत्र मानसाह पाराशरोपपुराणम्। पत्र पुष्पादिभिर्नित्यं भक्त्या वेदोक्तवर्त्मना। लिङ्गे दिने दिने देवं पूजयेच्छिव संज्ञकम् ॥ तच्छेषत्वेन विष्णुञ्च ब्रह्माणं देवतान्तरम्। श्रर्चयेदभुक्तिमुक्त्यर्थं न स्वतन्त्र तयाद्विज। इति न स्वतो वैहरिः पूज्यो न ब्रह्मा न पुरन्दरः ॥ कुतोऽन्या देवताः सर्वाः ब्रह्मस्फूर्त्यल्पतावलादिति स्कान्दः। ब्रह्मनिर्माल्यग्रहणाधिकारिणमाह श्राचारादर्शः विप्रेभ्यस्तत्र तद्देयं ब्रह्मणे यन्निवेदितम्। वैष्णवं सात्वतेभ्यश्च भस्माङ्गेभ्यश्च शांभवम् ॥ १ ॥ सौरमङ्गेभ्यः शाकेभ्यस्तापिने यन्निवेदितम्। स्त्रीभ्यश्च देयं मातृभ्यो यत्तु किञ्चिन्निवेदितम्। भूतप्रेतपिशाचेभ्यो यत्तु दीनेषु निक्षिपेत् ॥

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे षोड़शस्तरङ्गः समाप्तः।

## अथ सप्तदशस्तरङ्गः ।

अथ रणवीरसिंहव्रतरत्नाकरे देवतापूजोपयोगी सर्वदेवता सामान्यपूजाक्रमो लिख्यते तत्रादौ पूजोपचाराः पदार्थादर्शोज्ञानमालायाम् अष्टत्रिंशत् षोड़श वा दश पञ्चोपचारकाः। तान्विभज्य प्रवक्ष्यामि कीर्तितैश्च क्रतैश्च किम्। अर्घञ्च पाद्याचमने मधुपर्कमुपस्पृशम् ॥ १ ॥ स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचमनञ्चोपवीतकम्। पुनराचमनञ्चैव दर्पणालोकनं तथा ॥ २ ॥ गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यञ्च ततः क्रमात्। पानीयं तोयमाचामं हस्तवासस्ततः परम् ॥ ३ ॥ करोद्वर्त्तनमित्यर्थः ताम्बूलमनुलेपनम् पुष्पदानं पुनः पुनः पुष्पाञ्जलि लक्षपुष्प व्रतादिविधिनेति यावत् ॥ ५ ॥ गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्तुतिश्चैव प्रदक्षिणम्। पुष्पाञ्जलिर्नमस्काराश्चाष्टात्रिंशत् -समीरिताः इत्यष्टात्रिंशत् ३८। आसनं स्वागतं चार्घ्यं पाद्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमस्नान वसनाभरणानि च ॥ सुगन्धसुमनो धूपदीपमन्नेन तर्पणम्। माल्यानुलेपनंचैव नमस्कारो विसर्जनम् ॥ इति षोड़शोपचाराः १६। अर्घपाद्याचमनान्येव मधूपर्काचमनान्यपि। गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दशक्रमात् ॥ इति दशोपचाराः १०। गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं पञ्चमं स्मृतम्। इति पञ्चोपचाराः ५। महानिवन्धेतु चतुःषष्ट्युपचाराः। अप्युक्ताः अथशैवरत्नाकरे उपचाराः उपचारानथोवक्ष्ये पुराण स्मृतिसम्मतान्। स्कान्दे। उपचारास्त्रयः प्रोक्ताः पञ्चाष्टौ दशषोड़श चतुर्विंशञ्च द्वात्रिंश दुपचारा गुह्योदिताः ॥१॥ स्नानं पूजाञ्च नैवेद्यमुपचारास्त्रयः क्रमात् प्रदक्षिण नमस्कारः पञ्चैते संप्रकीर्त्तिताः॥ प्रार्थिवाद्यैश्च सद्यादि पञ्चमन्त्रैः समर्चनं पञ्चोपचारमित्युक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ ३ ॥ सङ्गीत नृत्यवाद्यैस्तैरुपचाराष्टकं मुने। अर्घ्यं पाद्यमाचमनमंधुपर्काचमानकम् ॥ ४ ॥ गन्धादयो निवेद्यान्त उपचारादशक्रमात्। आवाहनासनेपाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥ ५ ॥ स्नानमाचमनं वस्त्रं तथाचामोपवीतके। आचामोगन्धपुष्पेच धूपदीप निवेदनं ॥ ६ ॥ प्रदक्षिण नमस्कारा वात्मन्यारोपणं ततः। उपचारः षोड़शोक्ता स्कान्दे न महात्मना ॥ ७ ॥ आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रं चोपवीत मक्षतं गन्धपुष्पकम् ॥ ८ ॥ धूपं दीपञ्च नैवेद्यं फलं तांबूलकं स्तुतिः।

प्रदक्षिण नमस्कार शय्यासङ्गीतवाद्यकं ॥ ९ ॥ नृत्यंचात्मारोपणञ्च चतुर्विंशोपचारकाः। आवाहनासनेपाद्यमर्घ्यं साचमनीयकम् ॥ १० ॥ स्नानं वस्त्रं चोपवीतं भूषणञ्चानुलेपनम्। तिलाक्षतापुष्पधूपदीप नैवेद्यकानि च ॥ ११ ॥ मुखवासननीराजदर्पणञ्च फलानिच। ताम्बूलप्रदक्षिणौ च नमस्कारस्तुतिस्ततः ॥ १२ ॥ पुराणपठनं छत्रं व्यजनञ्चामरं तथा। शय्या सङ्गीत नृत्यञ्च वाद्यानिच तथैवच ॥ १३ ॥ आत्मन्यारोपणञ्चेति द्वात्रिंशदुपचारकाः। आवाहनन्तु यो दद्यात् स च क्रतु फलं लभेत् ॥ १४ ॥ आसनं रुचिरन्दत्वा शक्रत्वञ्च स माप्नुयात्। पाद्येन पातकं हन्यादर्घ्येणाप्नोत्यनर्घ्यतां ॥ १५ ॥ ततश्चाचमनं दत्वा शुचिस्सुखतां व्रजेत्। स्नानं व्याधिभयं हन्याद्वस्त्रेणायुष्यवर्द्धनम् ॥ १६ ॥ उपवीतन्तु यो दद्याद्ब्रह्मवेत्तृत्वमेवच। भूषणानिच यो दद्यादनापद्यमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥ नानापुष्प प्रदानेन स्वर्गेराज्यमवाप्नुयात्। धूपोदहति पापानि दीपोमृत्युविनाशनः ॥ १८ ॥ सर्वमानस्तु नैवेद्यं दत्वाँह्यमिरतोभवेत्। मुखवासनदानेन कीर्त्तिमान् भवति ध्रुवम् ॥ १९ ॥ नीराजनेन शुद्धात्मा दर्पणेन प्रकाशयेत्। फलदः पुत्रमान् मर्त्यः तांबूलात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २० ॥ प्रदक्षिणंतु यः कुर्य्यात् पापं हन्ति पदेपदे दण्डप्रणामं यः कुर्य्याद्देवमुद्दिश्य सन्निधौ वर्षाणि वसते स्वर्गे देहान्ते रेणुसंख्यया स्तोत्रेण दिव्यदेहोपि वाग्मीभवितितत्क्षणात् ॥२२॥ पुराणपठनेनैव सर्वपापक्षयो भवेत्। छत्रं दत्वा महेशाय नन्दीश्वर समो भवेत् ॥ २३ ॥ ततः क्रमात् क्षितिं प्राप्य सार्वभौमोनृपो भवेत्। तालवृन्तेनसंवीज्य वायुलोकेमहीयते मायूरचामरन्दत्वा मायूराणां राट् भवेत्। दत्वावैचामरं देवं वीज्यतेयः शिवे पुरे ॥२५॥ युगकोटि शतं भुक्त्वाचान्ते राज्यमवाप्नुयात्। सङ्गीत नृत्यं यः कुर्य्यात् स च सर्वफलं लभेत् ॥ २६ ॥ मृदुशय्या प्रदानेन चाक्षयं पदमाप्नुयात्। सुखश्रवणतां गच्छेद्वाद्येन शिवसन्निधौ ॥ २७ ॥ हृत्पङ्कजेशिवं स्थाप्य शिवत्वं प्राप्नुयाद्ध्रुवम्। एवं संक्षिप्यकथितमुपचार मनुत्तमम् ॥ २८ ॥ अन्यानप्युपचारांश्च मूलेनैव तु दापयेत्। इति श्रीशैव रत्नाकरे षष्टोध्यायः ॥ क्रियासारे अथ भव्यानि पूज्यानि यानि द्रव्याणि चार्चयेतानि तेषां प्रवक्ष्यामि लक्षणानि शृणुक्रमात् ॥ २ ॥ वारिगन्धाक्षत पुष्पाणि पात्रपीतांबराणिच। यज्ञोपवीत ताम्बुलधूपदीपकसाधनम् ॥ घण्टापञ्च महाशब्दा नैवेद्याभरणानिच। एतानि पूजाद्रव्याणि प्रोक्तानि चतुरानिच ॥ ३ ॥ उत्तमंस्यान्नदीतोयं तड़ागांभस्तु मध्यमं। कनिष्ठं कूपसलिलं स्थानादिषु यथाक्रमम् ॥ तत्र स्वादुपयः श्रेष्ठं

लवणाम्भः कनीयसं मध्यमं मिश्र सलिलमिति वारित्रिधा स्मृतम् ॥ ५ ॥ सुखा दुर्वीर्यं लाभेतु मिश्रैरपि च कारयेत्। स रक्तं स पङ्कं साश्मि स विस्मुत्रं स जाङ्गलं ॥ ६ ॥ सोच्छिष्टंसा सर्वं वारि स शवाम्भः परित्यजेत्। यानिकार्य्याणि कर्माणिवस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ७ ॥ तानि सर्वाणि कुर्वीत देवताराधने सदा सिद्धार्थं कुसुमं दूर्वाकोष्टलासज्जकं शमि अमूनिचात्र द्रव्याणि पाद्यस्य कथयन्तिषट् ॥ ८ ॥ कुशाग्र तिलसिद्धार्थ यवं व्रीहि पयांसि च द्रव्याण्यमूनिषट् प्राहुरर्घस्य सुनिपुङ्गवाः ॥ ९ ॥ फलं कचोरकर्पूर कोष्टकाश्मीरकानि च। अमून्या च मनीयस्य द्रव्याणि प्रवदन्तिषट् ॥ १० ॥ स्नापने चरलिङ्गस्य पञ्चाढकमितं जलं गन्धप्रसवके रत्नमन्त्रतोयान्य सूनिच ॥ ११ ॥ एतानि तास्त्र कुंभेषु पञ्चप्रस्थमितेषु च। वस्त्र पूतानि तोयानि समापूर्य्या विनिक्षिपेत् ॥ १२ ॥ नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा। गावः शिवपुरात्पञ्च क्षितिं प्राप्ताः शिवाज्ञया ॥ १३ ॥ गोमयं रोचनं मूत्रं दधिक्षीरघृतं गवां। गवाङ्गानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणिच ॥ १४ ॥ पयोदध्याज्यमध्विक्षु रसैर्मूलेन पञ्चभिः। ततो गोधूमचूर्णेन घृष्टाकोष्टेन वारिणा ॥ १५ ॥ स्नापयेदनिसिद्धैर्वा मुंगदचूर्णैरलाभतः। स्नापयेदथगन्धाद्भिः पुष्पाद्भिः स्नापयेदथ ॥ १६ ॥ स्नापयेदथ हेमाद्भि रत्नाद्भि स्नापयेदथ। स्नापयेदथसन्त्राद्भिः क्रमेणैव समाचरेत् ॥ १७ ॥ शिवधर्मशास्त्रे। घृताभ्यङ्गेन लिङ्गस्य दहेत् सर्वं न संशयः। कल्पकोटि सहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् ॥ १८ ॥ कृष्णाष्टम्यां घृतस्नानं कृत्वा लिङ्गे सकृन्नरः। कुलैक विंशमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥१९॥ दशापराधं तोयेन क्षीरेणापि शतं क्षमेत्। सहस्रं क्षमते दध्ना घृतेनाप्ययुतं क्षमेत् ॥ २० ॥ लिङ्गाभिषेकं यः कुर्य्याद्वस्त्र पूतेन वारिणा। स मुनिः स महासाधुः स योगी च शिवं व्रजेत् ॥२१॥ मन्त्राष्ट शतजोत्पन्नविमले नांभसा शिवम्। स्नापयित्वा सकृद्भक्त्या शिवलोके महीयते ॥ २२ ॥ पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा। स्नानतोयेषु योज्यानि शिवलोके महीयते ॥ २३ ॥ कर्पूरागरुतो येन यो लिङ्गं स्नापयेत् सकृत्। सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ २४ ॥ सितेन भस्मना स्नाप्यभक्त्या लिङ्गं प्रमोदते चन्द्रांशु निर्मल श्रीमान् शिवलोके महीयते ॥ २५ ॥ पट्टदेवाङ्गचीनादि विचित्राणि तराणिच। सितानि सूक्ष्मवासांसि रक्तानि प्रीतिकृत्यलम् ॥ २६ ॥ कृतशास्त्रोक्त विधिना प्रशस्तानि पितामह। न्यायागतानि नुतनानि विप्रयाणि दृढ़ानि च ॥ २१ ॥ अंशुकानि विशुद्धानि प्रशस्तान्युच्छ्रितान्यपि। जीर्णं

दग्धं धृतं स्थूलमाखुदष्टं सरंध्रकम् ॥ २८ ॥ देव स्वंदुः क्रिया युक्तं वस्त्रेष्वेवं विधंत्यजेत्। वासांसिसु विचित्राणि सारवन्ति मृदूनि च ॥२८॥ धूपितानि शिवेदद्याद्विकेशानिनवानिच यावत्तद्वस्त्रतन्तूनां प्रतिसंख्या समन्वितः ॥३०॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते। कृतं शास्त्रोक्तविधि सौवर्णदेवमानतः ॥ ३१ ॥ सकालधौतं वैकच्छसुपवीतमिति स्मृतम्। अथवा। मृदुशुक्लं सपीतञ्च पट्टसूत्रादि निर्मितम्। दत्वोपवीतं रुद्राय भवेद्वेदान्तकः सुखी ॥३२॥ चन्दनागरु कर्पूर कुङ्कुमाद्यनुलेपनम्। सस्तान्य सूनिद्रव्याणि न योग्यानीतराणयपि ॥ ३३ ॥ गन्धानुलेपनात्पुख्यं द्विगुणं चन्दनस्य च। चन्दनादगरोर्ज्ञेयं पुख्यमष्टगुणाधिकम् ॥ ३४॥ कृष्णागरोर्विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते। तस्माच्छतगुणं पुख्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥ ३५ ॥ चन्दना गुरुकर्पूरैः सूक्ष्मपिष्टैः स कुङ्कुमैः। लिङ्गपख्यामानेन शिवलोके महीयते ॥ ३६ ॥ सौवर्णतारका रौप्यं पीठो पर्य्यधरस्त्वपि। शोभार्थं पीठरूपेण न्यसेदितरतो पिवा ॥ ३७ ॥ स्वर्णेन वाथरौप्येण शुद्ध सौराष्ट्रकेन वा कृत्वा बुद्बुदवत् सूक्ष्मचषकान् द्वारसंमितान् ॥ ३८ ॥ तान् रंध्रं द्वितयं कुर्य्यात् प्रत्येकं सकलानपि। सूत्रेण प्रोत्यमालांवा द्वारस्थो परिवन्धयेत् ॥ ३९ ॥ येषां नक्षत्रमालाख्या कारणाया धनेश्वरैः। अभिन्ना शंखवच्छेताः सुस्निग्धा व्रीहितण्डुला ॥ ४० ॥ देव्युवाच। स्मृताः सुरार्चने योग्या नितराञ्च तुरानना। पुष्पैः कतिविधैः पूजाकर्त्तव्या कथयस्वमे ॥४१॥ पुष्पैराराम सम्भूतैः पत्रैर्वागिरिसम्भवैः। अपर्य्युषित निच्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥ ४२ ॥ आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः संपूजयेच्छिवं। अर्कारग्वदनीरंजनद्या वर्त्तकजातयः ॥ ४३॥ करवीरवकद्रोण वृहती नवमालिका। मल्लिकोत्पल पुंनाग कदंबाशोक चंपकाः ॥ ४४ ॥ सेवतीकर्णिकाराख्य त्रिसन्ध्यारक्तकेशराः। सितकाञ्चनधत्तूरं तथा लोहितकाञ्चनः ॥४५॥ पलाशः पाटलीत्येषां प्रशस्ताः प्रसवाः स्मृताः। विल्वापामार्गकच्युतो दमनोमरवोर्जकः ॥ ४६ ॥ दूर्वातुलसीकाङ्क्षोलो गौरी सुरभि काशमिः। भृङ्गीकां तारदमनो शृङ्गारः पारभद्रकः ॥ ४७ ॥ जंबुकुशाश्च इत्युक्ताः प्रशस्ताः पत्रसंग्रहे। पूर्वोक्तकुसुमालाभे पत्रैरेतैः शिवं यजेत् ॥ ४८ ॥ पत्राणामप्यलाभे तु पुष्पजातिदलैर्यजेत्। विनादुत्तरनीरजपलाशोत्पलकाञ्चनात् ॥ ४९ ॥ सनालैः सदलैः पक्वैः प्रत्यङ्गैः नयनप्रियैः। पुष्पैर्यथोचितैरेवं विधैराराधयेच्छिवं ॥ ५० ॥ यान्यवद्धानि पुष्पाणि पत्राण्यवि तथैवच। तानि देयानि सन्लेण वध्वाशोभार्थमर्पयेत् ॥ ५१ ॥ पट्टदेवाङ्गचीनानां सूत्रञ्च तद-

लाभतः। कार्पासं पुष्पसन्दर्भैस्थानो द्रोहन्कलंतु वा ॥ ५२ ॥ पुष्पजाति विशेषेण भवेत्पुण्यं ततोधिकं। अर्कस्य पुष्पमेकंतु शिवाय विनिवेदयेत् ॥ ५३ ॥ तपः शीलगुणोपेता पत्रे वेदस्य पारगे। दशदत्वा सुवर्णानि यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ अर्कपुष्पसहस्रेभ्यो करवीरं विशिष्यते। करवीरसहस्रेभ्यो विल्वपत्रं विशिष्यते ॥ ५५ ॥ विल्वपत्रसहस्रेभ्यो पद्ममेकं विशिष्यते। अथ पद्मसहस्रेभ्यो वकपुष्पं विशिष्यते ॥ ५६ ॥ वकपुष्पसहस्रेभ्यो एकं धत्तूरकं परम्। धत्तूरक सहस्रेभ्यो वृहत्पुष्पं विशिष्यते ॥ ५७ ॥ वृहत्पुष्पसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते। द्रोणपुष्प सहस्रेभ्यो अपामार्गं विशिष्यते ॥ ५८ ॥ अपामार्गसहस्रेभ्यो कुशपुष्पं विशिष्यते। कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपुष्प विशिष्यते ॥ ५९ ॥ शमीपुष्पसहस्रेभ्यो श्रीमन्नीलोत्पलं परम्। नीलोत्पलसस्रेभ्यो भल्लिरिकाविशिष्यते ॥ ६० ॥ नीलोत्पलसहस्रेण यो मालां संप्रयच्छति। शिवाय विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्य-फलं शृणु ॥ ६१ ॥ कल्पकोटि सहस्राणि कल्पकोटि शतानिच ॥ ६२ ॥ विशे-च्छिवपुरे श्रीमान् शिवतुल्यपराक्रमः ॥ ६३ ॥ करवीरसमाज्ञेया जाति विजय पाटला। नागचंपकपुन्नागधत्तूर कुसुमाः स्मृताः ॥ ६४ ॥ श्वेतमदार कुसुमं सितपद्म समं भवेत्। कनकानि कदंवानि रात्रौ देयानि शङ्करे ॥ ६५ ॥ दिवा-शेषाणि पुष्पाणि दिवारात्रौ तु मल्लिका प्रहरन्तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशं ॥ ६५ ॥ विल्वपत्रैरखंडैश्च सकृल्लिङ्गं प्रपूजयेत्। सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिव-लोके महीयते ॥ ६६ ॥ पुष्पाणामथलाभे तु पत्राण्यपि निवेदयेत्। पत्राणा-मथलाभेतु फलान्यपि निवेदयेत् ॥६७॥ फलानामप्यलाभेतु तृणगुल्मौषधैरपि। औषधिनामलाभेतु भक्त्याभवति पूजितः ॥ ६८ ॥ केतकीजातिसुक्तश्च कुन्दा-युधिकदंवकाः। शिरीषसर्जवंधूक कुसुमानि विवर्जयेत्। अङ्कोलपत्रकुसुम करञ्जेन्द्रतरूद्भवम् ॥ ६९ ॥ वैभीतकानि पत्राणि कुसुमाणिविवर्जयेत्। गन्धहीन-मपिग्राह्यं पवित्रं यत्कुशादिवत् ॥ ७० ॥ गन्धवत्यपवित्राणि यानि तानि विवर्जयेत् सदुग्धकंटकैः पत्रैर्जलजैरपि नार्चयेत् ॥ ७१ ॥ अत्रोक्त पत्रपुष्पाणि छित्वातैर्न शिवं यजेत् कीटकैरपि विद्धानि जीर्णपर्युषितानि च ॥ ७२ ॥ स्वयं पतितपुष्पाणित्यजेदुपहतानि च। मुकुलैर्नार्चयेद्देव सपक्वं न निवेदयेत् ॥७३॥ फलं कुत्सितविद्धञ्च यत्तत्पक्वमपित्यजेत्। अज्ञानज्ञानतोवापि विरुद्धकुसुमा-र्चनम् ॥७४॥ आत्मार्थं वा परार्थं वा तत्सर्वं नैवमाप्नुयात्। मल्लिकोत्पलपद्मैश्च जातिपुनाङ्गचंपकैः ॥७५॥ अशोकश्वेतमन्दारकर्णिकारवकैरपि। करवीरार्कमन्दार

श्मीनागरकेशरैः॥ ७६॥ कुशापामार्गकुसुमैः कदम्बद्रोणकैरपि। पुष्पैरन्यै-र्यथालाभं यो नरः पूजयेच्छिवं॥ ७७॥ स यत्फलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाशृणु सूर्य्यकोटि प्रतिकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः॥ ७८॥ पुष्पमालापरिच्छिन्नैर्गीत-वादित्रनादितैः। तन्त्रीमधुरवाद्यैश्च स्वच्छन्दगमनालसैः॥ ७९॥ रुद्रकन्यासमा-कीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः। दोधूयमानैरमरैस्तूयमानः सुरासुरैः॥ ८०॥ गच्छे-च्छिवपुरन्दिव्यं यत्र वा रुचिरं भवेत्। लिङ्गे गवां कोटिप्रदानेन विधिदत्तेन यत्फलं। लिङ्गे न्यस्तैकपुष्पस्य साहस्रांशं न पूरयेत्॥ ८१॥ यो दद्यात्काञ्चनं मेरुं सस्यपूर्णवसुन्धरां। लिङ्गे न्यस्तैकपुष्पस्य सहस्रांशं न पूरयेत्॥ ८२॥ मातृ पितृ सति विप्र भ्रातृ गोसञ्चितो वधः। सर्वपातकसंहारमेकपुष्पं शिवा-र्चनम्॥ ८३॥ जलं वा पुष्पमेकं वा लिङ्गस्योपरिनिक्षिपेत्। अमन्त्रो वा समन्त्रो वा कुलकोटिंसमुद्धरेत्॥ ८४॥ किञ्चिद्दलं वा चुलकोदकं वा देवेन्द्र लक्ष्मीः स ददाति शंभुः। आदान दाने जगदेकवन्धो मुग्धो भवान् सर्वविदेवदेव॥ ८५॥ त्रुटिमात्रन्तु यो दद्याच्छिवलिङ्गस्य मूर्द्धनि। ईन्द्रस्यार्द्धासनं तावद्या-वदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ८६॥ यः कुर्य्याच्च शिवाख्यसास्तुविल्वादि शोभितम्। यावत् स तत्र देवार्थं पुष्पवीजफलानि च॥ ८७॥ तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते। देवार्थमेकपात्रन्तु पुष्पादि द्रव्यसञ्चयम्॥ ८८॥ सौवर्णं रजतं ताम्र-मिति पात्रं त्रिधास्मृतं। सार्द्धप्रस्थमितं पात्रमर्घ्याद्यखिलकर्मसु। अर्घ्यादीनां त्रिपात्राणां सामान्यक्षालनात्त्रयत्॥ ८९॥ शंखस्वर्णादिपात्राणां स्पृष्टिदोषो न विद्यते। दारुमृत्पात्रयोरस्ति स्पृष्टिदोषोन्त्यजातिभिः॥ ९०॥ देवालयत्रयो च्छिष्टं जनात् शौचादि गर्हणात्। अस्पृश्यैर्दारुमृत्स्पृष्टौ नृभिर्यदिसन्त्यजेत्॥ ९१॥ कांस्यपात्रमपि ग्राह्यमलाभेस्वल्पयन्तु वा। अर्घ्यादीनां न योग्यानि भिन्नपित्राणि जातचित्॥ ९२॥ अभिन्नानि विशुद्धानि पात्राण्येवं भवन्ति हि। ताम्रस्फिटक शंखेषु सुवर्णकलधौतयोः॥ ९३॥ नविद्यते भिन्नदोषो द्रव्येष्वन्येषु विद्यते। शंखशुद्धो भवेत्तत्र तुषेभ्यो घर्षणे न च। आम्लेन ताम्रकं भूत्याकांस्यं चूर्णे न पित्तलं॥ ९४॥ पलालमस्य व्रीहीणां पात्रे पित्तललोहके संघर्षयेद्विशुद्धयर्थं कान्तिप्रसरणाय च॥ ९५॥ चत्वार्य्येतानि पात्राणि वारिणा-ज्ज्वलयेत्ततः। वैरूप्य शैलाः शुद्धास्युः केवलं चालनाज्जलैः॥ ९६॥ पात्रं गो-कर्णवत् कुर्य्यात् तद्वनन्तिलमात्रकं। येषामलाभेपात्राणां नारिकेलिकपालकम्॥ ९७॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं कांस्यं लोहञ्च पित्तलम्। चरार्चनार्थं कुर्वीत

पीठमेतैश्च मुंख ॥ ९८ ॥ खदिरो मधुकोऽश्वत्थः प्लक्षः सुरमहीरुहः । उदुंवरः शीतसारो न्यग्रोधोऽथविकंतकः ॥ ९९ ॥ जंबूकदंववकुल विल्वपुन्नागचम्पकाः । पलाशः पाटलोचूतः कर्णिकारश्च काञ्चनः ॥ १०० ॥ एते द्रुमा प्रशस्तास्युः पीठकर्माणि वा विधे । सर्वेषामेव वृक्षाणां प्रशस्तो रक्तचन्दनः ॥ १०१ ॥ तेन पीठं कृतं श्रेष्ठं चरलिङ्ग समर्चने । चतुरस्रं चतुःपादं पूर्ववच्चोक्तविस्तरम् ॥१०२॥ उपर्य्यधः समाकारं यत्तद्भद्रासनं स्मृतं । पूर्वोक्तविस्तरायामं वृतखड्गमृगाकृतिः ॥ १०३ ॥ परितः पद्मवल्लक्ष्यं यत्तत्पद्मासनं स्मृतम् । पिठेषु पीठं यच्छ्रेष्ठं कारयित्वे चणप्रियं । चरलिङ्गस्य पूजार्थं तदुक्तत्वीयात्पितामह । ओं धूपः कालागरुर्गन्धसारो गुग्गुलश्च सितागरुः लाक्षाविल्वफलं सर्पिर्मधुसर्जरसः शशी साधनानि दशैतानि धूपस्य चतुरानन ॥ १०४ ॥ चन्दनोभय कोष्ठञ्च नख सर्जः कचोरकः । एतद्गुड़ समानेन धूपं भवति चोत्तमम् ॥ १०५ ॥ शर्करा नखगन्धश्च जटामांसिलघुः समं । क्षौद्रेण सहसं मिश्रं धूपं भवति चोत्त-मम् ॥ १०६ ॥ अगरुतगरुकुष्ठं सैलजं शर्करास्वादुभय घनपुरस्ताचन्दनैलाश्च साक्षात्त्वच नखरसुसिरं मांसिकर्पूरतालिसलदजलकचोरं जातियुग्धूपराजः ॥ १०७ ॥ कृष्णागरुस कर्पूरं धूपं दद्यान्महेश्वरे । नैरन्तर्य्येण यो मासं तस्य पुण्य फलं शृणु ॥ १०८ ॥ कल्पकोटि सहस्राणि कल्पकोटि शतानि च । भुङ्क्ते शिवपुरे भोगान् तस्यान्ते स महीपतिं ॥ १०९ ॥ गुग्गुलं घृतसंयुक्तं साक्षाद्ग्रहाति शङ्करः । मासार्द्धमात्रदानेन शिवलोके महीयते ॥ ११० ॥ कृष्णपक्षचतुर्दश्यां यः साक्षाद्गुग्गुलं दहेत् । अपराधसहस्रैक मिहापुनकृतं क्षमेत् ॥१११॥ प्रियश्च गुग्गुर्नित्यमाज्ययुक्तो विशेषतः । द्वेसहस्रे फलानान्तु महिषाक्षश्च गुग्गुलः ॥११२॥ दग्ध्वागवाज्यमिश्रं तु शिवसाम्यः प्रजायते । देवदारु नतेकं च सर्ज श्रीवास कुन्दुरुम् ॥ ११३ ॥ श्रीफलं चाज्यसंमिश्रं दग्ध्वाप्नोति परं श्रियं येभ्यः सौगन्धिकं धूतं षट्सहस्रं गुणोत्तरम् ॥११४॥ अगुरुं दशसाहस्रं द्विगुणं चासितागुरुम् । हेमरौप्येण ताम्रेण रीत्यालौहेन वापि च ॥११५॥ धूपप्रदीप पात्रेद्वेकारयेत्सह लक्षणैः । धूपपात्रोन्नतं सर्वं स साष्टाङ्गुलकं स्मृतम् ॥११६॥ पात्रं डमरुगाकारं संपिधानं सनालकम् । पादमात्रं मुखं व्यासमानंच चतुरङ्गुलम् । द्व्यङ्गुलं तयो स्तुङ्गं तन्मध्यग्रीवमङ्गुलं । एवं डमरुगाकारं ग्रीवनालं प्रकल्पयेत् ॥११८॥ नालायतं नालमात्रञ्च मणिशेखरभूषितं ऋजुवा कुटिलं वापि यथा शोभन्तु कारयेत् ॥११९॥ व्यासोन्नतं पिधानस्य पात्रवत्परिकल्पयेत्

पादाङ्गुलं तदूर्ध्वंतु शेषञ्च शिखरं घनम्॥१२०॥ पात्रपादं पिधानञ्च सर्वञ्च पक्कवत् स्मृतम्। घनं तस्य समस्तस्य यवमात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥१२१॥ पिधाने धूपनिर्गत्यै रंध्राणि विदधीतषट्। लक्षणं धूपपात्रस्य समाख्यातं चतुर्मुख ॥१२२॥ सार्द्धं तु त्र्यङ्गुलं व्यासं पात्रस्य द्व्यङ्गुलोन्नतं। तस्यांघ्रिविस्तरोत्सेधं तद्वदेकाङ्गुलांगुलम् ॥ १२३ ॥ पिधान शिखरं नाज्ञं घनं रंध्राणि पूर्ववत्। एवं चकारयेद्बुध्या धूपपात्रं तदुत्तमं ॥१२४॥ पात्रस्यैवं विधास्यास्वलाभे मृण्मयंतु वा। कर्पूरोघृतवर्त्तिश्च द्वितयं दीपसाधनम् ॥ १२५ ॥ उत्तमं कपिला सर्पिर्मध्यमम्। शुभ्र गोघृतं अन्य गो सर्पिरधममिति त्रिविधमीरितं ॥ १२६ ॥ घृतदीप प्रदानेन शिवाय शतयोजनं। भूम्यं तं लभतेमर्त्यो विमानं सूर्य्य स प्रभम् ॥१२७॥ यः कुर्य्यात्कार्त्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम्। कृष्णपक्षे चतुर्दश्याममावस्यादिनेपि वा ॥१२८॥ सूर्य्यायुतप्रतीकाशस्तेज साभासयन्दिशः तेजोराशि विमानस्थः कुलमुद्धत्य सर्वशः ॥ १२९ ॥ यावत् प्रदीप प्रस्थानं घृतेनापूर्य्यवोधितम्। तावद्युगसहस्रेण रुद्रलोके महीयते ॥१३०॥ दीपवृक्षं समुत्थाप्य सर्वस्यायतने शुभं। पूर्वस्माद्विगुणं पुण्यं लभ्यते नात्रसंशयः ॥१३१॥ कार्पास वर्त्तिं कृत्वा च गवाज्येन प्रदीपयेत्। उन्नतं दीपपात्रस्य समस्तं सत्षड़ङ्गुलं ॥ १३२॥ सार्द्धाङ्गुलोन्नतं पीठं नालं सार्द्धाङ्गुलद्वयम्। शिखरं द्व्यङ्गुलञ्चैव क्रमादुच्चषड़ङ्गुलम् ॥ १३३ ॥ तत्पात्र पीठविस्तारमुदितं चतुरङ्गुलम्। पात्रं पञ्चाङ्गुलं व्यासं तद्घनं यवमात्रकम् ॥१३४॥ पात्रान्तः परितो दीपस्थानान्यष्टौ प्रकल्पयेत्। दीप संस्थापनं पात्रं तन्नमार्नामिहोच्यते ॥१३५॥ चतुरङ्गुलमुत्सेधनालं साष्टांगुलं स्मृतं दण्डस्यार्द्धाङ्गुलेपात्रं पादव्याससमाङ्गुलम् ॥१३६॥ स्वर्णादिषु यथालब्धे पात्रमेषामलाभतः। व्रीहि पिष्टस्थितान् दीपानपि वासं प्रदर्शयेत् ॥ १३७ ॥ एवं यथा वक्कथितं दीपपात्रस्य लक्षणं। घण्टालक्षणम् दण्डाग्रेसु त्रिशूलञ्च धत्तूरकुशकोपमा। यासा सौराष्ट्रिकमयी घण्टान्तः कोणसंयुतः ॥ १३८॥ आयतं घण्टिकायास्तु प्रोक्तमङ्गुलपञ्चकम्। तद्वन्मुष्टि प्रमाणं स्यात्कटकद्वय संयुतम् ॥ १३९ ॥ तदूर्द्ध्वं त्र्यङ्गुलमितं विदधीतत्रिशूलकं। तस्यायतन विस्तारं षड़ङ्गुलमिति स्मृतम् ॥१४०॥ घंटायाः सकलं दैर्घ्यं मंगुलानां त्रयोदश एवं नेत्रप्रियां घंटां मानेनैव तु कारयेत् ॥१४१॥ अथ काहलः। काहलः पटहः शंखोभेरीच जयघंटिका ॥१४२॥ एते पञ्च महाशब्दा मंगलध्वनयः स्मृताः। सुवर्ण रौप्यताम्रेषु यथा लब्धेन संयुतः ॥१४३॥ श्लोकमानेन धत्तूरपुष्पवत्

काहलान्वयः। सार्द्धांगुलं चतुस्ताल मायतं काहलस्य तु चतुरंगुलविस्तारं स्यादस्यान न वर्त्तुलं ॥१४४॥ प्रत्यंगुलं तदानाह मनुस्थूलं तदाहितः तथैव विस्तरं तस्य यथा शोभंतु कारयेत् ॥ १४५ ॥ पञ्चांगुलद्विकारन्तु दीर्घं चिन्ना-हियस्य तत्सार्द्धस्त्र्यंगुलविस्ताराक्तस्य स्यादास्य वर्त्तुलम् ॥ १४६ ॥ अन्यत्सर्वं यथा पूर्वं वितलं काहलालकं एवं लक्षणमाख्यातं सम्यक् काहलचिह्नयोः ॥ १४७ ॥ पटहः आसनं खदिरः श्रेष्ठावपि वा रक्तचन्दनं। त्रयोमी पटहस्योक्ता स्तरवो वाद्यवेदिभिः ॥१४८॥ पञ्चताल समाख्यात मायतं पटहस्य तु द्विताल मध्यम स्थूलतालमात्रमुखं द्वयम् ॥ १४९ ॥ सचर्मणासमाच्छाद्यमुखयुग्मं यथा दृढ़म्। कर्णोत्पटहकी हेतुस्तत्तत्कालेषु ताड़येत् ॥१५०॥ शंखः गोक्षीर धवलस्निग्धो-दीर्घ-नालो व्रहत्तनुः व्रतो यो दक्षिणावर्त्तः सोब्धिजः शंख संज्ञकः ॥१५१॥ पूर्वोक्तल-क्षणोपेतो वामावर्त्तो यथोब्धिजः शंखोयं सोपि सुलभः पूर्वोक्तोतीव दुर्लभः ॥ १५२॥ शंखस्य स्थूलतानाह तावत्तद्रायतं स्मृतं तस्यार्द्धं नालकं यस्य स शंखः श्रेष्ठ उच्यते ॥१५३॥ तदर्द्धं आवतो यस्या शंखो भवति मध्यमः। शंखो यमितरो लब्धः सकनिष्ठः प्रकीर्त्तितः ॥१५४॥ भिन्नः क्रिमिहृतो रक्तः सरंध्रः कश्मलच्छविः। ह्रस्वनालः स शंखोयो न योग्यो नादकर्मणि ॥१५५॥ अथ दुन्दुभिः दुन्दुभि-र्द्विविधाप्रोक्ता स्थावरा जङ्गमेति च नाहार्य्यास्थावरैकेन याहार्य्या जङ्गमास्मृता। खदिरः पीतसारश्च शिरीषोरक्तचन्दनः ॥१५६॥ मधुकोरिष्टकश्चेति षड्वृक्षा दुन्दुभेः स्मृताः। आयामं सप्ततालस्यात्पञ्चतालन्तु विस्तरं मुखं त्रितालविस्ता-रम्। मुखस्य घनमङ्गलम् शेषं तद्द्व्यङ्गलं व्याममन्यत्सर्वं विलं वहि ॥ १५८ ॥ स वृत्तं लोहपट्टेन मुखमध्यानि वेष्टयेत्। मुखस्य परितः सप्तन्यसेत्कीलानयो मयान् ॥१५९॥ मुखं स चर्मणाच्छाद्य तद्वत् सूत्रेण वेष्टयेत्। यथा कथं समाख्यातं लक्षणं स्थिरदुन्दुभेः ॥१६०॥ ईदृग्दण्डविनिर्घोष शंभोः प्रीतिकरं सदा। षट् तालमथवा तालं तालोष्टांशत्रयांशकैः चतुस्तालं तु विस्तारं मुखसार्द्धं द्विता-लकम्। विलंघनं यथा पूर्वं वृत्तं वा चतुरानन ॥१६१॥ एतदेव विधिप्रोक्तं लक्षणं स्थिरदुन्दुभेः। आसनेनिर्मितेस्थाप्य गोपुरे सारदारुभिः ॥१६२॥ विमा-नस्याग्र वा स्थाने दक्षिणे वासुरोत्तम चतुःपादं चतुः शृङ्गं मध्येष्टप्रोक्तमासनं ॥ १६३ ॥ भूमिश्च तत्पदस्थानं शृङ्गमध्यन्तु दुन्दुभेः चतुस्तालप्रमाणोच्चं तन्मध्यं तालपञ्चकम् ॥६२॥ वदनद्वयविस्तार समानं द्वादशांगुलम्। सुवर्त्तुलं समं ताच्च घनमर्द्धांगुलं स्मृतं ॥१६६॥ एवं यथा वत्कथितं लक्षणाच्चरदुन्दुभेः। स्थूलो

लताभ्यां सहशामहावृचविनिर्मिता ॥१६६॥ त्वगुवंधोभयपार्श्वासौ भेरीस्यादंबुद-
ध्वनिः । चारुसीराष्टकक्षतां चन्द्रमण्डलवद्दृढा द्वितालविस्तरायामजयघण्टा
स्मृताह्वयाः ॥ १६७ ॥ होमशङ्खी काहली द्वौच चतस्रोजय घण्टकाः । एकैकः
पटहो भेरी संख्यैषामिवमीरिताः ॥१६८॥ केचिदेतान्महाशब्दान् ब्रुवते यच्च
सूरयः । गीततोद्याकांस्य तालशंखकाहल निस्वनात् ॥१६९॥ अत्रोक्त संख्या-
धिक्षता वाद्यानामुत्तमोत्तम । स्यादलाभे यथा लब्धा शंखानां विभवप्रमा ॥
१७०॥ स्वाहार्चनेश्वरस्थाने सामान्यस्थावरेपि च । स्नाने धूपे प्रदीपे च नैवेद्ये
षः प्रवोधयोः ॥१७१॥ घण्टापञ्च महाशब्दान् प्रयुञ्जीतोत्सवेषु च । स्नानकाले
त्रिसन्ध्यां च यः कुर्य्याद् भेरिवादनं ॥१७२॥ नाट्यं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्य
फलं शृणु । यावल्लिङ्गानि कुरुते येन नृत्यादिवादनम् ॥१७३॥ तावद्युग
सहस्राणि रुद्रलोके महीयते । नैवेद्यम् । निवार तण्डुलाश्रेष्ठास्तथैव
ब्रीहि तण्डुलाः । होमोक्त धान्यजातीया तण्डुलामध्यमास्मृताः ॥१७४॥ म्लानान्
भिन्नान् कणान् रक्तान् दुर्गन्धान् कठिनाशकान् । प्राचीन ब्रीहिकां सेतान्
तण्डुलान् सम्यवर्जयेत् ॥१७५॥ अभिन्नाधवलास्निग्धा विशुद्धा नूतनाः शुभाः
तण्डुलास्युरमी श्रेष्ठा निवेद्य परिकल्पते ॥१७६॥ ब्रीहिणां द्विशतं पञ्चविंश-
त्याशक्तिरिष्यते तण्डुलं प्रकुच प्रसृतिः कुड़वश्च ततोञ्जलिः ॥१७७॥ प्रस्थः पात्र-
स्त्वाढ़कश्च शिवोद्रोणश्च खारिका आख्याभवेयुरे तेषां द्विगुणेन पृथक् पृथक् ॥
१७८॥ श्रेष्ठाः खारिद्वयमिता मध्यमाखारि संयुता शिवप्रमाणस्त्वधमा निवेद्य-
परिकल्पने । निवेद्यकरणे चोक्ताः श्रेष्ठाश्चाढ़कतण्डुलाः ॥१७९॥ केननिष्पीड्य
निष्पीड्यषोड़शान् चालयेद्बुधः सार्द्धाढ़क प्रमातोयं तण्डुलानां प्रकीर्त्तितम् ॥
१८०॥ विष्फुलिङ्गा क्षताकाष्ठाः सकेशाः प्राणीसंयुताः । एतान्विनेतरैः काष्टैः
पचनेदीपयेच्छुचिः ॥१८१॥ केवलान्नमिति प्रोक्तं मिदमन्नं सुपाचितं । परमान्नं
हरिद्रान्नन्दाध्यन्न कृशरोदनं गुड़ोदनंच मुद्गान्नमित्यन्नं षड्विधं स्मृतं तण्डुलं त्रिगुणं
भागं दुग्धार्द्धं जीवनायकम् ॥१८३॥ तदर्द्धं मुद्गभिन्नन्तु परमान्नमिति स्मृतम् ।
तण्डुलार्द्धं मुद्गभिन्नं वारिणासह संपचेत् ॥१८४॥ ईषद्धरिद्रयायुक्तं मरीची
भाड़संयुतम् । एतदुक्तं हरिद्रान्नं यः पक्वं पाचितं तथा ॥१८५॥ मधुराम्लेन गोद-
ध्नाप्रत्यगव्यं विमिश्रितं । लवणार्द्रक संमिश्रमेतद्दध्योदनं स्मृतम् ॥ १८६ ॥
तण्डुलार्द्धं मुद्गभिन्नं वारिणासह संपचेत् पक्वे मरीचचूर्णेन तिलचुर्णं विनि-
क्षिपेत् ॥१८७॥ इदं कृसरनामान्नमित्याख्यातं सुरेश्वरः पूर्वोक्तपायसेयुञ्जाद्,ग्धा-

र्द्धं गुड़खण्डकं ॥१८८॥ तदर्द्धमाज्यमिलाया फलमेतत् गुड़ोदनं तण्डुलस्य त्रिभा
गंञ्च मुद्गखण्डञ्च मिश्रितम् ॥१८९॥ पक्वं पदन्न मुद्गान्न माख्यातंच चतुर्मुख विना
सुधान्नमन्वेषां प्रदद्याल्लवणस्बुधः ॥१९०॥ छिन्नाद्यारं तुषाद्यारं तण्डुलाद्यारभिः
सदा पुराणद्यार भाण्डञ्च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१९१॥ विशुद्धभाण्डसंसिद्धं प्रयत्नं
शुद्धमुज्वलं अशनं यत्तदुत्कृष्टं निवेद्य परिकल्प्य ते ॥१९२॥ चत्वारिंशिस्त्रिधा
न्यानि गृह्णीयात् सूपकर्मणि मुद्गाढ़कखल्वारव्यामाषाचान्यानि वर्जयेत् ॥१९३॥
तत्रापि निस्त्वचः श्रेष्ठाः सत्वचोमध्यमास्मृताः। प्राक्तनान् क्रिमि संयुक्तान् म्लानान्
हीनान् परित्यजेत् ॥१९४॥ पनसः कदली चूतोनिकुचो नारिकेलकः। नार-
ङ्गीमातुलिङ्गश्च फलान्येषांवराणिच ॥१९५॥ सुरणः सूक्ष्मकंदश्च पिण्डालः शृङ्ग-
वेरकः। चत्वारोमी प्रशस्ताश्च कन्दास्युः पक्वकर्मणि ॥१९६॥ कूष्माण्डकार-
वल्लिश्च पटोली वृहतीवला। अलाबुः सूक्ष्मवृहती चर्मकोशातकी द्वयम् ॥१९७॥
ऊर्वारुः कथ्यते तेषां फलानि प्रवराणि च। स्वादन्यान्यविरुद्धानि फलान्यन्यानि
नित्यशः ॥१९८॥ मरीचो जीरकासर्पिर्लवणाम्लक सर्षपैः। उपदंशान्यथा
योग्यं पचेदपि च हिङ्गुना ॥१९९॥ यत्रोपदंशाये सर्वे तान्निवेद्य विसर्जयेत्।
अत्रप्रोक्तान्नपानानां व्यञ्जनानाम भावतः ॥२००॥ दरिद्रस्वेत्स्वभोज्यं यत्तद्-
गृहीत्वानिवेदयेत्। उत्तमं कपिलासर्पिर्मध्यमं शुद्धगोघृतं ॥२०१॥ अन्या-
गोसर्पिरधममिति त्रिविधमीरितं। सद्यःपक्वं सुगन्धाढ्यं विशुद्धं नयन प्रियम् ॥
२०२॥ शुद्धभाण्डाद्दितास्पृष्टं शुद्धसर्पिं शुभं स्मृतम्। स केशकल्कपुलकं स दुर्गन्धं
पुरातनम् ॥२०३॥ अस्पृश्यैः प्राणिभिस्पृष्टं दुर्भाण्डस्थं घृतं त्यजेत्। एवं ज्ञात्वा
दधिक्षीरे गृह्णीते स्नानकर्मणि ॥२०४॥ निवेद्य च प्रयोक्तव्ये शस्तेचाभिसम्भवेत्।
श्रेष्ठं स्यादचकाष्ठांशं घृतं मध्यं तदार्द्धकम् ॥२०५॥ कनीय संतदर्द्धं स्याद्यथा
लब्धमलाभतः। चण्डालः पतितो रोगी पापीयान् देवलां त्यजः ॥२०६॥ गणिका
सुतिकोदक्ये व्रतभ्रष्टश्च कुक्कुरः। विट शूकरः खरः काकः षण्डाभक्ष्य प्रभक्षकः ॥
२०७॥ स्वाध्याय |विक्रयी एते स्पृस्याश्चान्यत्र निन्दिताः। श्रीशालि तण्डुल
प्रस्थं कुर्य्यादन्नं सुसंस्कृतं ॥२०८॥ शिवाय च चरुन्दद्याच्चतुर्दश्यां विशेषतः। हरिद्रं
कृशरं शुक्लम्पायसं यावकं तथा ॥२०९॥ गुड़खण्डैश्च संमिश्रं गवामाज्यम् सुकल्पि-
तम्। यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन् नैवेद्ये परिसंख्यया ॥२१०॥ तावद्वर्षं सहस्राणि
शिवलोके महीयते गुड़खण्ड कृतान्नञ्च भक्षणाच्च समर्पणात् घृतेन पाचितान्नं
स्यादृक्षाकोटि गुणं भवेत् ताम्बूलिकायाः पत्राणि क्रमुकस्य फलानि च ॥२११॥

भुक्तोचार स कर्पूरंताम्बूलमिति कीर्त्तितं पञ्चसौगन्धिकोपेतं यस्ताम्बूलं निवे-दयेत् ॥२१३॥ शिवाय गुरुवेचैव तस्य पुण्यफलं शृणु सुगन्ध देहस्तेजस्वी सर्व-वयव सुन्दरः ॥२१४॥ युगकोटि महाभोगैः शिवलोके महीयते। पट्टदेवाङ्ग चीनानि वितानान्युत्तमानिवै ॥२१५॥ कार्पासं धवलं वस्त्रं मध्येकमलभूषितं। एतन्मौक्तिकमालाढ्यं वितानमपि वा भवेत् ॥२१६॥ मयूरपच दण्डानां वल्कलै-रतिपाण्डुरैः सौवर्णं राजतेदण्डे रत्नजालविभूषिते ॥२१७॥ हस्तमात्रप्रमाणे तु निर्म्मितन्तेन शोभितं। चामरञ्चैतदाख्यातं युग्ममेकं प्रपूजयेत् ॥२१८॥ चमरी वालकञ्चैव तथा कुर्वीत पाण्डुरैः चामरं द्वितयं स्वर्णरत्नदण्डसमायुतम् ॥२१९॥ वृत्तं द्वितालविस्तारं पूर्वोक्तं शुक्लनिर्मितम्। पूर्वोक्तदण्डे संप्रोतं चतुस्तालाभ्यते शुभे ॥२२०॥ तालवृन्तमितिख्यातं चित्रैरत्नैर्विभूषितं एतदप्यर्पयेद्युग्मं सद्भक्त्यायविचक्षणः ॥२२१॥ द्रव्याण्येवं समालोक्य सदोषाणि परित्यजेत्। निर्दोषाणि च सौम्यानि स गृह्णीयाद्यथा विधिः ॥२२२॥ दारुमृत्पात्र पालाश रौप्यकाञ्चन पात्रकैः एवं स्नानादि नैवेद्यावलि धूपादिभिः क्रमात् ॥ २२३ ॥ पात्रान्तरविशेषेण पुण्यं स्यादुत्तरोत्तरम्। हैमपात्र प्रदानेन यत्पुण्यं वेदपा-रगे ॥२२४॥ रौप्यपात्रप्रदानेन तस्माच्छतगुणंतु वै एवं देवार्थिमागानिर्द्रव्यैश्च कुसुमादिभिः ॥२२५॥ नार्चयेदितरंदेवं यदिसाचोक्ततावृथा सर्वदेवार्थमित्ये-तत्पुष्पादि द्रव्यसञ्चयम् ॥२२६॥ यः कुर्वीत महाद्रव्यैस्तदलाभे यजेच्छिवं। शिवार्चन विशिष्टानि योग्यान्यन्यामरार्चने ॥२२७॥ अन्यामरार्चाशेषाणि न द्रव्यानि शिवार्चने। देववाल्लुङ्कवं पुष्पमन्यद्वार्चन साधनम् ॥२२८॥ वलादा-दाय चौर्य्याद्वानप्रयुञ्जीत वा बुधः। यत्र नैवेद्यनिर्माल्य संकीर्णकलशादिभिः ॥२२९॥ स्नानंतु क्रियते भक्त्या न तत् गृह्णाति शङ्करः। देवकार्य्यं गुरोः कार्य्यं गणकार्य्यन्तु योगिनां ॥२३०॥ खननोत्पाटनं खण्डं कृत्वापापैर्निलिप्यते। ह्याः पुष्पाङ्कपात्राद्यैरुपयुक्ताशिवार्चने ॥२३१॥ शैवाश्चैव गच्छन्ति रुद्रलोकं न संशयः। पूजितं पूज्यमानं वा यः पश्येद्भक्तितः शिवम् ॥२३२॥ श्रुत्वातु मोदते भक्त्या स च यागफलं लभेत्। कुशलाः सर्वभृत्याश्च देवकार्य्ये नियोजिता ॥ २२३॥ प्रयान्ति स्वामिना सार्द्धं श्रीमच्छिवपुरं महत्। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् सत्ववंर्गसमन्वितः ॥२३४॥ कालात्पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराड् भवेत् ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रो वा विभवान्वितः ॥२३५॥ विभावानुमतद्रव्यैः पूजये-दन्यथा वृथा। अस्मिन्नर्थे वायवीय संहितायां। आढ्योवायदरिद्रो वा स्वकांश-

क्तिमवंचयत् ॥२३६॥ द्रव्यैर्न्यायार्जितैरेव भक्त्यादेवं समर्चयेत्। भक्त्याविर्त्तानुसारेण शिवमुद्दिश्य यत्कृतं ॥२३७॥ अल्पे महतिवासाम्यं फलमाढ्य दरिद्रयोः भक्त्याप्रचोदितः कुर्य्यादल्प वित्तोऽपि मानवः ॥२३८॥ महाविभवसारेपि न कुर्य्याद्भक्तिवर्जितः। सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः ॥ २३८ ॥ स तेन फलभागस्य भक्तिरेवात्र कारणम्। यद्यदिष्टं समुत्कृष्टं न्यायप्राप्तञ्च यद्भवेत् ॥ २४० ॥ शिवाय तं निवेद्यं स्याद्भक्त्यानन्तफलार्थिभिः। अथ न्यायार्जितैश्चापि भक्त्या चेच्छिवमर्चयेत् ॥ २४१ ॥ न तस्य प्रत्यवायोऽस्ति भाववश्यो यतः प्रभुः। न्यायार्जितैरपि द्रव्यैरभक्त्या पूजयेद्यदि ॥ २४२ ॥ न तत्फलमवाप्नोति भक्तिरेवात्र कारणम्। शिवमुद्दिश्य यद्दानं सर्वकारणकारणम् ॥२४३॥ तदनन्तफलं दातुर्भवतीति किमद्भुतम्। सर्वेषामपि पात्राणामतिपात्रो महेश्वरः ॥ २४४ ॥ शिवे दत्तं हुतं जप्तं भक्त्या च विनिवेदिते। सर्वं तदा चयं प्राहु रागप्राप्ताविशारदाः ॥ २४५ ॥ एकमत्यंतफलदं तत् भवेन्नात्र संशयः। इति शैवरत्नाकरे पञ्चमोऽध्यायः। कपिलपञ्चरात्रे गन्धतैलमथो दद्याद्देवस्य प्रतिमां ततः। दूर्वाञ्च विष्णुक्रान्ता च श्यामाकं पद्ममेव च। पाद्याङ्गानि च चत्वारि कथितानि समासतः। इति पाद्यम्। कर्पूरमगरुपुष्पद्रव्याख्या च मनीयकम्। उद्वर्त्तनमपि तत्रैवं। रजनी सह देवी च शिरीषं लक्ष्मणापि च। महाभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्त्तनमिहोच्यते। मन्त्रतन्त्रप्रकाशिकायाम्। अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम्। तत्रैव। द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः। अगस्त्यसंहितायाम्। तथाच सतपात्रैश्च दद्याज्जातीफलं मुने। लवङ्गमपि कङ्कोलमस्तमा च मनीयके। तन्त्रान्तरे। तण्डुलान् प्रक्षिपेत् तेषु द्रव्याभावेषु तत्समम्। प्रयोगपारिजाते व्यासः। प्रतिमां पट्टयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत्। कारयेत् पर्वदिवसे यदा चमलधारणम्। ज्ञानमालायाम्। नाक्षतैरर्चयेत् विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम्। न दूर्वया यजेद्देवीं विल्वपत्रैर्दिवाकरम्। उन्मत्तमर्कपुष्पञ्च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः। अक्षतास्तु यथा प्रोक्ता इति पदार्थदर्शे उक्तालाघवानामेवायं निषेधो न तण्डुलादीनां तन्त्रान्तरे। महाभिषेकं सर्वत्र शंखेनैव प्रकल्पयेत्। सर्वत्रैव प्रशस्तोब्जः शशिसूर्य्यार्चनं विना। इति अन्यत्रापि कुन्दं शिरीषं तुलसीगणेशे धत्तूरविल्वं तमरं तथार्कं धत्तूरमर्काक्षतमब्जपाणौ वर्ज्यं शिवे केतकिशङ्खवारि इति। अथावाहने मुद्राः। देवतानेन सन्तुष्टा सर्वदा सुमुखी भवेत्। अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत्

पार्श्वौ मुद्रा चावाहनी स्मृता संक्षिप्य निक्षिपेत्त्वेयं मुद्रात्वासनसंज्ञिता अधोमुखी त्वियं चैव स्थापिता मुद्रिकामता। अङ्गुष्ठावुच्छ्रितौ कुर्य्यात्सम्मुखौ करणौ भवेत् १ प्रसृतांगुलिकौ हस्तौमिथः श्लिष्टौ तु सम्मुखौ कुर्य्यात्स्वहृदये चेयं मुद्राप्रार्थन संज्ञिका इत्येवं सर्वदेवानां पूजनेषट् प्रदर्शयेत्। शिवपूजायां लिङ्गमुद्रायां उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत्। वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च वेष्टयेत् लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसानिध्यकारिणीति श्रीकामः शीर्षिकुर्वीत राज्यकामस्तुनेत्रयोः। मुखे त्वन्नाद्यकामस्तु पादयोः सुखकामकृत् हृदये सर्वकामी च ज्ञानार्थीनाभिमण्डले राज्यकामस्तु गुह्ये वै ग्रीवायां रोगशान्तिकृत्। हेमाद्रौ सम्मुखोन्नत्य हस्तौ द्वौ किञ्चित् संकुचिताङ्गुलीरिति समाख्याता पङ्कजौ च पङ्कज प्रसूते वसा पूर्वोक्तामुकुलीया च प्रदेशे निःसृताङ्गुलिः व्याकोशमुद्रामुकुला पद्ममुद्राप्रदर्शिता अङ्गुष्ठौ वा वितानौ तु स्वकीयाङ्गुलि वेष्टितौ उच्चाभिसुखौ हस्तौ तु योजयित्वा तु निष्ठुरा तर्जन्या कुचितं कृत्वा तथैव च कनीयसी अधोमुखोदृष्टनखाश्रिता मध्ये करस्य तु च तस्मयोत्थिताः पृष्ठे अङ्गुलीरेकतः करे नालं व्यावस्थितौ द्वौ तु व्योममुद्राप्रकीर्त्तिताः नृत्यैर्गीतैरनेकैर्मुखरवयुतैः काहलीमर्दलाद्यैः भेरीवीणादि ढक्कापटहपणवकैरानकैर्गोमुखाद्यैः तालाद्यैर्लास्य वर्गैरमरचरगुरुं पार्वतीनायकं तं भक्त्यासौ शंभुकर्णोद्विजगण सहितस्तोषयामास शम्भुम्।

इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे सप्तदशस्तरङ्गः समाप्तः।

---

## अष्टादशस्तरङ्गः।

इत्येवं सामान्यतया सर्वदेवपूजनविधिं निरूप्य परस्य विवादग्रस्तां प्रदक्षिणां निर्णयाय दर्शयति तथा राघवभट्टः एकाचण्ड्यां रवौ सप्तत्रिभिर्दद्याद्विनायके चतस्रः केशवेदद्यात् शिवमर्द्धप्रदक्षिणम् अत्रार्द्धप्रदक्षिणायां विवादः अर्द्धप्रदक्षिणाया लक्षणस्य कुत्राप्यनुपलब्धेस्तद्विधानमसंगतम् यत्राप्यस्ति तत्र सोमसूत्रलङ्घने दोषः प्रणालिकालङ्घने तथा तत्रायं विधिः गर्भस्यान्तरे न वाह्यप्रदक्षिणायां सव्या सव्यमसव्यमिति त्रिविध आश्रमभेदेन कथितः तदाह पाद्मे अपसव्यं यतीनान्तु सव्यंतु ब्रह्मचारिणाम्। सव्ये सव्यं विजानीयादपसव्येप्रसव्यकम्। इष्टे,

चण्डे वृषंचैव सोमसूत्रे पुनर्वृषे पूर्वं वृषे ततश्चण्डे ततः पुनर्वृषे ततः सोमसूत्रे ततः पुनर्वृषे इति ज्ञात्वा वृषेत्रिवारं विधानादर्द्धप्रदक्षिणं शिवमित्यसङ्गतमिति सव्या सव्यादिप्रदक्षिणाया एव श्रौतत्वात् अर्द्धप्रदक्षिणाया अनुपलब्धेश्च तथाहि कुम्भकोणाख्ये तीर्थे तपस्तप्यमानो विष्णुर्न्नाम्णं मुक्त्युपायत्वेन श्रौतप्रदक्षिणां यथोक्तवान् तथैवकस्मै चिद्द्विजायागस्त्योऽप्याह तदुक्तं शिवरहस्ये सप्तमांशे षड्विंशाध्याये पुराणोक्तर्णमाश्रित्य कुम्भयोनिस्तपो निधिः। शिवध्यानरतो भूत्वा तपस्तेपेति दुस्तरम्॥ भस्मोद्धूलित सर्वांगस्त्रिपुण्ड्राङ्कित मस्तकः। रुद्राक्षमालाभरणः जटामण्डलमण्डितः॥ स ददर्शद्विजं तत्र भस्मोधूलविग्रहः। रुद्राक्षमालाभरणः शिवपूजापरायणः॥ तं दृष्ट्वातीव सन्तुष्ट सविनिर्दिष्टविष्टरः। कुशविष्टरसंविष्टं वशिष्टं प्रणनाम च॥ सम्यक् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणनाम पुनःपुनः ततः समुपविष्टं तं कुम्भयोनिं महामुनिं॥ संपूज्यार्घ्यादिभिः सम्यक् उवाच स कृताञ्जलिः। द्विज उवाच। कुम्भयोने कृतार्थोस्मि तव पादाब्जदर्शनात्। भवतः शिवभक्तस्य दर्शनं दुर्लभम्मम॥ सूर्यग्रहणकालोऽयं श्राद्धकालोयमेव हि यतोद्य-शिवभक्तस्य सङ्गमोऽभून्ममाश्रमे इत्युक्तापिद्ध हस्यर्थं चकार श्राद्धमादरात्। ततः परमुवाचायं वदधर्मानिति द्विज॥ अगस्त्य उवाच। शिवभक्तोसि धर्मज्ञ कृतार्थोस्मिशिवव्रत। धर्मः सर्वोपि विज्ञातस्त्वया तु नात्रसंशयः॥ त्वदाज्ञया शास्त्रदृष्टान् तथापिमुनिसत्तमः द्विजधर्मानहं वक्ष्ये शृणु यत्नेन सादरं॥ उत्थाय पश्चिमे कृत्वा शौचादिकं ततः स्नानं कार्य्यं प्रयत्नेन शिवलिङ्गस्य सन्निधौ॥ परिधाय ततो वस्त्रमुद्धूल्याङ्गानि भस्मना त्रिपुण्ड्रधारणं कार्य्यं ततो रुद्राक्षधारणम्॥ सन्ध्याकर्म ततो यत्नाद्देवीजप्या ततः परम्। शिवलिङ्गार्चनं कार्य्यं ततो विल्वादि साधनैः जपनीयस्ततः सम्यक् श्रौतः शिवषड़क्षरः ततो रुद्र जपं कार्य्यं शिवध्यान पुरःसरं इति अगस्त्य वच श्रुत्वाप्रणिपत्य मुनिंद्विजः। प्रदक्षिण नमस्कार विधिं ब्रूहीति चाब्रवीत्। अगस्त्य उवाच प्रदक्षिणविधिं वक्ष्ये शृणु सम्यक् द्विजोत्तम नमस्कारविधिं चात्रवक्ष्ये वैदिकमार्गतः। प्रदक्षिण नमस्कारस्तु द्विविधं वेदसंमतः सव्यापसव्यः सव्यश्च तत्राद्यविधिरुच्यते। वृषश्चण्डं वृषश्चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम् चण्डंच सोमसूत्रञ्च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम् एतत्प्रदक्षिणोक्तानि स्थानानि नवसत्तमः न तान्युल्लं घनोयानि वेदमार्गे रतैर्द्विजैः प्राग्द्वारं देवदेवस्य वृषस्थानं प्रकीर्त्तितम् वृषस्तु मुखं ज्ञेयं शिवाभिमुखमुत्तमम् देवस्य नैऋतं स्थानं चण्डस्थानं प्रकीर्त्तितम् पश्चिमाभिमुखेलिङ्गे स्थानमेतदुदीरितम् प्राङ्मुखे शिवलिङ्गे

तु चण्डस्थानं द्विजोत्तम। ईशानभागे विज्ञेयमन्यत्र तु न सर्वथा। महेशस्योत्तरं स्थानं सोमसूत्रस्थलं स्मृतम्। पूर्वाभिमुखे लिङ्गे नियमोयं प्रकीर्त्तितः। पश्चिमाभिमुखे लिङ्गे सोमसूत्रं शिवस्य तु। पूर्वस्थानन्तु विज्ञेयमन्यत्र तु न सर्वथा ज्ञेयः तानि स्थानान्येव नव स्थानानि सत्तम। एतेष्वेव त्रिरावृत्त्या नवस्थान प्रकल्पनम्। तेष्वेवैकैकमावृत्त्या तान्येवात्र पुनःपुनः यत्नेनावर्त्तनीयानि नवतां यान्ति नान्यतः। उपविश्य वृषस्थाने संकल्पविधिपूर्वकम्। कृतांजलिपुटोमौनी चण्डस्थानं व्रजेत्ततः। पुनर्वृषे समागत्य सोमसूत्रं व्रजेत्ततः। पुनर्वृषे समागत्य चण्डस्थानं व्रजेत्ततः। ततो वृषे समागत्य सोमसूत्रं व्रजेद्द्विज। सोमसूत्रमनुलङ्घ्य चण्डस्थानाद्वृषं व्रजेत्। स्थानान्येवं समावृत्य वृषभे तु पुनर्यदा। प्राप्नुयान्नियतो भूत्वा तदेकं स्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणविधिः प्रोक्तो जावालैरयमेव हि एवं प्रदक्षिणं कार्यं प्रत्यहं शङ्करालये। यद्यत्रमोहाद्व्यत्यासस्तदा स्यादन्यथा ध्रुवम्। दिवासन्ध्यासु कर्त्तव्यमेवमेव प्रदक्षिणम्। इदं प्रदक्षिणं नित्यं द्विजमात्रस्य सत्तम। प्रदक्षिणत्रयं कार्यमेव पञ्चदशाथवा अष्टौ द्वादश वा कार्याण्यधिकान्यपि शक्तितः। सव्यं सव्येन कर्त्तव्यं तदपि श्रुतिचोदितम्। तदपि द्विजमात्रस्य नित्यमेव न संशयः। शक्तैस्तु सर्वदाकार्यं सव्यासव्यप्रदक्षिणम्। इदं कार्यप्रदोषेषु शक्तिहीनैरपि द्विजैः। सव्यासव्यविधानेन प्रदोषे शङ्करालये। प्रदक्षिणात्रयं वापि कर्त्तव्यं नियमाद्द्विजैः शिवालयेषु यः कुर्यात् सव्यासव्य प्रदक्षिणम्। सफलं वा जपे यस्य संप्राप्नोति पदेपदे कृताञ्जलिपुटैरेव शिवध्यान पुरःसरम् प्रदक्षिणं सदाकार्यं महादेवालये द्विज अनुकूलित देहेन महादेव प्रदक्षिणं कदापि न कार्यं सोमसूत्रमनुल्लङ्घ गर्भे कार्या प्रदक्षिणा। वृषो यदि भवेद्गर्भे नोचेत्तत्र न सर्वथा सोमसूत्रमनुल्लङ्घ गर्भे सवृषभेपि च। पिहितं वा त्वपिहितं सोमसूत्रं न लङ्घयेत् वह्निश्चापिहितं सूत्रमुल्लङ्घ नैव सर्वथा मोहादपि हितं सूत्रमुल्लङ्घ्याप्नोति यातनाम्॥ अथ पाद्मे। अपसव्यं यतीनान्तु सव्यन्तु ब्रह्मचारिणाम्। सव्यासव्यं गृहस्थस्य शम्भोः प्रोक्तं प्रदक्षिणम्। सव्यासव्यस्वरूपन्तु स्थाने वृषस्य सङ्कल्पवृषभादौ प्रदक्षिणम्। सव्ये सव्यं विजानीयात् अपसव्येऽपसव्यकम्। अस्मिन् प्रदक्षिणे स्मार्त्ते वक्ष्यमाणे श्रौतेसव्यप्रदक्षिणे च सोमसूत्र लङ्घने दोषः बृहन्नारदीये। शिवं प्रदक्षिणीकृत्य सव्यासव्यविधानतः। यत्फलं समवाप्नोति तन्मे निगदतः शृणु। राजन् प्रदक्षिणे केन मुच्यते ब्रह्महत्यया द्वितीये नाधिकारित्वं तृतीयेनेन्द्रसम्पदं प्राप्नोतीति।

शेषः हृहन्नारदीये उक्तम् चण्डस्थानमैशानदिक् नवप्रदक्षिणोपेतं यः कुर्य्यात्तु प्रदक्षिणं त्रिंशत्सहस्र संख्याकं प्रदक्षिणफलं लभेदित्यपि देवीपुराणे। सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रणालं नैव लङ्घयेत् लिङ्गार्चन चन्द्रिकायाम्। एकाचण्ड्यांरवौ सप्तस्त्रिस्रोदद्याद्विनायके। चतस्रोविष्णवेदद्याच्छिवे तिस्रः प्रदक्षिणाः। अत्र शक्ताशक्त परत्वेन व्यवस्थातदुक्तं शिवरहस्ये। प्रदक्षिणात्रयं कुर्य्यात्तथा पञ्चदशाथ वा अष्टौद्वादश वा कार्य्याः ह्यधिकाह्यपि शक्तितः नैकं प्रदक्षिणं कुर्य्यात्सात्त्वस्य परमात्मनः। एकां प्रदक्षिणां कृत्वा शम्भोः पुण्यात् प्रहीयते प्रदक्षिणत्रयाद्यूनं नैवकार्य्यं महेश्वरे। समस्तदेवानुत् सृज्य सर्वञ्च नियमादिकं तपस्तोयं विसृज्यत्वं शरणं व्रजशङ्करं भक्त्याराधयेद्देवेशं करुणामृतवारिधिं भक्त्यैव परया देव सन्तुष्यति जगद्गुरुः। रहस्यन्ते वदाम्यद्य तत्रैवाराधनक्रमं येन शीघ्रं स तुष्टः स्यान् महेशपार्वतीपतिः। प्रदक्षिणाविधौ सम्यक् सर्वं पूजासमाप्यते प्रदक्षिणविहीना तु पूजासर्वातु निष्फला प्रदक्षिणविधिः पूजानिखिलेषूच्यते बुधैः प्रदक्षिण विधौ प्रीतस्तस्य एव महेश्वरः। प्रदक्षिणविधिः शम्भोः यः करोति दिने दिने भक्त्यात्वनन्यया पूजाकृतार्थो सौनसंशयः। पुजां कृत्वातु यः शम्भोः न करोति प्रदक्षिणं। सा पूजा निष्फला तस्य पूजकः स च दाम्भिकः। भक्त्या करोति यः सम्यक् केवलंतु प्रदक्षिणम्। पूजासर्वाकृतातेन स सम्यक् शिवपूजकः। पूजाशब्देन सर्वत्र प्रोच्यते हि प्रदक्षिणं तस्मात् प्रदक्षिणैर्हीना सा पूजा नोच्यते बुधैः। अन्येश्वराणां पूजा तु षोड़शैरुपचारकैः। पूजा शम्भोर्महेशस्य केवलन्तु प्रदक्षिणम्। सम्यक् प्रदक्षिणीकर्त्तुः पूजकादपि शङ्करः। सन्तुष्टस्य महेशानि ददाति च मनोरथम्। प्रदक्षिणमहं शम्भोः करोमीति स्मरेत् तु यः। तस्य पापा निर्वपन्ते वायुप्रहत दीपवत्। यस्तु प्रदक्षिणाख्यानि मण्डलान्यनु तिष्ठति। तस्य पापौघ फणिनः प्रशास्यति न संशयः। शम्भोः करोत्यनुदिनं यः प्रदक्षिण मण्डलं तस्मिन्नेव हि तिष्ठन्ति सिद्धयस्त्वाणिमादयः। शम्भोः करोति यो भक्त्या प्रदक्षिणविधिं नरः तस्मिन्नेवहि लभ्येत तत्सायुज्यसयोनिधिः। शम्भो रथालये सम्यक् यः प्रदक्षिणमाचरेत्। तदन्तरा तस्य देवा वशगानात्र संशयः पन्थान मासाद्य पुरा। उभौद्विज वराभंको शिवालयमपश्यतां मार्गे तत्रैकमङ्गुतं प्रदक्षिणमहं कृत्वा समागच्छेत् भवानपि। इत्युक्तोन्यस्तिरस्कृत्य तद्वचस्स जगाम वै गच्छन् सहश वै निष्कमग्रहीत् स तु तोषितः प्रदक्षिणपरो यस्तु शम्भोः कण्टक पिड़ितः निर्जगामालयात्तस्मात् कृत्वा शम्भोः प्रदक्षिणं। तेनापङ्क सितो

मार्गं प्राप्तं फलमिदं त्वया निष्फलश्रोमयामार्गे अप्रदक्षिणकारिणा त्वया प्रदक्षिण वताल्लब्धा कण्टक वेदना। गत्वातौ तत्र शाण्डिल्यं वेपतुः पथिसंस्थितं ह्यर्धं परोक्षेतं श्रुत्वा स प्राह्याथ द्विजार्भकं शाण्डिल्यः। नैवं प्रदक्षिणपरं हसत्वं मूढ़-वत्तर समागतोस्य निधयः शतं शम्भोः प्रदक्षिणात्। कण्टकेनाद्यनुन्नोऽभूत्सु सूक्ष्मं परिदृश्यताम्। अप्रदक्षिणकर्तुस्ते निधिलाभोऽस्यमागतः। प्रदक्षिण-विहीना ये कलौतागार गो वृषाः। भवन्ति हि वृथा जन्म तेषामिति गतो मुनिः। एवं सूक्ष्मं महाधर्मं प्रदक्षिणविधेः फलम्। इति श्रीस्कन्दपुराणे कालिका खण्डे पञ्चचत्वारिंशोध्यायः ४५। अतिपाप प्रशक्तोऽपि यत्प्रदक्षिणमण्डलं। एकवारं चरन् पुंसां शिवसा युज्यमाप्नुयात्। अज्ञानतोपि यः कश्चिद् लात् प्रदक्षिणमण्डलं। आवर्त्तयेदभक्तोपि स नरो मुक्तिभाक् भवेत्। सङ्कत्या लीलया वापि यः प्रदक्षिणमाचरेत्। प्रकुर्य्यादालये शम्भोः शिवलोकं सग-च्छति ग्रहरोग गृहीतोपि यः प्रदक्षिण मण्डलं। आवर्त्तयन् शम्भुगृहे स्वस्थचितो दृढ़ो भवेत् उदासीनोपि योमर्त्यः यः प्रदक्षिणमण्डलम्। आवर्त्तयन् यथा शक्ति सर्वान् कामान वाप्नुयात्। एकं वा शिव सायुज्यं प्राप्नुयान्नात्र संशयः। निर्विद्यापि प्रकुर्य्याद्याः यः प्रदक्षिणमण्डलं। किं वेदैः किं तपोभिर्गुरु परिचरणैस्तीर्थं यात्रा प्रचारैः ज्योतिष्टोमादियज्ञैर्बहुविधपशुभिः हिंसितैर्यज्ञमन्त्रैः विद्याभ्या-सैन किं वा नियतमधिकृतो मन्दिरे मे प्रचारो येनाकामिनमर्त्यो नियतिमति-रतो मत्पदन्तेन याति इति श्रीस्कन्दपुराणे सनत्कुमार संहितायां कालिका खण्डे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७। व्यासः कथं भृङ्गीमुनिस्तस्य प्रसादमकरोत् प्रभुः। किं वरं दत्तवान् तस्मै षण्मुखत्वं प्रकीर्त्तय। स्कन्दः प्रदक्षिणं प्रकुरुतः भृङ्गिणः स्वालयं प्रतिदेवैः सह महादेवः स्वात्मानं तमदर्शयत् ॥२॥ आनन्दाश्रु क्लिन्ननेत्रः पुलकावृतसत्तनुः विस्मृतस्वाङ्ग सञ्चारी भृङ्गी तत्रास्थितः पुरः॥ ३॥ शिवसन्दर्शनानन्द लहरीमग्नमानसः भक्तिभार नते नैव स्वमूर्ध्ना प्रणतोभवत्॥ ४॥ प्रणिपत्यशिवं कर्त्तुमियेषास्य प्रदक्षिणं मुनिरालोकयामास शम्भोस्तद्वपुरु-त्तमम्॥ ५॥ रजताद्रि समाकार वृषेन्द्रोपरिसंस्थितं गिरीन्द्रजा वामभाग गिरीशं भस्मपाण्डुरम्॥ ६॥ कस्तूरीचन्दनालिप्तवामभागविभूषितम्। ताट-ङ्काङ्कितवामाङ्गं दिव्याम्बरविभूषितम्॥ ७॥ व्याघ्राजिनावृतं चान्यत्त्रिपुण्ड्र-परिशोभितम्। दृष्ट्वा गुरुवचः स्मृत्वाक्षणं चिन्तापरोऽभवत्॥ ८॥ प्रदक्षिणं करोम्येवं कथं वा केवलं शिवम्। गुरुवाक्यं प्रमाणं मे तदेव करवाण्यहम्॥ ९॥

इति निश्चित्य मनसा सव्यासव्यं चकार सः। सव्यं चाप्यपसव्यं च शिवं कृत्वा मुनीश्वर ॥१०॥ वहिश्चकारशैलेन्द्र तनयांल्लोकमातरम्। आत्मानञ्च वहिष्कृत्य शिवं दक्षिणभागतः ॥ ११ ॥ सव्यापसव्यमार्गेण चरन्तं मुनिवर्य्यकम्। दृष्ट्वा प्रकुपिता गौरी शिवस्यार्द्धशरीरिणी ॥१२॥ ततो भिन्ना भवद्देवी देवदेवान्मुने पुनः। सर्वदेवेशमालोक्य देवीदेवमभाषत ॥ १३ ॥ देव्युवाच। देव देव महादेव सर्वलोकैकनायक। कथं मुनिर्दुरात्मायं मां वहिः कुरुते शिव ॥ १४ ॥ अभेदे त्वावयोः सिद्धे भेदेनैव कृतो यतः। तस्मादेनन्तु शप्स्यामि शिवसंमूढ़चेतसम् ॥ १५ ॥ इति शप्तुं कृतमतिं देवीमालोक्य शङ्करः। प्रसादमानो देवेशीं मृड़ानीमब्रवीद्वचः ॥ १६ ॥ शिवः प्रसादः क्रियतां देवि मुनौ गुरुवचस्थिते। पूर्वमेवोक्तवानस्मि गुरुभक्त इति त्वयि ॥ १७ ॥ अभेदे त्वावयो सिद्धे भृंगी मुनिवरोह्ययम्। भक्तिदार्ढ्याद्गुरोर्वाक्याद् भेदोऽनेन कृतस्तव ॥१८॥ गुरुभक्तस्यास्य मुनेर्मयि भक्तिरतस्थिरा। त्वया न कोपः क्रियतां करुणां कर्त्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ एवमुक्ता महादेवी चालिलिङ्ग महेश्वरम्। देवीप्रसादर्द शंभुमुवाच करुणानिधिम ॥ २० ॥ देव्युवाच। अनेन भृंगिपर्निना मां वहिष्करणाय तु कृतं प्रदक्षिणं यत्तु सव्यं चाप्यपसव्यकम् ॥ २१ ॥ तेनावयोः कृतो भेदः मुनिनानेन शङ्कर। कथं दास्यसि चाभीष्टं भेदकर्त्तुस्तथा मुनेः ॥२२॥ भृंगिनाम्नो मुने तस्य सर्वज्ञ करुणानिधे !। इत्युक्तो जगदीशानः प्राह शैलसुतां पुनः ॥ २३ ॥ शिवः गुरुवाक्यं दृढ़ीकर्त्तुं महिमानं प्रदर्शितम्। यथा तथा वा कुरुते मुनिः परमभक्तिमान् ॥ २४ ॥ दृढ़भक्तस्य च गुरौ करुणां कर्त्तुमर्हसि। इत्युक्तो देव देवेन प्रणिपत्यकृताञ्जलिः। य याचे वरमीशानं मृड़ानीलोकनायकम् ॥ २५ ॥ पार्वत्युवाच। गुरुभक्तिदृढ़ीकर्त्तुं दीयते यदि चेद्वर। दातुमर्हसि चाभीष्टं मदीयं मनसीप्सितम् ॥२६॥ शिवः। त्वमेव सर्वलोकानां वरदा शैलकन्यके। नियामकश्च दातव्यः शृणु यन्मनीसीप्सितम् ॥ २७ ॥ इति शम्भूक्तमाकर्ण्य वाक्यं प्रीता गिरीन्द्रजा। कृताञ्जलिर्महादेवं कथयामास पार्वती ॥२८॥ देव्युवाच। इतःपरं ये मनुजा आवयोर्भेदकारणम्। सव्यासव्यं करिष्यन्ति प्रदक्षिणविधिं हि ते ॥ २९ ॥ ते भेदबुध्याजन्मानि प्राप्नुवन्ति सुरेषु च। इति देव्यावचः श्रुत्वा भगवान् भक्तवत्सलः ॥ ३० ॥ तथास्त्विति वचः प्राह हर्षयन् हिमशैलजां। सन्तुष्टायां महेशान्यां गौरीशः करुणानिधिः ॥ ३१ ॥ प्राह गंभीरया वाचा समालोक्य च भृङ्गिणं शिव कुरु प्रदक्षिणं भृङ्गिन् मां च

देवीं सदा मुने। मया सहैवाविच्छिन्नं तत्प्रसादमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥ इत्युक्तो देवदेवेन प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। उभेशौ कृतवान् सम्यगविच्छिन्नप्रदक्षिणम्॥ ३३॥ कृते सम्यङ् मुनीशेन देवीं तेन प्रदक्षिणे। मुनिना तेन सुप्रीता देव्यपश्यन् महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ वरन्दातुं कृतोद्योगो दृष्ट्वा देवीं महेश्वरः। वरं वृणीष्विति प्रोवाच सुप्रीतं भृङ्गिणं प्रति ॥ ३५॥ प्रणिपत्यस्तुवन्तस्मै गिरीशाय कृताञ्जलिः। अतोऽर्द्ध प्रदक्षिणा न कार्य्या यत्तु सव्यासव्य प्रदक्षिणं तदपि प्रदक्षिणार्द्धं न बोधयति सापि वैदिक परत्वा द्विजमात्रस्य नान्येषाम् तत्रापि लिङ्गभेदेन परिपूर्ण प्रदक्षिणा यथा नारदीये रसलिङ्गं वाणलिङ्गं पार्थिवं गण्डकी भवम्। प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत सव्येनैव यथोदितम्। सोमसूत्रं द्वयं यत्र यत्र वा विष्णुमन्दिरम् ॥ अपसव्ये न कुर्वीत सव्ये नैव प्रदक्षिणम्। सूत संहितायामप्याह ज्योतिर्लिङ्गे रत्नलिङ्गे स्वयम्भूते तथैव च ॥ वृषचण्डादिनियमो सुरेश्वरि! न विद्यते। आदित्य पुराणेऽपि। पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं लिङ्गं नन्दिविवर्जितम्। गिरिलिङ्गं स्थलं लिङ्गं जललिङ्गं तथैव च। लिङ्गष्वेतेषु सर्वेषु कुर्य्यात्पूर्णप्रदक्षिणम्। पश्चिमाभिमुखं विश्वेश्वरादि पूर्वं तथैवासीत्काश्यां विश्वेश्वरलिङ्गं नाधुना गिरिलिङ्गं त्र्यम्बकादिस्थललिङ्गं काश्यादिजललिङ्गं वरुणेश्वरादि तथाग्निपुराणे। सर्वदिक्षु महाभागे विभोः कुर्य्यात् प्रदक्षिणम्। सोमसूत्रादि नियमो नास्ति विश्वेश्वरालये। अथवा वृषं चण्डं वृषं चण्डं सोमसूत्रं पुनर्वृषम्। चण्डञ्च सोमसूत्रञ्च पुनश्चण्डञ्च पुनर्वृषमिति वचनस्य प्रदोष प्रकरण पठितत्वात् प्रदोषे सर्वलिङ्गेषु तथैव प्रदक्षिणा कार्य्या अतएव पश्चिमाभि मुखत्वादिप्रतिप्रसवं वाधित्वा अष्टम्यां प्रदोषे वृषं चण्डमित्युक्त प्रकारेण विश्वेश्वरे व्यासेन प्रदक्षिणाकृतेति सनत्कुमार संहितायाम्। तथा शिवरहस्ये सव्यासव्य विधानेन प्रदोषे शङ्करालये इति प्रदोष पुरस्कारेणैव सव्यासव्य प्रदक्षिणाविहितो। अथवा वृषचण्डमिति प्रासाद प्रदक्षिणा विषयं शिवालयेषु यः कुर्य्यात्सव्यासव्य मिति पञ्च शिवालय पदोपादानात् प्रदक्षिणात्रयं कुर्य्यादपि प्रासाद समन्ततः सव्यासव्यन्यायेन मृदु गत्वा शुचिर्नर इति लैङ्गेऽपि प्रासादपदोपादानाच्च शिवरहस्येऽपि वृषं चण्डं वृषञ्चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषमित्युपक्रम्य एवं प्रदक्षिणं कार्य्यं प्रत्यहं शङ्करालये इत्युपसंहारे आलयस्य पदोपादानाच्च अथवा शक्ताशक्तविषयम्। तदुक्तम् शिवरहस्ये शक्तैस्तु सर्वथा कार्य्यं सव्यासव्य प्रदक्षिणम् इदं कार्य्यं प्रदोषेषु शक्तिहीनैरपि द्विजैः प्रदक्षिणायां नियमश्चोक्तो लैङ्गे शिवप्रदक्षिणं कुर्य्यान्मृदु-

गत्वा शुचिर्नरः न तिष्ठन् नातिधावच्छनैः कुर्य्यात् प्रदक्षिणां भविष्येऽपि आसन्नप्रसवा नारी जलं पूर्णं घटं यथा। उद्वहन्ति शनैर्याति तथा कुर्य्यात् प्रदक्षिणम्। पदे पदान्तरं गत्वा करौ चालनवर्जितौ। वाचा स्तोत्रं मनोध्यानं चतुरङ्गप्रदक्षिणम्॥ नारदीयेऽपि। शिवप्रदक्षिणायान्तु मौनं कार्य्यं प्रयत्नतः कृतांजलिपुटैरेव शिवस्मरणपूर्वकम्॥ सव्यासव्यप्रदक्षिणा वैदिकानामुक्तं नान्येषाम्। वृहन्नारदीयेऽपि। शिवं प्रदक्षिणीकुर्वन् सोमसूत्रं न लंघयेत्। लंघयित्वैकमेकैकं स्यादलंघ्यायुतत्रयम्॥ सोममानं सिद्धान्तशेखरे। प्रासादविस्तारसमानसूत्रं सोमस्य सूत्रं दिशि सोमसूत्रं सूत्राद्बहिर्लंघनतो न दोषस्तद्दोषमभ्यन्तर लंघने तु यस्यार्थस्तेनैव कृतः प्रसादमध्यालिङ्गमवधीकृत्यभित्तिपर्य्यन्तं सोमसूत्रमानं तावन्मानं भित्तेर्वहिर्नलंघनीयम्। कस्यान्दिशि सोमस्य दिशि सोमश्चन्द्रस्तस्य दिगुत्तरातस्यामित्यर्थः ततोऽग्रेन सोमसूत्रं तल्लंघने न दोषः किन्तु एकमेकं प्रदक्षिणाफलम् तल्लंघनेत्ययुन त्रयं प्रदक्षिणाफलं स्यादित्यर्थः यथा श्रुतव्याख्यानेत्वेकमेकं स्यादिति नोपपद्यते तल्लंघनस्य निषिद्धत्वात् सोमस्यदिशीत्युपलक्षणम्। तेन प्रणालीं न लंघयेदित्यर्थः काष्ठलोष्ठादिभिराच्छन्नायान्तु न दोषः तदुक्तं सूतसंहितायाम्। काष्ठलोष्ठादिभिश्छन्ने लंघनेनैव दुष्यति सोमसूत्रमनुल्लंघ गर्भेकार्य्या प्रदक्षिणा। वृषो यदि भवेद्गर्भेनो चेत् तत्र न सर्वथा॥ सोमसूत्रमनुल्लंघ्य गर्भे स वृषेऽपि च। पिहितं वा त्वपिहितं वा सोमसूत्रं न लंघयेत्॥ वहिस्थापि हि तं सूत्रसुल्लंघ्यनैव सर्वथा। मोहादपि;हितं तत् सूत्रमुल्लंघ्याप्नोति यातनाम्। स्कान्देऽपि। वृषभांतरितो भूत्वा पीठकान्तरमेव च। प्रदक्षिणं न कुर्वीत कुर्वन् किल्बिषमश्नुते॥ सोमसूत्रद्वयं यत्र त्युक्तेः सोमसूत्रद्वयं यत्रास्ति तत्र सोमसूत्र लंघने न दोषः प्रदक्षिणादेवागारस्य गर्भेन कार्य्याः यस्य कस्यापि। देवस्य साक्षात् स्नानज लंघने महाहानिर्भवेत् तस्माद्बहिः कार्य्या प्रदक्षिणेति शिवधर्मोत्तरे दोषोपादानात् नन्दीशङ्करयोर्मध्ये न गन्तव्यं कदाचनेत्यन्तरागमन निषेधाच्च इति वैदिकप्रदक्षिणा अग्रे साधारण प्रदक्षिणा सर्वेषाम् प्रदक्षिणास्वरूपन्तु। लिङ्गपुराणे। सर्वदिक्षु महाभागे विभोः कुर्य्यात् प्रदक्षिणाम्। सोमसूत्रस्य नियमोनास्ति विश्वेश्वरालये। इति सनत्सुजातोऽपि भृङ्गिरिटिं प्रतिवदति शम्भोः करोत्यनुदिनं यः प्रदक्षिणमण्डलम्। तस्मिन्नेव हि तिष्ठन्ति सिद्धयस्त्वणिमादयः॥ शिवोऽपि नन्दिनं प्रत्याह। अतिप्रसक्तोऽपि यः प्रदक्षिणमण्डलं। एकवारं चरेत् शम्भोः शिव सा युज्यमाप्नुयात्॥

अज्ञानतोपि यः कश्चित् शिवप्रदक्षिणमण्डलम्। आवर्त्तयेत् अभक्तोऽपि स नरो मुक्तिभाग् भवेत्॥ सङ्गत्या लीलयावापि यः प्रदक्षिणमण्डलम्। प्रकुर्य्यादालये शम्भोः शिवलोकं स गच्छति॥ इति। सर्वसाधारणं पूर्णं प्रदक्षिणं स्मार्त्तम्। तत्र सर्वेषामधिकारः प्रदक्षिणाद्विविधा एका पूजाङ्गभूता द्वितीया स्वतन्त्रा सर्वपापानां प्रायश्चित्तरूपा शिवप्रसादजननी प्रथमा तु सनत्सुजातेनोक्ता पूजां कृत्वा तु यः शम्भोः न करोति प्रदक्षिणं सापूजानिष्फला तस्य पूजकः स हि दाम्भिकः इति। तर्हि पूजासाफल्य प्रयोजनैव प्रदक्षिणेति चेन्न प्रदक्षिणाया महत्फलोपादानात् तथा हि सनत्कुमार संहितायाम्। प्रदक्षिणा नमस्कारौ सर्वाभीष्टप्रदावुभौ। पूजान्ते च सदा कार्य्या भोगमोक्षार्थिभिर्नरैरिति। द्वितीयापि सनत्सुजातेनोक्ता भृङ्गिरिटिं प्रतितदाह। कालिका पुराणे। वदाम्यहं मुपायन्ते शुद्धचित्तस्यसाम्प्रतम्। यथा तव प्रसन्नःस्यात्येन शीघ्रं महेश्वरः। ब्रह्मचर्य्येण किं वा ते गुरुशुश्रूषयापिवा। समस्तदेवताध्यानैः का सिद्धिः शङ्करादृते। अन्यत्रापि शिव प्रदक्षिणेनैव सर्वं पापं विनाशयेत्। प्रदक्षिणात्याग पापं नाशकं नास्ति भूतले। इति प्रदक्षिणा संख्यामाह शिवरहस्ये। शिव प्रदक्षिणां कुर्य्यात्त्वयमष्टोत्तरंशतम्। सहस्रमयुतं लक्षं कोटिमन्येन कारयेत्। प्रदक्षिणात्रयं कुर्य्यात्तथा पञ्चदशाथवा। अष्टौद्वादश वा कार्य्या ह्यधिका अपि शक्तितः। इति कालभेदात्संख्या भेदमाह शिवरहस्ये। प्रातः शिवार्चने देवि दश कार्य्या प्रदक्षिणा। मध्याह्ने द्वादशाथैका दश सायाह्नि सादर मिति। अथ लक्षप्रदक्षिणा विधिः युधिष्ठिर उवाच। पुरा तु ऋषयः सर्वेनैमिषारण्य वासिनः। शौनकाद्या महात्मानः सर्वं शास्त्र विशारदाः॥ १॥ तीर्थयात्रा प्रसङ्गेन गङ्गाद्वार मुपागमन्। तत्रस्नाताः कृत जपा विधिवद्दत्त दक्षिणाः॥ २॥ यावत्सुखोपविष्टास्ते हर्षं निर्भरमानसाः। तावत्तन्द्दृशुस्तत्र सूतं शास्त्रार्थकोविदम्॥ ३॥ ददर्श सोपितांस्तत्र ऋषीन् विगत कल्मषान्। ननाम दण्डवद्भक्त्यातैश्चापि प्रतिपूजितः॥ ४॥ ते चक्रुः परमातिथ्यं कुशलं प्रश्न मेव च। सुखोपविष्टन्तं सूतं पप्रच्छुरिदमादरात्॥ ५॥ ऋषय ऊचुः। सूत सूत महाप्राज्ञ चिरं दृष्टोसि सुव्रत। कस्मिन्तीर्थेथवा देशेकालोऽहि निहतस्त्वया॥ ६॥ त्वद्दर्शनेन सौख्यं तु जातं नः परमाद्भुतम्। कं विधिं ज्ञातु मिच्छामस्तच्छृणुष्व महामते॥ ७॥ त्वयोक्ता विविधा धर्मास्तथा नानाविधाः कथाः। व्रतानि च विचित्राणि मनोरथकराणि च॥ ८॥ इदानीं वदवेदस्य व्रतं परम पावनम्। यत्कृत्वा

सर्वसिद्धिः स्थावराणां वाञ्छित प्रदम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच। सम्यक् पृष्ठस्त्वषि-भणाव्रतं देवस्य चाद्भुतम्। ममापि कथितं हर्षो जायते नात्र संशयः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाव। धर्मा बहुविधाः प्रोक्तास्त्वयाऽनन्तफलप्रदाः। इदानीं श्रोतु-मिच्छामि व्रतं सम्पत्करं शुभम् ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण उवाच। शृणु राजन् प्रवच्यामि शिवस्य व्रतमुत्तमम्। लक्षप्रदक्षिणानाम व्रतमस्ति सुदुर्लभम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य गुरुदाराभिमर्षिनः। सङ्कीर्णानि पापानि सङ्कलीकरणानि च ॥ १३ ॥ प्रकीर्णकानि पापानि मलिनी करणानि च। भ्रातृपत्नी सुतादीनां गामिनः काममोहिताः ॥ १४ ॥ गुरोर्विश्वास हीनस्य व्रतभ्रष्टस्य पापिनः। सन्ध्याकर्म विहीनस्य जगद्धृङ्मार्ग वर्त्तिनः ॥ १५ ॥ दासी वेश्यासङ्गिनश्च चाण्डाली गामिनस्तथा। परस्वाहारिणश्चापि देव द्रव्यापहारिणः ॥१६॥ ब्राह्मणद्वेषिणश्चापि वृत्तिच्छेदकरस्य च। रहस्यभेदकस्यापि रहसिकृतपापिनः ॥ १७ ॥ ब्रह्मयज्ञ-विहीनस्य दुःशास्त्रनिरतस्य च। गुरुनिन्दादिश्रोतुश्च गुरु द्रव्यापहारिणः ॥१८॥ ब्रह्महत्यादि पापानां प्रायश्चित्तं यदीच्छसि। सङ्कलीकरणानाञ्च मलिनीकर-णस्य च ॥ १९ ॥ अपात्रीकरणञ्च प्रायश्चित्तं यदीच्छसि। भ्रातृपत्नीसुतानाञ्च गामिनः शमनस्तथा ॥ २० ॥ श्वश्रूभ्रातृबन्धूनाञ्च इच्छया गामिनान्तथा। लक्षप्रदक्षिणानाम व्रतं कुर्य्यान्महीपते ॥२१॥ सन्ध्याकर्मादित्यागस्य चाण्डाली-गामिनस्तथा। दासीवेश्यासङ्गिनश्च क्षयं यान्ति न संशयः ॥ २२ ॥ वर्द्धनं सर्वभूतीनां सदाविजयकारणम्। किन्नैभिर्बहुभिर्वाक्यैः कथितैश्च पुनःपुनः ॥२३॥ दारिद्र्यनाशनं पुण्यं सर्वैश्वर्य्यप्रदं शिवम्। दुर्लभम् सर्वमर्त्यानां पुत्र पौत्र प्रवर्द्ध-नम् ॥ २४ ॥ योयान् प्रार्थयतेकामान् सतानाप्नोतिमानवः। ऋषय उचुः। सूत सूत महाभाग वेदविद्या विशारद ॥ २५ ॥ यथा प्रदक्षिणाकार्य्या मनु-जैर्विधिपूर्वकम्। सूत उवाच। एवमेव पुरापृष्टो भगवान् शिवयाशिवः ॥२६॥ तद्ब्रवीमि मुनिश्रेष्ठाः शृण्वन्तु विधिमुत्तमम्। देव्युवाच। भगवन् देव देवेश ! प्रदक्षिण विधिम्वद ॥ २७ ॥ शिव प्रदक्षिणेनाशुनिष्पापः पुण्यवान् भवेत्। श्रीमहादेव उवाच। श्रावणे माधवे ऊर्ज्जे माघमासे व्रतञ्चरेत् ॥ २८ ॥ लिङ्ग-प्रदक्षिणा कुर्य्यात्सुन्दरि विधिपूर्वका। श्रीदेव्युवाच। लिङ्गप्रदक्षिणे देव नियमाः के भवन्तितान् ॥ ३० ॥ वदस्वेतितदाशेष विश्वनाथ कृपानिधे !। शिव उवाच। प्रतिग्रहपरान्नञ्च परदाराभिभाषिणम् ॥३०॥ परस्वग्रहणं स्नेहा-दसद्वादं चवर्जयेत। असतां पापिनां संगं न कुर्य्यात् प्रयतो नरः ॥ ३१ ॥ असत्

समागमात्सर्वं निष्फलं जायते नृणाम्। मम द्रोहपरैः साकं न व्रजेद्विष्णुनिन्दकैः ॥ ३२ ॥ परापवादं नो कुर्य्यात्परद्रोहं न कारयेत्। निन्दाञ्च गुरुशास्त्राणां सर्वधर्मरतात्मनाम् ॥ ३३ ॥ तीर्थलिङ्ग तपो निन्दां न कुर्य्यात्तु कदाचन। ब्रह्म-हत्यादि पापानां प्रायश्चित्तं न चापरम् ॥ ३४ ॥ शिवलिङ्गे महादेवि ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणाः। अनन्तकोटिगुणितं भवेत्सर्वं न संशयः ॥ ३५ ॥ शिवापतेः प्रत्य-हञ्च पूजा कार्य्या प्रयत्नतः। उमापतेः पूजनेन सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ३६ ॥ एवं यः कुरुतेमर्त्यो व्रतमेतत् सुदुर्लभम्। यं यश्चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंश-यम् ॥ ३७ ॥ लक्षं समाप्य पश्चात्तु कुर्य्यादुद्यापनं व्रती। एवं संपाद्यविधि-वत्कुम्भे मासि शुभेदिने ॥ ३८ ॥ देव्युवाच। व्रतस्योद्यापनं कर्म कथं कार्य्यञ्च मानवैः। को विधिः कानि द्रव्याणि कथयस्व मम प्रभोः ॥ ३९ ॥ ईश्वर उवाच शृणुभद्रे प्रयत्नेन लोकानां हितकाम्यया। उद्यापन विधिञ्चैव कथयामि तवा-ग्रतः ॥ ४० ॥ यथा सञ्जायते वित्तं भक्ति श्रद्धा समन्विता। स एव व्रतका-लश्च यतो नित्यं हि जीवितम् ॥ ४१ ॥ कामक्रोधाद्यहङ्कार द्वेषपै शून्यवर्जितः। सम्पाद्य सर्वसम्भारान् मण्डपं तत्र कारयेत् ॥४२॥ प्रातः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुर्य्यादुद्यापनं बुधः। मासतिथ्यादि संकल्पं कुर्य्यात्स्वस्त्ययनं ततः ॥ ४३ ॥ पुण्याह वाचनं कार्य्यमाचार्य्य वरणं ततः। ततो ब्राह्मणमाहूय वेदवेदाङ्ग पारगम् ॥ ४४ ॥ आचार्य्यं वरयेत् पूर्वं ऋत्विगिकादशैः सह। देवागारे तथा गोष्ठे शुद्धे वा स्वीयमन्दिरे ॥ ४५ ॥ पुष्पमण्डपिकां कृत्वा पट्टकूलादिवेष्टितम्। तन्मध्ये लिङ्गतोभद्रं रचयेल्लक्षणान्वितम् ॥४६॥ अव्रणं सजलं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत्। सौवर्णं रजतं ताम्रं मृन्मयं वापि कारयेत् ॥४७॥ तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं वैणवमृण्मयम्। कुम्भोपरिन्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् ॥४८॥ उमामहेश्वरों मूर्त्तिं पूजयेद् वृषभेस्थितम्। ब्राह्मणं दक्षिणेभागे सावित्र्या सह सुप्रभम् ॥४९॥ कौवेर्य्यां स्थापयेद्विष्णुं लक्ष्म्यासहगुरुत्मना महेशं स्थापयेन् मध्ये शिवावृष समन्वितम् ॥५०॥ ततः पूजां विनिर्वर्त्य महासम्भारविस्तरैः। परमान्नञ्च नैवेद्यं भक्त्यादेवायदापयेत् ॥५१॥ उपोष्यजागरं कुर्य्याद्रात्रौ सत् कथया मुदा। ततः प्रभातसमये स्नात्वा शुद्धे जले शुचिः ॥५२॥ मृदाच स्थण्डिलं कार्य्यं कुर्य्यादग्निमुखं ततः। प्रदक्षिणादशांशेन हवनं कारयेद्व्रती ॥५३॥ हव-नस्य दशांशेन तर्पणं कारयेत्ततः। तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कारयेततः ॥५४॥ प्रदक्षिण शतांशेन ब्राह्मणान् भोजयेत् सुधीः। स्वशाखोक्तेन विधिना होमयें

द्रुद्रमन्त्रकैः ॥५५॥ मूलमन्त्रेण गायत्र्या शम्भोर्नामसहस्रकम्। पलाशस्य समिद्भिश्च यवव्रीहि तिलाज्यकैः ॥५६॥ पूर्णाहुतिं ततो दद्यात् कृत्वास्विष्ट कृदादिकम्। होमान्ते च गुरुं पूज्य सपत्नीकं समाहितः ॥५७॥ प्रतिमाकुम्भसहितामाचार्य्याय निवेदयेत्। शम्भो प्रसीद देवेश सर्वलोक महेश्वर ॥ ५८ ॥ तवरूप प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः। यद्भक्त्या देवदेवेश मयाव्रतमिदं कृतं ॥ ५९ ॥ न्यूनं वाथ क्रियाहीनं परिपूर्णं तदस्तुमे। अनेनैव विधानेन य इदं व्रतमाचरेत् ॥ ६० ॥ यं यच्चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोतिमानवः। इहलोके सुखीभूत्वा भुक्त्वाभोगान् यथेप्सितान् ॥ ६१ ॥ अन्ते विमानमारुह्य शिवलोकं स गच्छति। इति स्कन्दपुराणे शिवलक्षप्रदक्षिणा व्रतोद्यापनम्।

इतिनिर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे अष्टादशस्तरङ्गः।

---

## अथैकोनविंशस्तरङ्गः।

गौतमः। प्रक्षाल्यहस्तौचाम्य दर्भपाणिः समाहितः। तदभावेसुवर्णञ्च तदभावे तु राजतम्। संध्योपासिनं ततः कृत्वा ततो देवगृहं व्रजेत्। देववेद्यामथालिप्य रङ्गवल्यादिकं शुचि ॥२॥ पद्मकं स्वस्तिकं चैव हंस सारससन्निभं नानावर्णक पिष्टैश्च रचयेत्तन्मनोहरं ॥३॥ षट्कोणञ्च त्रिकोणञ्च नवकोण मथापिवा कोणद्वादशकांदोल पादुकाछत्रचामरं ॥४॥ पिष्टैर्विरचयेद्धीमान्देववेद्यांशिवाग्रतः। यत्र वा शिवपूजास्यात् तत्रैवं कल्पयेद्बुधः ॥५॥ स्वहस्तरचितं मुख्यं कृतमन्येन मध्यमं। याचितन्तु कनिष्ठं स्याद्बलात्कारेण चाधमम् ॥६॥ विशुद्धचैलचर्मादि कुशकाश्यासनेषु च प्रागीश दिङ्मुखोवापि यदिचोत्तरपश्चिमे ॥७॥ कृतपद्मासनस्थः स्वस्तिकासन एव वाकुक्कुटासन संस्थो वा कूर्मासन गतोपिवा ॥८॥ देशकालौच संकीर्त्य प्राणानायम्यवाग्यतः। तावत्स्व देवतां ध्यायेदात्मानं शिवरूपिणम् ॥९॥ शिवाग्रेद्वादशान्ते च हृत्पद्मे वा विशेषतः। अन्तश्चरन्त भूतेषु गुहायां विश्वमूर्त्तिषु ॥१०॥ सर्वाधारं गुणाकारमणिमादिगुणान्वितम्। ध्यात्वाशिवं त्रिनेत्रञ्च सोमं चन्द्रार्द्धशेखरम् ॥११॥ नीलकण्ठ महादेव सर्वाभरण भूषितं। तमेवं भावयेदादौ तद्दीप्तापापपूरुषं ॥१२॥ दग्ध्वा-

स्वात्मानमव्यग्रो धारयेदात्मभावितः। एवं शुद्धवपुर्ध्यात्वा लिङ्गेवाह्यमहेश्वरम् ॥ १३॥ स्फाटिके रत्नजेवापि सौवर्णे राजतेपि वा। रसजे वाणलिङ्गेतु नावाः वाहनमिष्यते ॥१४॥ पीठे संस्थाप्य तदनुसंकलीकृत्य मुद्रया परिकल्प्यासनं शुद्धं तत्र लिङ्गं विधायच ॥१५॥ घृतेन दीपानुद्दीप्य तैलेनापि स्वशक्तितः॥ विनादीपं महेशार्चा निष्फलेति प्रकोर्त्तिता ॥१६॥ चालितान्यथपात्राणि यातु जानि यथा क्रमम्। शङ्खं सुशुद्धं संस्थाप्य स पुष्प जलपूरितम् ॥१७॥ शोधितं वासितं तोय पूरितं कलशं चिपेत्। सुगन्धिपाटलोशीर मिश्रितं चन्दनोदकम् ॥१८॥ पञ्चामृतानि पात्राणि पञ्चगव्योत्तराणि च। फलानि नालिकेरादि परिकल्प्य यथाविधिः ॥१९॥ गन्धपुष्पाचतादीनि पूजाद्रव्याणि यानि च केशकीटादि विघ्नानिशोध्य संस्थापयेत् क्रमात् ॥२०॥ तानिस्थाप्य समीपे तु ततः सङ्कल्पमाचरेत्। शिवपूजां करिष्यामि इत्येवं द्विजगोत्तम ॥२१॥ आकर्षण्या मुद्रया च सङ्कलीकरणान्तिकम्। कृत्वा वा महादेवं पाद्यार्घ्यौ च मनन्ततः ॥ २२ ॥ ततः पञ्चामृतैः स्नाप्य मूलमन्त्रेण पूजकः। पञ्चगव्यन्दधिचीरं मधुपर्कं ततः क्रमात् ॥ २२ ॥ चीरं दधिघृतं तैलं मधु वै शर्करास्तथा। नालिकेरोदकंशुद्धं निस्त्वचं कदलीफलम् ॥ २४ ॥ रसालसारञ्च वीरम्पनसेचुरसस्तथा। गन्धोदकङ्कुशाग्रां वुपुष्य रत्नोदकं तथा ॥ २५ ॥ कृत्वास्नपनपर्य्यन्तस्ततः स्नानं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपु॰ सनत्कुमारसंहिता कालिकाखण्डे एकोनाशीति तमोऽध्यायः

गौतमः। किञ्चित्फलम् निवेद्येशेतत्तस्नानं प्रकल्पयेम्। शंखकुम्भै स्ततः पूज्य गन्धपुष्पाचतैस्तथा ॥१॥ चन्द्रमण्डलगं तत्र अमृतं भावयन् करं कलशस्य मुखेकृत्वा भावयन् धनुमुद्रया ॥२॥ नमस्तेत्यादि मन्त्रेण शतरुद्र विधानतः अविच्छिन्नातुयाधारामुक्तिधारेति गीयते ॥३॥ धारया स्नापयेल्लिंगं जपन्मन्त्र मुपांशुना। एकवारं त्रिवारं वा पञ्चसप्त न वापि वा ॥४॥ एकादशमथावृत्या च मकैकादशान्वितं मुक्तिस्थानमिदं ज्ञेयं साचान्मोच प्रदायकम् ॥५॥ पञ्चाचरेण च स्नानं पञ्चब्रह्मात्मकेन वा। प्रणवेन पतेः प्रोक्तं श्रीरुद्रेणैव केवलं ॥६॥ ऋक्साम यजुराथर्व मन्त्रैश्च स्नापयेच्छिवम्। राजतैर्वा यथा शक्तिर्नालिकेरैश्च शुक्तिकैः ॥७॥ अलावुशकलोत्पन्नैर्स्मयैर्वा यथा वलं गोशृङ्गस्य विधिं वक्ष्ये स्नानयोग्यं यथा भवेत् ॥८॥ जीवंतीनां गवां शृङ्गं खड्गस्यापि प्रकल्पयेत्। पूर्वं तन्तु संशोध्य वह्निः शुद्धेन वारिणा ॥९॥ सुस्निग्धं लघुवृत्ताभ्यां पद्मैकद्वारमेव वा सुवर्णरजतताम्रञ्च कुर्य्याद्द्रोणांसु वृत्तया ॥१०॥ क्रमया वृत्तया स्नानं तेन देवाः

कल्पयेत्। एवं गो गवय शृङ्ग जलपूर्त्तिरथोच्यते ॥११॥ द्वाराणि सिद्धलोभार्थं सम्यक् द्वारेसु शोभिते। नागनासाकराकारं शृङ्गद्वयं प्रकल्पयेत् ॥१२॥ तत्र वै लिङ्गमौलौतु सेचयेन्मुख संमितं। सुक्षिधारागता चैषा सर्व्वपाप विनाशिनी ॥१३॥ एवं संस्नापयेदीशं धारया वृत्तसूक्ष्मया। सद्ये सद्ये निवेद्येवं फलं मूलं यथा बलम् ॥१४॥ अथवाकांस्य पात्रादि घटं सच्छिद्रमुत्तमं त्रिपद्युपरि निक्षिप्तं सान्वारंभं प्रकल्पयेत् ॥१५॥ अभिषेकान्तिमे पूज्य स्नाप्य चेशं षड़क्षरैः। मृदु-वस्त्रेण संसोध्य त्रिणैः सूक्ष्मैं रपीश्वरं ॥१६॥ नागदन्तमयेपीठे स्वर्णरजतनिष्ठिते विल्वोदुम्बरकाष्ठोत्थे स्थाप्यलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥१७॥ सूक्ष्मेण वाससावेष्ट्य विभूत्याभ्यर्चयेत्ततः। पीठपूजान्तदाकृत्वा वैराग्यादि क्रमेण च ॥१८॥ वस्त्रं तथोपवीतंच गन्धं पञ्चक मेववा। कर्पूरोशीरपाटीर मिश्रितं चन्दनं भवेत् ॥१९॥ त्रिशिखैर्विल्वपत्रैश्च पद्मकह्लार चम्पकैः। तुलसीमालतीजातीवकुलार्कदकोत्पलैः ॥२०॥ नद्यावर्त्तैश्च कुसुदैर्द्रोणैर्दमनकैरपि भवाद्यैर्निधनेत्यादि नामभिः पूजयेत् शिवम् ॥२१॥ गुग्गुलं श्रीफलं साज्यं दग्ध्वाधूपं शिवाय च षड़क्षरेण दीपञ्च दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥ पायसं क्षसरं चान्नं भक्ष्यं भोज्यं घृतान्वितम्। शाकोपदंशपानीयं यच्चान्यदुपकल्पितम् ॥ निवेदयेत्तदीशाय ताम्बूलञ्च यथा रुचिः। पुनः पुष्पाष्टकं दत्वा नीराज्य परमेश्वरम् ॥ त्रिपञ्च षट्शताष्टोत्तर घृतवर्त्तिविदीपितम्। नानारूपानुकारं वा वृषसिंह गजाकृति ॥ कुम्भं पुरुष रूपं वा कल्पितं विदीपितं पुनः। पुष्पाञ्जलिं दत्वास्तोत्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ नमस्काराष्टकं तत्र त्रितयञ्च प्रदक्षिणम्। भूषणं छत्रचामर्य्यं मज्जनादर्शं दापनम् ॥ प्रणवे नैव कुर्व्वीत आर्षपौराणिकं स्तवं। द्वात्रिंशदुपचारेण पूजैवं ते प्रकीर्त्तिता ॥ एवं त्रिवारमथवा एकवारमथापिवा। कुर्य्यात् प्रतिज्ञया शम्भो र्य्यावज्जीवं कपीश्वर ॥ वरं प्राणपरित्यागः शिरसः कृन्तनं वरम्। नत्वनभ्यर्च्यभूञ्जीयाद्भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ एकाहाकरणे पापं महत् संप्राप्यतेकपे कदाचिद्वा प्रमादेन त्यक्तो पोषाह्नि-चापरे द्विगुणाच शिवाभ्यर्च्चा कार्य्या सत्यं मयोदितम् ॥ प्रमादो नैव कर्त्तव्यः शिव पूजाविधौ सदा। इत्थं पुजाविधिं श्रुत्वा गौतमं प्रणिपत्य च। लब्धानुज्ञो मरुत् सुनुः ययौस्वैरं शिवार्चकः ॥ एतत्ते कथितं व्यासकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ इति स्कान्दे कालिकाखण्डे अशीतितमोध्यायः ॥ शिवपुराणे पुश्चाचरमुद्दिश्य। अस्याभिधानमन्त्रोयमभिधेयश्च स स्मृतः। अभिधानाभिधेयत्वान् मन्त्रसिद्धः परः शिव ॥ किन्तस्य बहुभिर्मन्त्रैः

शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः। यस्योन्नमः शिवायेति मन्त्रोयं हृदिसंस्थितः॥ तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्। येनोन्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरः कृतः॥ शिवज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च। षड़क्षरस्य मन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्॥ एतावतच्छिवज्ञान मेतावत्परम्पदम्। यदोन्नमः शिवायेति शिव वाक्यं षड़क्षरम्॥ विधिवाक्यमिदञ्चैव नार्थवादं शिवात्मकम्। लोकानुग्रहकर्त्ता यः सम्रुषार्थं कथं वदेत्॥ सर्वज्ञः परिपूर्णत्वात् सर्वदोष विवर्जितः। ब्रूयाद्वाक्यं शिवः भ्रान्तस्त्वन्यथा केन हेतुना। यावत्फलं यथा पुण्यं गुणदोषे स्वभावत॥ यद्यथा वस्थितं वस्तु सर्वज्ञस्य तथा वदेत् रागद्वेषादिभिर्दोषै र्ब्रूयात् स कथमन्यथा। ते चेश्वरे न विद्यन्ते यस्तोयैरनृतं वदेत्॥ प्रणीत ममलं ज्ञानं सर्वज्ञेन शिवेन यत् अतीतासेष दोषेण तत्प्रमाणं न संशयः॥ तस्मा दीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता यथार्थं पुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यध इति॥ अथ लिङ्गपुराणे ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं लब्ध्वा तथा पञ्चमुखो महात्मा। प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय मन्त्रं महार्थं किल पञ्चवर्णम्॥१७॥ ते लब्ध्वा मन्त्ररत्नन्तु साक्षाल्लोकपितामहात्। तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम्॥ १८॥ ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्त्तीनां परः शिवः। दत्तवानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम्॥ १९॥ तेऽपि लब्ध्वा वरान् विप्रास्तदाराधनकाङ्क्षिणः। मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुञ्जवान् नाम पर्व्वतः॥ २०॥ मत्प्रियः सततं श्रीमान् मद्भूतैः परिरक्षितः। तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकसृष्टिसमुत्सुकाः॥ २१॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु वायुभक्षाः समाचरन्। तिष्ठन्तोऽनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषयः पुरा॥ २२॥ तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम्। पञ्चाक्षरौस्यृषिच्छन्दो-दैवतं शक्तिबीजवत्॥ २३॥ न्यासं षड़ङ्गं दिग्बन्धं विनियोगमशेषतः। प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया॥ २४॥ तच्छ्रुत्वा मन्त्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः। मन्त्रस्य विनियोगञ्च ज्ञात्वा सर्वमनुष्ठिताः॥ २५॥ तन्माहात्म्यात् तदा लोकान् सदेवासुरमानुषान्। वर्णान् वर्णविभागांश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान्॥ २६॥ पूर्वकल्पसमुद्भूतान् श्रुतवन्तो यथा पुरा। पञ्चाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः॥ २७॥ तिष्ठन्ति शाश्वता धर्मा देवाः सर्वमिदं जगत्। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणु चावहिताखिलम्॥ २८॥ अल्पाक्षरं महार्थञ्च वेदसारं विमुक्तिदम्। आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्॥ २९॥ नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम्। सुनिश्चितार्थं गम्भीरं वाक्यं मे पारमे-

क्षरम् ॥ ३० ॥ मन्त्रं सुखमुखोच्चार्य्यमशेषार्थप्रसाधकम्। तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं सुशोभनम् ॥ ३१ ॥ अतिसूक्ष्मं महार्थञ्च ज्ञेयं तद्वटवीजवत्। वेदः स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत् प्रभुः ॥ ३२ ॥ ओमित्येकाक्षरं मन्त्रं स्थितः सर्वगतः शिवः। मन्त्रे षड़क्षरे सूक्ष्मे पञ्चाक्षरतनुः शिवः ॥ ३३ ॥ वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात् स्वभावतः। वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः ॥ ३४ ॥ वाच्य वाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः। वेदे शिवागमे चापि यत्र यत्र षड़क्षरः ॥ ३५ ॥ मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरो मतः। किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वाबहुविस्तृतैः ॥ ३६ ॥ यस्यैवं हृदिसंस्थोऽयं मन्त्रः स्यात् पारमेश्वरः। तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ॥ ३७ ॥ यो विद्वान् वै जपेत् सम्यगधीत्यैव विधानतः। एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत् परमं पदम् ॥ ३८ ॥ एतावद्ब्रह्मविद्या च तस्मान्नित्यं जपेद्‌बुधः। पञ्चाक्षरैः सप्रणवो मन्त्रोऽयं हृदयं मम ॥ ३९ ॥ गुह्याद्‌गुह्यतरं साक्षान्मोक्षज्ञानमनुत्तमम्। अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि ऋषिच्छन्दोऽधिदैवतम् ॥ ४० ॥ वीजं शक्तिं स्वरं वर्णं स्थानञ्चैवाक्षरं प्रति। वामदेवो नाम ऋषिः पिङ्क्तिश्छन्द उदाहृतः ॥४१॥ देवता शिव एवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने। नकारादीनि वीजानि पञ्चभूतात्मकानि च ॥ ४२ ॥ आत्मानं प्रणवं विद्धि सर्वव्यापिनमव्ययम्। शक्तिस्त्वमेव देवेशि सर्वदेवनमस्कृते ॥ ४३ ॥ त्वदीयं प्रणवं किञ्चिन्मदीयं प्रणवं तथा त्वदीयं देवि मन्त्राणां शक्तिभूतं न संशयः ॥ ४४ ॥ अकारोकारमकारा मदीये प्रणवे स्थिताः। उकारञ्च मकारञ्च अकारञ्च क्रमेण वै ॥ ४५ ॥ त्वदीयं प्रणवं विद्धि त्रिमात्रं प्लुतमुत्तमम्। ओङ्कारस्य स्वरोदात्त ऋषिर्ब्रह्मासितं वपुः ॥ ४५ ॥ छन्दो देवी च गायत्री परमात्माधिदेवता। उदात्तः प्रथमस्तद्वत् चतुर्थञ्च द्वितीयकः ॥४७॥ पञ्चमः स्वरितश्चैव मध्यमो निषधः स्मृतः। नकारः पीतवर्णश्च स्थानं पूर्वमुखं स्मृतम् ॥ ४८ ॥ इन्द्रोऽधिदैवतं छन्दो गायत्री गौतम ऋषिः। मकारः कृष्णवर्णोऽस्य स्थानं वै दक्षिणा मुखम् ॥ ४९ ॥ छन्दोऽनुष्टुबृषिश्चात्री रुद्रो दैवत मुच्यते। शिकारो धूम्रवर्णोऽस्य स्थानं वै पश्चिमं मुखम् ॥ ५० ॥ विश्वामित्र ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुस्तु दैवतम्। वाकारो हेमवर्णोऽस्य स्थानञ्चैवोत्तरं मुखम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्माधिदैवतं छन्दो बृहती चाङ्गिरा ऋषिः। यकारो रक्तवर्णश्च स्थानमूर्द्धं मुखं विराट् ॥ ५२ ॥ छन्दो ह्यृषिर्भरद्वाजः स्कन्दो दैवतमुच्यते। न्यासमस्य प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं शुभम् ॥ ५३ ॥ सर्वपापहरञ्चैव त्रिविधो

न्यासं उच्यते। उत्पत्ति-स्थिति-संहार-भेदतस्त्रिविधः स्मृतः॥ ५४॥ ब्रह्मचारि-गृहस्थानां यतीनां क्रमशो भवेत्। उत्पत्तिर्ब्रह्मचारीणां गृहस्थानां स्थितिः सदा॥ ५५॥ यतीनां संहृतिर्न्यासः सिद्धिर्भवति नान्यथा। अङ्गन्यासः कर-न्यासो देहन्यास इति त्रिधा॥ ५६॥ उत्पत्त्यादित्रिभेदेन वच्यते ते वरानने!। न्यसेत् पूर्वं करन्यासं देहन्यासमनन्तरम्॥५७॥ अङ्गन्यासं ततः पश्चादचराणां विधिक्रमात्। मूर्द्धादिपादपर्य्यन्तमुत्पत्तिर्न्यास उच्यते॥ ५८॥ पादादिमूर्द्ध-पर्य्यन्तं संहारो भवति प्रिये!। हृदयास्यगलन्यासः स्थितिन्यास उदाहृतः॥५९॥ ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनाञ्चैव शोभने। सशिरस्कं ततो देहं सर्वमन्त्रेण संस्पृशेत्॥ ६०॥ स देहन्यास इत्युक्तः सर्वेषां सम एव सः। दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठान्त एव हि॥ ६१॥ न्यस्यते यत् तदुत्पत्तिर्विपरीतस्तु संहृतिः। अङ्गुष्ठादि-कनिष्ठान्तं न्यस्यते हस्तयोर्द्वयोः॥ ६२॥ अतीव भोगदो देवि स्थिति-न्यासः कुटुम्बिनाम्। करन्यासं पुरा कृत्वा देहन्यासमनन्तरम्॥ ६३॥ अङ्ग-न्यासं न्यसेत् पश्चादेष साधारणो विधिः। ओङ्कारं सम्पुटीकृत्य सर्वाङ्गेषु च विन्यसेत्॥ ६४॥ करयोरुभयोश्चैव दशाग्राङ्गुलिषु क्रमात्। प्रक्षाल्य पादावा-चम्य शुचिर्भूत्वा समाहितः॥६५॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न्यासकर्म समाचरेत्। स्मरेत् पूर्वमृषिं छन्दो दैवतं वीजमेव च॥ ६६॥ शक्तिञ्च परमात्मानं गुरुञ्चैव वरानने। मन्त्रेण पाणी समृज्य तलयोः प्रणवं न्यसेत्॥ ६७॥ अङ्गुलीनाञ्च सर्वेषां तथा चाद्यन्तपर्वसु। सविन्दुकानि वीजानि पञ्च मध्यमपर्वसु॥ ६८॥ उत्पत्त्यादित्रिभेदेन न्यसेदाश्रमतः क्रमात्। उभाभ्यामेव पाणिभ्यामापादतल-मस्तकम्॥ ६९॥ मन्त्रेण संस्पृशेद्देहं प्रणवेनैव सम्पुटम्।मूर्द्ध्नि वक्त्रे च कण्ठे च हृदये गुह्यके तथा॥ ७०॥ पादयोरुभयोश्चैव गुह्ये च हृदये तथा। कण्ठे च मुखमध्ये च मूर्द्ध्नि च प्रणवादिकम्॥ ७१॥ हृदये गुह्यके चैव पादयोर्मूर्द्ध्नि वाचि वा। कण्ठे चैव न्यसेदेवं प्रणवादित्रिभेदतः॥ ७२॥ कृत्वाङ्गन्यासमेवं हि मुखानि परिकल्पयेत्। पूर्वादि चोर्द्ध्व-पर्य्यन्तं नकारादि यथाक्रमम्॥ ७३॥ षड़ङ्गानि न्यसेत् पश्चाद्यथास्थानञ्च शोभनम्। नमः स्वाहा वषड्ढुञ्च वौषट् फट्कारकैः सह॥ ७४॥ प्रणवं हृदयं विद्यान्नकारः शिर उच्यते। शिखा मकार आख्यातः शिकारः कवचं तथा॥ ७५॥ वाकारो नेत्रमस्त्रस्तु यकारः परिकीर्त्तितः। इत्थमङ्गानि विन्यस्य ततो वै बन्धयेद्दिशः॥ ७६॥ विघ्नेशो मातरो दुर्गा चेत्रज्ञो देवता दिशः। आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्ष्वपि यथाक्रमम्।

॥ ७७ ॥ अङ्गुष्ठतर्ज्जन्यग्राभ्यां संस्थाप्य सुमुखं शुभम्। रक्षध्वमिति चोक्त्वा तु नमस्कुर्य्यात् पृथक् पृथक् ॥ ७८ ॥ गले मध्ये तथाङ्गुष्ठे तर्ज्जन्याद्याङ्गुलीषु च। अङ्गुष्ठेन करन्यासं कुर्य्यादेवं विचक्षणः ॥ ७९ ॥ एवं न्यासमिमं प्रोक्तं सर्वपापहरं शुभम्। सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वरक्षाकरं शिवम् ॥ ८० ॥ न्यस्ते मन्त्रेऽथ सुभगे शङ्करप्रतिमो भवेत्। जन्मान्तरकृतं पापमपि नश्यति तत्-क्षणात् ॥ ८१ ॥ एवं विन्यस्य मेधावी शुद्धकायो दृढव्रतः। जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं लब्ध्वा चार्य्यप्रसादतः ॥८२॥ इति लैङ्गे ८५ अध्याये स्पष्टतरम्। श्रीगणेशाय नमः। अथ वेदपादस्तवारम्भः। श्रीरस्तु। श्रीगुरुभ्यो नमः। यद्गण्डस्थलनिःसृते मदजलेमज्जन्ति दिग्वारणाः। शैलास्तूलवदाव्रजन्तिगगने यत्कर्णतालानिलैः। यः प्रत्यूहमहाभुजङ्ग गरुड़ो यः पार्वतो सर्वयोः। प्रेमस्थानमपाकरोतुदुरितं मातङ्ग वक्त्रः स नः ॥१॥ ध्यानं प्रथममाचष्टे सूतः पौराणिकोत्तमः। प्रत्यक्षं जैमिनिस्तुत्यं नृणां ध्यानं महत्फलम् ॥१॥ अस्य श्रीवेदपादस्तवमहामन्त्रस्य जैमिनोर्भगवान् ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः। श्रीचिदम्बरसभानटो देवता मोक्षार्थे जपेविनियोगः। सप्ता-र्णवपरिक्षिप्तां द्वीपैः सप्तभिरन्वितां। पञ्चाशत्कोटिविस्तिर्णां ध्यायेत्सर्वां सभा-महीं ॥ १ ॥ तस्याश्च हृदयाम्भो जन्मान्तिकाक्षर केशरम्। ध्यायेदष्टदलन्धीमान् महाहृदयमत्र च ॥ २ ॥ तस्य मध्ये त्रिकोणे तु तरुणेन्दुशिरवा मणिम्। चारुचूड़जटापासं चलन्नोगीन्द्र कुण्डलम् ॥ ३ ॥ त्रिपूण्ड्र विलसद्भालश्चन्द्रार्का-नललोचनम्। वामपार्श्वस्थितां देवीं लक्षयन्तमपाङ्गतः ॥ ४ ॥ अधरोल्लङ्घन करोत्सन्दिहान स्मिताङ्कुरम्। कस्तूरी कायीतोद्दाम कालकूटलसद्गलम् ॥ ५ ॥ माहाडमरुकात्युर्द्ध दक्षपाणिसरोरुहम्। तदन्य करपद्मांन्तर्ज्वलदुत्स्यित पाव-कम् ॥ ६ ॥ दक्षाधः करपद्मेन हरन्तं प्राणिनाम्भयम्। विक्षिप्तान्यकरं तिर्य्यक् कुञ्चितेनाङ्घ्रिणासमम् ॥ ७ ॥ वामेतर प्रकोष्ठान्ते नृत्यत्फणधरेश्वरम्। कल्प-ब्रह्मकपालानां मालयालम्बमालया ॥८॥ स्वतन्त्र मात्मनोरूपमाचक्षाणं स्वभा-वतः। व्याघ्रचर्माम्बरधरं कटिसूत्रितपन्नगम् ॥९॥ दक्षपादाब्जविन्यासादधः कृततमोगुणम्। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं परमानन्दताण्डवम् ॥ १० ॥ एवं ध्यायेत् सुरेशानं पूण्डरीक पूरेश्वरम्। पूण्डरीक पूराधीशं पूण्डरीकाजिनाम्बरम् ॥११॥ पूण्डरीकरुचिम्वन्दे पूण्डोकाक्ष सेवितम्। मातामहमहाशैलं महस्तद पिता-महम् ॥१२॥ कारणं जगताम्वन्दे कण्ठादुपरिवारणम्। ऋषय ऊचुः। पूण्डरीक पुरं प्राप्य जैमिनिर्मुनिसत्तमः ॥ १३ ॥ किं चकार महायोगी सूतनोवक्तु

मर्हसि। सूत उवाच। भगवान् जैमिनीर्धीमान् पूण्डरीक पुरेपुरा॥ १४॥ महर्षे सिद्ध गन्धर्वयचकिन्नर सेविते। नृत्यद्भिरप्सरैस्सं वेदैर्दिव्यगानैश्च शोभितैः॥ १५॥ नृत्यन्तं परमेशानं ददर्शसदसिप्रभम्। ननामदूरनोद्दष्ट्वा दण्डवत् चितिमण्डले॥ १६॥ पापा वुत्थाय देवेश ताण्डवामृतमागतम्। पार्श्वस्थितां महादेविं पश्यन्तिं तस्य ताण्डवम्॥ १७॥ दृष्ट्वा तु संहृष्टमना पपात पुरतो मुनिः। ततः शिष्यान्समाहूय वेदशास्त्रार्थं पारगान्॥ १८॥ अग्नि केशमकेशं च शतयागजटाधरम्। वक्र नाशं शमित्यार्षिं धूमगन्धिं कुशासनम्॥ १९॥ एतैस्सार्द्धं महादेवं पूजयामास जैमिनीः। ततो विवेदवेदान्तसारार्थं तत्प्रसादतः॥ २०॥ कृताञ्जलिरुवाचेदं वेदान्त स्तवमुत्तमम्। श्रीजैमिनिरुवाच॥ २१॥ ओं विघ्नेश विधिमार्त्तण्ड चन्द्रेन्द्रोपेन्द्रवन्दितः। नमो गणपतेतुभ्यं ब्रह्मणाम्ब्रह्मणस्पते॥२२॥ उमा कोमलहस्ताब्जसम्भावित ललाटिकम्। हिरण्यकुण्डलं गण्डे कुमारं पुष्करस्रजम्॥२३॥ शिवं विष्णोश्च दुर्दृशन्नरःकस्तो तु मर्हति। तस्मात्त्वत्तःस्तुतिस्सेयं अभ्राद्वृष्टिरिवा यदि॥ २४॥ नमः शिवाय साम्बाय नमःशर्वाय शम्भवे। नमोनटाय रुद्राय सदसःपतये नमः॥ २५॥ पादभिन्ना हि लोकाय मौलिभिन्नाण्डभित्तये। भुजभ्रान्त दिगन्ताय भूतानाम्पतये नमः॥२३॥ क्वणन्नूपूर युग्मायविलसत्कृत्तिवाससे। फणीन्द्रमेखलायास्तु पशूनाम्पतये नमः॥ २७॥ कालकालाय सोमाय योगिने शूलपाणये। अस्थिभूषाय शुद्धाय जगताम्पतये नमः॥२८॥ पात्रे सर्वस्य जगतोनेत्रे सर्वदिवौकसाम् गोत्राणाम्पतयेतुभ्यं चेत्राणाम्पतये नमः॥ २९॥ शङ्कराय नमस्तुभ्यं मङ्गलाय नमोस्तुते धनानाम्पतयेतुभ्य मन्नानाम्पतये नमः॥ ३०॥ अष्टाङ्गायाति हृष्टाय क्लिष्टभक्तेष्टदायिने। इष्टिघ्नाय सुतुष्टाय पुष्टानाम्पपतये नमः॥ ३१॥ पञ्चभूताधिपतये कालाधिपतये नमः। नमः आत्माधिपतये दिशाञ्चपतये नमः॥ ३२॥ विश्वकर्त्रे महेशाय विश्वभर्त्रेपिनाकिने। विश्वहन्त्रेग्निनेत्राय विश्वरूपाय वै नमोनमः॥ ३३॥ ईशान ते तत्पुरुष नमो घोरायते तथा। वामदेव नमस्तेस्तु सद्योजाताय वै नमोनमः॥ ३४॥ भूतिभूषाय भक्तानाम्भीति भङ्गरताय च। नमो भवाय भर्गाय नमो रुद्राय मीढुषे॥ ३५॥ सहस्राङ्गाय साम्बाय सहस्राभिषवे नमः। सहस्रबाहु वै तुभ्यं सहस्राचाय मिढुषे॥ ३६॥ सुकपोलाय सोमाय सुललाटाय सुभ्रुवे। सुदेहाय नमस्तुभ्यं सुमृड़ीकाय मिढुषे॥ ३७॥ भव क्लेश निमित्तोरुभयच्छेद कर्त्रे

सताम्। नमस्तुभ्यमषाढ़ाय सहमानाय वेधसे॥ ३८॥ मन्येऽहं देवमानन्द सन्दोहं लास्य सुन्दरम्। समस्त जगतां नाथं सदसत्पति मद्भुतं॥ ३९॥ सुजङ्घ सूदरंसूरुं सुकण्ठं सोमभूषणम्। सुकर्णं सुदृशं वन्दे सुगन्धिंपुष्टिवर्द्धनम्॥४०॥ भिक्षाहारं हरिच्छीमं रक्षाभूषं क्षितिक्षमम्। यक्षेशेष्टं नमामीशं अक्षरं परमं प्रभुम्॥ ४१॥ अर्द्धालकं अवस्त्रार्द्धं अस्युत्पलदलस्रजम्। अर्द्धपुं लक्षणं वन्दे पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्॥ ४२॥ सकृत् प्रणत् संसार महासागर तारकम्। प्रणमामि तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिम्॥४३॥ त्रातारं जगतामीशं दातारं सर्वसम्पदाम्। नेतारं मरुतां वन्दे जयतारमपराजितम्॥ ४४॥ तन्वामन्तक हन्तारं वन्दे मन्दाकिनी धरम्। ततानि विदधे योऽयं इमानि त्रिणिविष्टपा॥ ४५॥ सर्वज्ञं सर्वगं सर्वं कविम्बन्दे तमीश्वरम्। यतश्च यजुषा सार्धं ऋचः सामानि जज्ञिरे॥ ४६॥ भवन्तं सुदृशं वन्दे भूतभव्य भवन्ति च। त्यजंतोतरकर्माणि यो विश्वाभि विवस्यति॥ ४७॥ हरं सुरनियंतारं परं तमहमानतः। यदाज्ञया जगत्सर्वं व्याप्यनारायणस्थितः॥ ४८॥ तं नमामि महादेवं यन्नियोगादिदं जगत्। कल्पादौ भगवान्धाता यथा पूर्वमकल्पयत्॥ ४९॥ ईश्वरं तमहं वन्दे यस्य लिङ्गमहर्निशम्। यजन्ते सहभार्य्याभिरिन्द्रज्येष्ठामरुद्गणाः॥ ५०॥ नमामि तमहं रुद्रं यमभ्यर्च्य सकृत्पुरा। अवापुः स्वं स्वमैश्वर्य्यं देवा सः पुषरातयः॥ ५१॥ तं वन्दे देवमीशानं यं शिवं हृदयाम्बुजे। सततं यत यस्मान्ता सज्ज्ञानाना उपासते॥ ५२॥ तदस्मै सततं कूर्मो नमः कमल कान्तये। उमा कुचपटोरस्का याते रुद्र शिवातनूः॥ ५३॥ नमस्ते रुद्रभावाय नमस्ते रुद्रकेड़ये। नमस्ते रुद्रशान्त्यै च नमस्ते रुद्रमन्यवे॥ ५४॥ ईशानं सकलाराध्यं वन्दे सम्पत्समृद्धिदम्। यस्य चासीत् हरिः शस्त्रं ब्रह्मा भवति सारथिः॥५५॥ वेदाश्च रथनिष्ठाभ्यां पादाभ्यां त्रिपुरान्तकः। बाणकार्मुक युक्ताभ्यां बाहुभ्या सुतते नमः॥ ५६॥ नमः परशवे देवशूलाया नलरोचषे। हर्य्यग्नीन्द्रात्मने तुभ्यं उतोत ईषवे नमः॥५७॥ नमस्ते वासुकीज्यायै विस्फारायै च शङ्कर। महते मेरुरूपाय नमस्ते अस्तु धन्वने॥ ५८॥ सुरेतर वधूहार हारीणी हर यानिते। अन्यान्यस्त्राण्य हन्तुर्णं इदं तेभ्यो करं नमः॥ ५९॥ धराधर सुता लीलासरोजाहत वाहवे। तस्मै तुभ्यमवो चामः नमो अस्मान्नवस्य यः॥ ६०॥ रक्षमामक्षमं क्षीणं अक्ष क्षतमशिक्षितम्। अनाथं दीनमापन्नं दरिद्रं नीललोहित॥ ६१॥ दुर्मुखं दुर्स्क्रियं दुष्टं रक्षमामीश दुर्जनम्। मात्र-

शानामहं न त्वदन्यं विन्दामिराधसे ॥ ६२ ॥ भवाब्धे नाग्निना शश्वो राग-द्वेषमदर्चिषा। दयार्द्रो दह्यमानानामस्माकमविता भव ॥६३॥ परदारं परा॰वासं परवस्त्रं पराप्रियम्। हरवाहि पराह्नं मां पुरुणामन्युरुष्टुत ॥ ६४ ॥ लौकिकैर्यत् कृतं पुष्टेः नावमानं सहामहे। देवेश तवदासेभ्यो भूरिदा भूरि-देहिनः ॥६५॥ लोकानामुपपन्नानां गर्विनामीश पश्यतां। अस्मभ्यं चेत्रमा-युष्यं वसुस्पार्हं तदाभर ॥६६॥ याचनातो महतीं लज्जां अस्मदीयां घृणानिधे त्वमेव वेत्सिन स्तूर्णं ईशन्नस्तो तुभ्यं आभर ॥ ६७ ॥ जाया मातापिता चान्ये मां द्विषंत्यमतिं क्षशम्। देहिमे महतीं विद्यां रायाविश्व पुषासह ॥ ६८ ॥ अदृष्टर्थिषु सर्वेषु दृष्टार्थेष्वपि कर्मसु। मेरुधन्वन्नशत्रुभ्यो बलं देहि तनूषुनः ॥ ६९ ॥ लब्धानिष्टसहस्रस्य नित्य मिष्टवियोगिनः। हृद्रोगं ममदेवेश अरिमाणं च नाशय ॥७०॥ ये ये रोगाः पिशाचा वानरा देवाश्च मामिह। बाधन्ते देव-तान् सर्वान् निवाध स्व महानसि ॥७१॥ त्वमेव रक्षितास्माकं नान्यकश्चन विद्यते। तस्मात् स्वीकृत्य देवेश रक्षाणो ब्रह्मणस्पते॥७२॥ त्वमेवोमापते माता त्वं पिता त्वं पिता महः। त्वमायुस्त्वं मतिस्त्वं श्रीउतभ्रातोऽस्तनः सखा ॥ ७३ ॥ यतस्त्वमेव देवेश कर्त्ता सर्वस्य कर्मणः। तत्क्षमस्व तत्सर्वं यन्मया दुस्कृतं कृतम् ॥ ६४ ॥ त्वत्समोन प्रभुत्वेन फल्गुत्वेन च मत्समः। अतो देव महादेव त्वमस्माकं तमस्मसि ॥ ७५ ॥ सुस्मितं भस्मगौराङ्गं तरुणादित्य विग्रहम्। प्रसन्नवदनं सौम्यं गायेत्वामनसागिरा ॥ ७६ ॥ एष एव वरोस्माकं नृत्यं तं त्वां सभापते। लोकयंतमुमाकान्तं पश्येमशरदः शतम् ॥ ७७ ॥ अरो-गिणो महाभागाः विद्वान् सश्च बहुश्रुताः। भगवन्त्वत् प्रसादेन जीवेमशरदः शतम् ॥७८॥ सदारा वन्धुभिः सार्द्धं त्वदीयं ताण्डवामृतम्। पिवन्तः काम-मीशान नंदामः शरदः शतम् ॥ ७९ ॥ मुहुर्मुहुर्महादेवं अशेष सुरसंस्कृतम्। विलोकयंतो देवेश मोदामशरदः शतम् ॥ ८० ॥ कीटा नागाः पिशाचाः वा येवा केवाभवे भवे। तवदासा महादेव भवामशरदः शतम् ॥८१॥ सभाया मीशते दिव्यं नृत्यवाद्यकलस्वनम्। श्रवणाभ्यां महादेव शृणवाम शरदः शतम् ॥ ८२ ॥ स्मृतिमात्रेण संसार विनाशमपराणि ते। नामानि तव दिव्यानि प्रब्रु-वामशरदः शतः ॥८३॥ इषु सन्धानमात्रेण दग्धत्रिपुरधूर्जटे। आधिभिर्व्याधिभि-र्नित्यमजितास्याम शरदः शतम् ॥ ८४ ॥ चारु चामीकराभासं गौरीकुच पदो रसम्। कदानलो कयिष्यामि युवानं विस्पतिं कविम् ॥ ८५ ॥ प्रमथैरावृतं

प्रीतवदनं प्रीयभाषिणं। सेविष्येहं कदासां वंसु हासं शुक्र शोचिषम् ॥ ८६ ॥ धन्वे नम्रं मामकृत पुण्यलेशंच दुर्मतिम्। स्वीकरिष्यति किं त्वीशनीलग्रीवो विलोहित: ॥८०॥ कालशूला नलाशक्तं भीतिव्याकुलमानसम्। कदानु रक्षतीशोमां तु विग्रीवो धनानत: ॥८८॥ गायकायूयमायाता यदिरायादि लिप्सव:। धनदस्य सखे शीयं उपास्मयि गायता नर: ॥ ८८ ॥ आगच्छतसखायो मे यदि यूयं सुमुक्षव:। स्तुतिं समेनं सुत्त्यर्थं एकविप्रैरभिष्टुत: ॥६०॥ पदे पदे पदेदेव पदं नसेत् स्यति ध्रुवम्। प्रदक्षिणं प्रकुरुत अध्यक्षं धर्मिणामिमम् ॥ ६१ ॥ सर्वकार्य्यं युवाभ्यां हि सुकृतं सुहृदौ मम। अञ्जलिं कुरुतं हस्तौ रुद्राय स्थिरधन्वने ॥ ६२ ॥ मम्मूर्द्धन् मवतामूर्द्धं भवं चन्द्रार्द्धमूर्द्धजम्। मूर्द्धन्नञ्च चतुमूर्द्ध्नः नमस्या कल्पलोकिनम् ॥६३॥ नयने नयनोद्भूत दहनालीढ़मन्मथम्। पश्यतं तरुणं सौम्यं भ्राजमानं हिरण्मयम् ॥६४॥ सभायां शूलिन: सन्ध्यानृत्यवाद्यस्वनामृतम्। कर्णौ तूर्णं यथाकामं पातं गौराविवेरिणे ॥ ६५॥ नासिके वासुकिस्वासवासिता भासितो रसम्। घ्रायतं गरलग्रीवमसभ्यं शर्मयच्छतम् ॥ ६६ ॥ स्वस्त्यस्तु सखितेजिव्हे विद्यादातु उमापते:। स्तवमुच्चतरं ब्रूहि जयतामिव दुन्दुभि: ॥ ६७ ॥ चेतश्चोत नशोचत्त्वम् निन्द्यं विन्द्राखिलं जगत्। अस्य नृत्यामृतं शम्भो: गौरो न तृषित: पिव ॥ ६८ ॥ सुगन्धिं सुखसंस्पर्शं कामदं सोमभूषणं गाढ़मालिङ्ग्य मच्चित्तयोषा जारमिव प्रियम् ॥६६॥ महामयूषाय महाभूजाय महाशरीराय महाम्बराय। महाकीरीटाय महेश्वराय महोमहीं सुष्टुतिमीरयामि ॥१००॥ यथा कथञ्चित् रचिताभिरीश प्रशादतश्चारुभिरादरेण। प्रपूजयाम: स्तुतिभिर्महेशं अषाढ़सुयत् सहमानमाभि: ॥१०१॥ नम: शिवाय त्रिपुरान्तकाय जगत्त्रयेशाय दिगम्बराय। नमोस्तु मुख्याय हराय भूयो नमो जघन्याय च बुध्नियाय च ॥१०२॥ नमो विकाराय विकारिणे ते नमो भवायास्तु भवोद्भवाय। बहुप्रजात्यन्तविचित्र रूपयत: प्रसूताजगत: प्रसूतौ ॥१०३॥ तस्मै सुरेशोरुकीरीट नानारत्नावृताष्टा वदविष्टराय। भस्माङ्गरागाय नम: परस्मै यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित् ॥१०४॥ सर्पाधिनाथौषधिनाथ युक्तच्छ्यज्जटामण्डलगह्वराय। तुभ्यं नम: सुन्दरताण्डवाय यस्मिन्निदंसञ्च विचेति सर्वं ॥१०५॥ नमामि नित्यं त्रिपुरारिमिनं यमान्तकं षण्मुखतातमीशम्। ललाट नेत्रार्दितपुष्पचापं विश्वं पुराणं तमस: परस्तात् ॥ १०६ ॥ सुरारिनेत्रार्चित पादपद्ममुमांघ्रिलाक्षा रससिक्त पाणिम्। नमामि नित्यं विषनीलकण्ठं हिरण्य-

दन्तं शुचिवर्णमारात् ॥१०७॥ अनन्तमव्यक्तमचिन्त्यमेकं हरं तमाश्चर्यमम्बराभम्। अजं पुराणं प्रणमामि योयं अणोरणीयान्महतो महीयान् ॥ १०८ ॥ अन्तस्थमात्मानमजं न दृष्ट्वा भ्राम्यन्तिमूढ़ाः गिरिगह्वरेषु। पश्चादुदक् दक्षिणतः पुरस्तात् अधश्चिदासिदुपरिस्विदासित् ॥१०९॥ इमं नमामीश्वर मिन्दुमौलिं शिवं महानन्दमशोकदुःखं हृदम्बुजे तिष्ठति यः परात्मा परित्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ॥११०॥ रागादिका पथ्य समुज्झवेन भग्नं भवाख्येन महामयेन विलोक्य मां पालय चन्द्रमौले भिषक्त वन्त्वां भिषजां शृणोमि ॥ १११ ॥ दुःखां बुराशिं सुखलेशहीनं अस्पृष्ट पुण्यं बहुपातकं मां। मृत्योः करस्थं भवरक्षभीतं पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात् ॥११२॥ गिरीन्द्रजाचारुमुखावलोक सुसीतया चारुतयैव दृष्ट्या। वयं दयापूरीत एव तूर्णं अपोनना वा दुरितातरेम ॥११३॥ अपार संसार समुद्रमध्ये निमग्नमत्यन्तमनन्तरागं। मामद्यमं पाहि महेशयूष्टं श्रोजिष्ठया दक्षिण एव रातिं ॥११४॥ स्मरन्युरोसञ्चित पातकानि खरं यमस्यापि मुखं यमारेविभेमिमिदेहि यथेष्टमायुः। यदोच्छतायुः यदिन्नापरेत ॥११५॥ सुगन्धिभिः सुन्दर भस्मगौरैः अनन्तभोगैः मृदुलैरघोरैः इमं कदालिङ्गति मां पिनाकी। स्थिरैभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः ॥११६॥ क्रोशं तमीशः पतितं भवाब्धौ नागास्य मण्डूकमिवातिभीतम्। कदानु मां रक्ष्यति देवदेव हिरण्यरूपः स हिरण्य संदृक् ॥११७॥ चारुस्मितं चन्द्रकलावतंश ,गौरी कटाक्षार्हं मयुग्मनेत्रम्। आलोकयिष्यामि कदानुदेवं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥११८॥ आगच्छता त्वासुमुमुक्षवो ये यूयं शिवं चिन्तयतान्तराब्जे। ध्यायन्तिमुक्त्यर्थममुं हि नित्यं वेदान्तविज्ञान विनिश्चितार्थः ॥ ११९ ॥ आयातयूयं भूवनाधिपत्यकामा महेशं सकृदर्चयध्वम्। एनं पुराभ्यर्च्य हिरण्य गर्भभूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥ १२० ॥ ये कामयन्ते विपुलां श्रियंते श्रीकण्ठमेनं सकृदानमन्ताम्। श्रीमानयं श्रीपतिवन्द्यपादः श्रीणामुदारोध रुणोरयीणाम् ॥१२१॥ सुपुत्रकामा अपि ये मनुष्याः युवा न मेनं गिरिशं यजन्तां यतः स्वयम्भूः जगतां विधाता हिरण्य गर्भः समवर्त्तताग्रे ॥१२२॥ अलं किमुक्तैर्बहुभिः समीरीतैः समस्तमस्याश्रयणेन सिद्ध्यति। पुरे नमाश्रित्य हि कुम्भ सम्भव दिवा न नक्तं परितो युवाजनि ॥ १२३ ॥ अन्यत्परित्यज्य समाक्षिभृंगाः सर्वे सदैनं शिवमाश्रयध्वं आमोद वानेष मृदुः शिवो यं स्वादुष्कुलायं मधुमाण्ड उतायम् ॥ १२४ ॥ भविष्यसि त्वं प्रतिमान हीनाः विनीर्जिता शेष नरामरा च। नमोस्तुते वाणिमहेश मेनं स्तुहि श्रुतं

गर्त्तषदं युवानम् ॥ १२५ ॥ यद्यन्मनश्चिन्तय सित्वदिष्टं तत्तन्नविश्वत्यखिलं भुवन्ते। दुःखे निवृतिः विषये कदाचित् इच्छाम ईशीमनसाय रुद्रम् ॥ १२६ ॥ अज्ञानद योगादपचार कर्म्म यत्पूर्व्वमस्माभिरनुष्ठितन्ते। तद्देवसोढ्वा सकलं दयालोपि तेव पुत्रान् प्रतिनोज्जुषस्व ॥ १२७ ॥ संसाराख्य क्षुद्र सर्पेण तिव्रैः रागद्वेषो न्मादलोभादिदन्तैः। दष्टं दृष्ट्वा मां दयाढुः पिनाकीदेवस्त्राता त्रायतामप्रयच्छन् ॥१२८॥ इत्युत्क्रान्ते यः स माधेर्नमन्तः रुद्राख्या त्वां यान्ति जन्मा हि दृष्टा। सन्तोनीलग्रीव सूत्रात्मना वा तत्वा यामो ब्रह्मणावन्दमानः ॥ १२९ ॥ भवाति भीषणज्वरेण पीड़िताति मद्दाभयानि अग्नेष पातकालयान्। अदूरकाललोचनान् अनाथ नाथ ते करेण भेषजीनकालहन् उदुघुणो वसो महिन्त्यषस्वसुरराधसे ॥ १३० ॥ जयेम येन सर्व्वमेतदिष्टमष्टदिग्गतं नभस्थलं भुवस्थलं दिवस्थलंच सन्ततिम्। य एष सर्व्वदेवदानवानतः सभापतिः सनोददातु तं रयिं रयों पिशङ्गसंदृशम् ॥ १३१ ॥ नमोभवारये भवाय भूतिभासितोरसे नमो भवायते भवाभिभूतिभीति भञ्जिने। नमः शिवाय विश्वपायशाश्वताय शूलिने न यस्य हन्यते सखा न जीय्यते कदाचन ॥ १३२ ॥ सुरपति पतये नमो नमः चितिपति पतये नमो नमः। प्रजापतिपतये नमोनमो विकापतय उमापतये पशुपतये नमो नमः ॥ १३३ ॥ विनायकं बन्दकमस्तकाहती स्वनाद संघुष्ट समस्त विष्टपम्। नमामि नित्यं प्रणतार्त्तिनाशनम् कविं कवीनामुपमश्रवस्तवम् ॥१३४॥ देवायुद्धे यागे विप्राः स्वायां सिद्धौ खायंखायं प्रसिद्धरन्ति स्कन्दं-वन्दे सुब्रह्मण्यौं सुब्रह्मण्योम्॥१३५॥ नमः शिवायै जगदम्बिकायै शिवप्रियायै शिवविग्रहायै। समुद्रभूवाद्रिपतिसुतागाः चतुष्कपर्दा युवतीसुपेषाः ॥१३६॥ हिरण्यवर्णां मणिनूपुराङ्घ्रि प्रसन्नवक्त्रांसुक पद्महस्ताम्। विशालनेत्रां प्रणमामि गौरीं वचो विदं वाचमुदीरयन्तीम् ॥ १३६ ॥ नमामिमेनातनया ममिया सुमामिमां मानवती ममायां। करोति यां भूतिसितोस्तनौ द्वौ प्रियःसखायं परिषस्वजान ॥ १३८ ॥ तां त्वामुमां कान्तनितान्तकान्तौ भ्रान्तामुपान्तानतहर्य्यजन्द्राम्। नतोस्मि यास्ते गिरिशस्य पार्श्वेविश्वानि देवि भुवनाभि चष्ट्या ॥ १३९ ॥ बन्दे गौरींतुंगपी नस्तनींताम् चन्द्रापिण्डा स्पष्टसर्वागरागां। येषादेवि प्राणिनां मात्मकान्तं देवं देवं राधसे चोदयति ॥१४०॥ एनांवन्दे दीनरक्षाविनोदामि नाकन्यां मानं तान ददातीम् याविद्यानां मङ्गलानांच वाचां येषानेत्रीराधसस्य् नृतानाम् ॥ १४१ ॥ भवातिभीतोरुभया वहं त्रिभवार्द्धभागा भरणैक भोगैधियं वरां देहि

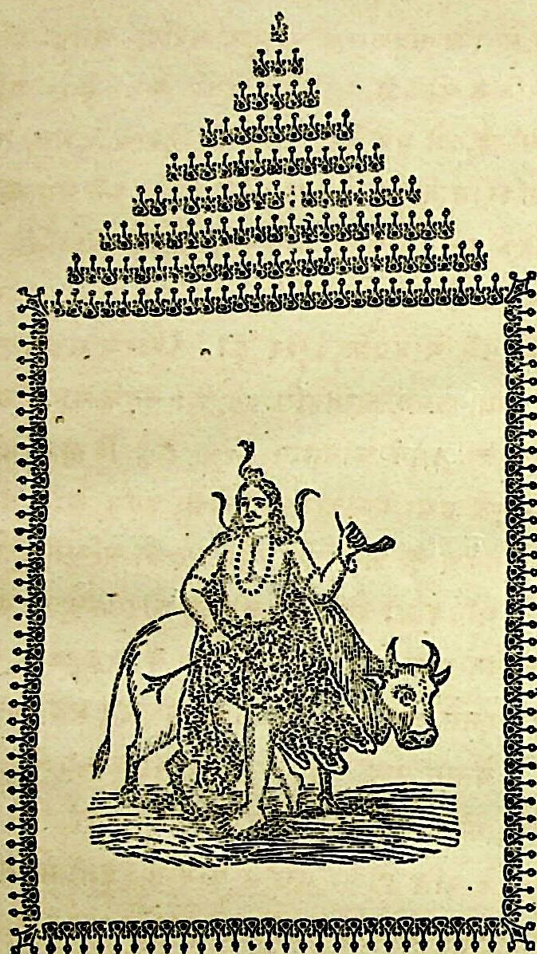
शिवप्रिये स्रोययाति विश्वाद्दुरितात्तरेम ॥ १४२ ॥ शिवे कथं। त्वं मतिभि-स्तुगीयसे जगत्प्रतिः कोडिरयं शिवः पतिः। हरिस्तुदासोनुचरींदिरा शची सरस्वती वा सुभगादितिर्वसु ॥ १४३ ॥ इदं स्तवं जैमिनिना प्रचोदितं द्विजोत्तमो यः पठतो शभक्त्या तमिष्ट वाकबुद्धिमती धृतिश्रियः परिष्वजन्ते जनयो यथा-पतिम् ॥ १४४ ॥ महीपतिर्यस्तु युयुत्सुरादरात् इमं पठत्याशु तदेव सादरम्। प्रयान्ति वा शिन्नमथान्तकान्तिकं ॥ १४५ ॥ भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः त्रैव-र्णिकेष्वन्यत्तमोपि कश्चित्। इमं कदाचित्पठतोशभक्त्या कलेवरान्ते शिवपार्श्व-वर्त्ति निरञ्जनः साम्यमुपेति दिव्यं ॥१४६॥ लभन्ते पठन्तोमतिं बुद्धिकामाः लभन्ते चिरायुस्तथायुश्च कामाः। लभन्ते तथैवाश्रियं पुष्टिकामा लभन्तेह पुत्रान् लभन्तेह पुत्रान् ॥ १४७ ॥ इत्यनेनस्तवे नेशं स्तुत्वासौ जैमिनिर्मुनिः स्नेहास्य पूर्ण नयनः प्रणनाम सभापतिम् ॥ १४८ ॥ मुहुर्मुहुष्पिबन्नीशताण्डवा-म्तमागलम्। सर्वान् कामान्नवाप्याथ गाणपत्यमवापसः ॥ १४९ ॥ पादं वाप्यर्द्ध पादं वा श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा। यस्तु धारयते नित्यं शिवसा युज्यमा-प्नुयात् ॥१५०॥ अधीत्यविस्मृतो वेदान्वेदपादस्तवं पठन। स चतुर्वेद साङ्गस्य पारायणफलं लभेत् ॥ १५१ ॥ कमल भवमुकुन्द निर्जरेन्द्र स्तुति नति संभ्रम नृत्यवैभवाय अचलपति सुता सहाय तुभ्यं कनक सभापतये नमः शिवाय ॥१५२ आभिर्गोभिः यदतोन जनं आप्यायग्रहरि ओं बर्द्धमानः। यदा श्रोत्रभ्यो सहि-गोत्राख्जासि भूयीष्टभाजः अधतेश्यामध ॥१५३॥ ब्रह्मप्रावयुम तन्नो माहासित् ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः। इति श्रीस्कान्दे महापुराणे पुण्डरीकपुरमाहात्म्ये वेद० पादस्तवं सम्पूर्णम् ॥ श्रीरस्तु ओं हर ओं। शान्ताः प्रशान्तहृदयाः सदया भवन्तः स्वात्मान्युमारमण पादरजो भजध्वम्। संसारो रुवसन्त सूरकि-रण व्यापारता पातुरापार श्रान्ति विनाशिनीं शिवरहस्या भूतपूर्वं प्रपाम्। कोवा नेच्छति वाञ्छितं यदि भवेदिष्टं परं जीवनन्त्यत्वास्वात्म विघातकं कलिमलाक्रान्तं कलौ केवलम्। स्कान्द उवाच। इत्युच्चैर्गिरीशार्चनोत्सवरतान् कर्त्तुं प्रवृत्तस्तदा सूतोभूति विभूषितः सितलसद्भालत्रिपुण्ड्राङ्कितः। सायंकाल शिवार्चनोद्यतमतिः सूरोस्त.शृङ्गं यथा वृत्तुङ्गोन्नतशङ्गलिङ्ग ममलं दृष्ट्वैव दूरान् मुने। सायंकालशिवार्चनोत् सवरतान् दृष्ट्वा मुनीं स्तत् सुतां स्तद्दारान् तरवः शुका अपि पिकाः काकामराला अपि। शार्दूलातरवोपि गोकुल युताश्चक्रुः शिवाराधने यत्नं भूतिविभूषिताः शिवमहादेवेत्युदोर्योच्चकैः। एवं शङ्कर शङ्करा-

सूत कथा पीयूषधारास्तताः सर्वेते मुनयः प्रदोष समयं सम्बौध्यफाले चणम्। लिङ्गे पूजयितुं त्वयोमपि मुहुः स्मृत्वाप्रवृत्तास्ततः प्राज्ञं सुतमुमासहाय कलने कालोयमित्यूचिरे। इत्याकर्ण्यवचो विलोक्य रविमप्यन्धूलिता भूतिभिः विल्वाद्यैः शिवपूजनोत्सवरताः सिद्धेश्वरं वोच्यच। धृत्वामौनमुमासहाय शिव इत्युक्त्वा शिवाराधनं चक्रुस्ते क्रतुकोटिपुण्यफलदं लिङ्गार्चनां कुम्भज। श्रीकाल भैरव षड़ानन ढुंढितुण्डिनन्दीश भृङ्गिवृषभेश्वर घोरभद्रैः। ब्रह्मादिभिश्च कनकाञ्चित वेत्रहस्तैः आराधितोस्तु पुरतः स शिवः शिवो नः। आचन्द्रार्कमिदं रहस्यमनिशं शैवं शिवार्थं मुदा श्रोतव्यं सुख सन्ततिप्रदसुमाकान्त प्रियं सादरं। एतत्पुस्तकदानमप्यघहरं पुण्यां बुराशि प्रदं सर्वाभीष्टदमप्यतः शिवरतैः श्राव्यं श्रुतिव्यापृतम्। इति शिवरहस्ये हराख्ये तृतीयांशे उत्तरार्धे श्रीयाज्ञवल्क्य जनक संवादे पञ्चाशोध्यायः। सन्ति धर्माः श्रुतिप्रोक्ताः पुराणोक्ताश्च कोटिशः। तेषु धर्मेषु सर्वेषु धर्माः पञ्चमनोहराः॥ १॥ विभूति धारणं धर्मस्तथा रुद्राक्षधारणम्। रुद्राध्याय जपो लिङ्गे विल्वैः शङ्करपूजनम्॥ २॥ पञ्चमः शिवनैवेद्य भोजनतैः परो नरः। कृतैर्मुक्तो भवत्येव महापातक कोटिभिः॥ ३॥ नारीणाञ्च नराणाञ्च धर्मोयं तुल्य इत्यतः। अविशेषेण कर्त्तव्यं सर्वेषामपि सर्वथा॥ ४॥ इति शिवरहस्ये। यद्यप्ये तन्निर्माणे लेखने चाभूदाया स बाहुल्यं तथापि तस्य काशीनिवासिविद्वद्वरसम्मतिमात्रेण साफल्यं मन्यमानस्तान् साञ्जलिबन्धं प्रार्थयेभोः शिवानुकम्पाप्तविद्यावैभवा निखिलतीर्थचूड़ामणि काशीकानिवास बद्धादराः विद्वद्वराः श्रीमद्भिर्नायं बालवाद इवोपेक्ष्यो ग्रन्थो यत एतद्दर्शनेन ज्ञात सर्वार्थानामपि भवतां महाल्ँलाभो मदाया स साफल्यं च भविष्यति। यद्यत्र क्वचित् स्यादशुद्धं तदपि श्रीमद्भिः कृपया शोधनीयं यतो वश्यं मनुष्यविहिते दोष सत्वं भवतीत्यलम्। श्री० राधेमासि शुभेसु सोमदिवसे राका तिथौ वायुभे। वर्षेरामशराङ्क केशसि युते मध्याह्नकालोत्तरे। वैचूसिंह भिषग्वरो हि कृतवान् निर्माल्यरत्नाकरम् ग्रन्थोऽयं विदुषाम्मुदे हि भवताच्छ्रीमच्छिवानुज्ञया॥१॥ श्रीशङ्कराय नमः।

## इति निर्माल्यरत्नाकरीयोत्तरार्द्धे एकोनविंशस्तरङ्गः समाप्तः।

प्रिण्टर—श्रीरसिकलाल पान,
७५ नं० काटन्स्ट्रीट्, बड़ाबाजार, कलकत्ता ।

प्रकाशक—बाबू बेचू सिंह वैद्य,
बड़ी पियरी, काशी ।



ओं नमः श्रीशिशुशशाङ्क शोभितशेखराय शिवाय।

संस्कृतमें अकृताभ्यास साधारण समाजके लोगोंके समझानेको अब हम हिन्दी भाषामें अपना अभिमत प्रकाश करते हैं। हमारा कथन है, कि।

सर्वोत्तम सर्वादि सर्वकारण सर्वपूज्य सर्वाद्य आदि एतादृश विशेषण जो शिवमें परिलक्षित होते हैं, सो और देवमें नहीं हैं। यदि कोई कहे, कि अन्य देवमें भी है, तो वह वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन, तन्त्र इत्यादि यावत् सद्ग्रंथोंमें अविरोध करके श्रेष्ठता दिखावे। इसे हम स्वीकार करलेंगे। हम कहते हैं. सबके आदिमें परम शिव हैं, उनसे सदाशिव उत्पन्न हुए। वह शब्दगुणके अधीश हैं। सदाशिवके सहस्रांशसे ईश्वर उत्पन्न हुए। शब्दसे स्पर्श गुण हुआ, जिसके अधिपति ईश्वर हैं। ईश्वरके सहस्रांशसे रुद्र उत्पन्न हुए, स्पर्शसे रूप हुआ, उसके अधिपति रुद्र हैं। रुद्रके सहस्रांशसे विष्णु उत्पन्न हुए रूपसे रस उपजा, इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। विष्णुके सहस्रांशसे ब्रह्मा हुए। रससे गन्ध संभूत हुआ गन्धके स्वामी ब्रह्मा हुए। आगे शब्दसे आकाश हुआ, उसके स्वामी गणेश हैं, जो ईश्वर और रुद्रकी सन्धिमें वर्त्तमान हैं। स्पर्शसे वायु भया, उसकी अधिष्ठात्री शक्ति है, जो रुद्र और विष्णुकी सन्धिमें वर्त्तमान रहती है। रूपसे अग्नि हुआ, इसके स्वामी सूर्य्य हैं, वह विष्णु और ब्रह्माकी सन्धिमें वर्त्तमान है। रससे जल हुआ, इसके स्वामी मनु भये, जो ब्रह्मा और कश्यपकी सन्धिमें हैं। गन्धसे पृथ्वी हुई, इसके स्वामी कश्यप हैं। इस प्रकार दशप्रकारके सृष्टिकर्त्ता हैं, सो परमशिवके अन्तर्गत हैं। और जैसे पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत एक एक एकके पांच होकर पचीस होते हैं। इसी भांति सत्तरह सन्धिभूत देवताओंके भी पचीस होते हैं। उसीको चतुर्व्यूह कहते हैं। ये चतुर्व्यूहयो हैं—

प्रथम सदाशिवका चतुर्व्यूह—सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष अघोर और ईशान पञ्चम। ईश्वरका चतुर्व्यूह—ईश, विश्वेश्वर, परमेश्वर, सर्वेश्वर। रुद्र व्यूह—शिव, हर, मृड़, भव,। विष्णुव्यूह—वासुदेव, अनिरुद्ध, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न ब्रह्माका व्यूह—हिरण्यगर्भ, विराट् पुरुष, काल। इनके पश्चात् गणेश आदि पञ्च सन्धिस्थित देवताओंका व्यूह लिखते हैं। गणेशव्यूह—स्थूल, सूक्ष्म, सम, नाद इत्यादि। रजः, सत्व, तमः इति। शक्तिव्यूह—महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, त्रिपुरसुन्दरी; येही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र होकर काम करती हैं। सूर्य्यव्यूह—आदित्य, भास्कर, भानु, रवि। मनु कश्यप आदिको इसी भांति

जानना। सो परमशिव सर्वोपरि हैं। वेदमें भी इसी प्रकार लिखा है। वेदके अनुसार यों है—प्रथम आत्मा ही परमशिव है। आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे औषधि, औषधिसे अन्न, अन्नसे भूत हुए। यह वेदके अनुसार उत्पत्ति है। इसी प्रकारसे योगशास्त्रमें षट्चक्र भेदन करके समाधि दशामें परमशिवमें लयहोना है। मन्त्रशास्त्रके अनुसार भूतशुद्धिमें कुण्डलिनीको उत्थापन करके परमशिवमें लीन होना है। परमशिवका पञ्चभूतोंके सहित पञ्चदेवोंको लय करना और पुनः उत्पन्न करना स्पष्ट ही लिखा है। इस प्रकार सभी शास्त्रोंका एक ही मत है, कि परम शिव कारण है।

इसी भांति परमशिव सबका पूज्य भी है। सर्वदेव दैत्य दानव राक्षस भूत प्रेत पिशाच यक्ष गन्धर्व ऋषि मनुष्य पशु पक्षी स्थावर जङ्गम अचर मन्त्र यावत् नाम ब्रह्माण्ड हैं,। उन सबने शिवपूजा एवं लिङ्गस्थापनाको तथा वर पाया। शिवका सर्वादिपूज्यत्व पूर्वार्द्धमें लिखा है, वहां देख लेना चाहिये। सर्वोपरि शिवलोक है, सो भुवनाध्वमें लिखा है। यथा—षड़ध्वं षोड़शाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्। एतान्न विजानाति स गुरुर्न हि सुन्दरि। तिसके ऊपर शिवलोक है। यथा—पृथ्व्यादिकार्य्य भूतेभ्यो लोका वै निर्मिता क्रमात्। पातालादि च सत्यान्तं ब्रह्मलोकाश्चतुर्दश॥ १॥ सत्यादूर्द्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्चतुर्दश। क्षमालोके कार्य्य विष्णु वैकुण्ठे वरपत्तने॥ २॥ कार्य्यलक्ष्म्या महाभोगी रक्षां कृत्वाधितिष्ठति। तदूर्द्ध्वगाश्च शुचन्ता लोकाष्टाविंशति स्थिता॥ ३॥ शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः। षडुत्तराश्च पञ्चाशदहिंसान्तास्तदूर्द्ध्वगाः॥ ४॥ अहिंसा लोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे। कार्य्येश्वरस्तिरोभावं सर्वं कृत्वाधितिष्ठति॥ ५॥ तदर्वाग्वाह्यलिङ्गं स्यादन्तरङ्गं तदूर्द्ध्वकम्। तदर्वाक् शक्तिलोका हि शतं वै द्वादशाधिकम्॥ ६॥ तदर्वाक् विन्दुरूपं हि नादरूपं तदुत्तरम्। तदर्वाक्कर्मलोकस्तु तदूर्द्ध्वं ज्ञानलोककः॥७॥ इत्यादि २२४ लोकके परे सदाशिव कालरूपात्मकस्थित है। उसके ऊपर परशिवका स्थान है। तदन्ते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम्। शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालचक्रेश्वराह्वयः॥ १॥ माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान् कालेन युञ्जति। असत्यश्चाशुचिश्चैव हिंसा वै वाथनिर्घृणा॥ २॥ अस्त्यादि चतुष्पादः सर्वांशः कामरूपधृक्। नास्तिक्य लक्ष्मीर्दुःसङ्गो वेदवाह्यध्वनिः सदा॥ ३॥

क्रोधशृंगः कृष्णवर्णो महामहिष वेषवान् । तावान्महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधाताव देव हि ॥४॥ अधर्मं महिषारूढ़ं कालचक्रन्तरन्तिते; सत्यादि धर्मयुक्ता ये शिव पूजा-परायणे ॥५॥ तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्य्यस्वरूप धृक् । सत्यादि पादयुक्तस्तु शिवलोका ग्रतः स्थितः ॥ ६ ॥ क्षमाशृङ्गः शमः श्रोत्रो वेदध्वनि विभूषितः । आस्तिक्य चक्षुर्निःश्वास गुरुबुद्धिमनावृषः ॥ ७ ॥ क्रियादि वृषभाज्ञेयाः कार-णादिषु सर्वदा । तं क्रिया वृषभं धर्मं कालातीतोधि तिष्ठति ॥ ८ ॥ ब्रह्म-विष्णु महेशानां स्वस्वायुर्दिनमुच्यते । तदूर्ध्वं न दिनं रात्रिर्न जन्ममरणादि-कम् ॥ ९ ॥ ततः परं ब्रह्मचर्य्यं लोकाख्यं शिव संमतम् । तत्रैव ज्ञानकैलासे पञ्चावरण संयुतं ॥ १० ॥ पञ्चमण्डल संयुक्तं पञ्चब्रह्म कलान्वितम् । आदि-शक्ति समायुक्तमादिलिङ्गन्तु तत्र वै ॥ ११ ॥ शिवालयमिति प्रोक्तं शिवस्य परमात्मनः । परशक्त्या समायुक्त स्तत्रैव परमेश्वरः ॥ १२ ॥ शिवलोक सबके ऊपर हय । कल्प काली १ । तारा २ । षोड़शी ३ । भुवनेश्वरी ४ । भैरवी ५ छिन्नमस्ता ६ । धूमावती ७ । पीताम्बरा ८ । मातङ्गी ९ । श्री १० । सार-स्वत ११ । सावित्री १२ । गायत्री १३ । गौरी १४ । दुर्गा १५ । राधा १६ । ब्राह्मी १७ । रमा १८ । माहेश्वरी १९ । चामुण्डा २० । कौमारी २१ । अपराजिता २२ । वाराही २३ । नारसिंही २४ । श्रीकाली २५ । षड़्विंशति भद्रकाली २६ । महाकाली २७ । श्मशानकाली २८ । श्रीगुह्यकाली २९ । जयकाली ३० । रक्षाकाली ३१ । रणकालिका ३२ । अरण्यकाली ३३ । उग्रकाली ३४ । व्योमकाली ३५ । वीरकाली ३६ । काली ३७ । कपालिनी ३८ । कुलांवा ३९ । कुरुकुल्ला ४० । विरोचिनी ४१ । विप्रचित्ता ४२ । उग्रकल्या ४३ । उग्रप्रभा ४४ । दीप्ता ४५ । नीला ४६ । घना ४७ । बलाकाम्बा ४८ । मात्रा ४९ । मुद्रा ५० । मिता ५१ । गजानना ५२ । सिंहमुखी ५३ । गृध्रास्या ५४ । का कतुण्डिका ५५ । उष्ट्रग्रीवा ५६ । वाराही ५७ । शरभानना ५८ । उलूकिका ५९ । शिवरावा ६० । मयूरी ६१ । विकटानना ६२ । अष्टवक्त्रा ६३ । कोट-राची ६४ । कुब्जा ६५ । विकटलोचना ६६ । शुष्कोदरा ६७ । ललज्जिह्वा ६८ । श्वदंष्ट्रा ६९ । वानरानना ७० । ऋक्षाक्षी ७१ । केकराक्षी ७२ । बृहत्तुण्डा ७३ । सुरप्रिया ७४ । कपालहस्ता ७५ । रक्ताक्षी ७६ । शुकी ७७ । श्येनी ७८ । कपोतिका ७९ । पाशहस्ता ८० । दण्डहस्ता ८१ । प्रचण्डा ८२ । चण्डविक्रमा ८३ । शिशुघ्नी ८४ । पापहन्त्री ८५ । काली ८६ । रुधिरपायिनी ८७ । वसा-

धया ८८। गर्भभक्षा ८९। शवहस्ता ९०। मालिनी ९१। स्थूलकेशी ९२। बृहत्कुक्षि ९३। सर्पास्या ९४। प्रेतवाहिनी ९५। त्रिशूलहस्ता ९६। क्रोशा ९७ मृगशीर्षा ९८। वृषानना ९९। व्याघ्रास्या १००। धूमनिश्वासा १०१। व्योमैकचरणोर्द्धदृक् १०२। तापिनी १०३। शोषणी १०४। वृष्णी १०५। कोटरा १०६। स्थूलनासिका १०७। विद्युत्प्रभा १०८। बलाकास्या १०९। मार्जारी ११०। कटपूतना १११। अट्टाट्टहासा ११२। कामाक्षा ११३। मृग्या ११ मृग्यविलोचना ११५। इति योगनी कल्प। अथ डाकिन्यादि कल्प। प्रथम डाकिनी कल्प ५०। शाकिनी ५५ वर्णदेवी ५०। पीठशक्ति ५१। सुन्दरि नायिका ८। रुद्रपत्नी ११। मनुशक्ति १४ छाया १। पुष्टी १। रक्षा १। चोमा १। कालरात्री १। चितीश्वरी १। ३६० कल्पशक्तिका हुवा। अथ पुरुष कल्प आदिमें ब्राह्मकल्पम् १। पद्म २। वाराह ३। नारसिंह ४। वामन ५। श्रीपरशुराम ६। राम ७। कृष्ण ८। बौद्ध ९। कलकी १०। मीन ११। कूर्म १२। हंस १३। महा हंस १४। हयग्रीव १५। शिव १६। विष्णु १७। गणेश १८। सूर्य १९। मरीचि २०। अत्रि २१। अङ्गिरा २२। पौलस्त २३। पुलहा २४ क्रतु २५। वशिष्ट २६। नारद २७। दक्ष २८। काश्यप २९। भरद्वाज ३०। गौतम ३१। कपिल ३२। पराशर ३३। व्यास ३४। शौनक ३५। लोमश ३६। पैलव ३७। वरवत ३८। विभाण्डक ३९। भार्गव ४०। शुक ४१। च्यवन ४२। असित ४३। देवल ४४। माण्डव्य ४५। मुद्गल ४६। चतुर्दश मनु १४। ६०। नवग्रह ९। ६९। दशदिक्पाल १०। ७९। एकादशरुद्र ११। ९०। द्वादशादित्य १२। १०२। विश्वेदेवा १३। ११५। भैरव ५१। १६६। प्रधानभैरव १०। १७६। असिताङ्गादि आठभैरव ८। १८४। द्वादशकालीपति-भैरवाः १२। १९६। पञ्चदशकालीपति भैरव १५। २११। चतुःषष्ठीयोगिनीपति ६४। २७५। वर्णदेवीपति ५०। ३२५। वह्निसम्भूत वटुक १। क्रोध राज १। निशाकर १। देवक्षेत्रपाल १। ३३०। षोड़शमातृका १६। चतुर्दश इन्द्र १४। ३६०। क कारं विद्धिमां योनिं लिकारं लिङ्गविग्रहम्। शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म कालीनाम्नेति गीयते ॥ १ ॥ शिवशक्त्यात्मकं कल्पं तस्मात् संप्रोच्यते वुधैः। प्रकृतिं पुरुषं वापि कल्पसंज्ञं तथाविधम् ॥ २ ॥ इति शोरस्तु तराम्।

## अथ निर्माल्यरत्नाकरे प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थनामानि ।

सूतसंहिता ५३
विनायक संहिता ५४
धर्म संहिता ५५
कैलास संहिता ५६
आपस्तंब संहिता ५७
मृगेन्द्र संहिता ४८
ज्ञानसंहिता ५९
शङ्कर संहिता ५०
महाकाल संहिता ६१
भरद्वाज संहिता ५२
ईश्वर संहिता ६३
अगस्त संहिता ६४
शाण्डिल्य संहिता ६५
मैत्रायणि शाखा ६६
मैत्रेयी शाखा ६७
कण्वशाखा ६८
बौधायन सूत्र ६९
दालभ्य परिशिष्ट ७०
कात्यायन सूत्र ७१
शाट्यायन सूत्र ७२
शांखायन गृह्यसूत्र ७३
-अश्वलायन ७४
मत्स्य सूत्र ७५
योग सूत्र ७६
कात्यायन श्रौत सूत्र ७७
गौतमाचार सूत्र ७८
छन्दोगार्षेय ब्राह्मण ७९
सुण्ड ब्राह्मण ८०
कुलमूलावतार सूत्र ८१
वातुल तन्त्र तृतीयकाण्ड ८२
वीर तन्त्र ८३
तोडल तन्त्र ८४
उत्पत्ति तन्त्र ८५
लिङ्गार्चन तन्त्र ८६
प्रयोग पारिजात तन्त्र ८७
रुद्रयामल ८८
मुकुटागम तन्त्र ८९
मेरु तन्त्र ९०
संमोहन तन्त्र ९१
नवचक्रेश्वर तन्त्र ९२
मुण्डमाला तन्त्र ९३
ईच्छा तन्त्र ९४
शक्तियामल तन्त्र ९५
मातृकाभेद तन्त्र ९६
गुरु तन्त्र ९७
बृहन्नील तन्त्र ९८
आगमकल्पद्रुम ९९
गौतमी तन्त्र १००
कारणागम तन्त्र १०१
विष्णुयामल तन्त्र १०२
भैरवयामल १०३
कैलाश तन्त्र १०४

इति